“समाजवादी चिन्तकों के शैक्षिक विचारों” का तुलनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी
की
शिक्षा विषय में
डाक्टर आफ फिलासफी हेतु
प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
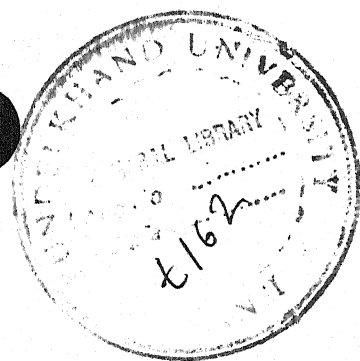
निर्देशक :
डा0 डी0एस0श्रीवास्तव
अधिष्ठाता शिक्षा संकाय
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,
झाँसी

अन्वेषिका :
श्रीमती शशि मिश्रा
एम0ए0, एम0एड0

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्रीमती शशि मिश्रा** ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की शिक्षा–शोध समिति द्वारा स्वीकृत विषय **''समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन''** पर मेरे निर्देशन में अथक परिश्रम, तन्मयता, लगन तथा अध्यवसाय से पूर्ण किया है। यह इनका नवीनतम् प्रथम मौलिक प्रयास है तथा स्वयं के परिश्रम की परिणीति है।

इस शोध–प्रबन्ध की विषय–सामग्री किसी अन्य उपाधि हेतु किसी भी विश्वविद्यालय में प्रयोग नहीं की गयी है।

अवकाश के दिनों में 200 दिनों से अधिक उपस्थित रहकर प्रस्तुत शोध को पूर्ण किया है। यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के शोध अध्यादेश के प्रत्येक उपबन्धों की पूर्ति करता है। समस्त दृष्टिकोणों से उपयुक्तता के आधार पर मैं मूल्यांकन हेतु संस्तुति करता हूँ।

(डॉ0 डी0एस0 श्रीवास्तव)
अधिष्ठाता
शिक्षा–संकाय
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,
झाँसी

विजया–दशमी
15.10.2002

आभार-प्रदर्शन

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उत्तर–प्रदेश के द्वारा प्रकाशित उत्तर–प्रदेश पत्रिका के जनवरी 1989 के अंक जिसे सम्पूर्णानंद अंक नाम दिया गया है के पृष्ठ 24 श्री दिलीप नरायण के निम्नांकित प्रेरणादायक वाक्य छपे थे – "उनकी (श्री सम्पूर्णानंद की) उपलब्धियाँ उनकी अपनी हैं, स्वोपार्जित हैं। इन्हें अभी सम्यक् रूप से कूता नहीं गया है। इसके अतिरिक्त इनके चिंतन की अथाह निधि बिखरी पड़ी है, जिनकी समुचित समीक्षा नहीं हुई, जिसके कारण लोग उनकी सच्ची चमक से परिचित नहीं हो पाये हैं, निकट भविष्य में जब उनके व्यक्तित्व का बिना किसी पूर्वाग्रह के अध्ययन होगा, जब उनके लेखन और चिंतन की ठीक से परख होगी, तब उनकी महत्ता को भी यथार्थ रूप से कूता जा सकेगा, वह समय आ गया है।"

कुछ ऐसी ही स्थिति महान् समाजवादी विचारक, जननेता डा0 राममनोहर लोहिया के व्यक्तित्व एवं विचारों के मूल्यांकन की है, तथा 'सादगी में सैष्ठ' यह महान् समाजवादी शिक्षा शास्त्री आचार्य नरेन्द्र देव के व्यक्तित्व की विशेषता है। वर्तमान अपसंस्कृतिग्रस्त परिस्थिति में 'समाजवाद' की त्रिवेणी के इन तीनों सरिता रूपी विचारकों के व्यक्तित्व का बिना पूर्वाग्रह के अध्ययन, चिंतन तथा लेखन की समीक्षा करने की ललक उपर्युक्त प्रेरणादायक वाक्य ने उत्पन्न कर दी, जिसका सिंचन एवं पल्लवन मेरे पूज्य गुरूजी डा0 दयाशंकर श्रीवास्तव जी ने किया है।

मैं सर्वप्रथम अपने इष्ट, अराध्यदेव 'जानकीजीवन' मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम' एवं पूज्य गुरूदेव डॉ0 डी0एस0 श्रीवास्तव जी के प्रति तथा उन महापुरूष श्री दिलीप नरायन सिंह जी के प्रति हार्दिक आभार ज्ञापित करते हुए उनके प्रति विनम्र भाव से कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। जिन्होंने 'समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों के तुलनात्मक अध्ययन' विषयक शोध के निर्देशन हेतु अपनी स्वीकृति ही प्रदान नहीं की अपितु पुत्रिवत् स्नेह प्रदान करके शोध कार्य के हर सोपान में यथोचित मार्गदर्शन तथा निर्देशन देने की महान् कृपा कर मुझे अनुगृहीत किया है, जिसके लिए शिष्या रूप से नतमस्तक हूँ।

अपने शोध अध्ययन केन्द्र, अतर्रा, महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ0 राजकिशोर शुक्ला के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अपने विद्यालय के पुस्तकालय में अध्ययन करने की अनुमति प्रदान की तथा पुस्तकालयाध्यक्ष जिन्होंने ग्रंथ एवं पत्रिकाएं उपलब्ध कराकर सहायता की है।

ममत्व की महिमा से आप्लावित आदरणीया दीदी श्रीमती रागिनी श्रीवास्तव, तथा बड़ी बहिन के समान स्नेह एवं सहयोग देने वाली दीदी श्रीमती वीणापाणि जिन्होंने शोध–अध्ययन

में पदे–पदे अपने ज्ञान एवं अनुभव द्वारा सहायता प्रदान की तथा अपने निजी पुस्तकालय से शोध–सर्वेक्षण, शैक्षिक अनुसंधान एवं शिक्षा सिद्धांत सम्बन्धी ग्रंथ व पत्र–पत्रिकाओं को उपलब्ध कराकर व उनके नोट्स लेने का ढंग बताकर प्रायोगिक रूप से मदद की, शिक्षा–विभाग के प्रवक्ता महोदयों के साथ विचार विमर्श कराकर शोध दृष्टिकोण को विस्तृत रूप देने का कार्य भी किया। इन सबके लिए मैं उनकी चिर ऋणी हूँ।

मेरे उज्जवल भविष्य की कामना करने वाले, मैं अपने स्वर्गीय पिता जी डॉ0 जगत प्रसाद मिश्र, तथा मुझे मेरे लक्ष्य के प्रति सचेत करने वाली आदरणीया माता श्रीमती लक्ष्मी देवी एवं दोनों अनुजों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे सदैव कठिन कर्म करने एवं ईश्वर पर आस्था रखने की प्रेरणा प्रदान की, तथा आर्शीवाद, शुभकामनाओं सहित हर संभव सहयोग प्रदान किया। तथा ब्रह्मलीन पापा जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ एवं प्रार्थना करती हूँ कि वे मेरे जीवन को अपनी कृपा दृष्टि से प्रकाशित करें।

मैं श्री नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय बाँदा एवं सूचना जनसम्पर्क विभाग बाँदा के अध्यक्ष एवं कर्मचारियों के प्रति भी आभार प्रदर्शित करती हूँ, जिन्होंने नोट्स लेने पुस्तकें प्रदान करने एवं कुछ ग्रंथों की फोटो प्रति कराने की अनुमति देकर अनुग्रहीत किया।

डा0 रामशकल पाण्डेय 'अध्यक्ष' शिक्षा–विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सेन्ट्रल लाइब्रेरी इलाहाबाद, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ, हिंदी भवन कालपी, काशी विद्यापीठ वाराणसी, जहाँ श्री सम्पूर्णानंद एवं नरेन्द्र देव शिक्षक, आचार्य, प्रोफेसर एवं कुलाधिपति रहे थे, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद के कर्मचारियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे अपने ग्रंथ एवं संस्करण उपलब्ध कराने की कृपा की।

मैं अपने पतिदेव श्री प्रदीप कुमार मिश्र के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे शोध में अधिकांशतया पुस्तकें, संस्करण एवं ग्रंथ अपने कठिन प्रयास द्वारा उपलब्ध कराई तथा मुझे मेरे कर्म के प्रति सचेत कर, पग–पग पर मेरा उत्साहवर्धन कर इस कार्य को सम्पन्न कराने में मुझे सहयोग दिया। उनके प्रति प्रकट रूप से कृतज्ञता ज्ञापन में संकोच हो रहा है, क्योंकि मैं इस ऋण से मुक्त नहीं होना चाहती तथा अपने पुत्र शिशु के स्नेह से अह्लादित हूँ, जो मुझे अध्ययन करते देखकर चुपचाप मेरे पास बैठ जाता था, किसी तरह का व्यवधान उपस्थित नहीं करता था।

मेरे पूज्य श्वसुर जी श्री श्याम सुन्दर मिश्र, सासु माँ श्रीमती लीलावती मिश्रा के उत्साहवर्धन, सहयोग से ही मैं इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सफल हो सकी हूँ। अपने गुरू, माता–पिता, सास–श्वसुर के प्रति नतमस्तक होकर कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

इस शोध कार्य में मुझे विभिन्न महापुरूषों, विद्वानों, समीक्षाकारों के त्रिशताब्दिक ग्रंथों का अध्ययन अनुशीलन करना पड़ा हे। उनसे उद्वरण लेकर शोध–प्रबंध में उपयोग किया उन सभी के प्रति सादर आभार व्यक्त करते हुए, कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण करने में डॉ0 एस0एन0 (वाराणसी) तथा डॉ0 आर0पी0 सिंह (पटना) जैसे शिक्षा–विदों का सहयोग समय–समय पर प्राप्त हुआ है। अपने स्नेहिल आर्शीवाद से उन्होंने मेरी जो सहायता की है उसके प्रति मैं उनको हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मैं अपने विद्यालय की समस्त सहयोगी शिक्षिकाओं, विशेष रूप से श्रीमती नीलम वर्मा, श्रीमती ममता पराशर एवं अंतिमा श्रीवास्तव की हार्दिक आभारी हूँ, जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने में मुझे यथा संभव सहयोग दिया।

अन्त में मैं पी0डी0कम्प्यूटर्स के प्रोपाइटर राजेश गुप्ता तथा कम्प्यूटर आपरेटर श्री बिहारी शरण निगम का भी आभार व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ जिन्होंने मेरे इस शोध प्रबन्ध का लेजर कम्पोजिंग का कार्य समय से सम्पन्न किया।

परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ कि जिन्होंने इस शोध–प्रबन्ध की तैयारी में सहायता दी है, उनके प्रति सिवाय कृतज्ञता ज्ञापित करने के कुछ भी करनें में समर्थ नहीं हूँ। वे सर्वविधि कल्याण करें तथा स्वरथ्य व प्रसन्न रखें।

शशि मिश्रा
(शशि मिश्रा)

दिनांक :– 12.10.2002

अनुक्रमणिका

2. तत्वमीमांसा सम्बन्धी निष्कर्ष।
3. ज्ञानमीमांसा निष्कर्ष।
4. आदर्शवादी दृष्टिकोण सम्बन्धी निष्कर्ष
5. प्रयोजनवादी सम्बन्धी निष्कर्ष
6. समाजशास्त्रीय आधार सम्बन्धी निष्कर्ष
7. वैज्ञानिक विश्लेषण सम्बन्धी निष्कर्ष
8. समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों के सबल पक्षीय निष्कर्ष।

(ब) सुझाव–

1. वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था हेतु सुझाव।
2. वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव
3. समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर सुझाव।

(स) भावी शोधकार्य हेतु सुझाव –

1. परिशिष्ट
2. संदर्भ ग्रंथ सूची

वीणाधरे विपुलमंगलदानशीले,

भक्तार्तिनाशिनि विरंचिहरीशवन्धे।

कीर्तिप्रदे अखिल मनोरथदे महार्हे,

विधाप्रदायिनि सरस्वती नौमिनित्यम्।।1।।

गजाननं भूतगणादि सेवितं,

कपित्थ जम्बूफल चारूभक्षणम्।

उमासुतं शोक विनाशकारकं,

नमामि विघ्नेश्वरं पादपंकजम् ।।2।।

गुरू पितु मातु महेश भवानी। प्रणवउँ दीनबन्धु दिनदानी।।
जनकसुता जग जननि जानकी। अतिशय प्रिय करूणा निधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ।।

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।।

प्रथम अध्याय

(समस्या, शोध–विधि तथा योजना)

समस्या, शोध–विधि तथा योजना

कुछ लोग जन्म से ही महान होते हैं, कुछ महानता (परिश्रम से) प्राप्त करते हैं, कुछ के पास महानता होती है, जो दूसरों के द्वारा उन पर थोप (आरोपित) दी जाती है।

किसी भी देश का अतीत उसके वर्तमान एवं भविष्य का प्रेरणा स्रोत होता है। भारत का गौरवपूर्ण अतीत अध्यात्म प्रधान था जो शैक्षिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सभी क्षेत्रों पर अपना प्रभाव रखता था। संसार में जितने भी मत सम्प्रदाय और विचारधारायें चली हैं सबने शिक्षा को अपने उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बनाया, विश्व में जितने भी उच्च कोटि के दार्शनिक हुए सबने शिक्षा–व्यवस्था पर अपनी योजनाएं बनायी। पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटों, रूसों पेष्टालॉजी, जॉनडीवी, हरर्बट स्पेन्सर, फ्रावेल, डा० मेरियामाटेंसरी आदि ने अपनी–अपनी शिक्षण–पद्धति प्रस्तुत की है।

वहीं भारतीय दार्शनिकों में स्वामी दयानन्द सरस्वती, रवीन्द्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द, डा० राधाकृष्णन, जकिर हुसैन, आर्चा विनोवा भावे, तथा डा० सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव आदि ने शिक्षा दर्शन तथा शिक्षण पद्धतियों का प्रतिपादन किया है। इसी प्रकार शिक्षा जगत में पं०. मदन मोहन मालवीय, एनीवेन्सण्ट ने कृष्णमूर्ति, राजाराम मोहन राय, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, शंकराचार्य, जवाहरलाल नेहरू, भाऊराम पाटिल, लोकमान्य तिलक आदि महापुरूषें के शैक्षिक विचारों से प्रभावित हुआ है और उनके विचारों ने शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये है।

(गत) इस सदी के प्रारम्भ में जब दुनिया के अनेक देशों में साम्यवादी समाज रचना के अनेक प्रयोग हो रहे थे। भारत में स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय नौजवानों के एक समूह ने किसी एक अर्न्तराष्ट्रीय केन्द्र से बँधकर समाजवाद का आयात करने के बजाय अपने ही देश की माटी और संस्कृति में एक नई व्यवस्था की रचना के संघर्ष का सूत्रपात किया। इनमें जयप्रकाश नरायन, यूसुफ मैहर अली, अच्युत पटर्वधन, अशोक मेहता, नीनूम्सानी एन०जी०गोरे, आचार्य नारेन्द्र देव, प्राधीनता एवं नवीनता के संगम डा० सम्पूर्णानन्द, कमला देवी चट्टोपाध्याय, डा० राममनोहर लोहिया और एस० एम० जोशी आदि को भारतीय समावादी आन्दोलन के प्रमुख संस्थापक कहा जा सकता है।

पश्चिम के समाजवाद में वैज्ञानिक अर्थात तर्क बुद्धि की प्रधानता था। तर्क सिंह होता है। अपने समक्ष सबकी उपेक्षा कर देता है, डराता भी है, तर्क न केवल नीरस बल्कि कभी–कभी करूण हीन भी हो जाता है। किन्तु भारत तो करूणा का देश है। अहिंसा और करूणा इसका मूल संदेश है। चाहे बुद्ध हो, चाहे गांधी दोनों ही करूणा अवतार हैं, अहिंसा

वादी हैं, अतः धीरे–धीरे त्रिमूर्ति के समाजवाद में अहिंसा एवं करूणा का श्रेष्ठ संगम हुआ, फिर तो भारत का समाजवाद मार्क्स की अपेक्षा गांधी के सत्य से अधिक जुड गया है। ये समाजवादी विचारक थे, जो सूर्योदय की प्रतीक्षा न करके स्वयं सूर्य बनकर उगे थे।

भारत के समाजवाद में मानवीय एवं अध्यात्मिक पक्ष प्रभावी था, शायद इसलिये कि भारत के समाजवादियों में भारत की परम्परा काम कर रही थी। यह परम्परा पूर्ण भौतिक नहीं थी, क्योंकि भारत का पूरा चिंतन किसी न किसी रूप में अध्यात्म पर आधारित है। सामाजवाद में सम्पत्ति का मालिक समाज होगा, समाजवाद का अर्थ है, 'सम्पत्ति का सरकारी या समाजीकरण' लेकिन भारत का जो समाजवादी चिंतन है, वह मार्क्स वादी चिंतन की तुलना में अधिक उदार है। मार्क्स को केवल औद्योगिक मजदूरों के शोषण की चिन्ता थीं। लेकिन लोहिया के शोषण में स्त्री, हरिजन, शूद्र, किसान आदि के साथ–साथ एक रंगीन दुनिया है। इसलिये लोहिया के शोषित मानवता के प्रकार मार्क्स की शोषिम मानवता से कई गुना अधिक है। भारत के समाजवादियों ने गांधी की अगुआई में भारत को ठीक से समझाने की कोशिश की थी। फलतः समूचे विश्व को समझने में सुविधा हुई।

मार्क्स केवल योरोपीय सर्वहारा का स्वार्थ पक्ष देखता है, इस स्वार्थदृष्टि ने मार्क्स को मानवतावादी नहीं बनने दिया। मार्क्स यूरोपीय सर्वहारा के घेरे के पार न जा सका। मार्क्स ने "विश्व के 'मजदूरों एक हो' कहा तो लोहिया ने 'विश्व के काले (रंगीन) एक हो' का नारा दिया।"[1]

भारत भूमि के इन तीनों समाजवादी चिंतकों ने समाजवादी चिंतन को नया आयाम दिया। इनका समाजवादी एवं शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण, देश प्रेम एवं जनकल्याण की भावनाओं से ओत प्रोत था। उन्होंने सर्वहारा एवं शोषित समाज को अपनी अभिव्यक्ति के लिये एक मजबूत आधार दिया, जहाँ वे निर्भीक होकर अपने शोषण के खिलाफ अपनी आवाज उठा सके। इनका एक ही उद्देश्य था।

"शोषण मुक्त समाज की परिकल्पना को साकार करना है"

भारत के समाजवादियों ने मार्क्सवाद को तो माना, किन्तु उसकी रूसी व्याख्या अस्वीकार कर दी। कम्युनिस्ट सर्वहारा की अधिनायकशाही की बात करते हैं, किन्तु समाजवादियों को अधिनायकशाही नाम से ही नफरत थी। इसी अधिनायकशाही के कारण रूस के समाजवाद के स्वर्ग की कल्पना यातना शिविरों के नरक में परिवर्तित हो गयी। इस लिये भारत के समाजवादियों ने अपने को जनतांत्रिक समाजवादी पोषित किया और भारतीय समाजवादियों ने राष्ट्रीयता, समाजवाद और जनतंत्र की अपनी छवि बनाई।

---

1. समाजवाद– आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया और जयप्रकाश की दृष्टि में, लेखक–डा0 युगेश्वर प्रकाशक–अतुलबगाई, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, लखनऊ।

समाजवाद गॉधीवादी नहीं मार्क्सवादी आन्दोलन है, किन्तु सच्चाई यह है कि भारत के समाजवादी मार्क्स की अपेक्षा गांधी के अधिक निकट है। आचार्य नारेन्द्र देव ने मार्क्स वाद को गांधी के समान बना दिया। भारत का समाजवादी आन्दोलन प्रभावों और प्रेरणाओं के बावजूद मूलतः भारत की धरती से उत्पन्न था। वह कम्युनिस्ट द्वारा उपेक्षित भारत की समस्याओं के विरोध में खडा हुआ था। अपनी सम्पूर्ण विदेशी शिक्षा के बावजूंद वह भारत की समस्याओं का समाधान विदेशी किताबों में न देखकर इसी धरती की किताबों में देखने का प्रयत्न करता है।

समाजवादियों के विचारों पर मार्क्स का प्रभाव माना जाये तो आचार्य में गांधी का आदर्श मानते थे। रोजा लक्समवर्ग ने कहा था "समाजवाद रोटी मक्खन का सवाल नहीं, वरन् एक विश्व–व्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन है। समाजवाद की लड़ाई मजदूर वर्ग के नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा रखती है।"

"समाजवाद वह चेतना है, जो शोषणरहित समाज–स्थापना की चेतना है।"[2]

आज समाजवाद की कोई प्रतिष्ठा है तो उसका श्रेय मार्क्स, ऐगल्स एवं लेनिन, स्तालिन की अपेक्षा नरेन्द्रदेव, लोहिया एवं जय प्रकाश को है।

भारत का समाजवाद योरोपीय समाजवाद से बिल्कुल ही भिन्न स्तर का है, इसकी मानवीय चेतना वर्ग पर आधारित न होकर समूह मानव की है। बौद्धिकता के साथ –साथ संवेदनशील है। क्रोध की अपेक्षा करूणा युक्त है। यह सीताराम के वन के सार्थियों को सत्ता देना चाहता है।

हमारे राष्ट्र के जीवन में बीसवीं शदी एक स्वर्रिणम युग के रूप में अंकित रहेगी। इसका कारण यह नहीं है कि हमने ब्रिट्रिश सामाज्य की दासता से मुक्ति पायी है और हम आजाद हुए हैं इसका एक कारण यह भी है कि बीसवी सदी में हमारे राष्ट्र ने एक से एक महान चिंतक समाज सुधारक तथा विचारक पैदा किए हैं, बीसवीं शताब्दी के हमारे ऐसे देदीप्यमान विचारकों में राधाकृष्णन, लोकमान्य तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, अरविन्द घोष, महात्मा गांधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, मदनमोहन मालवीय, डा0 जाकिर हुसैन, बिनोवा भावे, भीमराव अम्बेदकर, नरेन्द्रदेव, राममनोहर लोहिया, डा0 सम्पूर्णानन्द, कालूलाल माली, दीन दयाल उपाध्याय तथा मकुवाला जैसे एक से एक असाधारण मनीषी उल्लेखनीय हैं। इन सभी विचारकों ने राष्ट्रीय जीवन कें सभी पक्षों का गहराई से अध्ययन किया है और सम्पूर्ण राष्ट्र को एक नयी वैचारिक चेतना प्रदान की है। सभी विचारकों की दृष्टि में शिक्षा राष्ट्रीय जीवन

---

2. समाजवाद– आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया और जंयप्रकाश की दृष्टि में, लेखक–डा0 युगेश्वर, प्रकाशक–अतुलबगाई, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, लखनऊ।

का और नवीन राष्ट्र निर्माण की आधार भूमि थी अतएव सभी ने शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप पर गम्भीरता से विचार किया उनमें से अनेकों का शिंक्षा दर्शन केवल दार्शनिक चिन्तन ही नहीं रहा है वल्कि इसे राष्ट्रीय जीवन की शैक्षिक प्रयोगशाला में भी उतारा। पं0 मदन मोहन मलवीय का काशी विश्वविद्यालय, सर सैयद अहमद खॉ का अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय रवीन्द्र का शान्ति निकेतन, डौ0 जाकिर हुसैन का जामिया मिलिया, हीरालाल शास्त्री की वन स्थली, स्वामी श्रद्धानन्द का गुरूकुल कांगडी डा0 सम्पूर्णानन्द का संस्कृत विश्वविद्यालय, बीसवीं शदी के भारतीय शिक्षा दर्शन की ऐसी ही प्रयोगात्मक उपलब्धियाँ हैं।

शिक्षा एक अविरत गतिशील, तथा सार्वजनिक प्रक्रिया है। शिक्षा समाज का रूप परिवर्तन करती हैं और समाजिक परिस्थितियों के साथ–साथ अपना स्वरूप भी परिवर्तन करती हैं गतिशील शिक्षा दर्शन वही कहा जा सकता है जो नयी परिस्थितियों औरं नयी चुनौतियों का समाधान कर सकने के लिये अपने ंको नये रूप में ढाल लें। भारत की आजादी के संघर्ष में भी शिक्षा ने नयी चुनौतियों का सामना करने के लिये अपने को नये रूप में ढाला। देश भर में अपने सरकार द्वारा संचालित स्कूलों और कालेजों के समनान्तर राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयों तथा विद्यापीठों जैसे काशी विद्यापीठ आदि स्थापित हुए। शिक्षा ने एक नयी राष्ट्रीय चेतना का उदय किया।

बीसवीं शदी के भारतीय शिक्षा दर्शन को रूस की समाजवादी क्रांति तथा रूस की मार्क्सवादी चिंतन ने भारतीयता पर नये प्रभाव छोड़े यह प्रभाव डा0 एम0एन0 राय, डा0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव तथा डा0 राममनोहर लोहिया आदि के शिक्षा दर्शन पर स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं।

इस संक्षिप्त उल्लेख से यह बात सरलताँ से जानी जा सकती है कि गत सदी के भारतीय शिक्षा दर्शन के राष्ट्रवादी और समाजवादी क्रान्ति के तत्व प्रभावी थे ओर उन्हीं से वैचारिक चेतना लेकर शिक्षा ने तत्कालीन परिस्थितयों में अपनी अहम भूमिका निश्चित की। बीसवीं शदी का अंक समाप्त होते होते नयी वैज्ञानिक तकनीकों ने नये सिरे से शिक्षा के समक्ष चुनौतियां प्रस्तुत कर दी हैं। वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा कों इन चुनौतियों का सामना करते हुये इक्कीसवीं सदी में कदम बढाने हैं दोनों शताब्दियों के संधिकाल में यह आवश्यक हो जाता है कि हम बीसवीं शदी के समाजवादी राष्ट्रीय चिन्तन की गम्भीरता पूर्वक समीक्षा करें और यह देखें कि बीसवीं शदी के तीन प्रकाश स्तम्भ समाजवादी चिंतकों डा0 सम्पूर्णानन्द, डा0 आचार्य नरेन्द्र तथा डा0 राममनोहर लोहिया के शैक्षिक विचारों का गहनतम अध्ययन करें और यह देखें कि वह विचार आज की परिस्थिति में कितने उपयोगी हैं या अपनी प्रासंगिकता

खो चुके हैं। यह तीनों चिंतक स्वयं से महान थे इन पर महानता थोपी नहीं गयी थी अतः तीनों के विचार उच्च कोटि के थे अतएव हमें अपने अध्ययन में यह भी देखना है कि तीनों के विचारों में क्या भिन्नता थी तथा क्या समानतायें थी उनके इन विचारों का तुलनात्मक अध्ययन कर हम अपने अभीष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। यद्यपि यह तीनों चिन्तक हमारे मध्य नहीं हैं फिर भी उनके विचार राष्ट्रीय शिक्षा को प्रभावित कर रहे हैं और वर्तमान के लिए प्रासंगिक हैं। अन्य समाजवादी चिंतकों के विचारों का अध्ययन हो चुका है। उ0प्र0 शासन ने इनके शैक्षिक योगदान से प्रभावित होकर इनके नाम पर तीन विश्वविद्यालय स्थापित किये हैं।

अतएव मैने शोध प्रबन्ध का विषय निम्नवत चयन किया है।

''समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्यय''

समस्या का महत्व

वर्तमान समय में भारत विश्व का सबसे बडा लोकतांत्रिक देश है। आज की स्वार्थ प्रध ान एवं सिद्धान्तविहीन राजनीति समाज के प्रत्येक वर्ग में फैले भ्रष्टाचार के कारण लोकतंत्र का भविष्य धूमिल दिखाई दे रहा है। समाज में सभी प्रकार की समानता हो, लोगों का मस्तिष्क पूँजीवादी एवं आर्थिक वैषम्य मूलक विचारों से रहित हो, समाजवाद का स्वप्न पूर्ण हो, इसके लिए हमें शैक्षिक परिदृश्य में परिवर्तन करना होगा, क्योंकि शिक्षा वह संतुलित आहार है जो हमारे विचारों एवं मस्तिष्क को सुसंगठित एवं परिष्कृत तथा परिमार्जित बनाता है। समाजवादी चितंकों के शैक्षिक विचार हमारे निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करेगें।

1. नर–नारी के बीच असमानता को दूर कर नारी को सम्मानित स्थान मिलेगा तथा उन्हें सभी प्रकार के शोषण एवं दयनीय दशा से मुक्ति मिलेगी।
2. अमीर एवं गरीब के प्रति विद्वेष की भावना समाप्त होगी, समता स्थापित होगी, समाज के सभी अंगों का विकास होगा।
3. जाति के कारण होने वाली असमानता दूर होगी, अन्तरजातीय विवाह को महत्ता मिलेगी जिसके कारण दहेज प्रथा एवं अनमेल विवाह जैसी समस्यायें दूर होगीं।
4. विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के प्रति समता स्थापित होगी।
5. धनी एवं निर्धन राष्ट्रों के मध्य समता होगी।
6. परमाणु शस्त्र सम्पन्न एवं परमाणु शक्ति से रहित राष्ट्रों के मध्य समता ।
7. व्यक्ति एवं समाज के मध्य समता।

इस समस्या के अध्ययनोपरान्त हम यह सुनिश्चित कर सकने में समर्थ हो सकेगें कि समाजवादी चिन्तन के फलस्वरूप हमारी राष्ट्रीय शिक्षा का क्या स्वरूप है इन

चितकों के विचारों के अध्ययनोपरान्त हम यह भी देखगे कि वर्तमान शिक्षा पद्धति में क्या–क्या परिवर्तन किये जाय जिससे हमारी शिक्षा समाज में व्याप्त विषमताओं को दूर कर सकें।

प्रस्तुत शोध की आवश्यकता

प्रस्तुत शोध समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों पर आधारित है। यह तीनों समाजवादी चिंतक इस देश की विभूतियाँ रहे हैं इन्होंने देश को एक नयी दिशा देने का प्रयास किया है राष्ट्रवादी चिन्तन के साथ–साथ इन्होंने शिक्षा को राष्ट्र के विकास का आधार स्वीकारा है अतएव शिक्षा के क्षेत्र में इन्होनें अप्रतिम कार्य किये हैं। इनका सारा जीवन शैक्षिक परिवेश में बीता है। यह अध्यापक, प्रिन्सपल, तथा प्रोफेसर रहे हैं शिक्षा मंत्री, राज्य पाल तथा कुलपति आदि पदों पर कार्य करते हुए अपने शैक्षिक विचारों को क्रियात्मक रूप प्रदान किया है। अतएव इनके शैक्षिक विचारों का आकलन करते हुए हम उनकी प्रासंगिता पर महत्वपूर्ण विचार करेगें तथा उपयोगी विचारों का राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति पर समावेश कर उनका क्रियान्चयन कराने का प्रयास किया जायेगा। हमारी शिक्षा पद्धति मे बदलाव आ सकेगा। यही इसकी विशेष उपादेयता होगी।

शोध की आवश्यकता एवं समस्या चयन

जिज्ञासा मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। जीवन के निगूढ़ रहस्यों को ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा तथा जिन रहस्यों में मानव जीवन उलझा प्रतीत होता है उन तक पहुंचने की ललक उसे सदैव बेचैन करती रही है। जितना ही अधिक वह विश्व के रहस्य को उघाडता रहा है, उतनी ही अधिक उसकी बेचैनी भी बढ़ती रही है। हम क्या हैं, विश्व क्या है, विश्व में जो कुछ घटता है, क्यों घटता है, आदि प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास मानव आदिकाल से करता आ रहा है। जीवन का पट उसके समक्ष फैला हुआ है। परन्तु वह उतना सपाट नहीं है जितना कि वह कल्पना करता रहा है। अतः ऐसे प्रश्नों का उत्तर पाने, खोजने का सिलसिला आज तक समाप्त नहीं हुआ है। वेदकालीन संस्कृति में जीवन और मरण का रहस्य उजागर करना मानव की सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या थी।

कठोपनिषद का नचिकेता यमराज से प्रश्न करता है 'आत्मा क्या है, कहॉ है, है भी या नहीं, यदि है तो इस लोक से जाने पर उसका क्या होता है। मानव ने अपनी बुद्धि एवं चिंतन के अनुसार भिन्न–भिन्न उत्तर इन प्रश्नों के प्रस्तुत किये हैं। जिज्ञासा ने मानव को उस उच्चतर ज्ञान की खोज से जोड़ा जो मानव बृद्धि से परे है, श्रेष्ठ है, "हिरण्यगर्भ" है। वह जिज्ञासा आद्य सत्ता, अव्यक्त, अगम्य, अवर्णनीय सत्ता जिसे माया, प्रकृति, 'अत्याकृत' कहते हैं से सम्बंधित सत्य की खोज थी। सुकेशादि छः ऋषि–पुत्रों द्वारा मुनि पिप्पलादि से

किये गये प्रश्नों के उत्तरों की याचना मानवीय जिज्ञासा की पराकाष्ठा ही कहा जायेगा। चराचर पदार्थों वाले ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई, प्राणों की उत्पत्ति कैसे हुई, उपासना करने वाला किस अवस्था को प्राप्त होता है, षाड़ेशकला युक्त पुरूष कौन है, जीवात्मा का स्वरूप क्या है, इस शरीर को कौन–कौन देव धारण करते हैं आदि प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की जिज्ञासा एवं प्रयासों के फलस्वरूप जन्मा ज्ञान विज्ञान एवं जन्मी उसकी भिन्न शाखायें। यही आज के अनुसंधान का आदि रूप है। वास्तव में आज के अनुसंधान की जननी भी मानवीय जिज्ञासा ही है। परन्तु आज के अनुसंधान की विधियां प्राचीन काल की विधियों से बहुत भिन्न है। आज के अनुसंधान की इन विधियों के संदर्भ में अनेक विद्धान प्राचीन काल की ज्ञानोपलब्धि को वैज्ञानिक ज्ञान नहीं मानते। यह न्यायोचित नहीं है। उस काल में जो समस्यायें मानव के समक्ष थी उसका विषय क्षेत्र ही ऐसा था कि उसके लिए वही विधियां उपयुक्त थीं। जैसे–जैसे समस्याओं एवं जिज्ञासा का रूप बदलता गया, ज्ञानोपलब्धि की विधियां एवं अनुसंधान की विधियों में भी परिवर्तन आता गया।

''रडेमेन एवं मोरी' के अनुसार :– 'नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए व्यवस्थित प्रयास ही अनुसंधान है'

(Research is a systematised effort to gain new Knowledge)

अनुसंधान एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समस्याओं का समाधान करके ज्ञान में वृद्धि की जाती है। वस्तुतः ज्ञान बुद्धि की प्रक्रिया ही अनुसंधान है। सभी प्रकार के अनुसंधान समस्या केन्द्रित होते हैं।,

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। उसका मूलभूत उद्‌देश्य व्यक्ति में ऐसे परिवर्तन लाना होता है, जो सामाजिक विकास एवं व्यक्ति के जीवन को उन्नतशील बनाने के दृष्टिकोण से अनिर्वाय होते हैं। इस उद्‌देश्य की पूर्ति मुख्य रूप से शिक्षा की प्रक्रिया पर निर्भर करताी है। यदि शिक्षा की प्रक्रिया सशक्त एवं प्रभावशाली हो तो व्यक्ति में उसके द्वारा उपरोक्त वांछनीय परिवर्तन लाना सरल एवम् संभव होगा अन्यथा नहीं। अतः शिक्षा की प्रमुख समस्या है कि उसकी प्रक्रिया को सुदृढ़ प्रभावशाली एवं सशक्त कैसे बनाया जाए। इस समस्या के समस्या हेतु अनुसंधान आवश्यक है। अनुसंधान के द्वारा ही उन विधियों, परिस्थितियों की खोज सम्भव है, जो शिक्षा की प्रक्रिया को सबल बनाने में सहयोग दे सकती हैं। इस दृष्टिकोण से अनुसंधान का शिक्षा के क्षेत्र बहुत अधिक महत्व है।

एफ0एल0 भिटनी के अनुसार ''शिक्षा अनुसंधान का उद्‌देश्य शिक्षा की समस्याओं का समाधान करके उनमें योगदान करना है, जिसमे वैज्ञानिक विधि, तथा चिन्तन का प्रयोग किया

जाता है। वैज्ञानिक स्तर पर विशिष्ट अनुभवों का मूल्यांकन और व्यवस्था की जाती है। इसके अन्तर्गत परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है। इनकी पुष्टि से सिद्धांतो का प्रतिपादन होता है, इसमें निगमन चिंतन किया जाता है। दार्शनिक शोध–विधि में व्यापक सामान्यीकरण किये जाते हैं जिससे सत्य एवं मूल्यों का प्रतिस्थापन किया जाता है।''

मोनरो के अनुसार – ''शिक्षा अनुसंधान का अंतिम लक्ष्य सिद्धांतों का प्रतिपादन करना और शिक्षा के नवीन प्रक्रियाओं का विकास करना।''

डब्लू0एम0टैवर्स के अनुसार – ''शिक्षा–अनुसंधान की परिभाषा है –

शिक्षा – अनुसंधान वह प्रक्रिया है, जो शैक्षिक परिस्थितियों में व्यवहार विज्ञान का विकास करती हैं।''

"Education research is that activity which is directed toward development of science of behaviour in Educational situation" W.M. travers.

शिक्षा–अनुसंधान की आवश्यकता

शिक्षा–अनुसंधान की समस्याओं में विविधता अधिक है, इसलिये इसकी आवश्यकता से चार प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

(1) सैद्धान्तिक उद्देश्य, (2) तथ्यात्मक उद्देश्य

(3) सत्यात्मक उद्देश्य (4) व्यावहारिक उद्देश्य

(1) सैद्धान्तिक उद्देश्य – शिक्षा–अनुसंधान में वैज्ञानिक शोध–कार्यो द्वारा नये सिद्धान्तों तथा नये नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। इस प्रकार के शोध–कार्य व्याख्यात्मक होते हैं। इस प्रकार के शोध कार्यों से प्राथमिक रूप से नवीन ज्ञान की वृद्धि की जाती है, जिनका उपयोग शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में किया जाता है।

(2) तथ्यात्मक उद्देश्य – शिक्षा के अन्तर्गत ऐतिहासिक शोध–कार्यो द्वारा नये तथ्यों की खोज की जाती है। इनके आधार पर वर्तमान को समझने में सहायता मिलती है। इन उद्देश्यों की प्रकृति वर्णनात्मक होती है। नवीन तथ्यों की खोज शिक्षा प्रक्रिया के विकास तथा सुधार में सहायक होती है।

(3) सख्यात्मक उद्देश्य – दार्शनिक 'शोध' कार्यो द्वारा नवीन सत्यों का प्रतिस्थापन किया जाता है। इनकी प्राप्ति अंतिम प्रश्नों के उत्तरों से की जाती है। दार्शनिक शोध–कार्यो द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों, सिद्धान्तों तथा शिक्षण–विधियों तथा पाठ्यक्रम की रचना की जाती है। शिक्षा की प्रक्रिया के अनुभवों का चिंतन बौद्धिक स्तर पर किया जाता है, जिससे नवीन सत्यों एवं मूल्यों का प्रतिस्थापन किया जाता है।

(4) व्यावहारिक उद्देश्य – शिक्षा–अनुसंधान के निष्कर्षों का व्यावहारिक प्रयोग होना चाहिए, परन्तु कुछ शोध कार्यों में केवल उपयोगिता को ही महत्व दिया जाता है, ज्ञान के क्षेत्र में योगदान नहीं होता है। इन्हें विकासात्मक अनुसंधान भी कहते हैं। क्रियात्मक अनुसंधान से शिक्षा की प्रक्रिया में सुधार तथा विकास किया जाता है, अर्थात् इनका उद्देश्य व्यावहारिक होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान का सूत्रपात 1950 के दशक में हुआ। ऐसा माना जाता है शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम पी0एच0डी0 उपाधि 1943 में बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गयी थी। उसके पश्चात् लगातार अनुसंधान के क्षेत्र में विस्तार होता रहा।

बदलते हुए भारतीय समाज में आज पुराने आदर्शों से पथ निर्देश नहीं हो पा रहा। आज नये नेतृत्व की आवश्यकता है। समाजवादी ही वह नया नेतृत्व प्रदान कर सकता है। समाजवाद केवल रोटी का सवाल नहीं है। समाजवाद मानव स्वतन्त्रता की कुंजी है। समाजवाद ही एक स्वतंत्र सुखी समाज में सम्पूर्ण, स्वतंत्र मनुष्य को प्रतिष्ठित कर सकता है। समाजवाद ही स्वतन्त्रता, समता और भातृभाव के आधार पर एक सुन्दर, सबल मानव संस्कृति की सृष्टि कर सकता है। सुन्दर और सम्पूर्ण मनुष्यत्व की सृष्टि तभी हो सकती है, जब साधन भी सुन्दर हो, मानवोचित हो। उद्देश्य और साधन परस्पर सम्बद्ध तथा परस्पर निर्भर होते हैं।

समाजवादी विचारकों के रूप में यो तो उस समय में अनेक नाम उभर कर सामने आये लेकिन आचार्य नरेन्द्र देव, राममनोहर लोहिया एवं डा0 सम्पूर्णानन्द उनमें प्रमुख थे। ये ऐसे व्यक्तित्व थे, जिन्होंने समाजवादी चिंतन को नया आयाम दिया। इनका समाजवादी दर्शन, देश प्रेम एवं जनकल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत था। उन्होंने सर्वहारा और शोषित समाज को अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक मजबूत आधार दिया। जहॉ से वे निर्भीक होकर अपने शोषण के खिलाफ आवाज उछा सकें। ये समाजवादी विचारक अपने उद्देश्यों में काफी हद तक सफल हुये, लेकिन दुर्भाग्य से समाजवादी आंदोलन बिखराव और भटकाव का शिकार हो गया। किन्तु आज फिर पूँजीवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद जैसी कुरीतियां हावी होने की कोशिश कर रही हैं। अतः आज फिर आवश्यकता है कि हम समाजवाद के पन्नों को पलटें, और उनके शैक्षिक विचारों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझे ताकि उनके शोषण मुक्त समाज की परिकल्पना साकार हो सके। प्रस्तुत शोध ज्ञान के क्षेत्र में मौलिक देन प्रस्तुत करेगा। इसलिये इस शोध का विषय है अथवा समस्या है इस शोध के समक्ष ।

'समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन'

अनुसंधान समस्या के कथन में ही अनुसंधान कार्य की सम्पूर्ण रूपरेखा निहित होती है। उसे पढते ही यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि शोध का प्रमुख उद्देश्य क्या है, शोध सामग्री कहाँ से एकत्र की जाएगी। किन चरों का मापन किया जायेगा, तथा शोध सामग्री के विश्लेषण की विधि क्या होगी।

वही शीर्षक उत्तम होता है जो समस्या को समुचित रूप में सीमित और वस्तुनिष्ट (Limited and objective) रख सके।

समस्या कथन के इस नियमों पर यह 'समस्या' 'समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का अध्ययन' (कथन) सही उतरता है। यह ज्ञापक कथन है।

समस्या कथन की निम्न विधियां है – (1) एक अथवा अनेक प्रश्न (2) ज्ञापक कथन (3) एक कथन के साथ अनेक प्रश्न (4) एक कथन अनेक पक्षों के साथ।

(अ) समस्या का परिभाषीकरण :– ''समस्या को परिभाषित करने का अर्थ है कि उसे विस्तृत रूप से और ठीक प्रकार से सुनिश्चित बनाया जाये।''

उपरोक्त कथन डब्ल्यू0 एस0 मनरो तथा डी0 इगिल हार्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया, जिसे एफ0एल0 भिटनी ने उद्धृत किया है।

अनुसंधान के लिए समस्या के चुनाव और कथन के बाद सबसे महत्वपूर्ण कार्य समस्या का परिभाषीकरण है। परिभाषीकरण समस्या के मूल और व्यावहारिकता को स्पष्ट करेगा, वास्तव में परिभाषीकरण से तात्पर्य है 'अध्ययन की समस्या को चिंतन द्वारा सम्पूर्ण क्षेत्र से अलग निकाल कर स्पष्ट करना है''।

समस्या के परिभाषीकरण के सम्बन्ध में मनरों एवं ऐगिलहार्ट का कथन विशेष महत्व का है। उनका कहना है कि समस्या के परिभाषीकरण का अर्थ है ''उसका विस्तृत एवं सही–सही विशिष्टीकरण करना। प्रत्येक मुख्य एवं गौण प्रश्न जिसका उत्तर वांछनीय है का स्पष्टीकरण करना तथा अनुसंधान की सीमाओं का निर्धारण करना।''

इसके लिए उनके अनुसार यह आवश्यक है कि जो अनुसंधान पहले हो चुके हैं उनकी समीक्षा की जाय ताकि यह निश्चित किया जा सके कि क्या करना है। कभी–कभी एक ऐसे शैक्षिक दृष्टिकोण अथवा शिक्षा सिद्धान्त का विकास एवं निर्माण करना भी आवश्यक हो सकता है, जो प्रस्तावित अनुसंधान को एक आधार प्रदान कर सके।

साधारण भाषा में समस्या के परिभाषीकरण से तात्पर्य उसके विशिष्टीकरण एवं स्पष्टीकरण से ही होता हैं इसके अन्तर्गत अद्यो कार्य आते हैं।

समस्यागत– अनुसंधान कार्य के विस्तार (Scope) को सीमित करना। अर्थात एक विस्तृत एवं व्यापक समस्या को काट–छाँटकर सीमित बनाना इसके अंतर्गत आता है। मौलि के विचारानुसार शोध समस्या बहुत विस्तृत एवं व्यापक न होकर उस विषय के कुछ महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट पक्षों तक ही सीमित होनी चाहिए। साथ ही उसे इतना संक्षिप्त एवं संकुचित भी नहीं होना चाहिए कि वह उपहास मात्र बनकर रह जाये।

इस समस्या के अन्तर्गत समाहित शब्दों को इस अध्ययन हेतु हम निम्नवत् परिभाषित करेगें।

समाजवादी चिंतक – सामाजवादी चिंतकों से तात्पर्य उन चिंतकों से है जिन्होंने समाजवादी व्यवस्था के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा को प्रभावित किया है।

शैक्षिक विचार – शैक्षिक विचारों से तात्पर्य समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों से है जिन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा को समाजवादी विचारधारा से जोडकर एक नयी दिशा देने का प्रयास किया है वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता से है।

तुलनात्मक अध्ययन – तुलनात्मक अध्ययन से तात्पर्य तीनों समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों की समानता, असमानता, तथा विभिन्नता से है क्योंकि तीनों चिंतकों के मौलिक विचार क्रान्तिकारी होने के साथ ही साथ उपयोगी हैं। इन शोध–सीमाओं से अनुसंधानकर्ता को अध्ययन में सहायता मिलती है, और शोध समस्या का स्वरूप व्यावहारिक हो जाता है, शोध के निष्कर्ष भी इन्हीं सीमाओं से सुनिश्चित हो जाते हैं।

समाजवाद एवं समाजवादी चिंतकों का व्यक्तित्व, कृतित्व, उपलब्धियां एवं विचार धारा का अध्ययन क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उनके सम्बन्ध में ज्ञान की विभिनन धाराओं पर शोध कार्य किया जा सकता है। इतना ही नहीं उनके व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन के अध्ययन से पीडित एवं दिग्भ्रमित वर्तमान पीढी को स्वथ्य एवं सत्य जीवन की प्रेरणा मिल सकती है।

उनके राजनीतिक जीवन, कार्यों एवं उपलब्धियों से देश का स्वच्छ एवं स्वस्थ्य शजनैतिक व्यवस्था निर्दोष प्रशासन एवं आदर्श, राजनैतिक जीवन की प्रेरणा मिल सकती है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में शोधकर्ता ने समाजवादियों की त्रिवेणी अर्थात आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 सम्पूर्णानन्द एवं डा0 राममनोहर लोहिया के शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण को प्रकाशित करने का प्रयास किया है। यद्यपि इन तीनों समाजवाद के प्रकाश स्तम्भों के राजनीतिक, समांजिक, एवं शिक्षा दर्शन पर कार्य करने का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, लेकिन सीमाओं के अन्तर्गत तीनों समाजवादी चिंतकों के शिक्षा दर्शन उनके व्यक्तित्व एवं वर्तमान युग में उनके शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण की प्रासंगिकता आदि सम्बन्धों पर ही शोधकार्य को सीमावद्ध किया गया

है। इस शोध कार्य में तीनों समाजवादियों के केवल शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

शोध उद्देश्य

(1) समाजवादी चिंतकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालना।

(2) समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का अध्ययन करना।

(3) शिक्षा जगत की वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु समाजवादी चिंतकों के शिक्षा दर्शन तथा शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

(4) वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के समाधान हेतु समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों के आधार पर ठोस सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध विधि

इस शोध कार्य में 'ऐतिहासिक एवं दार्शनिक विधि का प्रयोग किया जाएगा। प्रदत्तों के संकलन में प्राथमिक स्रोत उनके ग्रन्थ तथा लेखों एवं भाषणों का संग्रह होगा। गौण स्रोतों में उनके प्रति सामान्य व्यक्तियों के अभिमत जो उनके अभिनन्दन ग्रन्थ एवं स्मृति ग्रन्थ में व्यक्त किये गये हैं तथा उनके पारिवारिक जन एवं साथ के कार्यकर्ताओं से साक्षात्कार से प्राप्त सूचना होगी।

ऐतिहासिक अनुसंधान

सृष्टि में जो कुछ भी है, उसका अतीत भी होता है, वर्तमान भी, एवं भविष्य भी। कोई भी घटना, संख्या, विचार, धारणा, नीति, आर्थिक–सामाजिक विशेषता, सिद्धांत अथवा परिपाटी ऐसी नहीं जिसका अतीत न हो, जिसका इतिहास न हो। साथ ही कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसका इतिहास उसके वर्तमान एवं भविष्य से न जुड़ा हो। अतः किसी भी घटना, प्रक्रिया अथवा परम्परा को भली भॉति समझने के लिए कई बार उसके अतीत में झॉकर देखना भी आवश्यक होता है। दूसरे मनुष्य की यह जिज्ञासा बहुत स्वाभाविक होती है कि जो उनके अनुभव की सीमा में आता है वह उसके अतीत को भी जानना चाहता है। इसी पृष्ठभूमि में ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक अनुसंधान का सूत्रपात एवं विकास हुआ। शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्रों मे भी ये अनुसंधान महत्वपूर्ण समझे गये।

ऐतिहासिक अनुसंधान का अर्थ–स्वरूप, एवं परिभाषा

जो बीत चुका है, अतीत बन चुका है उसका वर्णन, लेखन एवं अध्ययन इतिहास के नाम से जाना जाता है। इतिहास व्यक्ति की उपलब्धियों का सार्थक लिखित प्रमाण है। मनुष्य इतिहास का प्रयोग अतीत को समझने के लिए तथा पुरानी घटनाओं और विकास के संदर्भ

में वर्तमान को समझने के लिए करता है। ऐतिहासिक अनुसंधान की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है। "ऐसे अनुसंधान जिनमें उन घटनाओं, प्रक्रियाओं एवं परम्पराओं का अध्ययन किया जाता है जो अतीत में घटी होती हैं"।

स्मिथ एवं स्थित के अनुसार– ऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य अतीत का सही–सही वर्णन करना होता है बीते सत्य की विद्धतापूर्ण खोज करना।

मौलि– के अनुसार ऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य वर्तमान की घटनाओं को और अधिक स्पष्ट परिप्रेक्ष्य प्रदान करना होता है।

बोर्ग के अनुसार :– ऐतिहासिक अनुसंधान 'अतीत की घटनाओं के संदर्भ में निष्कर्ष उपलब्ध कराने एवं तथ्यों का सत्यापन करने हेतु ऐतिहासिक साक्ष्यों का वस्तुनिष्ठ एवं विधि पूर्वक खोजा जाना, उसका मूल्यांकन एवं संश्लेषण है।

ऐतिहासिक समस्याओं के अन्वेषण में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग ऐतिहासिक अनुसंधान है। इसमें एक सुनियोजित विधि एवं प्रवृत्ति के मापदण्ड की आवश्यकता होती है।

ऐतिहासकि अनुसंधान का महत्व – ऐतिहासिक अनुसंधान भूतकालीन त्रृटियों से परिचय कराकर भविष्य के प्रति सर्तक करता है। तार्किक ए0एन0 व्हाइट हैड का कथन है कि "प्रत्येक अंकुरण स्वयं में अपना सम्पूर्ण भूत एवं भविष्य के बीज रखता हुआ समझा जाता है।" जार्ज बनार्ड शा एक युक्ति का सारांश बताते हुए कहते हैं, "भूत समूह के पीछे नहीं होता है, यह समूह के अन्तर्गत होता है, भूत का यदि निर्धारित किया जा सकता है, तो यह वर्तमान के लिए कुँजी रखने के समान है। यद्यपि आज बीते हुये कल से भिन्न है, यह बीते हुए कल से बना है। आज तथा कल सम्भवतः आने वाले कल को प्रभावित करेगें।

इतिहासकार आरथुर एस्क्लेसिडर वार्नास का कहना है, कोई भी व्यक्ति मात्र समाजशास्त्री होकर अतीत की लम्बी बाहों की समझदारी पूर्वक उपेक्षा नहीं कर सकता।

ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया

वान डालने ने निम्नलिखित पॉच पदों का उल्लेख किया हैं।

(1) समस्या का निर्धारण, उसकी परिभाषा एवं विस्तृत व्याख्या करना।

(2) आधारभूत सामग्री एकत्र करना जिसके आधार पर समस्या सम्बंधी जानकारी एवं सूचनाएँ प्राप्त की जानी हैं।

(3) आधारभूत सामग्री का आलोचनात्मक मूल्यांकन।

(4) उपकल्पनाओं का सृजन (Formulation of hypotheses) जिनके आधार पर वस्तु–स्थिति की जानी है।

(5) सामग्री का विश्लेषण, निष्कर्षो का निरूपण एवं आख्या तैयार करना। आंशिक परिवर्तन के साथ एवं कुछ भिन्न शब्दों में इन्हीं पदो का उल्लेख मौलि ने भी किया है। हौकेट ने त्रिपदी प्रक्रिया का वर्णन किया है। ये तीन पद हैं।

(1) शोध – सामग्री एकत्र करना

(2) उसका मूल्यांकन करना।

(3) लिखित आख्या तैयार करना।

एतिहासिक अनुसंधान के सोपान

इसमें अधोलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाता है।

(क) समस्या की पहिचान एवं परिभाषा करना

यह एक कठिन कार्य है क्योकि यह एक ऐतिहासिक महत्व वाली समस्या की स्थिति मात्र से ही नही, वरन् उपयुक्त ऑकड़ो की प्राप्ति से भी सम्बंधित होता है।

(ख) आंकड़ो का संकलन

आंकड़ो का संकलन प्राचीन अवशेषों से पुराने प्रमाणों एवं तथ्यों की अशुद्धियों तक किसी से भी सम्बद्ध हो सकता है। यद्यपि कभी–कभी सयोगवश दबी हुई हस्तलिखियों में तथ्य एकत हो गये, तथापि सर्वाधिक शैक्षिक आंकड़े सम्भवतः सभाओं एवं डायरियों की सूक्ष्मताओं द्वारा नियमित रीति से एकत्र करने होते हैं। इस प्रकार आंकड़े प्रमुख एवं गौण दो साधनों से प्राप्त किये जाते हैं।

(ग) आंकड़ो की आलोचना

आंकड़ो की प्रामाणिकता की पुष्टि के लिए साधारणतः दो प्रक्रियायें प्रयोग होती हैं, प्रथम स्रोतो की सत्यता की पुष्टि के बाद इसके तथ्यों की प्रमाणिकता या वैधता की आलोचना की जाती है।

(घ) आंकड़ो की अर्थापन

अंकड़ो की जो भी परिकल्पना अथवा सिद्धांत सर्वाधिक उपयुक्तता के साथ पक्ष लेता है। उसके आधार पर ही आंकड़ो का अर्थापन किया जाना चाहिये। यह आवश्यक है कि आंकड़ो को एक दूसरे के सम्बंध में विचारा जाये एवं एक ऐसे सामान्यीकरण अथवा निष्कर्ष में संश्लेषित किया जाये, जोकि सम्पूर्ण महत्व को केन्द्रित करता है।

ऐतिहासिक आंकड़ो के स्रोत तथा प्रमाण

ऐतिहासिक प्रमाणो को दोश्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैं –

(1) लेख्य प्रमाण

(2) अवशेष तथा खण्डहर

(अ) विभिन्न लिखित प्रमाणित स्रोत

1. **कार्यालय सम्बंधित अभिलेख** – सभाओं, आयोगों के अभिलेखों, वैधानिक प्रमाणों, न्यायालयों के निर्णयों, वैधानिक कार्या तथा राजपत्रों की सूक्ष्मतायें आदि।
2. **संस्थागत अभिलेख** – उपस्थिति नामावली, विश्वविद्यालय समाचार पत्र, विश्वविद्यालय के प्रबंधकों की सभाओं के क्रिया कलाप तथा सुक्ष्मतायें आदि।
3. चरित्र रचना, जीवन वृत्तान्त, डायरियाँ व्यक्तिगत पत्र, एक दिये हुए छात्र की दार्शनिकता पर किताबे आदि।
4. समाचार पत्र, नियत अवधि पर निकलने वाली पत्रिकायें, दैनिक पत्र।
5. साहित्यिक तथ्य तथा
6. सूचीपत्र पाठ्यक्रम, सूचनापत्र आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

(ब) भग्नावशेष अथवा अवशेष

1. इमारत, सामग्री एवं उपकरण
2. पुस्तकालय एवं उनकी सामग्री
3. आलोक चित्र एवं अन्य अभिलेख
4. उपाधि, पदबी दायकपत्र, प्रमाणपत्र अभिलेख, रजिस्टर,
5. पाठ्य पुस्तकें, अभ्यास पुस्तकें, मानचित्र, चित्र इत्यादि
6. लिखित सामग्री आदि इस श्रेणी के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं।

अनुसंधान की दार्शनिक विधि

प्रस्तावित शोध समस्या में ऐतिहासिक विधि के साथ–साथ दार्शनिक विधि का भी प्रयोग किया गया है। दार्शनिक शोध कार्यो से नवीन सत्यों का प्रतिस्थापन किया जाता है। शिक्षा के दो पक्ष होते है– सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक। शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष का विकास तथा सुधार वैज्ञानिक शोध कार्यो द्वारा किया जाता है, और सैद्धान्तिक पक्ष का विकास दार्शनिक शोध–कार्यो द्वारा किया जाता है। अपनी शिक्षा– प्रणाली का सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्ष पाश्चात्य देशों की देन है। आज की शिक्षा का स्वरूप तथा सैद्धान्तिक पक्ष अपना नही है वरन् पाश्चात्य से उधार लिया गया है। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि शिक्षा में दार्शनिक शोध–कार्यो द्वारा अपनी परिस्थितियों में शिक्षा का सैद्धान्तिक पक्ष विकसित किया जाये, तभी शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा।

दर्शन, उन मूलभूत और अंतिम प्रश्नों पर विचारकर, उनका उत्तर देता है, जोकि मानवीय वौद्धिक स्तर पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। अन्य विषयों को भी मूल आधार प्रदान करताहै। दर्शन जैसा मूल तत्व शोध के क्षेत्र में असीमित क्षेत्र प्रदान करता है, क्योंकि यह मानवीय सत्यों और जीवन से जुड़ा हुआ है। वरतविक अर्थो में यह एक ऐसा व्यावहारिक सिद्धांत है जो पहले मस्तिष्क में जन्म लेकर फिर व्यावहारिक व सैद्धान्तिक रूप धारण करता है।

दर्शन यदि एक सिक्के का सैद्धान्तिक पहलू है तो शिक्षा उसका व्यावहारिक पक्ष। दर्शन स्वयं में जीवन का अंतिम विश्लेषण है तो शिक्षा उस मार्ग –प्राप्ति का साधन।

दार्शनिक शोध विधि

शोध–विधि के क्षेत्र में दो विधियों का प्रयौग किया जाता है।

1. परिमाणात्मक (Quantitative) एवं गुणात्मक (Qualitative) परिमाणात्मक विधि का प्रयोग वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में किया जाता है। गुणात्मक विधि भी शिक्षा के क्षेत्र में समान रूप से महत्वपूर्व हैं। इसका प्रयोग ऐतिहासिक और दार्शनिक शोध में किया जाता है।

दार्शनिक अनुसंधान के प्रमुख उपागम

शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में मुख्य रूप से दो प्रकार के अध्ययन किये जाते हैं।

1. विचार प्रणाली का विवेचन,
2. किसी महान विचारक के दर्शन का आलोचनात्मक विवेचन।

(1) प्रथम उपागम के अन्तर्गत किसी विशिष्ट दार्शनिक प्रणाली के विशिष्ट पक्षों का विवेचन किया जाता है कि उस प्रणाली के ज्ञान मीमांसा, तत्व मीमांसा, तथा नीतिशास्त्र क्या है? इस प्रकार का अध्ययन किसी राष्ट्र अथवा व्यक्तियों के समूह की विचार प्रणाली का भी अध्ययन किया जा सकता हे। इसके अन्तर्गत विशेष युग के जीवन की उपलब्धियां, अभ्यास तथा उनके साहित्य का अध्ययन किया जाता है।

(2) द्वितीय उपागम का प्रयोग– दार्शनिक शोध कार्यों में अधिक किया जा रहा है। इसमें किसी एक महान दार्शनिक के विचारों, उसके साहित्य, जीवन का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है, जिसमें प्रमुख रूप उनकी तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा का विवेचन होता है, तथा शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षा विधियों, अनुशासन तथा शैक्षिक प्रशासन का निर्धारण किया जाता है।

दार्शनिक अनुसंधान के अन्तर्गत अद्योलिखित्त दार्शनिक पक्षों को महत्व दिया जाता है।

(1) तर्कशास्त्र (2) तत्व मीमांसा (3) ज्ञान मीमांसा (4) मनोविज्ञान (5) नीतिशास्त्र

(अ) तर्कशास्त्र तर्कशास्त्र का सम्बन्ध शुद्ध रूप से सोचने की विधि से होता है। इसके व्यापक रूप में अनेक प्रकार के सिद्धान्त निहित होते हैं। इनका सम्बन्ध विचार की प्रकृति, निर्णयक शक्ति तथा तार्किक चिंतन से होता है। इसके अतिरिक्त भाषा के जो संकेत हैं उनको भी महत्व दिया जाता है।

तर्कशास्त्र के अन्तर्गत तत्व मीमांसा का ही अध्ययन किया जाता है, जिसे हम अस्तित्व विज्ञान की संज्ञा देते हैं।

(ब) तत्व मीमांसा इसके अन्तर्गत दार्शनिक यह जानने की कोशिश करता है कि सत्य क्या है? प्रत्येक व्यक्ति अपने आसपास की वस्तुओं के अस्तित्व को समझता है, परन्तु एक दार्शनिक उसके कारण और प्रभाव के सम्बन्ध को समझने की कोशिश करता हे। तत्व के परिवर्तन और उसके गुणों को भी समझने का प्रयास करता है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के चिंतन का इतिहास निहित होता है।

(स) ज्ञान मीमांसा इस प्रकार के शोध कार्यों में अनुसंधानकर्ता मानवीय ज्ञान की विश्वसनीयता और वैधता की खोज करता है, तथा मानवीय ज्ञान के स्रोत को भी जानने का प्रयास करता है। ज्ञान एक मानसिक अवस्था हे। इसलिए यह एक व्यक्तिनिष्ठ प्रत्यय है।

(द) दार्शनिक मनोविज्ञान इसके अन्तर्गत मनुष्य के सम्बन्धं में नियमों को निर्धारित किया जाता हैं उसके व्यवहार और उसके भाग्य के समझने का प्रयास करते हैं तथा वह अन्य जीवों से किस प्रकार भिन्न है? इसके अन्तर्गत शोधकर्ता मानव प्रकृति के अध्ययन का महत्व देता है।

(य) नीतिशास्त्र या नैतिक दर्शन इसको कभी–कभी व्यावहारिक दर्शन भी कहते हैं, क्योंकि इसके अन्दर मुख्य रूप से आचरण के मूल मानकों को महत्व दिया जाता है। नैतिक दर्शन मानवीय आचरण से कई रूप में भिन्न होता है। नैतिक दर्शन के अर्न्तगत अच्छा व्यवहार क्या है और उसका अंतिम मानदण्ड क्या है? इसका अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार दार्शनिक शोध के अर्न्तगत प्रमुख रूप से दो बातों को ही महत्व दिया जाता है।

(1) सत्य के स्वरूप के लिए प्रमाणों को एकत्र करना।

(2) मानव समाज के कल्याण और उसके हितों से सम्बन्ध होता है। यही दो कार्य एक दार्शनिक के हैं कि प्रथम वह यह निश्चित करें कि सत्य क्या है? इसे हम सकारात्मक कह सकते हैं। दूसरा व्यवहारिक मूल्यों से सम्बन्धित है। इसके अन्दर मानव मात्र की समस्याओं को महत्व दिया जाता है।

दार्शनिक तथा ऐतिहासिक शोध शिक्षा के अन्तर्गत दोनों प्रकार के शोध कार्य किये जाते हैं। दोनों की बहुत सी विशेषताएं समान हैं। दोनों प्रकार के शोधों के स्रोत तथा प्रविधियां समान हैं। दोनों में पुस्तकालय प्रविधि तथा पाठ्यवस्तु विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है।

यह शोध की दोनों विधियां एक दूसरे की पूरक हैं। यदि इतिहास सूखी हड्डियों के समान तथ्यों को रक्त व मांस देकर वस्त्र पहिनाता है तब दर्शन उनमें जीवन तथा आत्मा का समावेश करता है। इतिहास के अर्न्तगत अतीत की महान् विभूतियों के व्यक्तित्व, जीवन तथा कार्य कलापों का अध्ययन किया जाता है। जबकि दर्शन उनके नैतिक मूल्य, उनकी आत्मा और उनके बौद्धिक चिंतन का विश्लेषण करता है।

शोध योजना

प्रस्तुत शोध में शोध योजनान्तर्गत सात अध्याय निशिचित किये गये हैं। प्रथम अध्याय में समस्या, शोध विधि पर प्रकाश डाला जायगा। इसी के अन्तर्गत शोध उद्देश्य एवं प्रस्तुत शोध कार्य की उपादेयता भी वर्णित होगी।

द्वितीय अध्याय में समस्या से सम्बन्धित देश, विदेश तथा प्रदेश में सम्पन्न किये गये शोध कार्यों का उल्लेख किया जाएगा तथा प्रस्तुत शोध से उनकी तुलना तथा समानता प्रस्तुत की जायेगी।

तृतीय अध्याय में तीनों समाजवादियों डा० सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव तथा डा० राममनोहर लोहिया के व्यक्तिव एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला जायेगा। चतुर्थ अध्याय इन्हीं समाजवादी चिंतकों के शिक्षा दर्शन तथा शैक्षिक विचारों पर आधारित होगा।

पॉचवे अध्याय में इन समाजवादियों के समकालीन शैक्षिक चिंतकों तथा शिक्षा शास्त्रियों के शैक्षिक विचारों से तुलना तथा समानता प्रस्तुत की जायेगी।

छठवें अध्याय में राष्ट्रीय शिक्षा की वर्तमान समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में समाजवादी चिंतकों के विचारों की समीक्षा, प्रासंगिकता तथा मूल्यांकन प्रस्तुत किया जायेगा।

सातवें अध्याय में शोध निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुये सुझाव प्रस्तुत किये जायेगें तथा भावी शोध कार्यों पर विभिन्न सुझाव दिए जायेगे।

शोध की शैक्षिक उपादेयता

विज्ञान के चरम विकास ने विशाल मानव समुदाय को लाभ अवश्य पहुँचाया है। किन्तु उसने मनुष्य को आहार, निंद्रा, भय, मैथुन का पशु बना दिया है। उसके भीतर की ज्योति बुझ गयी है। वह चेतना लुप्त हो गयी है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। भारत के समाजवादी इस तथ्य को समझते थे। इसीलिए सभी ने अलग–अलग ढंग से विज्ञान और अध्यात्म के संतुलन की बात की।

भारत के सभी समाजवादी व्यवहारवादी थें। उनके सामने देश की समस्या थी। इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना था। वे न तो किसी बंधी बंधायी विचारधारा के व्याख्याता थे न केवल सिद्धांत गढने वाले विचारक थे। वे भारत की सत्ता के भागीदार भी थे। इसलिए वे कल्पना में नहीं जी सकते थे। इनके चिंतन में भारत की समस्याएं प्रत्यक्ष हैं।

शिक्षा भारत का एक ऐसा सवाल है, जिस पर शायद ही कोई व्यक्ति हो जो न बोलता हो। विशेषंकर वर्तमान शिक्षा की अनुपयोगिता और उसके बदलाव की आवश्यकता पर।

वर्तमान शिक्षा में हमें भारतीय समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों की महती आवश्यकता है, जिससे शिक्षा जगत को एक नवीन आयाम प्राप्त हो सके।

वर्तमान समय में हमारे देश की प्रणाली इतनी दूषित हो गयी है कि हम चतुर्दिक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों के प्रति घोर निराशा और गहन उदासीनता देखते हैं इस समय सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन भ्रष्टाचार, पक्षपात तथा अनुशासनहीनता से रंग गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अधिकार लिप्सा छा गयी है। यहॉ तक कि मॉ सरस्वती के पावन मंदिर (विद्या केन्द्र) भी इस भ्रष्टाचार से अछूते नहीं रहे। हम लोगों में संकीर्णता, तुच्छता और स्वार्थपरता छा गयी है। समुदाय की अपेक्षा स्वार्थ चिंतन ही अधिक होता है। हमारी उन्नत भावनायें विलुप्त हो गयी हैं, सामाजिक विवेक नष्ट हो गया है, और सेवा तथा त्याग की भावना का हमारे अन्दर लोप हो गया है। हमारी स्थिति सचमुच निराशाजनक हो गयी है।

सम्पूर्ण राष्ट्र को अपने चारों ओर खतरों के प्रति जागरूक होना पडेगा। इस समय सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमत्ता और साहस की आवश्यकता है। भारतीय जनता की वर्तमान आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की तृप्ति करने के लिए आधारभूत जीवन दर्शन में क्रातिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। राष्ट्रीय जीवन को नवीन ढॉचे में पुनः शिक्षित करना तथा ढालना पडेगा।

देश की इस असम्बद्ध और निरूद्देश्य जीवन को यदि हमें दृढता पूर्वक अपने समक्ष स्पष्ट और सुनिश्चित ध्येय को रखना है, तो हमें शिक्षा के महत्व को समझना चाहिए। विभिन्न कार्य क्षेत्रों में नया नेतृत्व शिक्षण संस्थाए ही प्रदान कर सकती हैं। शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना है, किन्तु जीवन की परिस्थिति में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, अतः नवयुवकों की शिक्षा भी स्थिर जीवन दर्शन पर आधृत नहीं हो सकती है।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में जनता और राज्य को राष्ट्रीय जीवन में उच्च शिक्षा के महत्व का कुछ भी ध्यान नहीं है। यहॉ तक कि हमारे विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत भी स्वतन्त्रता की अनुभूति नहीं उत्पन्न हो सकी है। और वे भी पुरानी लकीर को इस भॉति पीटे जा रहे हैं,

मानों राष्ट्र में कोई नवीन घटना नहीं घटी है। जब कभी देश में आर्थिक संकट खड़ा होता है, तो शिक्षा उसका पहला शिकार होती है। भारत सरकार मुश्किल से अपनी आय का आधा प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करती है। यह केवल तीन विश्वविद्यालयों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए उत्तरदायी है और सभी का शेष सारा भार राज्य सरकारों पर डाल दिया है। राज्य सरकारों के प्रति न्यायसंगत बात तो यह होगी कि भारत सरकार स्वयं कम से कम पोस्ट ग्रेजुएट शिक्षा और अनुसंधान का भार अपने ऊपर ले ले और अपनी आय का पर्याप्त भाग शिक्षा पर व्यय करें।

आधुनिक युग में शिक्षा का सामाजिक प्रयोजन होना चाहिए। शिक्षा के सम्बन्ध में शास्त्रवादी और परम्परावादी विचार के बदले व्यापक और गत्यात्मक दृष्टिकोण को स्थान मिलना चाहिए। परिवर्तनशील जगत की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए शिक्षा का गत्यात्मक बनना पड़ेगा उसमें आधुनिक समाज की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की दृष्टि से विचार करना होगा।

विद्यार्थियों में जीवन के उन मूल्यों की प्रतिष्ठा और प्रचार करना होगा, जो आधुनिक विश्व की प्रगति के लिए आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध ज्ञान के क्षेत्र में मौलिक देन प्रस्तुत करेगा, क्योंकि अभी तक डा0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव तथा डा0 राममनोहर लोहिया जैसे समाजवादी चिंतकों पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। यह ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने शिक्षा जगत में न केवल अध्यापक, प्रिन्सपल एवं प्रोफेसर के रूप में कार्य किया है, अपितु शिक्षा मंत्री, राज्यपाल, कुलपति आदि के रूप में शिक्षा में नयी–नयी व्यवस्थायें लागू की हैं, ये सिद्धहस्त लेखक रहे हैं। अतः इनके शैक्षिक विचारों का आंकलन कर वर्तमान शिक्षा पद्धति में सुधार हेतु ठोस सुझाव प्रस्तुत करने में यह शोध कार्य सहायक होगा।

पाठ्यक्रम की रूपरेखा–समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारानुसार पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों का समावेश किया जाय, जिससे समाज में जनचेतना की भावना को विकसित किया जा सके। उन्होंने यह भी बताया कि भूत के आधार पर ही वर्तमान का निर्माण करने वाला पाठ्यक्रम होना चाहिए। साथ ही पाठ्यक्रम में हाथ के काम को भी स्थान देना आवश्यक है।

मूल्यों की शिक्षा–समाजवादी चिंतकों ने सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक मूल्यों को प्रधानता दी है।

वर्ग विद्वेष और वर्ग प्रभुत्व पर आधारित आज के समाज में अन्य व्यक्तियों के साथ किये गये व्यवहार में शुद्ध मानवीय भावनाओं की सम्भावना अत्यन्त अवरुद्ध हो गयी है।

मानवीय नैतिकता के लिए पूर्ण सामाजिक चेतना परमावश्यक है। मानव एक सामाजिक प्राणी है और नैतिक सदगुण मनुष्य की सामाजिक प्रकृति का सार है। अतः मनुष्य का नैतिक विकास समाज में ही और समुचित वातावरण में ही हो सकता है। समाज का शिक्षा से गहना सम्बन्ध है। अतः शिक्षा के द्वारा ही नैतिक गुणों को व्यक्ति के जीवन में लाया जा सकता है।

वैज्ञानिक और यांत्रिक शिक्षा समाजवादी चिंतकों के अनुसार वैज्ञानिक और यात्रिक शिक्षा का निरन्त प्रसार और वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रगति होनी चाहिए, परन्तु विज्ञान का तुच्छ स्वार्थो की सिद्धि में दुरूपयोग न किया जाय, बल्कि उसे सामाजिक हित कार्य में नियोजित किया जाय।

शिक्ष में आरक्षण के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण डा0 लोहिया ने हरिजनों, पिछड़ों स्त्रियों आदि के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण की बातें करते हुए स्पष्ट चेतावनी दी, इस बात की पूरी सावधानी रखी जाय कि इससे आज के हिज, हरिजन या शूद्र न हो जाये। उनके आरक्षण का उद्देश्य केवल उठाना है, गिराना नहीं। समता का उद्देश्य है समस्तर पर लाना। समान स्तर बनाना। किसी से बदला लेना या जलन शांत करना नहीं। इतिहास के कारण कोई दंडित नहीं हो सकता है। इसीलिए वे शिक्षा में आरक्षण के विरोधी थे। ऐसा न हो कि किसी भी जाति या वर्ग का व्यक्ति शिक्षा से वंचित रह जाय। किसी को शिक्षा से रोकना क्रूर अपराध है। शिक्षा से रोकने का कार्य जब भी हुआ, बुरा हुआ। जब भी होगा बुरा होगा। समाज की ऐसी संरचना हो जिसमें अन्याय न हो। अन्याय को समाप्त करना है। अन्यायी को नहीं। जैसे बालक के हाथ से जहर छीनकर अभिभावक फेंक देते हैं वैसे ही अन्यायी के हांथों से अन्याय का शस्त्र छीन लेना चाहिए। अन्याय रहित व्यक्ति समान सुविधा का अधिकारी है।

अंग्रेजी के प्रति समाजवादी चिंतकों का दृष्टिकोण समाजवादी राज्य के विरूद्ध लड रहे थे। अंग्रेजी के विरूद्ध उन्होंने संघर्ष किया। किन्तु वे एक भी अंग्रेज को मारने की बात नहीं करते। वे अंग्रेजी विरोधी नहीं थे। अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रति उन्हें वैसा ही प्रेम था, जैसा अन्य भाषाओं के प्रति। वे केवल अंग्रेजी के सार्वजनिक प्रयोग के विरूद्ध थे। अंग्रेजी रहे। किन्तु भारत की भाषाओं को दबाकर न रहे। उसका सार्वजनिक स्वरूप भारत में नहीं रहे। भारत में अंग्रेजी का सार्वजनिक एवं सरकारी प्रयोग साम्राज्यवादी एवं सामंती है। किन्तु इंग्लैण्ड और अमरीका के लिए यह बात नहीं है। इसलिए भारतीय समाजवादी किसी भी स्तर पर अंग्रेजी और साहित्य की निंदा या अपमान नहीं करते हैं। किन्तु भारत के सार्वजनिक जीवन में अंग्रेजी का प्रयोग उन्हें एक क्षण के लिए भी बर्दाश्त नहीं है।

<u>विद्यार्थियों में स्वालम्बन की भावना</u> – हमारे देश की आर्थिक दशा बहुत ही दयनीय है। इसके कई कारण है, जैसे जनसंख्या की अधिकता, तथा यहॉ के लोग जो ऊँची जाति के हैं, हाथ से काम करना बुरा समझते हैं। भारत जैसे गरीब देश की शिक्षा इतनी मंहगी हो गयी है कि मध्यम श्रेणी के लोग भी इस बोझ को बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमारी शिक्षा इतनी अधूरी और एकांगी है कि नौकरी को छोड़कर हमारे युवक कोई दूसरा कार्य स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकते हैं। यदि उनका बंधा हुआ रोजगार छूट जाय तो वे कोई नया काम अपने लिए नहीं उठा सकते।

केवल बौद्धिक शिक्षा अधूरी होती है। आदर्श पुरूष वह है जिसका मानसिक विकास भी हुआ हो और जो संसार का व्यावहारिक ज्ञान भी रखता हो। अंतः शिक्षा में बौद्धिक एवं सैद्धांतिक ज्ञान के साथ–साथ हाथ के काम को भी स्थान देना चाहिए।

शिक्षा का सामाजिक प्रयोजन समाजवादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना होना चाहिए। विद्यार्थियों में जीवन के उन मूल्यों की प्रतिष्ठा और प्रचार किया जाय, जो आधुनिक विश्व की प्रगति हेतु आवश्यक हों।

जनशिक्षा भारत में लोकतंत्रात्मक प्रणाली है। लोकतंत्र केवल एक शासन पद्धति ही नहीं है बल्कि वह एक जीवन प्रणाली है। अतः लोकतांत्रिक आदर्शों को केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता, मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनको प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। इसके लिए देश में लोकतांत्रिक भावना का होना आवश्यक है।

आज समाज जाति, धर्म, सम्पत्ति और तुच्छ स्वार्थों के कारण विघटित हो रहा है, ऐसे में लोकतंत्र को जीवन चर्या का अंग बनाने के लिए सामाजिक ओर राजनैतिक चेतना की आवश्यकता है। इसके लिये सुशिक्षा से सभी को सम्पन्न होना आवश्यक है।

राज्य का कर्तब्य है कि वह जनता को ऐसी मौलिक शिक्षा प्रदान करें, जिससे उसके अन्दर विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो ओर आत्म–निर्णय की क्षमता आ जाय। हमारी जन–शिक्षा योजना इस प्रकार की होनी चाहिए, जिससे जीवन के प्रति स्वस्थ और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण बन सके, उसमें लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो।

विश्वविद्यालयी शिक्षा

विश्वविद्यालय स्तर पर भी हमारी शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा होना चाहिए। हमको राष्ट्रभाषा के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा का आयोजन कर लेना चाहिए। इसके लिए यदि गर्वनमेन्ट की ओर से कोई आयोजन हो और उसमें सब विश्वविद्यालयों तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओं का सहयोग लिया जाय तो उत्तम हो। एक निश्चित योजना के अनुसार अपनी भाषा

में सब विषय की ऊँची–ऊँची पुस्तकें लिखी जानी चाहिए। अपने देश में संसार की विविध भाषाओं की शिक्षा व्यवस्था का प्रबन्ध भी करना चाहिए।

आज चारों ओर इस बात की शिकायत है कि विद्यार्थियों में संयम की कमी हो गयी है। इस कमी के अनेक कारण हैं। जीवन की अनिश्चिता के क़ारण समाज की सब श्रेणियों में असंतोष पाया जाता है। विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिसमें वह आत्मसंयम के महत्व को समझे।

विश्वविद्यालयों शिक्षा को अमीर–गरीब सबसे लिए सुलभ बनाना चाहिए जो उसके अधिकारी है। शिल्प की शिक्षा प्रदान करने की समुचित व्यवस्था हो जाने पर विद्यार्थियों को जीविका निर्वाह का साधन प्राप्त हो जायेगा, जिससे यूनीवर्सिटी में प्रवेश के लिए विद्यार्थियों की भीड़ कम हो जायेगी।

संस्कृत की शिक्षा का महत्व 'जो व्यक्ति अपनी ज्ञान परम्परा तथा अतीत के इतिहास का ज्ञान नहीं रखता, वह सभ्य और शिष्ट नहीं कहला सकता, क्योंकि वर्तमान का मूल अतीत में है और बिना उसको जाने वर्तमान काल के सामाजिक जीवन में बुद्धिपूर्वक सहयोग करना क़ठिन है।'

हमारी प्राचीन संस्कृति के कारण भी आज हमारा संसार में आदर है। हमारा कर्तब्य है कि संस्कृति विद्या के अध्ययन को हम पाठ्यक्रम में विशिष्ट स्थान दें और अन्वेषण के कार्य को प्रोत्साहन दें। संस्कृत वाड़्.मय हमारे गौरव की वस्तु है, उसका विस्तार वं गाम्भीर्य हमें चकित कर देता है।

संस्कृत संसार की सबसे प्राचीन आर्य भाषा है, जिसका वाड़ंमय आज भी विद्यमान है। ऋग्वेद हमारा सबसे प्राचीन ग्रंथ है। रामायण और महाभारत संसार के अनुपम और बेजोड काब्य हैं। भारत में जिन विशिष्ट विचारधाराओं ने जन्म लिया है, उन सबका मूल स्थान उपनिषदों में है। उपनिषद् के वाक्यों में गाम्भीर्य, मौलिकता और उत्कर्ष पाया जाता है और वह प्रशस्त, पुनीत तथा उदात्त भाव से व्याप्त है। मैक्समूलर का कथन है कि "उपनिषद् प्रभात के प्रकाश और पर्वतों की शुद्ध वायु के समान है"। उपनिषद् वह स्तम्भ है जिस पर प्रतिष्ठित संस्कृत विद्या और भारतीय संस्कृति का दीपक सदा ज्ञान का प्रकाश देता रहेगा। यही हमारी अचल निधि है, यहीं हमारा जंय स्तम्भ है।

इस निधि की रक्षा एवं मूल्यांकन करना हमारा नैतिक कर्तब्य है। प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन का लक्ष्य मात्र उसकी जीविका का उपार्जन करना ही नहीं है, बल्कि उसे एक नागरिक के कर्तब्यों का भी पालन करना है, और इससे बढ़कर उसे मनुष्य बनना है और

मनुष्य भी पुराने युग का नहीं, आज के युग का, जब समाज ने अपने सामंजस्य को खो दिया है, जब विचारों में संघर्ष चल रहा है, और एक प्रकार की अनिश्चितता है जिसके कारण जीवन के प्रति कोई स्पष्ट ओर उत्कृष्ट दृष्टि नहीं बन पाती। वह मनुष्य क्या है जो अपनी मातृभाषा के साहित्य से परिचित नहीं है, जो एक शास्त्र का विशेषज्ञ होने के लोभ में अपने साहित्य और कला की अमर कृतियों की उपेक्षा करता है।

उपादेयता

आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 सम्पूर्णानन्द एवं डा0 राममनोहर लोहिया, ये भारतीय समाजवाद के आधा स्तम्भ है। इनके शैक्षिक विचार इस समाज की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं।

इन्होंने छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए पाठ्यक्रम में विभिन्न क्रियाओं को शामिल किये जाने का सुझाव दिया। तथा आध्यात्मिक एवं सास्कृतिक मूल्यों की शिक्षा पर बल दिया। इनके अनुसार महिलाओं को शिक्षा ने पुरूषों के समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षा में छात्र केन्द्रिय दृष्टिकोण अपनाये जाने पर सुझाव दिया है। उन्होंने यह भी बताया है कि शिक्षा के द्वारा विश्व बन्धुत्व को बढ़ावा जा सकता है। अर्थात् राष्ट्रीय एकता, अर्न्तराष्ट्रीय सद्भावना पर बल दिया है।

उन्होंने विद्याथियों को स्वालम्बी बनाने पर जोर दिया है, क्योंकि हमारा देश आर्थिक दृष्टि से कमजोर है जिसमें गरीब जनता शिक्षा से वंचित रहा जांती है। यदि विद्यार्थी अपना खर्च खुद निकाल सकेंगे तो वे उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त करने में सफल होगे।

इनके अनुसार जन साधारण को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे उनमें वर्तमान समस्याओं को समझने की क्षमता का विकास हो सके और वे अपनी सूझबूझ से राजनैतिक कार्यो मे हस्तक्षेप करके जनतांत्रिक प्रणाली को सफल बना सकें।

इनकी शिक्षा पद्धिति अध्यापक के महत्व को स्वीकार करती है। इनके अनुसार अध्यापक में मातृत्व और एकता का भाव होना चाहिए। अध्यापक का कर्तब्य है कि वह छात्रों में अर्न्तराष्ट्रीय सद्भावना, जनतांत्रिक भावना एवं चरित्र का विकास करें।

भारतीय समाजवादियों ने भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए संस्कृत भाषा के महत्व को बताया है। इन्होंने आत्मानुशासन के महत्व को स्वीकार किया है, जो कि विद्यार्थियों के आत्मसंयम से स्थापित होता है। विज्ञान के महत्व को स्वीकार किया है, और बताया है कि विज्ञान और क्षेत्रकला हमारी अनेक समस्याओं को हल कर सकते हैं परन्तु हमें विज्ञान का दुरूपयोग अपनी तुच्छ स्वार्थ सिद्ध के लिए नहीं करना चाहिए। विद्यार्थियों को

ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे वे भावी जीवन में सफल हो सकें। उनमें सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास हो सके।

इस प्रकार यह पूर्णतः स्पष्ट है कि यदि हम इन समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों को आधार मानकर शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण करें तो हमारी शिक्षा वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति अवश्य करेगी।
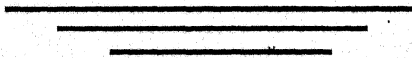
द्वितीय अध्याय

(समस्या से सम्बन्धित साहित्य)

समस्या से सम्बन्धित साहित्य

सम्बन्धित साहित्य का अर्थ

शोध विषय से सम्बन्धित ऐसा साहित्य जिसमें विषय के किसी पक्ष अथवा सम्पूर्ण विषय पर विचार व्यक्त किये गये हो, सम्बद्ध साहित्य कहलाता है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं अध्ययन शोधकर्ता को नवीनतम ज्ञान के शिखरों पर ले जाता है, जहॉ उसे अपने क्षेत्र से सम्बन्धित निष्कर्षो एवं परिणामों का मूल्यांकन करने का अवसर प्राप्त होता है, तथा यह ज्ञात होता है कि ज्ञान के क्षेत्र में कहां रिक्तियां हैं, कहॉ निष्कर्ष विरोध है, कहॉ अनुसंधान की पुनः आवश्यकता है। जब वह दूसरे शोधकर्ताओं के अनुसंधान कार्य की जांच एवं मूल्यांकन करता है तो उसे बहुत सी अनुसंधान विधियों, बहुत से तथ्यों, सिद्धान्तों, संकल्पनाओं एवं संदर्भ ग्रन्थों का ज्ञान होता है, जो उसके अपने अनुसंधान में उपयोगी सिद्ध होते हैं। सर्वेक्षण द्वारा बहुत से अनुसंधान प्रतिवेदनों की अच्छाइयों एवं कमियों का जान लेने के बाद इस बात की संभावना बहुत कम हो जाती है कि वह स्वयं एक घटिया अनुसंधान करेगा, अथवा अनुसंधान प्रक्रिया सम्बन्धी उन गलतियों की पुनरावृत्ति करेगा जो उसके पूर्व वाले शोधकर्ता कर चुके हैं।[1]''

वानडालेन–

अनुसंधान चाहे किसी भी क्षेत्र का हो उसका लक्ष्य सम्बन्धित क्षेत्र में अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर खोजना वर्तमान समस्याओं के समाधान खोजना, विरोधी सिद्धान्तों की सत्यता को परखना, नवीन प्रवृत्तियों एवं तथ्यों की खोज करना, जीवन एवं उसके परिवेश से सम्बन्धित अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना आदि होता है। मानव की इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप ज्ञान की अजर धारा प्रवाहित हुई, तथा सदियों से यह क्रम चला आ रहा है। ज्ञान की यह प्रक्रिया अनंत है। जब तक धरा पर मानव जीवन है उसकी यह ज्ञान पिपासा कभी समाप्त नहीं होगी। ''क्या है'', ''कैसा है'', ''क्यों है'', ''क्या होना चाहिए'' इन प्रश्नों से घिरा मानव जीवन सदैव जिज्ञासु रहा है। उसकी इस जिज्ञासा ने सदैव ही कल के ज्ञान को नया कलेवर प्रदान किया है, उसमें जहॉ कहीं उसे कुछ अधूरा लगा है, उसे पूरा करने का प्रयास किया है, उसे सवाँरा है, सुधारा है, आगे ब़ढ़ाया है ओर यह सब कुछ सम्पन्न हुआ अनुसंधान के माध्यम से वर्तमान एवं भावी अनुसंधान इस प्रकार अभिन्न रूप से एक दूसरे से जुडे हैं। पूर्व संचित ज्ञान एवं पूर्व में सम्पन्न हुए अनुसंधान की पृष्ठभूमि में ही नये अनुसंधानों की समस्याएं एवं आवश्यकताएं जन्म लेती हैं। प्रत्येक शोधकर्ता की आधार भूमि ये पूर्वसंचित ज्ञान एवं पूर्व सम्पादित अनुसंधान ही होते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में इस ज्ञान राशि का

1. शिक्षा अनुसंधान : विधि एवं विश्लेषण, लेखक–डा0 आर0पी0 भटनागर, प्रकाशक–ईगल बुक–इन्टरनेशनल मेरठ,

बहुत बडा भण्डार उपलब्ध है। उसकी जानकारी प्रत्येक शोधकर्ता के लिए अनिवार्य होती है। इस जानकारी के अभाव में शोधकर्ता का सम्पूर्ण प्रयास दिशाहीन रहता है। ज्ञान विकास की दिशा में उसका योगदान शून्य रहता है, तथा उसका समस्त प्रयास निरर्थक होता है। अतः अनुसंधान की समस्या का अंतिम रूप से चयन करने से पूर्व शोधकर्ता को समस्या सम्बन्धी साहित्य एवं सूचनाओं को एकत्र करना तथा उसकी समीक्षा करना अत्यन्त आवश्यक होता है। इससे उसे इस बात का ज्ञान होता है कि प्रस्तावित समस्या के किन–किन पहलुओं से सम्बन्धित किस प्रकार का ज्ञान पहले से ही उपलब्ध है तथा उसे किस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है। सभी अनुसंधान विशेषज्ञ इस बात को स्वीकार करते हैं कि अनुसंधान प्रक्रिया की सबसे पहली सीढ़ी सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं उसकी समीक्षा है।

साहित्य के समीक्षा का अर्थ

'साहित्य के समीक्षा' में दो शब्द हैं – 'साहित्य' और 'समीक्षा'। साहित्य शब्द परम्परागत अर्थ से विभिन्न अर्थ प्रदान करता है। यह भाषा के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है, जैसे हिंदी साहित्य, आंग्ल साहित्य, संस्कृत साहित्य। इसकी विषय वस्तु के अन्तर्गत गद्य, काब्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि आते है, अनुसंधान विधि में साहित्य शब्द किसी विषय के अनुसंधान के विशेष क्षेत्र के ज्ञान की ओर संकेत करता है जिसके अन्तर्गत सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और शोध अध्ययन आते हैं।

''समीक्षा'' शब्द का अर्थ शोध के विशेष क्षेत्र के ज्ञान की व्यवस्था करना एवं ज्ञान को विस्तृत करके यह दिखाना है कि सके द्वारा किया गया अध्ययन इस क्षेत्र में एक योगदान होगा। साहित्य की समीक्षा का कार्य अत्यंत सृजनात्मक एवं थकाने वाला है क्योंकि शोधकर्ता को अपने अध्ययन को युक्तिपूर्वक कथन प्रदान करने के लिए प्राप्त ज्ञान को विलक्षण ढंग से एकत्र करना होता है।

'समीक्षा' और 'साहित्य' दोनों शब्दों को ऐतिहासिक विधि में बिल्कुल भिन्न अर्थ है। ऐतिहासिक शोध में शोधकर्ता को प्रकाशित तथ्यों के पुनर्निरीक्षण की अपेक्षा बहुत कुछ स्वयं करना होता है, वह ऐसी नई जानकारी को खोजने और एकत्र करने का प्रयास करता है जो पहले कभी प्रकाशित नहीं हुई और न ही जिस पर कभी विचार हुआ। सर्वेक्षण और प्रयोगात्मक शोध की तुलना में एतिहासिक शोध में 'साहित्य की समीक्षा' में उपलक्षित विचार और प्रक्रिया के भिन्न अर्थ है।

'साहित्य की समीक्षा' शब्दों को निम्नलिखित ढंग से परिभाषित किया गया है।

गुड, बार, और स्कट्स के अनुसार—"योग्य चिकित्सक को औषधि के क्षेत्र में हुए नवीनतम अन्वेषणों के साथ चलना चाहिए स्पष्टतया शिक्षाशास्त्र के विद्यार्थी और शोधकर्ता को शैक्षिक सूचनाओं के साधनों और उपयोगों तथा उनके स्थापन से परिचित होना चाहिए।"[2]

डब्ल्यू0 आर0 वर्ग के अनुसार—"किसी भी क्षेत्र का साहित्य उसकी नींव को बनाता है, जिसे ऊपर भविष्य का कार्य किया जाता है। यदि हम साहित्य की समीक्षा द्वारा प्रदान किये गये ज्ञान की नींव बनाने में असमर्थ होते हैं तो हमारा कार्य सम्भवतया तुच्छ और प्रायः उस कार्य की नकल मात्र ही होता है। जो कि पहले ही किसी के द्वारा किया जा चुका है।"[3]

जान डब्ल्यू बेस्ट के अनुसार—"व्यावहारिक रूप में सम्पूर्ण मानव–ज्ञांन पुस्तकों और पुस्तकालयों में मिल सकता है। अन्य प्राणियों से भिन्न मानव को अतीत से प्राप्त ज्ञान को प्रत्येक पीढ़ी के साथ अपने नये ज्ञान के रूप में प्रारंभ करना चाहिए। ज्ञान के विस्तृत भंडार में उसका निरंतर योगदान प्रत्येक क्षेत्र में मानव द्वारा किये गये प्रयासों की सफलता को सम्भव बनाता है।"[4]

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के कार्य

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के मुख्य रूप से निम्नलिखित पॉच कार्य हैं।

(1) यह अनुसंधान–कार्य के लिए आवश्यक सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि प्रदान करता हैं। प्रत्येक प्रत्यय और धारणा को स्पष्ट करता है।

(2) इसके द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समस्या क्षेत्र में अनुसंधान की स्थिति क्या है? क्या, कब, कहॉ, किसने और कैसे अनुसंधान कार्य किया है? इसके ज्ञान द्वारा अपने अध्ययन की योजना बनाना सुविधाजनक हो जाता है।

(3) सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण, अनुसंधान के लिए अपनाई जाने वाली विधि, प्रयोग में लाये जाने योग्य उपकरण तथा आंकड़ो के विश्लेषण के लिए प्रयोग में आने वाली उपयुर्क्त विधियों को स्पष्ट करता है।

(4) यह इस तथ्य का भी आभास देता है कि लिया गया अनुसंधान कार्य किस सीमा तक सफल हो सकेगा और प्राप्त निष्कर्षों की उपयोगिता क्या होगी?

(5) इसका यह महत्वपूर्ण कार्य समस्या के परिभाषीकरण, अवधारणा बनाने, समस्या के सीमांकन और परिकल्पना के निर्माण में सहायता करना है।

---

2. शिक्षा अनुसंधान :– आर0ए0 शर्मा, सूर्या पब्लिकेशन मेरठ, पृष्ठ 7।
3. वही।
4. वही।

सम्बन्धित साहित्य का महत्व

वास्तव में सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से अनुसंधानकर्ता को निम्नलिखित लाभ है।

(1) यह अनावश्यक पुनरावृत्ति से बचाता है।

(2) शोध – प्रबन्ध के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में अनुसंधानकर्ता के ज्ञान, उसकी स्पष्टता तथा कुशलता को स्पष्ट करता हे।

(3) सभी प्रकार के विज्ञानों तथा शस्त्रों में अनुसंधान कार्य का अधार होता है। इसके अभाव में एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकते।

(4) अब तक उस क्षेत्र में हो चुके कार्य की सूचना देता है।

(5) पहले किये गये कार्य के ऑकड़े वर्तमान अध्ययन में सहायक होते हैं।

(6) यह समस्या के चुनाव, विश्लेषण एवं कथन में सहायक होता है।

(7) यह समस्या के अध्ययन में सूझ पैदा करता है।

(8) अनुसंधानकर्ता के समय की बचत करता है।

(9) समस्या के सीमांकन में सहायक होता है।

(10) इससे अनुसंधान की रूपरेखा तैयार करने में सहायता मिलती है।

(11) अनुसंधानकर्ता की त्रुटियों से बचाता एवं सावधान रखता है।

(12) अध्ययन की विधि में सुधार कर श्रम की बचत करता है, तथा अनुसंधानकर्ता में आत्म–विश्वास उत्पन्न करता है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण की सीमाएं

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण जहॉ अनुसंधान कर्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वहीं इसकी कुछ सीमायें भी हैं। प्रत्येक अनुसंधानकर्ता को इन्हें ज्ञात करने और अपने अध्ययन में सावधानी रखने की आवश्यकता है। सीमायें निम्नलिखित हैं –

(1) सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन हमारे अन्दर उस समस्या के प्रति एक विशेष प्रकार का सुझाव और पक्षपात का भाव उत्पन्न कर सकता है। जिसके कारण हमारी सम्पूर्ण क्रिया पक्षपात पूर्ण होने का भय है।

(2) अन्य अनुसंधानकर्ताओं के द्वारा प्राप्त निष्कर्षो से अपने अध्ययन में प्राप्त निष्कर्षो की तुलना करते समय हम इन तथ्यों की उपेक्षा कर देते हैं कि –

(अ) पूर्व अनुसंधानकर्ता की अवधारणायें क्या थीं?

(ब) उसके न्यादर्श की विशेषताएं क्या थीं?

(स) उसके द्वारा प्रयोग किया गया उपकरण किस सीमा तक विश्वसनीय और वैध था? तथा

(द) निष्कर्षों को निकालने में उसने किस सीमा तक उपर्युक्त सांख्यिकीय एवं तार्किक विधियों का प्रयोग किया है।

सम्बन्धित साहित्य की उपादेयता

शोध कार्य में साहित्य की समीक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हैं।

(1) यह सिद्धान्त विचार व्याख्यायें अथवा परिकल्पनायें प्रदान करता हे। जो नयी समस्या के चयन में उपयोगी हो सकते हैं।

(2) यह परिकल्पना के लिए साधन प्रदान करता है। शोध–कर्ता प्राप्त अध्ययनों के आधार पर परिकल्पनायें बना सकता है।

(3) यह समस्या के समाधान के लिए उचित विधि, प्रक्रिया, तथ्यों के साधन और सांख्यिकी तकनीक का सुझाव देता है।

(4) यह परिणामों के विश्लेषीकरण में उपयोगी निष्कर्षों और तुलनात्मक तथ्यों को निर्धारित करता है। सम्बन्धित अध्ययनों से निकाले गये निष्कर्षों की तुलना की जा सकती है ओर यह समस्या के निष्कर्षों के लिए उपयोगी हो सकता है।

(5) यह शोध किये गये क्षेत्र में शोध कत्र की निपुण्ता और सामान्य पाण्डित्य को विकसित करने में सहायक होता है।

ब्रूस डब्ल्यू टाकमन–समीक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य बताये हैं –

(1) महत्वपूर्ण चरों को खोजना।

(2) जो हो चुका है उससे जो करने की आवश्यकता है, उसको पृथक करना।

(3) शोध कार्य का स्वरूप बनाने के लिए प्राप्त अध्ययनों का संकलन करना।

(4) समस्या का अर्थ, इसकी उपयुक्तता, समस्या से इसका सम्बन्ध और प्राप्त अध्ययनों से इसके अंतर को निर्धारित करना।

साहित्य का पुनर्निरीक्षण पूर्व अध्ययनों की सीमायें और महत्वपूर्ण चीजों के संदर्भ में अर्न्तवृष्टि प्रदान करता है। यह उसको अपने शोध में सुधार करने योग्य बनाता है।

वस्तुतः सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के बिना अनुसंधानकर्ता का कार्य अन्धे के तीर के समान होगा। इसके अभाव में उचित दिशा में वह एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। जब तक उसे ज्ञात न हो कि उस क्षेत्र में कितना कार्य हो चुका है, किस विधि से कार्य किया गया है, तथा उसके निष्कर्ष क्या आये हैं, तब तक वह न तो समस्या का निर्धारण कर सकता है और न उसकी रूप रेखा तैयार कर कार्य को सम्पन्न ही कर सकता है।

चार्टर वी0मुड के अनुसार–''मुद्रित साहित्य के अपार भण्डार की कुंजी अर्थपूर्ण समस्या और विश्लेषणीय परिकल्पना के स्रोत को द्वारा खोल देती है तथा समस्या के परिभाषीकरण, अध्ययन की विधि के चुनाव तथा प्राप्त सांमग्री के तुलनात्मक विश्लेषण में सहायता करती है। वास्तव में रचनात्मकता, मौलिकता, तथा चिंतन के विकास हेतु विस्तृत एवं गम्भीर अध्ययन आवश्यक हैं।

गुड बार तथा स्केट्स – ने साहित्य के सर्वेक्षण के उद्देश्य की चर्चा करते हुए लिखा है कि यह निम्नांकित तथ्यों को स्पष्ट करता है।

(1) क्या उपलब्ध प्रमाण समस्या का समुचित समाधान प्रस्तुत करते हैं?

(2) यह सर्वेक्षण उन सिद्धांतों, व्याख्याओं तथा परिकल्पनाओं को विचार प्रदान करता है जो अपने अध्ययन की समस्या के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

(3) यह समस्या के समाधान हेतु अनुसंधान की समुचित विधि का सुझाव देता है।

(4) तुलनात्मक आंकडों को प्राप्त करने व उनके विश्लेषण में सहायक होता है।

(5) सम्बन्धित साहित्य का गम्भीर अध्ययन अनुसंधानकर्ता के ज्ञान कोष की वृद्धि करता है।

(3) समस्या से सम्बन्धित शोध – (क) विदेश में, (ख) देश में, (ग) प्रदेश में ।

संसार में जितने भी मत सम्प्रदाय और विचारधारायें प्रवाहित हुई हैं, सभी ने शिक्षा को अपने उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बनाया, विश्व में जितने भी उच्चकोटि के दार्शनिक हुए सबने शिखा व्यवस्था पर अपनी योजनायें बनायी।

पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटों, रूसों, पेष्टालॉजी, जान डीवी, हरबर्ट स्पेन्सर, फ्रोबेल, डा0 मेरिया माटेंसरी आदि ने अपनी–अपनी शिक्षण पद्धति प्रस्तुत की हैं। वही भारतीय दार्शनिकों में स्वामी दयानन्द सरस्वती, ठाकुर रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द,राधा कृष्णन, जाकिर हुसैन, आर्चाय विनोवा भावे तथा डा0 सम्पूर्णानद, आचार्य नरेन्द्र देव आदि ने शिक्षा दर्शन तथा शिक्षण पद्धतियों का प्रतिपादन किया है। इसी प्रकार शिक्षा जगत में पं0 मदनमोहन मालवीय, एनीवेसेंट, जे0 कृष्णमूर्ति, राजाराम मोहन राय, मौलाना अब्दुल कलाअ आजाद, शंकराचार्य, जवाहरलाल नेहरू, भाऊराम पाटिल, लोकमान्य तिलक आदि महापुरूषों के शैक्षिक विचारों से प्रभावित हुआ है, और उसके विचारों ने शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं।

शिक्षा क्षेत्र में प्रायः सभी उपरोक्त शिक्षा दार्शनिक तथा शिक्षा– शास्त्रियों के शैक्षिक विचारों तथा शिक्षा में योगदान पर शोध–कार्य हो चुका है।

आजादी के बाद भारतीय समाजवादी आन्दोलन के तीन प्रमुख दीप स्तम्भ डा0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव और डा0 राममनोहर लोहिया ये तीनों विभूतियां यद्यपि आज हमारे मध्य नहीं हैं, लेकिन उनके कर्म और विचार अगली शताब्दी में भी प्रासंगिक रहेगें।

आज भारत के शैक्षिक परिदृश्य पर अनेक प्रश्न प्रासंगिक हैं और उन प्रश्नों के उत्तर खोजने हेतु मैने अपने शोध का निम्न विषय चुना है। "समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन"

प्रस्तुत समस्या से सम्बन्धि किये गये शोधकार्यों की जानकारी हेतु श्री एम0बी0 बुच द्वारा सम्पादित एजुकेशनल सर्वे भाग 1 से 5 का अध्ययन किया गया, जिससे प्रकट हुआ कि भारतवर्ष के अन्य शिक्षा मनीषियों के चाहे वे सक्रिय राजनीतिं में संलग्न रहे हो या उससे अलग होकर शिक्षा सम्बन्धी कार्य किया हो, उनके शिक्षा दर्शन पर तथा उनके शैक्षिक विचारों पर शोधकार्य किया गया है जिसका संक्षिप्त आगे अंकित जा रहा है।

जगद्गुरू शंकराचार्य (788–820 ई0) का शिक्षा दर्शन

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	शंकराचार्य का शिक्षा दर्शन	1978	मेरठ	शर्मा, बी0डी0
2.	शंकरवेदान्त में विश्वबन्धुत्व की भावना और शिक्षा एक अध्ययन	1992	आगरा	सिंह, पहुप

स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824–1883 ई0) के शैक्षिक विचार एवं उनका शिक्षा दर्शन

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	एजूकेशनल आइडियाज ऑफ स्वामी दयानन्द	1980	केरला	नैय्यर, वी0एस0
2.	एजूकेशनल फिलोसफी ऑफ स्वामी दया नन्द	1981	मेरठ	चौहान, बी0पी0एम0

कवि गुरू रवीन्द्र नाथ टैगोर (1861–1943 ई0) के शैक्षिक विचारों पर अध्ययन

क्र0	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	रवीन्द्र नाथ टैगोर एज0एन0 एजूकेटर	1972	आगरा	सिंह, आई0 वी0
2.	एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ टैगोर एण्ड इट्स रिलेवेन्स टू करेन्ट एजूकेशनल थाट्स	1976	कलकत्ता	जान, एम0एन0
3	आर्ट एज ए मीडियम ऑफ एजूकेशन इज टैगोर्स थीम,	1976	उस्मानिया	पॉल, आर0
4	ए क्रिटीकल स्टडी ऑफ रवीन्द्र नाथ टैगोर एज0ऐन0 एजुकेशनिस्ट	1980	गोरखपुर	सिंह, एस0एन0
5	ए स्टडी ऑफ दि एजूकेशनल आईडियाज ऑफ रवीन्द्र नाथ टैगोर एण्ड दियर रिलवेन्स टू कस्टम पोरेरी थाट्स एण्ड पैक्टिस इन एजूकेशन,	1981	विश्व भारती	राय, एस0एस0
6	ए क्रिटीकल स्टडीज ऑफ रवीन्द्र नाथ टैगोर्स एजूकेशनल फिलॉसफी	1982	पूना	पुरन्दरे, पी0जी0
7	ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ दि एजूकेशनल फिलॉसफीज ऑफ रवीन्द्र नाथ टैगोर एण्ड महर्षि अरविन्दो	1990	रूहेखण्ड	धाल0पी0

पं0 मदनमोहन मालवीय (1861–1946 ई0) के शैक्षिक विचारों पर अध्ययन

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	पं0 मदनमोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों का अध्ययन	1986	बनारस	राय0एम0
2.	आधुनिक परिवेश में महामना मदनमोदन मालवीय के शैक्षिक विचाारों का आलोचनात्मक अध्ययन।	1990	बुन्देलखण्ड	वर्मा, जवाहर लाल

स्वामी विवेकानन्द (1863 –1902 ई0) के शिक्षा सम्बंधी विचारों का अध्ययन

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	स्वामी विवेकानन्दस फिलॉसफी ऑफ एजूकेशन–ए–साइको मेटाफिजीकल एप्रोच,	1973	कलकत्ता	हुसैन एम0
2.	ए स्टीड ऑफ दि फिलॉसफी ऑफ विवेकानन्द विद रिफरेन्स टू अद्वैत वेदांन्त एण्ड ग्रेट यूनीवर्सल हॉट ऑफ बुद्ध।	1978	गोहाटी	दत्ता,टी0एस0
3.	एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ स्वामी विवेकानंन्द	1978	बाम्बे	पुठियाथ, जे0डी0
4.	सिन्थेटिक रिप्ररीचुलिज्म ऑफ श्रीराम कृष्ण थ्रो हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफिकल परसपेक्टिव	1984	गोहाटी	दास, एच0पी0

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
5.	ए स्टडी ऑफ एजूकेशनल थाट्स आफ स्वामी विवेकान्नद	1985	रूहेलखण्ड	गुप्ता आर0पी0
6.	क्रिटीकल स्टडी ऑफ एजूकेशनल फिलॉसफी एण्ड टीचिंग मैथड ऑफ स्वामी विवेकानन्द	1985	अवध	मिश्रा,शिवशरन
7.	दि रामकृष्ण मिशन एण्ड इट्स इम्पेक्ट ऑन कन्टमप्रोररी इन्डियन एजूकेशन	1986	लखनऊ	सन्याल, मीरा
8.	ए कम्परेहेन्सिव इन्डेप्ट इन क्रिटीकल एनालीसिस ऑफ स्वामी विवेकानन्दस एजूकेशनल थाट्स एण्ड इट्स फिलॉसाफिकल फाउनडेशन विदस्पेशल फोकस ऑन वैल्यू एजूकेशन इन दि कान्टेक्ट ऑफ नयूक्लियर एण्ड स्पेस इज ग्लोबल वैल्यू क्राइसेस एण्ड दि नोड फॉर वैल्यू एजूकेशन इन इन्डिया टुडें।	1987	पूना	अभ्यंकर, एस0पी0

महात्मा गाँधी (1869 –1948 ई0)
के शैक्षिक विचारों एवं उनके शिक्षा दर्शन पर अध्ययन

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	दि एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी	1951	बाम्बे	पटेल,एम0एस0
2.	दि एजूकेशनल आइडियाज ऑफ महात्मा गाँधी एण्ड रवीन्द्रनाथ टैगोर ए कम्परेटिव स्टडी विद रिलवेन्स टू मार्डन इण्डिया	1958	मद्रास	सुब्रामणियम् आर0एस0
3.	दि एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ गाँधी एण्ड डीवी–ए स्टडी एण्ड कम्परेजिन	1967	आन्ध्रप्रदेश	ललित चन्द्र,
4.	दि कन्सेप्ट ऑफ परसनौलिटी इन दि एजूकेशनल थाट्स ऑफ महात्मा गाँधी,	1968	उसमानिया	रागजी एम0टी0
5.	महात्मा गाँधी एजूकेशन फिलॉसफी	1973	बाम्बे	सेन ए0
6.	गांधीयन एजूकेशनल फिलॉसफी एण्ड वर्ल्डपीस	1976	पंजाब	गिग्गू, पी0एन0
7.	दि स्प्रिरीचुअल एलीमेन्ट इन दि एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी	1981	एम0एस0	देव, सी0आर0
8.	दि कान्सेप्ट ऑफ गांधीजी बेसिक एजूकेशन इट्स थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस	1988	बाम्बे	राव,एस0एस0
9.	एजूकेशनल थाट्स ऑफ गांधीजी एण्ड दियर रिलवेन्स टू कन्टमपोररी एएजूकेशन,	1998	अन्नामलाई	महालिंगम .के0

मौलाना अबुल कलाम आजाद (1888—1958 ई0) के शैक्षिक विचार

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	दि एजूकेशनल आस्पेक्ट्स ऑफ दि थाट्स ऑफ मौलाना अबुल कलाम आजाद	1968	दिल्ली	रसेल, एम0जी0

महर्षि अरविन्द (1872—1950 ई0) के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर शोधकार्य

क्र0	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	ए स्टडी ऑफ श्री अरविन्दों दीज फिलॉसफी ऑफ एजुकेशन	1978	एस0वी0	बाबू0 ए0एस0
2.	ह्यूमनिज्म इन दि एजूकेशन फिलॉसफी ऑफ श्री अरविन्दो	1983	मेरठ	शर्मा, आर0एस0
3.	एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ श्री अरविन्दों	1984	मेरठ	चन्दर, एस0एस0
4.	एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ श्री अरविन्दों एण्ड इट्स एक्सप्रेरीमेन्ट्स इन उड़ीसा	1990	उत्कल	दास, गयाधर
5.	वैल्यू एजूकेशन इन दि लाइट ऑफ श्री अरविन्दोज फिलॉसफी विद स्पेशन रिफरेन्स होमसाइंस एजूकेशन	1991	उस्मानिया	मनय, शकुन्तला एन0
6.	कम्परेटिव स्टडी ऑफ फिलॉसाफेकल एण्ड एजूकेशनल वीबुज ऑफ महर्षि अरविन्दों एण्ड रूसों,	1991	कुमायूँ	शंकर, हरि
7.	ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ दि एजूकेशनल फिलॉसफीन ऑफ श्री अरविन्दों एण्ड महात्मा गांधी एण्ड दियर रिलवेन्स टू मार्डन एजूकेशनल सिस्टम	1992	पंजाब	कौर, रवीन्द्र जीत

सर्वपल्ली डा0 राधाकृष्णन् (1888–1975 ई0) के शैक्षिक विचारों पर किये गये शोध

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ डा0 राधाकृष्णन् एण्ड इट्स रिलेवेन्स फॉर सोशल चेन्ज	1988	आगरा	भागवंती
2.	ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ दि एजूकेशनल आइडियाज ऑफ सर्व पल्ली राधाकृष्णन् एण्ड बर्टेंडरसल,	1989	इलाहाबाद	शर्मा, उमारानी

पं0 जवाहरलाल नेहरू (1889–1964 ई0) के शैक्षिक विचार

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	दि एजूकेशनल थाट्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू	1980	गुजरात	अब्बासी, ए0एन0एम0एस0

आचार्य विनोबा भावे(1895–1982 ई0) के शैशिक विचार एवं उनका शिक्षा दर्शन

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	ए स्टडी ऑफ दि एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ विनोवा भावे	1973	एस0पी0	भट्ट, जे0एम0
2.	ए स्टडी ऑफ एजूकेशनल थाट्स ऑफ विनोवा भावे	1974	पटना	सिंह, एस0
3.	ए स्टडी ऑफ दि फिलॉसफी ऑफ विनोवा भावे एण्ड इट्स इफेक्ट ऑन एजूकेशन इन दि लाइट रिफरेन्स ऑफ दि न्यू एजूकेशन पॉलिसी	1992	नागपुर	भारोटे, ए0सी0

जाकिर हुसैन (1897—1969) के शिक्षा सम्बन्धी विचार

क्रमांक	शोध शीर्षक	वर्ष	वि0वि0	शोधकर्ता का नाम
1.	ए क्रिटिक ऑन एजूकेशनल थाट्स ऑफ डा0 जाकिर हुसैन	1985	मेरठ	सिंह, के0आर0पी0

प्रस्तुत शोध से तुलना एवं विवेचना

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सत्य और अहिंसा को आधार लेकर प्रधान याज्ञिक के रूप में प्रख्यात महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों का मूर्तरूप बुनियादी शिक्षा पद्धति तथा समग्र नयी तालीम पर नौ अनुसंधान कर्ताओं के द्वारा शोधकार्य सम्पन्न किया गया है। वही नत्य वेदांत दर्शन पर आधारित शैक्षिक विचारों के प्रस्तोता स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा—दर्शन पर भी आठ शोध प्रबन्ध किये गये है। महर्षि अरविन्द के सर्वांग शिक्षा—दर्शन के विभिन्न पहलुओं पर सात तथा गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन पर छः आचार्य विनोवा भावे के शैक्षि विचारों पर तीन शोधकर्ताओं द्वारा शोधकार्य पूरा किया गया है। महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों पर दो—दो शोध प्रबन्ध विभिन्न विश्वविद्यालयों में पी0एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत हुए हैं, वहीं भारत सरकार के शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद के शैक्षिक विचारों पर तथा वर्धायोजना समिति के अध्यक्ष व जामिया मिलयि के सर्वस्व डा0 जाकिर हुसैन के शिक्ष दर्शन पर एक—एक अनुसंधान कार्य सम्पन्न किये गये हैं। इसी प्रकार रामतीर्थ, समर्थ गुरू रामदास, तथा डा0 राजेन्द्र प्रसाद, मनुभाई पंचौली, सने गुरू जी, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर तथा जे0 कृष्णमूर्ति, जैसे शिक्षा विदों के शिक्षा दर्शन तथा शैक्षिक विचारों पर अनेक अध्ययन दिये गए परन्तु आज तक समाजवादी चिंतक आचार्य नरेन्द्रदेव डा0 राममनोहर लोहिया एवं प्रोफेसर सम्पूर्णानन्द के शैक्षिक विचारों एवं सिद्धान्तों पर अभी तक कोई शोधकार्य सम्पन्न नहीं किया गया है, अतः इस अछूते क्षेत्र पर प्रस्तुत शोधकार्य का मेरा प्रथम मौलिक प्रयास है।

प्रस्तुत शोध 'समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन' शोध के क्षेत्र में मौलिक सृजनात्मक देन प्रस्तुत करेगा। क्योंकि 'प्राचीनता एवं नवीनता के संगम' डा0 सम्पूर्णानन्द, 'एक महान् मानव' एवं 'एक महान योद्धा' आचार्य नरेन्द्र देव एवं 'सजल करूणा' डा0 राममनोहर लोहिया ये तीनों महान् व्यक्तित्व 'समाजवाद में त्रिवेणी के सदृश है।

इन महापुरूषों ने जिस संस्कृति की अवधारणा की, उसकी भित्ति मात्र मार्क्सवाद नहीं है, अपितु करूणा के अवतार बुद्ध और कर्मयोगी श्रीकृष्ण भी हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि 'समाजवाद

का सवाल केवल रोटी का सवाल नहीं है, समाजवाद मानव –स्वतंत्रता की कुंजी है। समाजवाद ही एक स्वतंत्र सुखी समाज में सम्पूर्ण स्वतंत्र मनुष्य को प्रतिष्ठित कर सकता है।

सुन्दर और सम्पूर्ण मनुष्यत्व की सृष्टि तभी हो सकती है, जब साधन भी सुन्दर हो, मानवोचित हो।

अभी तक जितने भी शोध हुए वे या तो किसी दार्शनिक अथवा किसी शिक्षा शास्त्री के शैक्षिक विचारों पर हुए, किन्तु इस शोध में इन तीनों महापुरूषों की समाजवादी दृष्टि, शिक्षा जगत में योगदान, राजनीति में उन्होंने जो योगदान प्रदान किया है, उसका समग्र एवं समन्वित रूप दिखाई देता है।

फूलों का सौरभ, सौरभ का आकर्षण, आकर्षण का बंधन कुछ ऐसा अनोखा होता है, जैसे वीण के तारों में विद्यमान अद्भुत स्वर लहरी बहती हुई सरिता को अपने आकर्षण में बॉध ले; यह आकर्षण अद्भुत नहीं तो दुर्लभ अवश्य होता है, कुछ ऐसा ही आकर्षण समाजवाद की इस त्रिवेणी में है।

इस शोध में जहॉ 'शीतल तेजस्विता की प्रतिमूर्ति' आचार्य नरेन्द्रदेव, 'भारतीय संस्यकृति के अनुयायी' डा0 सम्पूर्णानन्द के विचार समाहित हैं, वहीं 'युग दृष्टा' मनस्वी, डा0 राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं विचार समाहित है।

प्रस्तुत शोध में अन्य दार्शनिक अध्ययनों की भॉति ही शोध–विधि का अनुसरण किया गया है तथा उद्देश्यों को भी विशिष्टता के आधार पर कुछ अलग निर्धारित किये गये हैं। यह शोध–प्रबन्ध न तो पूर्ण रूपेण किसी शोध प्रबन्ध की प्रविधियों पर आधारित है और न ही पूर्ण रूपेण अलग है। यह एक मौलिक नवीनतम् प्रयास है जो समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता को उजागर करता है।

तृतीय अध्याय

(व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

डा0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव,
तथा
डा0 राममनोहर लोहिया

व्यक्तित्व एवं कृतित्व
(डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव तथा डॉ0 राममनोहर लोहिया)

(अ) व्यक्तित्व एवं कृतित्व

व्यक्तित्व का अभिप्राय– व्यक्तित्व शब्द आधुनिक काल में अत्यंत प्रचलित एवं व्यवहारिक हो गया है। जैसे ही हम किसी व्यक्ति को देखते है; तो कहते हैं कि अमुक व्यक्ति के व्यक्तित्व में बड़ा आकर्षण है। अत एव साधारण भाषा में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति की बोल चाल, वेष, भूषा, आकार स्वास्थ्य, आदि से लिया जाता है। लेकिन इसका मनोवैज्ञानिक द्वष्टिकोण से निरीक्षण करने पर उपरोक्त द्वष्टिकोण संकीर्ण सा प्रतीत होने लगता है। मनोवैज्ञानिक द्वष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि व्यक्तित्व अनेक तत्वों का संगठित रूप है।

व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति परसोना से हुई है। व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी के परस्नैल्टी (Personalite) शब्द का पर्याय है। और (Personality) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के परसोना (Persona) शब्द से हुई है। परसोना का अर्थ वेष भूषा से लिया जाता है। जैसे नाटक के पात्र भॉति–भॉति के वेष धारण करके रंग मंच पर आते हैं, उस समय व्यक्ति का व्यक्तिगत सामान्य अवस्था से भिन्न प्रतीत होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'परसोना' शब्द से 'परस्नैल्टी' शब्द की उत्पत्ति इस दृष्टिकोण से मापते हैं कि व्यक्ति का व्यक्तित्व की बाह्य गुणों के द्वारा माप की जाती है।

जनसाधारण में व्यक्ति के व्यक्तित्व का अर्थ बाह्य गुणों से लगाया जाता है। दर्शन में व्यक्तित्व का आंतरिक तत्व 'जीव' माना जाता है। किंतु मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का अर्थ किसी स्टिार अवस्था से न होकर गतिशील समष्टि से लिया जाता हे। किन्तु व्यक्तित्व की झलक उसके प्रत्येक कार्य, उठने–बैठने, अचार–विचार एवं व्यवहार सभी में दिखती है। इन सबका संगठित एवं स्थायी रूप ही व्यक्तित्व है। व्यक्तितत्व के आधार पर ही हम व्यक्ति–व्यक्ति में अन्तर (Individualdifference) करते हैं।

मन के अनुसार –''व्यक्तित्व एक व्यक्ति के गठन, व्यवहार के तरीकों, रूचियों, दृष्टिकोणों, और क्षमताओं, योग्यताओं और तरीकों का सबसे विशिष्ट संगठन है।''

व्यक्तित्व में शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही पहलू महत्वपूर्ण हैं एवं यह गुणों का केवल समुच्चय नहीं उनका समन्वय है।

व्यक्ति की कुछ परिभाषायें इस प्रकार हैं –

''व्यक्तित्व आदत की उन व्यवस्थाओं का समन्वय है, जो वातावरण के साथ व्यक्ति के विशिष्ट अभियोजन का प्रतिनिधत्व करता है''। कैम्प

''यह अपने वातावरण के साथ व्यक्तित्व का सामान्य एवं स्थायी सामंजस्य है।'' बोरिंग

''यह जन्मजाति एवं अर्जित प्रवृत्तियों का योग है।'' वैलेन्टाइन

The Sum Total of innate and acquired dispositions" (Voleritine)

"व्यक्तित्व एक ऐसा प्रत्यय है, जिसे अन्तर्गत व्यक्ति की सभी –विचारात्मक, संवेगात्मक एवं गत्यात्मक प्रतिक्रियाओं तथा इन प्रतिक्रियाओं का संगठन सम्मिलित है।" काज एवं शैंक

"व्यक्तित्व सभी–जैविक जन्मजात प्रवृत्तियों, इच्छाओं, भूख एवं मूल प्रवृत्तियों का योग है, एवं इसमें अनुभव से प्राप्त अर्जित प्रवृत्तियां भी सम्मिलित हैं।" (मार्टन प्रिन्स)

व्यक्तित्व के प्रकार

व्यक्तित्व की विभिन्नता के आधार पर अनेक प्रकार के व्यक्तियों का वर्गीकरण किया गया है। प्राचीन काल में भारतीय आयुर्वेद में वात, पित्त एवं कफ–इन तीन प्रकृति के व्यक्ति बताये गये थे। इसी प्रकार धर्म शास्त्रज्ञों ने सात्विक राजसी एवं तामसिक। तीन प्रकार की मानसिक वृत्तियों का उल्लेख किया था। अरस्तु ने चार प्रकार की प्रकृति के व्यक्ति बताये थे। (1) विषादी (2) पैत्तिक (3) कफ प्रकृति के (4) वात प्रकृति के।

विषादी व्यक्तियों में काला पित्त, पैत्तिक व्यक्तियों में पीला पित्त, कफ प्रकृति के व्यक्तियों में कफ, एवं वात प्रकृति के व्यक्तियों में रक्तिम रूधिर की प्रधानता होती है।

इस प्रकार अरस्तू के अनुसार व्याक्तित्व का आधार शारीरिक है। अरस्तू के शिष्य थ्योफास्टस ने अत्याधिक निपुणता से 30 प्रकार के व्यक्तियों का वर्णन किया है, जैसे चापलूस, दरिद्र आदि।

व्यक्तित्व निर्धारण एवं नियमन के आधार

वे बीजतत्व जिनसे व्यक्तित्व का निर्माण या निर्धारण होता है वे 'शीलगुण' कहलाते हैं। सामाजिकता (Sociatility) विनयन (Submission) प्रसक्ति (Submission) आदि ऐसे ही शीलगुण हैं। व्यक्तित्व का विकास इन शीलगुणों के ही आधार पर होता है। व्यक्ति जिस प्रकार का व्यवहार करता है, उसमें उसके शीलगुणों की अभिव्यक्ति होती है। पर शीलगुणों में स्थिरता नहीं होती। अनेक प्रयोगों एवं अन्वषणों से इस सम्बंध में निष्कर्ष निकले हैं। मे एवं हार्टशोर्न के चरित्र अध्ययन से पता चलता है कि जिन विद्यार्थियों न एक परिस्थिति में बेईमानी का प्रदर्शन किया, दूसरी में सत्यनिष्ठा का। वास्तव में किसी विशिष्ट शीलगुण की अभिव्यक्ति परिस्थिति पर निर्भर है, ऐसा कुछ मनोवैज्ञानिक मानते हैं। पर अन्य मनोवैज्ञानिक यह विश्वास करते हैं कि शीलगुण व्यक्ति में सामान्य रहता है और किंसी विशिष्ट परिस्थिति में क्या संख्या है, इस सम्बंध में भी अध्ययन किये गये हैं। एक अध्ययन में अंग्रजी के 4000 शब्दों की 'शीलगुण' का नाम दिया गया था। एक अन्य अध्ययन में इनकी संख्या कुल 171

मानी गई। पर अब 35 युगल शब्दों को 'शीलगुण की संज्ञा दी गई हैं। कुछ विशिष्ट शील गुण ये हैं –

(1) **सत्यनिष्ठा** (Honesty)– सत्यनिष्ठा का शीलगुण होने पर व्यक्ति विषम परिस्थितियों में भी सत्यानिष्ठा का परिचय देता है। सत्यनिष्ठा एक महान् व्यक्तित्व गुण है। सत्यनिष्ठा व्यक्ति सभी का विश्वासभाजक होता है।

(2) **संवेगात्मक स्थिरता** (Emational Stability)– इस शीलगुण के होने पर व्यक्ति अत्यंत विषम परिस्थितियों में भी अपना मानसिक संतुलन नहीं खोता एवं संवेगात्मक अस्थिरता का शिकार नहीं होता। ऐसा व्यक्ति परिस्थिति का उचित मूल्यांकन करके तदनुसार कार्य करता है।

(3) **प्रसक्ति**– प्रसक्ति का अर्थ हे अनेक बाधाओं एवं कठिनाइयों के बावजूद भी प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूरा करके ही छोडरे की प्रवृत्ति। अभीष्ट की पूर्ति के लिए सतत प्रयास, अर्थात प्रसक्ति एक उत्कृष्ट शीलगुण है। प्रसक्ति की परीक्षा के लिए व्यक्ति के सम्मुख कठिन परिस्थति उपस्थिति की जाती है, और फिर यह देखा जाता है कि वह कठिनाई के कारण कार्य छोडता है या नहीं।

(4) **विषाद** (Depression)– इस शीलगुण के अन्तर्गत व्यक्ति दुखी एवं चिंताग्रस्त रहता है। वह अपने भावों को व्यक्त नहीं करता, वरन् अपने अन्तर्मन में असमर्थता एवं साहस की कमी का अनुभव करता है।

(5) **सामाजिकता** (Socialily)– इस लक्ष्य या शीलगुण के फलस्वरूप व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के प्रति विशिष्ट स्वरूप से व्यवहार करता है। उसकी अभिवृत्तियों एवं आचरण का निर्धारण का भी तदनुरूप होता है। सभी व्यक्तियों में सामाजिकता की समान मात्रा नहीं होती।

अनेक अध्ययन यह जानने के लिए किये गये हैं कि इन लक्षणों पर शीलगुणों में कोई परस्पर सम्बन्ध है या नहीं। निष्कर्षतः ज्ञात हुआ है कि कुछ शीलगुणों में उच्च सह सम्बन्ध है, जबकि अनेक शीलगुणों में ऐसा कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि जो व्यक्ति सत्यनिष्ठ हो, वह वीर भी हो।

व्यक्तित्व के प्रतिकारक

व्यक्तित्व के विकास एवं निर्धारण में मुख्यतया दो प्रकार के तत्वों का प्रभाव रहता हैं। (अ) जीविक (Biological), एवं (ब) वातावरण जन्य (Environmertal) इनसे सम्बंधिति कुछ मुख्य अंगो की सूची इस प्रकार हैं।

(अ) जैविक निर्धारण – (1) शरीर संगठन एवं स्वास्थ्य (2) नाड़ी संस्थान (3) शरीर रसायन (4) अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ।

(ब) वातावरण जन्य निर्धारक – (1) माता–पिता का आपसी सम्बन्ध (2) परिवार (3) एक मात्र संतान (4) पाठशाला का जीवन (5) माता–पिता एवं बालक का सम्बन्ध (6) संगी–साथी (7) घर की आर्थिक स्थिति (8) सांस्कृतिक प्रभाव (9) किशोरावस्था में बालिका पर प्रभाव (10) वैवाहिक सम्बन्ध।

(3) बाह्य व्यक्तित्व– बेन जान्सन, जोसेक एडीसन, सैमुअल बटलर एवं अन्य अनेक दार्शनिकों एवं निबंधकारों ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला है। पर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गॉल एवं स्परजीम प्रभूति विद्वानों ने व्यक्तित्व अध्ययन को एक नया मोड दिया। उन्होंने मुखाकृति एवं खोपडी के उभार के आधार पर व्यक्तित्व गुणों का वर्गीकरण किया। स्परजीम ने 37 शक्तियों की एक सूची प्रस्तुत की, जिसमें जीने की इच्छा, नाश की प्रवृत्ति, रचना–प्रवृति आदि सम्मिलित है। इटालियन अपराध विशेषज्ञ लोम्ब्रोसो ने यह ज्ञात किया कि अपराधियों में उभरा हुआ जबडा एवं गाल की हड्डियां होती हैं, माथा धँसा हुआ होता है एवं कान बडे होते हैं। प्रसिद्ध काम–शास्त्र विशेषज्ञ हैवेलक एलिस ने ज्ञात किया कि मत्था तथा बालों के रंग का सम्बन्ध व्यक्तित्व से है।

वार्नर (Warner)– ने शारीरिक आधार पर बच्चों का निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया है – स्वस्थ्य, अपररिपुष्ट, शारीरिक रूप से अविकसित, अंगविकृत, स्नायुविक, पिछडा हुआ, तीव्र बुद्धि, मन्द बुद्धि, मृगी ग्रस्त, स्नायुरोग ग्रस्त ।

शैल्डन (Sheldon)– के अनुसार तीन प्रकार के व्यक्तित्व हैं– (अ) **कूटि–प्रवण या एन्डोडर्म (Endoderm)** कोमल शरीर के एवं मोटे, (ब) **अस्थि प्रशीप्रवण या मैसोडर्म** – स्वस्थ्य एवं सुडौल ढांचे वाले, (स) **आयतास्थि प्रवण या एक्टोडर्म** – दुबले एवं पतले शरीर वाले।

क्रेशमर – के अनुसार शरीर रचना के आधार पर चार प्रकार का व्यक्तित्व होता है।

(अ) **पिकनिक टाइप** – सिर एवं धड़ बड़ा, हॉथ–पैर छोटे, कन्धे छोटे, गोल सीना, प्रकृति से बहिर्मुखी।

(ब) **एथलैटिक** – सबल मांसपेशियां, चौडा सीना, हांथ पैर लम्बे, अण्डाकार चेहरा, प्रकृति से अन्तःर्मुखी ।

(स) **एस्थैनिक**– तिकोना चेहरा, चपटा सीना, लम्बे एवं दुर्बल हॉथ–पैर, प्रकृति से संघर्षशील।

(द) डिस्प्लैस्टिक टाइप – मिश्रित प्रकार के एवं ग्रंथि बीमारियों से ग्रसित।

(4) आन्तरिक व्यक्तित्व –

थार्नडाइक – ने विचार की दृष्टि से व्यक्तित्यों को सूक्ष्म विचारक, प्रत्यय–विचारक, एवं स्थूल–विचारक में विभाजित किया है। इन्द्रियों की प्रधानता की दृष्टि से उसने व्यक्तित्यों को को दर्शनालु, श्रवणालु, स्पर्शालु, घृणालु, गमनालु एवं मिश्रित वर्गों में बांटा गया है।

युंग (Jung)– के अनुसार व्यक्ति मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

(अ) अन्तर्मुखी (Intrverts) (ब) बहिर्मुखी (Extroverts)

बहिर्मुखी व्यक्तियों में सामाजिकता के गुण पाये जाते हैं । फलतः वे सन्तुष्ट, प्रसन्नचित्त एवं उदार ह्रदय होते हैं। इन्हें एकान्त जीवन अच्छा नहीं लगता। ये व्यवहार कुशल एवं आत्मविश्वासी होते हैं। देशोहारक, राजनीतिज्ञ, देश सेवक एवं अन्य व्यक्ति प्रायः वहिर्मुखी होते हैं।

अन्तर्मुखी व्यक्तियों के प्रकृति इसके विपरीत होते हैं। ये एकान्तप्रिय, वास्तविक जीवन से निराश एवं काल्पनिक संसार में विचरने वाले होते हैं। इनमें संवेगो की प्रमुखता होती है। अतः महात्मा, वैज्ञानिक एवं कलाकार लोग इसी प्रकार के होते हैं। युग ने एक अन्य प्रकार के व्यक्ति 'उभयमुखी' का भी वर्णन किया है। ऐसे व्यक्ति इन दोनों वर्गों के बीच में होते हैं।

स्प्रैगर (Spranger) – के अनुसार छः मुख्य प्रकार के व्यक्ति होते हैं।

(अ) आर्थिक– ये हर वस्तु का मूल्यांकन उसकी उपयोगिता के आधार पर करते हैं।

(ब) सैद्धान्तिक – सत्य–प्राप्ति की ओर उन्मुख।

(स) सौन्दर्यानुभवी – ये कलात्मक मूल्य के आधार पर वस्तु को ऑकते हैं।

(द) सामाजिक– दूसरों के दुख–सुख में भाग लेने वाले ।

(य) राजनीतिक– नियंत्रण एवं शक्ति प्राप्ति में विश्वास करने वाले।

(र) धार्मिक– जो धार्मिक विश्वासों एवं अध्यात्मिकता के आदर्श को मानते हैं।

अन्तर्मुखी (Introvert) ऐसे व्यक्ति समाज, भीड़, मेले सभा–सोसायटी आदि में जाना पसन्द नहीं करते। किसी से अधिक मिलना अथवा कहीं आने जाने को वह अपने चिंतन में बाधक समझते हैं। वह संसार के झंझटों में पड़ना नहीं चाहते, अन्तर्मुखी व्यक्ति समाज में किसी से न मिलने के कारण समाज में अप्रिय हो जाते हैं।

संक्षेप में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की निम्न विशेषतायें हैं ।

(1) वाक् – पटुता का अभाव, लज्जालु तथा पढ़ने में रूचि।

(2) स्वभाव से आज्ञाकारी तथा नम्र।

(3) परेशानी से शीघ्र घबड़ा जाने वाले।

(4) स्वभाव में तेजी क्रोध की अधिकता तथा क्रोधावस्था का स्थायित्व मुख्य गुण है।

(5) स्वयं के विषय में चिंतन करना।

(6) इन्हें दूसरों से मतलब नहीं। अपने सिद्धान्त अपने लिए ही निर्मित करते हैं।

(7) यह संदेही प्रवृत्ति के होते हैं तथा सर्तक।

(8) सामाजिकता इनमें नहीं होती इसीलिए लोकप्रिय भी नहीं हो सकते।

(9) ऐसे व्यक्ति कुशल लेखक हो सकते हैं।

(10) चिंता इनका प्रधान गुण है।

(11) स्वभाव से प्रतिक्रिया वादी होते हैं। वातावरण के प्रति अपना असंतोष प्रकट करते रहते हैं।

व्यक्तित्व के प्रतिकारक – व्यक्तित्व के विकास एवं निर्धारण में मुख्यतः दो प्रकार के तत्वों का प्रभाव रहता है–

(अ) नैतिक (Biological) एवं (ब) वातावरण जन्य (Envirobmental)।

(अ) जैविक निर्धारक – (1) शरीर संगठन एवं स्वास्थ्य (2) नाडी संस्थान (3) शरीर–रसायन (4) अन्तस्रावी ग्रन्थियां।

(ब) वातावरण जन्य निर्धारक – (1) माता–पिता का आपसी सम्बन्ध (2) परिवार (3) एक मात्र संतान (4) पाठशाला का जीवन (5) माता–पिता एवं बालक का सम्बन्ध (6) संगी–साथी (7) घर की आर्थिक स्थिति (8) सांस्कृतिक प्रभाव (9) किशोरावस्था में बालिका पर प्रभाव (10) वैवाहिक सम्बन्ध।

व्यक्तित्व के मापक – व्यक्तित्व के मापन की कुछ विधियां निम्नलिखित हैं। (1) प्रश्नावली (2) रेटिंग स्केल (3) सोशियोग्राम (4) प्रक्षेपण विधियां (क) रोशा विधि, (ख) थैमात्कि परीक्षण, (ग) शब्द–साहचर्य विधि। (5) परिवेशात्मक परीक्षण (6) शारीरिक परीक्षण (7) व्यक्ति–इतिहास विधि (8) साक्षात्कार (9) मनोविश्लेषण विधि (10) निरीक्षण।

जीवन–वृत्त– (1) व्यक्तित्व (2) कृतित्व

''सर्वमित्र'' 'आचार्य नरेन्द्र देव'' –

भारत में समाजवादी होना कठिन तपस्या रही है, पूँजीवादी उसे विद्रोही, पूँजीवाद का नाशक समझता रहा है। साम्यवादी पूँजीवादी कहता है? क्योंकि साम्यवादियों की दृष्टि में समाजवादी केवल वह है, जो सोवियत रूप की ही नीतियां मानता हो। कम्युनिष्टों द्वारा थोपी गयी मार्क्सवादी व्याख्या को स्वीकार करता है।

लेकिन भारत में लोकतांत्रिक समाजवादी रचना का मूल श्रेय त्रिमूर्ति को है। त्रिमूर्ति, भारतीय–संस्कृति का अत्यंत प्रिय शब्द है। इसलिए कि जन्म, स्थिति और विनाश यही जीवन की तीन स्थितियां हैं, और इस शोध का उद्देश्य भारतीय समाजवाद की त्रिमूर्ति आचार्य नरेन्द्र देव, प्राचीनता एवं नवीनता के संगम डा0 सम्पूर्णानन्द, तथा विषपायी डा0 राममनोहर लोहिया के व्यक्तित्व एवं कृत्तिव पर प्रकाश डालना है।

'अद्वितीय प्रतिभा–पुरूष 'आचार्य नरेन्द्र देव' जीवन वृत्त–

'आचार्य नरेन्द्र देव दुर्लभ गुण सम्पन्न एक महत्वपूर्ण श्रेष्ठ पुरूष थे, ओर उन्होंने कई क्षेत्रों में श्रेष्ठता प्राप्त की थी। असाधारण व्यक्तित्व के धनी इस मनीषी में दुर्लभ बुद्धि, दुर्लभ प्रतिभा, दुर्लभ सत्यनिष्ठा और अन्य बहुमूल्य गुण थे। केवल उनके शरीर ने ही उनका साथ नहीं दिया।

जवाहरलाल नेहरू

''आचार्य नरेन्द्र देव इस धरती के महानतम पुत्रों में से एक थे, और हमारा राष्ट्र उनका बहुत ऋणी है''।

राजीव गांधी

आचार्य नरेन्द्र देव का जन्म 31 अक्टूबर 1889 में कार्तिक शुक्ल अष्टमी को सीतापुर में हुआ था। इनके पिता श्री बलदेव प्रसाद जी का पैतृक घर फैजाबाद में था। पिता पेशे से वकील थे। वेदांत के विद्धान और धार्मिक रूच्रि के व्यक्ति थे। सामाजिक कार्यों में भी दिलचस्पी थी। आचार्य जी के घर का नाम 'अविनाशी लाल' था। माधव प्रसाद मिश्र ने नाम बदलकर नरेन्द्र देव कर दिया। नरेन्द्र देव ने घर पर ही 'रामचरित मानस', 'सम्पूर्ण महाभारत', 'बैताल–पच्चीसी', 'सूरसागर', आदि पुस्तकें पढी। चन्द्रकांता 16 बार पढ़ गये, तथा चनद्रकांता संतति को एक बार। 10 वर्ष की आयु में ही उन्हें यज्ञापवीत, नित्यसंध्या वंदन, गीता पाठ, सम्पूर्ण रूदी और गीता कंठस्थ थे। अमरकोष ओर लघु–कौमदी भी पढी। घर पर ही स्वामी रामतीर्थ का दर्शन हुआ। 10 वर्ष की अवस्था में पिता के साथ कांग्रेस अधिवेशन में गए। भारत–धर्म महामण्डल के अधिवेशन में दिल्ली गए। पिता का गहरा प्रभाव पडा। मालवीय जी महाराज का प्रोत्साहन पाकर संस्कृत से एम0ए0 किया।

एष्ट्रेंस पास कर इलाहाबाद पढने गए। वहाँ हिन्दू हास्टल उग्र विचारों का केन्द्र था। वहीं रहे। 1905 में कलकत्ता कांग्रेस में दर्शक की हैसियत से भाग लिया। स्वदेशी का वृत लिया। गरम दल के अखबार मँगाने लगे। अरविन्द से अत्यंत प्रभावित हुए। अरविन्द की ओजस्विता और प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम दोनों ने प्रभावित किया था। बंगाल की क्रान्तिकारिता एवं साहित्य के अध्ययन के लिए बंगला सीखी। डकैती आदि के विरूद्ध होने के कारण कभी किसी क्रान्तिकारी दल के सदस्य नहीं बने। 1913 में एम0ए0 तथा 1915 में

एल0एल0बी0 पास किया। जीवन में दो प्रवृत्तियां – पढने की, राजनीति की। विद्यापीट में दोनों का अवसर मिला। फैजाबाद में होमरूल लीग की शाखा खोली। उसके मंत्री हुए। तिलक के अनुयायी होने के कारण कांग्रेस में कौंसिल बहिष्कार के विरूद्ध वोट दिया। किन्तु निर्णय को शिरोधार्य किया। असहयोग प्रस्ताव के अनुसार वकालत छोड़ दी। बापू शिव प्रसाद के बुलावे पर वाराणसी चले आए। पहले काशी विद्यापीठ के उपाध्यक्ष और फिर डा0 भगवानदास के इस्तीफा दोने पर अध्यक्ष बने। श्री प्रकाश जी से ही आचार्य कहना आरंभ किया। बाद में वह नाम का हिस्सा ही बन गया। श्री प्रकाश जी ने आचार्य जी की गहरी मित्रता थी।

1934 में पटना में हुए प्रथम समाजवादी सम्मेलन की अध्यक्षता की। 1934 में विद्यार्थियों को लेकर बिहार भूकम्प में काम करनें भी गए। वहीं प्रथम बार डा0 लोहिया से परिचय हुआ। सोशलिस्ट पार्टी के सभी लोग एक कुटुम्ब के समान थे। विचारों की एकता के कारण जवाहरलाल नेहरू जी के व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण था। 1942 में महात्मा गांधी के आश्रम में स्वास्थ्य सुधार के लिए चार महीना रहे । गांधी जी इनका बडा ख्याल रखते थे। 1942 में गिरफ्तार होकर अहमदनगर किले में बंद हुए। 1945 में छूटे।

समाजवादी होते हुए भी आचार्य जी ने बनारस के आर्य समाज मंदिर में चरखा कातना सिखाने के लिए कक्षाऐं चलवाई। नमक सत्याग्रह में भाग लिया। एशियाई देशों में राष्ट्रीय चेतना के विकास पर उनकी गहरी दृष्टि थी। 1947 में लखनऊ विश्व विद्यालय के कुलपति हुए। अपने विचारों के प्रकाशनार्थ 'संर्घष' नामक हिन्दी साप्ताहिक का प्रारम्भ किया। गांधी जी इन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना चाहा। किन्तु कुछ लोगों के न चाहने से ऐसा नहीं हो सका। 31 मार्च 1948 को प्रांतीय विधान सभा से अपने 11 साथियों सहित (कुल 12) इस्तीफा दे दिया। 'जमींदारी' उन्मूलन में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1954 में इलाज करवाने योरप गए। 1955 में गया में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सम्मेलन में इनका नीति वक्तब्य पढ़ा गया। 19 फरवरी 1956 को इरोड में इनका शरीर छूट गया। आचार्य जी के प्रति श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था।

गये नरेन्द्र देव, तुम, पर क्या होकर हम सबसे निःस्नेह?
ज्ञान और गुण–गौरव गरिमा झेल न सकी तुम्हारी देह,
दिब्य रूप में देते हो तुम अब भी शुभ–संदेश हमें,
किन्तु कहाँ सुनने देता है, भॉय–भॉय करंता हय नेह।

'आचार्य नरेन्द्र देव की मृत्यु से भारत ने एक विद्वान, ईमानदार व त्यागी व्यक्तित्व खो दिया, जिसकी देश–भक्ति व कर्तब्य –निष्ठा उच्च कोटि की थी। उनक़ी मृत्यु से देश के सार्वजनिक जीवन में एक ऐसा शून्य सा पैदा हो गया है, जिसे आसानी से भरा नहीं जा सकेगा।

डॉ राजेन्द्र प्रसाद

'आचार्य जी के विचारों में श्रमण शब्द का बड़ा आग्रह था। किन्तु यह श्रमण साम्प्रदायिक न होकर समस्त सन्यास के लिए है। श्रमण त्याग और निस्पृह चरित्र का एक रूप है। सभी त्यागी, स्वार्थ–रहित समाज–सेवक श्रमण हैं। इसी परम्परा में आचार्य जी ने गांधी जी को श्रमण कहा था। सनातन सस्कृति को मानते हुए स्वयं वे श्रमण थे।

कृत्तिव – 'नरेन्द्र देव के निधन से हमने एक महामानव खो दिया। वे पक्के सिद्धान्तवादी थे और सदैव बलिदान के लिए तैयार रहते थे। प्रकांड पण्डित्य और शिक्षा शास्त्री के रूप में उनकी कीर्ति सभी ओर फैली थी। विद्यापीठ में उनसे शिक्षा पाने का मुझे ग़ौरव मिला था।

लाल बहादुर शास्त्री

'आज उनकी मृत्यु से ज्ञान जागत् की अपूरणीय क्षति हुई है और उनके हजारों छात्र एक प्राचीन दृष्टा और मनीषी की मृत्यु पर शोकाकुल हैं। मैं उनको महान् भारतीयों और महान् विद्वानों में मानता हूँ। शायद वह भारतीय मंच पर आये पहले नेता थे जो उर्दू, अंग्रेजी व हिन्दी में समान वाग्यिता से भाषण करते थे।

श्री प्रकाश

'राष्ट के इतिहास में गांधी जी के अवतरण के साथ ही जिस प्रभापूर्ण युग का उदय हुआ, आचार्य जी उसके उज्जवल नक्षत्र थे। उनका व्यक्तित्व विभूतियों से सम्पन्न था। वे श्रेष्ठ राजनीतिक, सांस्कृतिक विचारक होने के साथ ही प्रकांड विद्वान भी थे। मैने उनके चरणों में बैठकर बहुत कुछ सीखा है।

कमला पति त्रिपाठी

लेखक के रूप में – आचार्य जी निम्न पुस्तकों एवं अनेक लेखों की रचना की।

(1) Socialism and the National revolution (Bombay, 1946)

(2) राष्ट्रीयता और समाजवाद (ज्ञान मण्डल, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1949)

(3) बौद्ध धर्म–दर्शन (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण,)

(4) वसु बन्धुकृत अभिधर्मकोष का अनुवाद (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 2 जिल्द प्रकाशित रोप प्रकाशाधीन)

(5) Towards socialist society (Centre of applied palitics, New Dilhi, 1979)

पैम्फलेट –

समाजवाद : लक्ष्य तथा साधन, लखनऊ प्रथम संस्करण, 1938,

राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा और भारतीय कम्युनिष्ट, लखनऊ 1940

किसानों का सवाल, मार्च 1946

मार्क्सवाद और सोशलिस्ट पार्टी, प्रथम संस्करण, जुलाई 1951

अध्यक्षीय भाषण, प्रजासोशलिस्ट पार्टी, द्वितीय राष्ट्रीय सम्मेलन, गया, 26 सितम्बर, 1955,

The indian struggle- Nixt phase, Socialist tracts No. 2, Bombay Draft thesis for the fourth Conference of the congress socialist party, (1938 by Narendra Deva et al)

"The Comon man and the congress" in reorgamise the congress by socialist leaders, congress socialist party, Tamilnad, Madras.

Draft policy statement presented to the Second annual conference of the praja socialist party, Gaya, decemleer 1955.

आचार्य जी को विद्वता से प्रभावित होकर तत्कालीन शिक्षामंत्री डा0 सम्पूर्णानन्द जी ने उनके निधन पर सदन में शोकोदूगार व्यक्त करते हुए कहा था– 'विद्वता बेलिखी रह गयी' अध्यक्ष महोदय। इस सदन के सामने समय 2 पर दुःखद प्रसंग आते रहे है। आज हमं अपने एक आदमी के उठ जाने के शोक का अनुभव कॅर रहे हैं। नरेन्द्रदेव जी के लिए हम अपने जिस शोक को व्यक्त करनें का यत्न कर रहे है। वह केवल इस सदन के पुराने सदस्य के लिए नहीं है, वह शोक एक ऐसे व्यक्ति के लिए है, जिसके लिए हम सब के हृदयों में बहुत बड़ा आदर और स्नेह था, जो हर दृष्टि में हमारा अपना था। मैं उनके सम्बंध में किन–किन बातों का जिक्र करू। वे विद्वान थे इस बात को सारा देश जानता रहा है,सुनता रहा है। परंतु दुर्भाग्य तो इस बात का है कि देश को उनके प्रगाढ़ पोडित्य का भी फायदा नहीं मिल सका।उनको उतना वक्त ही नही मिला कि अपनी काफी कृतियॉ छोड़ जाते। उनकी एक पुस्तक जहां तक मैं जानता हूँ। इस समय छप रही है, और कई पुस्तकें जो पढ़ने वालों के लिए बृद्धवाद और विशेष रूप से वृद्ध–दर्शन का अध्ययन करने वालों के लिए , इस देश में और विदेश में वहुत बड़ी देन होती, वे लिखी ही रह गई, और अब बेलिखी ही रह जायेगी। ....मेरी तो कुछ ऐसी भावना है कि दमें की बीमारी तो उनको थी ही लेकिन उनको दमें की बीमारी ने नहीं बल्कि राजनीति ने मारा है। उनकी कर्तव्य–बुद्दि उनके लिए घातक सिद्ध हुई। बीमारी में भी लोग उनके पास सलाह–मशविरे के लिए आते

थे, और वह अपने को रोक नहीं सकते थे। वह अपनी जिम्मेदारी समझते थे देश के लिए,अपनी पार्टी के लिए और समाज के प्रति । वह जोर से बोलने के आदी थे,और हम लोग जो उनके मित्र थे, उनसे कहते भी थे और दबाव भी देते थ कि उनको धीरे से बोलना चाहिए। मगर वह घंटों बात–चीत किया करते थे, और लम्बी–लम्बी थींसिसे लिखा करते थे, और घंटों तक सोचा करते थे।

....लेकिन चिंतन से कोई कैसे बचा सकता है? इसका परिणम यह हुआ कि जर्जज शरीर को बीमारी ने जो कुछ किया वह तो किया ही, इस निरंतर चितंन ने और भी खोखला कर दिया।"[1]

डा0 सम्पूर्णानन्द

शिक्षाशास्त्री के रूप में

आचार्य नरेन्द्र देव को भारत के शिक्षित समाज में कौन नहीं जानता ? महात्मा गांधी द्वारा प्रभावित स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में, काशी विद्यापीठ के उद्‌भव और क्रम परिवर्तन के इतिहास में, लखनऊ विश्व विद्यालय तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रशासन के इतिहास में, शिक्षा–संस्कार के विषय में उठे आंदोलन के इतिहास में और भारतीय समाज विज्ञान के चिन्ताशील मनीषी के रूप में उनका नाम सर्वत्र सुपरिचित है।

आचार्य जी के शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर उ0प्र0 के भूतपूर्व मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी जी ने कहा था–' जिस गम्भीरता से वह राजनीति से जुड़े थे उसी गम्भीरता से वह शिक्षा के प्राति भी समर्पित रहें। उनकी दृष्टि में "शिक्षक" का पद "राजनेता" के पद से कहीं बड़ा था। भारतीय शिक्षा के स्वरूप निर्धारण 2 में आचार्य जी ने जो भूमिका निभाई, वह आज विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है।"[2]

श्री नरायण दत्त तिवारी

आचार्य जी आजीवन शिक्षक रहें वे शिक्षार्थी समुदाय की आंकांक्षाओं का स्पन्दन निरंनतर अपनें भीतर अनुभव करते रहें। इसीलिए उनके विचार शिलीकृत नहीं रहें । वे अपने सोंचने के लिए ढंग में परिष्कार करते रहें।

आचार्य जी की विचार यात्रा को समझने के लिए उनकी जमीन को जानना होगा। वे उपनिषद् गीता का अभ्यास करने वाले पिता की संतान थे। फिर वे काशी में गवर्नमेंट संस्कृत कालेज में संस्कृत वाड़मय और पुरातत्व पढ़ने आये। महामहोपाध्याय पं0 गोपीनाथ कविराज उनके सहपाठी थे।

महान् अध्येता के रूप में आचार्य जी की जो ख्याति थी, उसे देखते हुये उनका साहित्यिक अपदात कम रहा। वास्तव में बहुत कम लोग जानते हैं कि भारत में ऐतिहासिक

(1) आचार्य नरेन्द्रदेव, युग और विचार, संपादक जगदीश चन्द्र दीक्षित, पे0 341–343
(2) तदैव,

शोध के कार्य को कितनी क्षति पहुँची, जब दो विरोधी मनोदशाओं के बीच फॅसे एक युवक ने वौद्धिक कार्य की जगह राजनीतिक कार्य करने का निर्णय लिया।

आचार्य जी ने शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण में आर्दशवादी विचारधारा को आधार माना है। उनके विचार से सत्य एवं मूल्यों के आधार पर ही स्वस्थ्य शिक्षा का निर्माण किया जा सकता है। सत्य और मूल्यों की प्रतिष्ठा सदैव वर्तमान सामाजिक परिवेश में होनी चांहिए। इनके अनुसार महिलाओं को शिक्षा में पुरूषों के समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। शिक्षा ही व सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा विश्व बंधुत्व को बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने विद्यार्थियों को स्वालम्बी बनाने पर जोर दिया। आचार्य जी के अनुसार हमें जन साधारण को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिसमें उनमें वर्तमान समस्याओं को समझने की क्षमता का विकास हो। आचार्य जी ने भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए संस्कृत भाषा के महत्व को बताया है। विज्ञान के महत्व को भी स्वीकार किया है, विज्ञान और यंत्रकला हमारी अनेक समस्याओं को हल कर सकते हैं, किन्तु हमें विज्ञान का दुरूपयोग अपनी तुच्छ स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं करना चाहिए।

आचार्य जी ने मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने पर जोर दिया, आगरा विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण का अंश "अब समय आ गया है कि जब हमको राष्ट्रभाषा के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा का आयोजन कर लेना चाहिए। शिक्षा का माध्यम तत्काल बदल जाना चाहिए। अपनी भाषा में सब विषयों की ऊँची से ऊँची पुस्तकें लिखी जानी चाहिए।"[3] अध्यापक होने के नाते आचार्य जी का ध्यान शिक्षा की समस्याओं की ओर अधिक था।

आचार्य जी की शिक्षा में गहराई का एक उदाहरण प्रर्याप्त होगा। जन–शिक्षा पर विचार करते हुए उन्होंने कहा, 'साक्षारता आंदोलन की अपेक्षा यह जन–शिक्षा का अधिक प्रभावशाली तरीका होगा। आचार्य साक्षरता के विरोधी नहीं थे। किन्तु वे साक्षरता के खतरों के प्रति सावधान थे। सामान्य साक्षरता का लाभ व्यवसायियों को मिलता है। वे रद्दी साहित्य बेचकर मुनाफा कमाते हैं। केवल साक्षर समाज से काफी खतरा है, क्योंकि आसानी से वह अधिनायकों और अधिकांक्षिओं के ज़ाल में फंस सकता है।" आचार्य जी जिस खतरे का अनुभव कर रहे थे, आज उसे स्पष्ट देखा जा सकता है। आज देश में साक्षरता बढी है किन्तु शिक्षा स्तर गिर गया है। शून्य पर पहुँच गया है। उच्च्व से उच्च्व शिक्षितों को भी पंडित या विद्वान कहने में कठिनाई होगी। जो थोडे–बहुत हैं भी वे अधिकतर तोता रटंत वाले हैं। विद्या जो विनय का आधार है, उसको तो सख्त अभाव है। अक्सर ही विद्या अपात्र के पास दीखती है।

(3) समाजवाद, आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ0 लोहिया और जय प्रकाश की दृष्टि में लेखक, डा0 मुगेश्वर प्रकाशक–अतुल बगाई, निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ0प्र0 लखनऊ

हिन्दी के प्रति आग्रह ने आचार्य जी को भारत की संस्कृति के बारे में सोचने का अवसर दिया। आचार्य जी ने अपना ध्ययन लोहे साहित्य को बनाया। आचार्य जी ने प्रगतिशील साहित्य का मानदंड निर्धारित किया। वे प्रगतिशील साहित्य की परिभाषा करते हुये कहते हैं "जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करके चलने वाला साहित्य प्रगतिशील साहित्य है। जीवन और मानव एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, परस्पर अन्योन्याश्रित होते हैं। इनकी पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया से ही सामाजिक परिवर्तन होते हैं। समाज के भीतर क्रियाशील रहते हुए भी अपने को अलग से देखने, आत्म निरीक्षण करने की आवश्यकता सदैव होती है।"

इसीलिए वे कलाकार के स्वांतः सुखाय की उपेक्षा नहीं करते हैं। किन्तु यह भी मानते हैं कि इसका अर्थ यह नहीं कि कलाकार का कोई उद्देश्य ही नहीं होता है। जीवन के केन्द्र में मानव की प्रतिष्ठा की मूल भावनाओं को लेकर चलने वाले प्रगतिशील साहित्यिक के लिए विश्व व्यापी जीवन दृष्टिकोण का होना आवश्यक है। जीवन संघर्ष से पृथक रहकर सच्चे और प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि संभव नहीं है।

आचार्य जी ने सरकार से अपेक्षा की– "वह जनता को ऐसी भौतिक शिक्षा प्रदान करे, जिससे उसके अंदर विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो, और उसमें आत्म–निर्माण की क्षमता आ सके।"

आचार्य जी प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन पर जोर देते हैं। उन्होंने संस्कृति के सैद्धान्तिक पक्षों की चर्चा की है। इनके अनुसार संस्कृति चित्त भूमि की खेती है। उनके प्रमुख चिंतन में संस्कृति, भारतीय समाज और संस्कृति वसुधैव कुटुम्बकम, धार्मिक आन्दोलनों में एकता का आधार, विविधता में एकता, सांसकृतिक स्वतंत्रता का प्रश्न, समाजवाद का सांस्कृतिक स्वरूप जैसे विषय है। आचार्य जी की प्रेरणा से नवं संस्कृति संघ की स्थापना हुई आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका घोषणा पत्र तैयार किया था। पी0डी0पी0 मुखर्जी ने संघ का उद्घाटन किया।

आचार्य जी अपने जीवन का सर्वोत्तम कार्य काशी विद्यापीठ में की गयी सेवाओं को मानते हैं। अर्थात आचार्य जी सांस्कृतिक और शैक्षिणक कार्यो को राजनीति की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं। शिक्षण का आदर्श राजनीतिज्ञ तैयार करता है। इसीलिए सभी दल शिक्षण को महत्व देते हैं। लेकिन आचार्य जी का शिक्षण दलगत से अधिक मानवीय मूल्यों वाला था।

आचार्य जी ने व्यष्टि और समष्टि में विरोध नहीं समन्वय देखने की कोशिश की। वे विज्ञान और मानवीय मूल्य का भी समन्वय करते रहते हैं। विज्ञान का उपयोग मंगल और

कल्याण के लिए भी हो सकता है। यह सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य है जो मनुष्य को हित अहित का ज्ञान कराते हैं और किसी निर्णय और विनिश्चय के करने में समर्थ बनाते हैं। इसीलिए इनके मतानुसार विज्ञान के साथ–साथ साहित्य, दर्शन आदि की शिक्षा भी अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। बिना इस आधार के, बिना इस पृष्ठभूमि के विज्ञान का दुरूपयोग होता है।

राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने आचार्य जी की भाषण–शक्ति एवं विद्धता को स्मरण करते हुए श्रद्धा–सुमन अर्पित किये, जिसका कतिपय अंश उद्धरत है 'जो जिस स्तर का होताउससे वे उसी स्तर पर बातचीत करते थे।

किसी पर अपनी विद्धता की घाक नहीं जमाते थे। साधारणतः इसका अनुमान भी न होता था, कि वे इतने बड़े मनीषी हैं। इसका परिचय तो तभी मिलता था, जब उनसे कोई विशेष प्रश्न किया जाये।

विलक्षण भाषण शक्ति थी उनमें। शुद्ध हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में एक समान धारा प्रवाह वे घंटों बोल सकते थे। ऐसा जिसे लोग तन्मय होकर सुनें। एक बार एक कालेज के विद्यार्थियों ने यह दुरभि संधि की कि आज इन्हें बोलने न दिया जाय। नरेन्द्र देव को पता चल गया। फिर भी वे बोलने के लिए खडे हो गये। कुछ कल–कल भी होने लगा, परन्तु क्षण भर में उनके स्निग्ध गंभीर होष में वह विलीन हो गया। सभा में सन्नाटा छा गया। पूरे दो घंटे लोग मंत्रमुग्ध से होकर उन्हें सुनते रहे।

एक बार मैने उनसे कहा, "बुद्धि की देवता सरस्वती को भी रहने के लिए आपके सड़े फेफड़े ही मिले थे"[4] सुनकर वे हॅसने लगे। दैव, कहीं वे स्वस्थ्य होते।

मैथलीशरण गुप्त

उनके विषय में श्री प्रकाश के विचार निम्न है –

आज उनकी मृत्यु से ज्ञान जगत की अपूरणीय क्षति हुई है और उनके हजारों छात्र एक प्राचीन दृष्टा और मनीषी की मृत्यु पर शोकाकुल है। मैं उनको महान् भारतीयों और महान् विद्धानों में मानता हूँ शायद वह भारतीय मंच पर आये पहले नेता थे, जो उर्दू, अंग्रेजी व हिन्दी में समान वाग्मिता से भाषण करते थे।"[5]

श्री प्रकाश

(3) कुलपति के रूप में –

अध्यापक, आचार्य, कुलपति

(1) काशी विद्यापीठ के अध्यापक, अध्यक्ष, आचार्य, कुलपति, 1921–56,

(4) आचार्य नरेन्द्र देव–युग और विचार, सम्पादक–जगदीश चन्द्र दीक्षित, प्रकाशक–अशोक प्रियदर्शी, निदेशक–सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0।
(5) तदैव,

(2) लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति – 1947–51,

(3) काशी विश्व–विद्यालय के कुलपति, 1951–53,

भारत के स्वाधीनता संग्राम के दौरान कुछ ऐसे युगपुरूष उभरकर सामने आये, जिन्होंने राजनीति, इतिहास, पत्रकारिता, कला, शिक्षा, संस्कृति और साहित्य को एक साथ प्रभावित किया। आचार्य नरेन्द्र देव उनमें प्रमुख थे।

"काशी विद्यापीठ के आचार्य तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में उन्होंने शिक्षा–जगत को नयी दिशा प्रदान की। भारतीय शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में आचार्य जी ने जो भूमिका निभायी, वह आज विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है।

आचार्ज जी के व्यक्तित्व, उनकी विद्वता, उनकी नेतृत्व क्षमता, उनके चिंतन की गहराई तथा उनकी वक्तब्य शक्ति के बारे में थोड़े में कुछ कहना बहुत कठिन है।

फिर भी उस युग दृष्टा के भाषणों संस्मरणों से उस महामानव के गरिमामय व्यक्तित्व और कृतित्व की एक झलक मिल सकेगी।

(1) भारतीय संस्कृति पर आचार्य जी के विचार।

(2) आचार्य जी के विज्ञान पर विचार।

(3) उच्च शिक्षा पर आचार्य जी का दृष्टिकोण।

(4) विश्वविद्यालयों पर आचार्य जी के विचार।

(5) अध्यापकों के सम्बध में आचार्य जी के विचार।

(6) आचार्य जी का शैक्षिक दृष्टिकोण।

आचार्य जी के अनुसार विश्वविद्यालय शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र बनें। इस संदर्भ में संयुक्त प्रति विधान सभा में 9 सितम्बर 1937 को दिया गया भाषण दृष्टब्य है।

"राष्ट्र की संस्कृति का प्रश्न सबसे ज्यादा गौरतलब बात है और राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा यूनीवर्सिटियों द्वारा ही हो सकती है। क्योंकि यूनीवर्सिटी ही संस्कृति के केन्द्र हैं।

जिन्दगी के जितने हिस्से हैं, उनके लिसे साइन्स एक बहुत जरूरी चीज है। अगर कौम की तरक्की का लिहाज किया जाय तो हम को चाहिये कि साइन्स को अपनावें और व्यापारिक सम्मान यूनीवर्सिटियों में होने सें साइन्स में कभी भी तरक्की नहीं होगी। हम इसमें कभी भी योग नहीं दे सकते। उस कौम को लानत है, जो शिक्षा को तिजारत की निगाह से देखती हे। यह कहना गलत है कि मौजूदा तालीम बेकारी का कारण है। बेंकारी का कारण राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाएं हैं। इनकी वजह से देश में बेकारी और गरीबी फैल रही हे। इनमें तब्दीली की जरूरत है जब तक ये तब्दीलियां नहीं होगी बेकारी दूर नहीं

हो सकती। लेकिन मेरे अर्ज करने का यह मतलब है कि मौजूदा यूनीवर्सिटी के शिक्षा के तरीके में खराबियां नहीं हैं। जितनी खामियां जहां है मैं उनसे सहमत हूँ। उनको दूर करने की जरूरत है। दूसरी चीज यह है कि यूनीवर्सिटियों में जो काम करते हैं वहॉ की आब–ब–हवा विल्कुल गंदी है। वहॉ भी कुछ लोग अच्छे है, उनकी मैं इज्जत करता हूँ, लेकिन उनकी तादाद बहुत कम है। प्रोफेसरों की आज हालत है कि वो चाहते हैं कि रूपया कमाना जिसतरह से जिस काम से मुमकिन हो उसे करें। यह जो मनोवृत्ति है हमें इसके वदलने की जरूरत है। दूसरी वात प्रोफेसरों में गिरोहवन्दियां हैं। हमें उनको खत्म करना हे। प्रोफेसर गुटबंदियां करते हैं, यूनीवर्सिटी की राजनीति में ज्यादा भाग लेते है और पढाने में कम। यह सब बातें हैं ये खराबियां हैं जिनको दूर करना है। नये तरीके जारी करना है। प्रोफेसरों को चाहिए कि तालीम की तरक्की करें, अनुसंधान करें, साइन्स के सच्चे सौदाई हों, लड़कों के सामने अमली मिसालें पेश करें और इस बात को साबित कर दें कि उनको आदर्श का ज्यादा ख्याल है। और जीवन के तुच्छ लाभों का कम"[6]

आचार्य जी के अनुसार उच्च शिक्षा गरीब और अमीर सबके लिए सुलभ होनी चाहिए। आचार्य जी की कुलपति के रूप में अभिलाषा थी कि अहम् काम जो यूनिवर्सिटियों का है, वह यह है कि मुल्क की हालत को देखते हुए जानदार ख्यालात के इंसान को पैदा करना। किसी कौम की जिन्दगी बेकार है, अगर उसमें अब्बलीन ख्यालात के इंसान न हों। यूनिवर्सिटी का फर्ज है कि वह ऐसे इंसान पैदा करें, जो करोड़ों आदमियों के दिमाग पर काबू रख सकें।

लोकतंत्र की कामयाबी के लिए यह जरूरी है कि लोगों में तालीम फैले और लोग शिक्षित हों। आचार्ज जी के अनुसार अध्यापकों का काम केवल बुद्धि सम्बन्धी शिक्षा देना और चरित्र के विकास में योग देना ही नहीं है, उन्हें अपने छात्रों में समाज के प्रति दायित्व की भावना भी पैदा करनी है।

'विश्वविद्यालय दे नवयुग के नागरिक' (आचार्य नरेन्द्र देव)[7]

"विश्वविद्यालयों की शिक्षा का उद्देश्य केवल विभिन्न पेशों में काम करने वाले व्यक्तियों (वकीलों, डाक्टरों आदि) कारीगरों, वैज्ञानिकों और शासन –प्रबन्ध करने वालों को तैयार करना नहीं वरन् जीवन के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण रखने वाले, समझदार सुसंस्कृत नागरिक भी तैयार करना है। विश्वविद्यालयों से यह भी आशा की जाती है कि वे विचार और मानव सम्बन्धों के क्षेत्र में नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों को जन्म देगें, और सबसे बढकर उनमें

---

(6) आचार्य नरेन्द्र देव युग और विचार– सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित।
(7) आचार्य नरेन्द्र देव युग और विचार– सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित।

रचनात्मक विचारों को ऐसे केन्द्र बनने की आशा की जाती है, जिनके द्वारा ही आज के कष्ट और संघर्ष के युग में नवीन सामन्जस्य की स्थापना में हमें सहायता मिल सकती है।

हमारे अध्यापकों को भी अपनी पुरानी उदासीनता और उपेक्षा की मनोवृत्ति का परित्याग कर देश और समाज के नत निर्माण सम्बन्धी प्रश्नों में क्रियात्मक रूचि लेनी पडेगी''

आचार्य जी के शैक्षिक दृष्टिकोण के प्रति नव मस्तक होते हुए 'नरेन्द्र देव को नमन' नामक लेख एस0एन0 घोप ने लिखा। जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं।

उनका पहला प्यार और उनका असली कार्य क्षेत्र थी शिक्षा। यही क्षेत्र था जहॉ उनका नयी पीढी (नवयुवक) से अपार स्नेह और रचनात्मक कार्य के लिए उद्दाम उत्साह पुष्पित पल्लवित फलित होता था यहॉ उनका अपने सँहयोगियों, निराश राजनीतिज्ञ का कठोर मुखौटा अपने आप उतर जाता था और भविष्य के नागरिकों की सेवा में समर्पित आचार्य की मधुर, सहिष्णु, आकर्षक मुस्कान उनके चेहरे पर खेलने लगती थी, और छात्र भी उनसे कितना स्नेह करते थे। जिस प्रकार वह लखनऊ विश्वविद्यालय और बाद में बनारस विश्वविद्यालय केछात्र समुदाय का स्नेह भाजन बने वह तो हाल का ही इतिहास है। प्राचीन काल के किसी ऋषि को ही अपने शिष्यों से ऐसा स्नेह और सम्मान मिला होगा। नयी पीढी से व्यवहार में उनकी उल्लेखनीय सफलता का रहस्य उनका नवयुवकों के लिए अपार, अगाथ स्नेह ही था। छात्र उनके प्रति आकृष्ट होते थे, उनके अपार ज्ञान के कारण, किन्तु उनके आपसी सबन्ध जड़ पकड़ते थे, उनके पुत्रवत वात्सल्य से और नवयुवक उन्हें पिता–तुल्य श्रद्धा, सम्मान और स्नेह देते थे। आचार्य जी समृद्ध कभी नहीं थे। वास्तविकता तो यह है कि अक्सर ही वह आर्थिक कठिनाइयों से ग्रस्त रहते थे, वह छोत्रों पर अपनी आखिरी पाई तक खर्च कर डालने के लिए उद्यत रहते थे, क्योंकि वह छात्रों को सच्चा प्यार करते थें। यह एक दुःखद विचार है कि उन जैसा श्रेष्ठ व्यक्ति जिसे स्वभाव व लालन–पालन की दृष्टि से एक महान् शिक्षाविद् बनना था, बुजुर्ग राजनयिक सलाहकार का दर्जा पाना था, अपने इसव पहले प्यार को पूरा समय नहीं दे पाया।''[8]

(4) राजनेता के रूप में

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में

स्वदेशी वृत, जनवरी 1904,

होमरूल लीग, फैजाबाद शेक ाखा की स्थापना, 1916,

सदस्य, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, 1918

(8) आचार्य नरेन्द्र देव युग और विचार– सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित।

वकालत छोडकर असहयोग आन्दोलन में शरीक, जनवरी 1921

काशी विद्यापीठ में अध्यापन कार्य का प्रारम्भ, जुलाई 1921

श्री जयप्रकाश नारायण से भेंट, काशी विद्यापीठ, जनवरी 1930

जेलयात्रा सन् 1930, 1932, 9 अगस्त, 1942–45

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना सम्मेलन, पटना, मई 1934 की अध्यक्षता।

प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की अध्यक्ष, 1936,

कांग्रेस वार्किंग कमेटी के सदस्य, फरवरी, 1936

सदस्य कांग्रेस वकिंग कमेटी, 1942

गिरफ्तारी, बम्बई 9 अगस्त, 1942,

रिहाई, अलमोड़ा से 1945 में।

सदस्य– (1) संयुक्त प्रांत विधान सभा, 1934, 39, (2) उत्तर प्रदेश विधान सभा, 1946–48, (3) विधान सभा की सदस्यता से त्यागपत्र 1948 (4) सदस्य, राज्यसभा , 1952–56 ।

अध्यक्षीय भाषण– (1) कांग्रेस सोशलिस्ट कांफरेंस, पटना, मई 1934, (2) प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन, नवम्बर 1936, (3) हिन्दी साहित्य सम्मेलन के समाज़ परिषद् विभाग का अध्यक्षीय भाषण, अक्टूबर, 1939, (4) अखिल भारतीय किसान सभा, गया, 1939, (5) आगरा विश्वविद्यालय का दीक्षांत भाषण 1947, (6) अखिल भारतीय यूनिवर्सिटी टीचर्स कांफरेंस, दिल्ली, 1948, (7) नव–संस्कृति संघ, उद्घाटन भाषण, बनारस, 7 अक्टूबर, 1948, (8) सोशलिस्ट पार्टी का पटना अधिवेशन, मार्च 1949, (9) काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष, मार्च 1950, (10) समाज विज्ञान परिषद् (11) अखिल भारतीय संस्कृत परिषद की स्थापना, नवम्बर 1951, (12) जनपदीय आन्दोलन, हाथरस, 1952, (13) काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हीरक जयन्ती के अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण, मार्च 1953, (14) विहार राष्ट्रभाषा परिषद् में अध्यक्षीय भाषण, 21 अप्रैल, 1954, (15) प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के गया अधिवेशन में प्रस्तुत नीति–वक्तब्य (अनुपस्थिति में) दिसम्बर 1955।

विदेश यात्रा – वर्मा और स्याम, फरवरी 1950, चीन यात्रा, अप्रैल–मई, 1952, यूरोप यात्रा, 1954,

आचार्य जी मसीहा या पैगम्बर नहीं थे। पथ–प्रदर्शक या पथ–निर्माता होने का कोई दावा भी वे नहीं करते थे। अपने जीवन में अन्तर्द्वन्द्व से गुजरे– चाहे वह इस देश और समाज के हित के बीच रहा हो, चाहे राष्ट्रीयता और विश्व बंधुत्व के बीच रहा हो, चाहे मनुष्य की भौतिक और चैतसिक अपेक्षाओं के बीच रहा हो, वे अतिरेकों के बीच से राह निकालते

रहे। वे समझौतावादी नहीं थे, समझौतावादी होते तो राजनीति में सत्ता के शिखर पर पहुँचे होते। अपने आदर्शों में वडी दृढ़ निष्ठा रखते थे। वे व्यक्ति पूजक नहीं थे, पर वे शील के प्रतिमान थे।

अचार्य जी ने जिस नयी संस्कृति की अवधारणा की, उसकी मार्क्समात्र नहीं हैं, बुद्ध और कृष्ण भी हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि "समाजवाद का सवाल केवल रोटी का सवाल नहीं है, समाजवाद मानव स्वतंत्रता की कुंजी है। समाजवाद ही एक स्वतन्त्र सुखी समाज में सम्पूर्ण स्वतंत्र मनुष्यत्व को प्रतिष्ठित कर सकता है। सुन्दर और सम्पूर्ण मनुष्य की सृष्टि तभी हो सकती है, जब साधन भी सुन्दर हो, मानवोचित हो।[9]

देखने में द्वन्द्व से घिरे हुए पर आचार में स्पष्ट और कठोर निर्णय लेने वाले आचार्य जी गांधी जी की प्रतिमूर्ति थे, अपनी शीतल तेजस्विता में।

आचार्य जी अपने राजनीतिक जीवन में सदैव मूल्यों के लिए संघर्ष करते रहे। अपने घर परिवार तथा अपने राजनीतिक जीवन में सदैव मूल्यों के लिए संघर्ष करते रहे। अपने घर परिवार तथा अपने स्वास्थ्य की कुछ भी परवाह न करके वह संगठन को मजबूत बनाने में लगे रहे , लेकिन 'सत्ता' ने उन्हें कभी भी अपनी ओर आकृष्ट नहीं किया। कांग्रेस पार्टी हाई कमान के निर्णय के अनुसार 1937 में उन्हें ही संयुक्त प्रांत का पहला प्रीमियम बनना था, लेकिन उन्होंने यह ताज पं0 गोविन्द बल्लभ पंत को दे दिया और स्वयं समाजवादी चिंतन में लगे रहकर कांग्रेस संगठन को अपना नेतृत्व प्रदान करते रहे। पं0 जवाहार लाल नेहरू चाहते थे कि आजादी के बाद आचार्य जी को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाये। किन्हीं कारणों से ऐसा न हो सका। लेकिन यदि स्वाधीनता के बाद कांग्रेस का नेतृत्व आचांर्य जी को सौंप दिया गया होता तो आज देश का इतिहास कुछ दूसरा ही होता।

आचार्य जी श्रेणी नैतिकता को अस्वीकार करते हैं उसके स्थान पर वे जन प्रधान नैतिकता को स्वीकृति देते हैं। यह स्थापना मार्क्सवाद की प्रचलित अवधारणाओं से भिन्न है। लेकिन आचार्य जी के जन में सभी वर्ग शामिल है। आचार्य जी की यह वर्गहीन जन नैतिकता मार्क्स की अपेक्षा गांधी के नजदीक है।

आचार्य जी कहते हैं "गांधी आज भी जिन्दा हैं, वह पुकार–पुकार कर कहते हैं कि सत्य और अहिंसा के रास्त पर चलो। आपस में प्रेम करो। सत्य कितना ही अप्रिय क्यों न हो, उसे ग्रहण करो।

---

(10) आचार्य नरेन्द्र देव युग और विचार– सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित।

आज संसार को उनकी शिक्षा की जरूरत है"। इस वाक्य से लगता है कि आचार्य जी गांधी को मार्क्स के महत्वपूर्ण मान रहे है। उन्हें मार्क्स मे सत्य का वह रूप नहीं दीखता है, जिसे वह चाहते हैं जो गांधी जी दिखाते हैं। शायद इसीलिए आचार्य जी कहते हैं–मार्क्स का दर्शन और अर्थशास्त्र पंडितों के लिए है।" आचार्य जी मार्क्स के वाक्य ज्ञान की अपेक्षा उनके उद्देश्यों और आदर्शों को स्वीकार करने के पक्ष में हैं। आर्चाय जी कहना चाहते हैं कि किताबों को छोडो। मार्क्स से उस नैतिक मन पर ध्यान दो जो संसार में शोषण समाप्त करना चाहता हे। शोषण समाप्ति की चेतना की दृष्टि से बुद्ध, ईसा, गांधी और मार्क्स में पूर्ण एकता है।

आचार्य जी की छवि वर्ग नेता की न होकर राष्ट्र–नेता की है। अगर आचार्य जी वर्ग नेता होते तो भारत की असमाजवादी सरकार उन्हें विश्वविद्यालंयों का संचालन क्यों सौपती? वह भी एक बार नहीं, दो बार। उन्हें शिक्षा परिवर्तन एवं संगठन का अध्यक्ष कैसे बनाया जाता? चीनी शिष्टमण्डल में वे वर्ग या वर्ण नही राष्ट्र प्रतिनिधि की हैसियत से गये थे।

समाजवाद किसी के विरूद्ध और किसी के सर्मथन का प्रतीक है। जबकि राष्ट्रवाद सबका है। आचार्य जी कहते हैं कि यह निर्विवाद की जनतंत्र की सफलता के लिए एक विरोधी दल का होना आवश्यक है– एक ऐसा विरोधी दल, जो जनतंत्र के सिद्धान्त में विश्वास रखता हो, जो राज्य को किसी धर्म विशेष से सम्बद्ध न करना चाहता हो। जो गर्वनमेंट की आलोचना केवल आलोचना की दृष्टि से न करें तथा जिसकी आचोलना रचना और निर्माण के हित में हो। न कि ध्वंस के लिए।"

आचार्य जी में कभी भी पद की लोलुपता नहीं दिखाई दी, उन्होंने बेझिझक उत्तर–प्रदेश विधान सभा से इस्तीफा दे दिया। इसलिए वे कांग्रेस से अलग हो गये थे। चुनाव में उनकी जीत कांग्रेस के टिकट पर हुई थी। आचार्य जी के बाद किसी पार्टी ने सामूहिक इस्तीफा नहीं दिया जबकि दलबदल इतना हुआ कि उसे रोकने के लिए नियम बनाना पड़ा।

मंत्रिगण और राजनीति के बारे में आचार्य जी की सलाह है "यदि हमारे मंत्रिगण ओर रानीतिज्ञ 60 वर्ष की आयु में सार्वजनिक क्षेत्र से अलग हो जाया करें तो शासन और जनता का बडा भला होगा। मैं सुझाव दूँगा कि भारत के नये प्रस्तावित संविधान में इस प्रकार का एक नियम जोड दिया जाय।"

चुनाव और राजनीति में युवकों का प्रवेश और बाहर से वृद्धों की प्रौढ़ सलाह अत्यंत महत्वपूर्ण होती है किन्तु स्वीकृति नहीं मिली। आज भी इसकी आवश्यकता है।

चुनाव की चर्चा में आचार्य जी एक बात औ कहते हैं "हाल के चुनावों में जाति प्रथा की बुराइयां प्रत्यक्ष दिखाई पडी हैं। जातिगत आधार पर राजनीतिक गुट बनाए जा रहे है और कुछ विशेष स्थानों पर तो तथाकथित निम्नजातियों ने उच्च जातियों के विरूद्ध अपने को संगठित कर लिया है। यह भारतीय स्थिति में और जन्म व सम्पत्ति सम्बन्धी विशेषाधिकारों के विरूद्ध आकिंचनों और दलितों के संघर्ष का घोतक है। यह स्थिति हमारे लिए चाहे जिनती अप्रिय हो, पर मुझे भय है कि हमें इस अपरिहार्य अवस्था से गुजरना ही पडेगा"।

आज हमारे चुनावों में राष्ट्रीय एकता सबसे निरीह और कमजोर तत्व हो गयी हैं। राष्ट्रीयता के तत्व जातिगत वैनमस्य द्वारा बिल्कुल विखंडित हो गये हैं। देश नहीं केवल जाति। जाति से भी ऊपर है। सत्ता का स्वार्थ। सत्ता के स्वार्थ की जातियों की उन्नति से नहीं अपनी सत्ता से मतलब है। राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से रहित राजनेता जाति की अबोध प्रकृति का दोहन कर रहे हैं। उन्हें मानव की अस्मिता से मतलब नहीं है। जाति–द्वेष को बढ़ाकर अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं।

आचार्य जी के मतानुसार लोतांत्रिक व्यवस्था के विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सामाजिक असमानताएं समाप्त की जाय।

"राजनीति ने आचार्य जी को कम उम्र में ही अपनी ओर घसीट लिया था ओर राजनीति विधि के समान बडी कठोरता से पूरा ध्यान और समय वसूल करती है। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा का छोटा सा अंश ही प्रस्फूटित हुआ। राजनीतिक व्यस्तता के कारण उन्हें वे पुस्तकें लिखने का समय नहीं मिला, उनकी योजना बनायी थी, उन्हें उन विश्वविद्यालयों के प्रशासन में ठोस सुधार लाने का समय भी नहीं मिला, जहॉ वह कार्यरत रहे। यह हो सकता है कि शिक्षा–जगत की जो यह क्षति थी, वह भारत में समाजवाद के विकास में उनके अमूल्य योगदान से पूरी हो गयी है।

एस0एन0 घोष

(5) सम्पादक के रूप में

सम्पादन –

(1) विद्यापीठ पत्रिका (त्रैमासिक, काशी विद्यापीठ)

(2) संघर्ष (साप्ताहिक, लखनऊ)

(3) समाज (साप्ताहिक, वाराणसी)

(4) जनवाणी (मासिक, वाराणसी)

(5) समाज (त्रैमासिक, वाराणसी)

आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा लिखित निबंधों की सूची

विद्यापीठ पत्रिका (त्रैमासिक)

बौद्ध संस्कृत साहित्य का इतिहास, (विद्यापीठ) सोवियत रूस की एशिया नीति, (विद्यापीठ) बौद्धों का त्रिकायवाद, (विद्यापीठ) विद्यार्थियों में स्वालम्बन का आन्दोलन, (विद्यापीठ) ब्रिटिश मजदूर सरकार और भारत (विद्यापीठ) मौलिक अधिकार समिति की रिपोर्ट (विद्यापीठ) समाधि अर्थात् शमथयान, (विद्यापीठ) समाधि अर्थात् शमथयान कसिव निर्देश, (विद्यापीठ)

'जनवाणी' में प्रकाशित लेख–टिप्पणियां

''पूँजीवादी समाज और प्रेस'' ''पेरिस का शांति सम्मेलन'' ''जर्मन राजनीति की दिशा'' ''आस्ट्रिया'' ''हमारा आदर्श और उद्देश्य'' ''सत्याग्रह और प्रजातंत्र, ''मार्क्स और नियतिवाद'' ब्रिटिश साम्राज्य रक्षा की प्रस्तावित सैनिक नीति'' ''विद्यार्थियों की राजनीति में स्थान'' ''समाजवादी क्रान्ति की रूपरेखा'' ''प्रजातंत्र सच्चे समाजवाद का प्राण है'' ''मिस्र की राजनीतिक पार्टियां, इराक के राजनीतिक दल और उनकी राजनीतिक स्थिति'' ''कांग्रेस किध ार'' हिंद चीन और कम्यूनिष्ट पार्टी'' ''योग्य शिक्षकों की कमी'' ''एशियाई सम्मेलन'' '' अमेरिका का नया साम्राज्यवाद'' ''इटली के कम्युनिष्टों की अवसरवादिता'' ''आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का प्रस्ताव'' ''विचारकों के सम्मुख नयी समस्या'' ''महात्मा जी को श्रद्धांजलि'' ''मेरे संस्मरण'' ''प्रगतिशील साहित्य'' ''जन–शिक्षा'' ''संस्कृत वाङ्मय का महत्व और उसकी शिक्षा'' ''गांव पंचायतों की स्वतंत्रता'' ''विविधता में एकता'' ''मार्क्सवाद और सत्याग्रह'' ''जनतांत्रिक समाजवाद ही क्यों?'' ''क्रान्ति और देश की वर्तमान स्थिति'' ''भारत के पुनरूर्थान में अंग्रेजी राज्य की देन'' ''भारतेन्दु जयन्ती'' ''धार्मिक आन्दोलनों में एकता का आध ार'' ''समष्टि और व्यक्ति'' ''अरूणी जी का मार्क्सवाद'' ''स्याम और वर्मा के कुछ संस्मरण'' ''सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का प्रश्न'' '' हमारी शिक्षा सम्बन्धी समस्याएं''

'संघर्ष' (साप्ताहिक, लखनऊ) में प्रकाशित कुछ निबंध'

''संसार में दो खेमें हैं'' ''कांगेस्र समाजवादी कान्फ्रेन्स'' ''हमारी वर्तमान राजनीति के प्रवर्तक लोकमान्य तिलक'' ''समाज का बदलता हुआ स्वरूप'' ''शोवितों का युद्ध क्रांति से ही सफल होगा'' ''आर्थिक रचना ही सामाजिक भवन की बुनियाद है'' ''सामाजिक विचारपुंज पर आर्थिक रचना का नियंत्रण होता है'' ''नये समाज का जन्म क्रांति के द्वारा ही होता है'' ''वर्ग संघर्ष की चरम सीमा ही क्रान्ति है'' ''पूँजीवादी वर्ग वर्तमान युग में प्रतिगामी बन गया है'' ''कांग्रेस के भीतर दक्षिण पंथी कौन है'' ''किसान राष्ट्रीय युद्ध में कांग्रेस की सहायता करें'' ''खेतिहर मजदूरों का फर्ज दूसरे किसानों के साथ चलना है'' ''समूचा हिन्दुस्तान एक और

अखण्ड है'' ''हमारी अजमइश का वक्त आ गया है'' ''आजाद हिदुस्तान ही सहयोग के मसले पर फैसला करेगा'' ''जंगे आजादी के लिए तैयार रहिये'' '' स्वतंत्रता दिवस को सफल बनाइये'' ''आजादी की अगली लड़ाई और वामपक्ष की पार्टियों'' '' यह हिन्दुस्तानियों की परीक्षा की घड़ी है'' पाकिस्तान की योजना देश के लिए आत्म–घातक है'' ''शिक्षा संस्थाओं में फैसिस्ट अनुशासन बर्दाश्त नहीं'' ''सोशलिस्ट पार्टी की नीति और कार्यक्रम'' ''15 अगस्त को समाज के नये व्यापक आधार की घोषणा हो'' ''प्रजातांत्रिक या सर्वशक्तिवादी राज्य'' ''सोशलिस्ट पार्टी 3 जून की योजना पर तटस्थ क्यों रही?'' ''नये दिल –दिमाग के नौज़वानों पर ही सामाजिक क्रान्ति निर्भर'' ''दीनी हुकुमत और प्रजातंत्र असंगत'' ''छात्रों को आंदोलन बंद करने की सलाह'' ''कांग्रेस के अंदर सोशलिस्ट पार्टी का जन्म क्यों?''

प्रत्येक विचार और विचारक को अपनी पत्र–पत्रिका की जरूरत होती है। भारत में पत्रकारिता का आरभ भी शायद इसी प्रचार–प्रसार की आवश्यकता को ध्यान में रखकर हुआ। भारतीय पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय ने पत्र प्रकाशन के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कहा – ''मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध उपस्थित करूँ, जो उनके अनुभव को बढ़ायें और सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध हों, मैं शक्तिभर शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूँ, ताकि शासक जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने का अवसर पा सकें और जनता उन उपायों से अवगत हो सकें, जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पायी जा सकें **और अपनी उचित माँगे** पूरी करायी जा सकें।''

दलीय पत्रों के उद्देश्य ऐसे ही थे, इसीलिए सभी नेताओं और दलों ने पत्र निकाला। लोकमान्य तिलक का 'मराठा' और 'केसरी' गांधी का 'हरिजन' राजा जी का 'स्वराज' नेहरू जी का 'नेशनल हरेल्ड' दाबू शिव प्रसाद गुप्त का 'आज' आदि।

''विद्यापीठ'' पत्रिका के सम्पादक आर्चार्य जी थे । काशी विद्यापीठ की इस शोध–पत्रिका में प्रायः शोधपरक लेख छपते थे। किन्तु विद्यापीठ से ही निकलने वाला पत्र 'जनवाणी' (मासिक) पार्टी पत्र था। इसके प्रधान सम्पादक आचार्य जी तथा अन्य समाजवादी थे। यह मुख्यतः विचार पत्रिका थी। इसकी संपादकीय टिप्पणियां सामयिक विषयों की होती थी। कविता, कहानी, रिपोतार्ज आदि सहित्य की विविध विधाएं रहती थी। आचार्य जी नेशनल हरेल्ड के संचालक मंडल में भी थे।

आचार्य जी के संपादकत्व में 'संघर्ष' नामक हिन्दी साप्ताहिक लखनऊ से निकला। यह पूर्णतः समाचार पत्र था। इसमें छोटे–छोटे लेख भी होते थे। भाषा थोड़ी ओजस्वी और शीर्षकों में आकर्षण होता था।

आचार्य जी को 'जनपद' शोध पत्रिका पटना से प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक 'जनता' में सम्पादक जैसी स्थिति प्राप्त थी।

आचार्य जी की चिंता प्रेस को लेकर थी। ज्यों–ज्यों शिक्षा का प्रसार होता जायेगा, त्यों–त्यों अधिकाधिक पत्र पूँजीपतियों के हाथ में चले जायेगें, और जब देश को राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जायेगी, तब हमारे देश में भी प्रेस मैगनेट तैयार हो जायेंगे। पूँजीपति गुट अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए लोकमत को तथा देश की गर्वनमेंट को प्रभावित करेगें। अनिवार्य शिक्षा के फलस्वरूप जनता में समाचार जानने की उत्सुकता तो बढ़ेगी, किन्तु अपने स्वल्प ज्ञान के कारण वह उन समाचारों के महत्व को ऑक सकेगी। जनता को राजनीति में केवल समाचार में ही रूचि होती हैं। उनकी विशेष अभिरूचि युद्ध के समाचार, पुरूष–स्त्री सम्वन्ध के किस्से , खेलकूल तथा अपराध के समाचारों में होती है।"[11]

आज का कोई भी समाचार पत्र उठा लीजिए, आचार्य जी की बात सच निकलेगी। समाचार पत्रों पर कब्जे की पूँजीपतियों में होड़ है। वे झूठे–सच्चे समाचारों द्वारा जनमत को प्रभावित करते हैं। पूँजीपतियों के स्वार्थ की सिद्धि करते हैं, और यही बात मीडिया के दसूरे साधनों द्वारा होती है।

(6) शिक्षा समितियों के अध्यक्ष के रूप में –

(1) संयुक्त प्रांतीय सरकार की माध्यमिक शिक्षा समिति के अध्यक्ष, 1938।

(2) अध्यक्ष, लिपि सुधार समिति,

(3) अध्यक्ष, संस्कृत शिक्षा सुधार समिति।

(4) सदस्य, जमींदारी उन्मूलन समिति, उत्तर प्रदेश।

(5) प्रथम प्रेस कमीशन, भारत सरकार,

भूतपूर्व शिक्षा मंत्री डा0 सम्पूर्णानन्द ने आचार्य जी के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए कहा था।

"1938 में उत्तर प्रदेश की गवर्नमेंट की तरफ से एक कमेटी बैठाई गई, प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए, प्राइमरी और सेकेण्डरी एजूकेशन के लिए। मैं उस वक्त शिक्षा मंत्री था। मेरे अनुरोध पर नरेन्द्र देव जी ने उसकी अध्यक्षता स्वीकार की। शिक्षा का सुधार जो कुछ थोड़ा बहुत हो पाया इस प्रदेश में, वह उस कमेटी की रिर्पोट पर ही आधारित था। उसके बाद फिर मेरे सामने प्रश्न आया कि इतने दिनों के अनुभव के बाद शिक्षा और रूप देना चाहिए या नहीं ? क्या करना चाहिए? इस पर फिर से विचार किया जाय। थोडें ही दिनों

(11) समाजवाद–आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 लोहिया और जयप्रकाश की दृष्टि में, लेखक–डा0 युगेश्वर, प्रकाशक—अतुलबगाई, निदेशक– सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग।

पहले चुनाव हो चुका था। चुनाव में कुछ कटुता भी आती ही है, वह भी आ चुकी थी, लेकिन शिक्षा मंत्री के नाते मेरी समझ मं यही आया कि नरेन्द्र देव जी से अधिक उपयुक्त कोई दूसरा व्यक्ति नहीं हो सकता जो इस काम को फिर देख सके। मैने फिर उनसे अनुरोध किया कि हम नयी कमेटी विठाते हैं जॉच के लिए, आप इसकी अध्यक्षता स्वीकार करें।

उन्होंने उस कमेटी की अध्यक्षता स्वीकार की, और अब जो हमारे प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा का कार्य चल रहा है उसका बहुत कुछ श्रेय भी उस कमेटी की रिर्पोट को है। सन् 1938 में यूनीवर्सिटी शिक्षा के सम्बन्ध में एक कमेटी नियुक्त की गई। जरूर जाष्ते से उनका अध्यक्ष मैं था, लेकिन नरेन्द्र देव जी केवल उसके उपाध्यक्ष ही नहीं थे, बल्कि सच बात तो यह है कि उस कमेटी का काम चलाने कीा ज्यादातर बोझ उन्हीं के ऊपर था। उस कमेटी की रिर्पोट में ज्यादातर जो अच्छाइयां हैं वे बहुत कुछ उन्हीं के परिश्रम के कारण है। 4–5 वर्ष पहले इस बात की ओर ख्याल गया कि इस देश में संस्कृत की शिक्षा को जो भिन्न–भिन्न सरकारी, अर्द्ध सरकारी और गैर सरकारी संस्थायें हैं और उनमें जो–जो शिक्षा होती है उसे एक रूप दिया जाए उसका स्टैन्डडइिजेशन होना चाहिए। हमने सबसे अनुरोध किया और कुछ गैर सरकारी यूनिवर्सिर्टियां जैसे गुरूकुल कांगड़ी, सबने हमारी बात स्वीकार की। उस कमेटी के सभापति भी आचार्य जी ही थे। उसका जो काम हो रहा है, उसका असर संस्कृत की शिक्षा पर अवश्य अच्छा होगा।

सन् 1947 में लिपि सुधार के सम्बन्ध में हमने एक कमेटी बिठाई और उसकी अध्यक्षता भी मेरे अनुरोध पर आचार्य जी ने स्वीकार की। लखनऊ में ही एक आल इंडिया सम्मेलन हुआ जिसके सभापति डाक्टर राधाकृष्णन थे और उसमें सेन्ट्रल गवर्नमेंट तथा सभी प्रादेशिक सरकारों के प्रतिनिधि आये। नागरी लिपि का नया रूप स्वीकार हुआ जो कि आज उत्तर प्रदेश में हर जगह चल रहा है। सभी सरकारों ने उसे स्वीकार कर लिया है और यह आशा की जाती है कि वह सारे देश में चालू हो जायेगी, क्योंकि बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात ने भी कहा है कि वे इसके लिए कोशिश करेगें। इस चीज का आधार भी उस कमेटी की रिपोर्ट थी। जिसे अध्यक्ष नरेन्द्र देव जी थे। मैं इन चार–पॉच बातों का जिक्र इसलिए कर रहा हूँ, कि सम्भव है कि आगे चलकर हम उनकी केवल राजनीतिक बातों का ही ध्यान रखें और इन चीजों को भूल जावें। उनके समाज और शासन के ऊपर बहुत बडे एहसान है। उनके कामों का असर पुश्त दर पुश्त तक रहेगा। यह एक राष्ट्रीय क्षति हुई है।"[12]

---

(12) आचार्य नरेन्द्र देव युग और विचार– सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित।

(7) माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन से सम्बन्धित

आचार्य नरेन्द्र देव समिति सन् 1939 ई0— इस समिति के अध्यक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमुख सदस्यों में डॉ0 जाकिर हुसैन, उमा नेहरू, आर0एस0 पंडित, मुहम्मद इस्लाम खॉ, रामगृह सिंह, घूलेकर, आचार्य जुगुल किशोर, कुमार विलियम्स, वियर और वेगम एजाज रसूल आदि थे।

समिति के सुझाव — आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने अथक परिश्रम के उपरान्त अपनी रिर्पोट तैयार कर प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के पुर्नसंगठन के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत किया—

(1) वर्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थी का सर्वागंणी विकास करने में असमर्थ रही है, और वह छात्रों के जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता भी नहीं रखती ।

(2) माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य विश्व विद्यालयों के लिए छात्र उत्पन्न करना मात्र रह गया है।

(3) माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण वस्तु परक न होना चाहिए, और शिक्षा प्रणाली भी बिल्कुल ठीक हो।

(4) माध्यमिक शिक्षा की अविध 12 वर्ष से 18 वर्ष होनी चाहिए।

(5) समस्त माध्यमिक विद्यालयों को कॉलेजों की संज्ञा देनी चाहिए और उनका स्तर वर्तमान इण्टरमीडिएट कक्षाओं से ऊँचा रखा जाय।

(6) नवीन कॉलेजों के प्रथम 2 वर्षों का पाठ्यक्रम बेसिक प्राथमिक विद्यालयों की अंतिम दो कक्षाओं के समान हों और अंग्रेजी भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय। तथा हस्त उद्योग पर कम बल दिया जाय।

(7) पाठ्यक्रम में निम्न विषय सम्मिलित किये जाये —

(अ) भाषा साहित्य सामान्य विज्ञान, (ब) प्राकृतिक विज्ञान और गणित (स) कला (द) वाणिज्य (य) व्यवसायिक और औद्योगिक शिक्षा (र) गृह विज्ञान केवल बालिकाओं के लिए।

(8) बेसिक प्राथमिक परीक्षा उत्तीर्ण या 7 वर्षीय पाठ्यक्रम समाप्त कर लेने वाले छात्रों को ही कालेजों में प्रवेश करने की अनुमति दी जाय। (9) हाईस्कूल और इण्टरमीडिएट नाम हटा दिये जाय।

(10) शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी हो।

(11) पाठ्यक्रम विशेषज्ञों द्वारा देश व काल की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाय, और उसका वास्तविक एवं व्यावहारिक होना आवश्यक है।

(12) सभी प्रकार के विद्यालयों की स्थापना के लिए परामर्शदाता मंण्डल की स्थापना की जाय और यही मंडल पाठ्यक्रम में निर्धारण प्रयोगात्मक प्रशिक्षण तथा शिक्षा की संस्थाओं के लिए धन संचय में अपना योग दें।

(13) बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान कालेजों की स्थापना की जाय।

(14) स्त्री–शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय।

(15) व्यावसायिक व औद्योगिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय।

(16) पाठ्य–पुस्तकें परीक्षा–प्रणाली व शिक्षा संगठन में शीघ्रताशीघ्र आवश्यक सुधान किये जायें।

(17) प्रत्येक विद्यालय में एक सुमृद्ध पुस्तकालय का होना अनिवार्य कर दिया जाय।

(18) अध्यापकों के प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध किया जाय, और उनकी दशा में सुधार करने व नौकरी में स्वायित्व की दृष्टि से नौकरी करते समय उनमें संविदा पत्र भरवाये जायें।

(19) छात्रों में चरित्र–निर्माण, राष्ट्रप्रेम, स्वालम्बन, नागरिकता, आत्मनिर्भरता और समाज सेवा की भावनायें उत्पन्न करने की दृष्टि से प्रत्येक विद्यालय में समय–समय पर अतिरिक्त कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाय।

(20) विद्यालयों में स्काउटिंग समिति, वाद–विाद परिषद्, प्राथमिक चिकित्सा और समाज–सेवा आदि का पूर्ण रूप से संगठन होना चाहिए।

(21) प्राँत में एक केन्द्रीय पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट की स्थापना की जाय।

माध्यमिक शिक्षा पुर्नसंगठन समिति या द्वितीय आचार्य नरेन्द्र देव समिति सन् 1952–53 ई0

वस्तुतः आचार्य नरेन्द्र देव समिति सन् 1939 के सुझावों को कार्यान्वित करने के पूर्व ही कांग्रेसी मंत्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पडा था। अतः उस समिति के सुझावों पर अमल न किया जा सका। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर अन्य प्रांतों की भांति उत्तर प्रदेश में भी शिक्षा के विकास के विस्तार पर पूर्ण ध्यान दिया गया तथा प्रांतीय सरकार ने माध्यमिक शिक्षा को पुर्नसंगठित करने का निश्चय कर जुलाई 1948 से प्रान्त में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना को कार्यान्वित किया।

इस योजना में प्रथम आचार्य नरेन्द्र देव समिति के कतिपय सुझावों को स्वीकार कर लिया गया। पर माध्यमिक विद्यालयों की प्रगति व उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना की वास्तविक जांच के लिए मार्च सन् 1952 में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी जिसका कि नाम वास्तव में "माध्यमिक शिक्षा पुर्नसंगठन" समिति था, पर अध्यक्षता के नाम पर उसे आचार्य नरेन्द्र देव समिति भी कहा जाता है। इस समिति के

अध्यक्ष के अतिरिक्त इसमें 28 सदस्य और थे, तथा इसकी पहली बैठक 31 मार्च 1952 को हुई जिसमें कार्यक्षेत्र की विविधता को देखते हुए छोटी–छोटी पॉच सहायक समितियों का निर्माण किया गया।

पहली उपसमिति का कार्य हाई–स्कूल व इण्टरमीडिएट बोर्ड द्वारा निर्धारित विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में अध्ययन करना, तथा पाठ्यक्रम पर विचार करना था और इसके अध्यक्ष श्री सी0 महाजन थे, इस उपसमिति को यह भी निश्चय करना था कि पहली आचार्य नरेन्द्र देव समिति की सिफारिशें कहॉ तक लागू की गयी हैं।

द्वितीय उपसमिति श्री चन्द्र मोहन नाफ चक्र की अध्यक्षता में बालक–बालिकाओं की विभिन्न पाठ्यक्रमों कें अपनाने में सफलता व परीक्षा के सम्बन्ध में विचार करने के लिए बनायी गयी।

तृतीय उपसमिति श्री एल0एम0 भाटिया की अध्यक्षता में राजकीय व अराजकीय विद्यालयों में सी0 व डी0 वर्ग के पाठ्यक्रम विषयों की प्रगति तथा व्यावसायिक शिक्षा पर विचार करने वाली थी।

चतुर्थ समिति के अध्यक्ष एच0एल0 खन्ना थे, और इसका कार्य पहली समिति द्वारा निर्धारित अवकाश के दिनों को अमल में लाने के सम्बन्ध में जॉच करना और विद्यालयों में धार्मिक नैतिक शिक्षा की उपयोगिता पर विचार करना था। तथा यह उपसमिति अनुशासन व्यवस्था की भी अधिकारिणी थी।

पॉचवी उपसमिति कुमारी के0ए0 सब्बरवाल की अध्यक्षता में सम्पूर्ण प्रांत को माध्यमिक शिक्षाओं की नारी शिक्षा पर विचार करने के लिए नियुक्त की गई।

उपर्युक्त पॉच उप समितियों के अतिरिक्त अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में आर0एन0 गुप्ता की अध्यक्षता में छठवीं उपसमिति का निर्माण भी किया गया, जो कि टेक्निकल व सामान्य शिक्षा के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के उपयों पर विचार करने वाली थी।

कालांतर में जनवरी 1953 में दो और उपसमितियों का भी निर्माण हुआ जिनमें से सातवीं उप समिति आर0एम0 गुप्त की अध्यक्षता में व्यक्तिगत शिक्षा संस्थाओं के प्रबंधों का अध्ययन कर उनकी त्रुटियों को दूर करने के उपायों पर विचार करने वाली थी, तथा आठवीं उपसमिति आर0पी0 शर्मा की अध्यक्षता में पाठ्यक्रमों के चयन पर विचार कर छात्रोपयोगी पुस्तकों के चुनाव के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए थी।

समिति का जांच क्षेत्र

आचार्य नरेन्द्र देव समिति (सन् 1952) पर निम्नलिखित विषयों की जांच करने का उत्तरदायित्व था।

(1) जुलाई सन् 1948 में उत्तर प्रदेश में लागू की गई "उच्चतर माध्यमिक शिक्षा" योजना को कितनी सफलता प्राप्त हुई?

(2) साहित्यक वैज्ञानिक, व्यवसायिक, रचनात्मक व कलात्मक वर्गों की वास्तविक दशा क्या है और वह विद्यार्थियों के लिए कहां तक उपयोगी सिद्ध हो सके है।

(3) विद्यार्थियों ने अपनी रूचि व योग्यताओं के अनुसार किन विषयों को चुना है और उनका चुनाव सही है या नहीं?

(4) सामान्य और औद्योगिक शिक्षा में समन्वय के लिए उपाय बताना और यह जांच करना कि व्यावसायिक व औद्योगिक विषयों का अध्ययन करने वाले छात्र जीविकोंपार्जन की समस्या सुलझा सके हैं। या नहीं?

(5) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना को सफल बनाने के लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना।

कुछ दिनों के बाद इस समिति के जॉच के क्षेत्र में विस्तार कर उसे निम्नोकित और भी विषयों की जॉच करने का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया।

पाठय पुस्तक, परीक्षा व विद्यालयों की प्रबंध समितियॉ, अध्ययन और अवकाश के घंटे, इलाहाबाद का मनोविज्ञान केन्द्र व गृहविज्ञान, कॉलेज, छात्रों की अनुशासनहीनता अंग्रेजी व संस्कृत को अनिवार्य विषय बनाना और धार्मिक व नैतिक शिक्षा का प्रश्न।

समिति की बैठकें और रिपोर्ट

आर्चाय नरेन्द्र देव समिति की पॉच बैठकें क्रमशः 30 मार्च, 1952 से 31 मार्च 1952, 4 अक्टूबर 1952 से 10 अक्टूबर 1952, 27 अक्टूबर 1952 से 1 नवम्बर 1952, 31 जनवरी 1953 से 3 फरवरी 1953 व 5 मई से 8 मई 1953 तक हुई और इनमें से केवल दूसरी बैठक बनारस में हुई, तथा शेष चारों बैठके लखनऊ में हुई। उक्त बैठकों के अतिरिक्त समस्त उपसमितियों ने भी अपनी अलग-2 बैठकें कर अपने अधीनस्थ विषयों पर विचार किया। इस प्रकार आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने चौदह महीनों तक परिश्रम कर मई 1953 में अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की और इसमें कोई संदेह नहीं कि जिन्होने माध्यमिक शिक्षा के वर्तमान दोषों का उल्लेख कर माध्यमिक शिक्षा को पुर्नसंगठित करने के लिए अनेक उपयोगी सुझाव दियें हैं।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने जुलाई 1958 में कार्यन्वित की गई, उच्चतम माध्यमिक शिक्षा योजना व प्रंतीय माध्यमिक शिक्षा में निम्नलिखित दाबे माने हैं-

(1) यह योजना पूर्व नियोजित थी, और बिना पर्याप्त परीक्षण किये उसे लागू किया गया था, अतः उसके मार्ग में स्वाभाविक ही अनेक समस्यायें व कठिनाइयाँ हैं और इसीलिए उसे बहुत कम सफलता भी प्राप्त हुई है।

(2) पाठ्य विषयों को अनिवार्य, सहायक व गौण नामक तीन मदों में विभाजित कर देने के फलस्परूप विद्यार्थियों और अध्यापको को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(3) सामान्य विज्ञान को अनिवार्य विषय बनाने से विद्यार्थियों का कोईलाभ नहीं हुआ है।

(4) यद्यपि प्रारंभिक हिन्दी को अनिवार्य विषय माना गया है, पर परीक्षाफल में उसके अंक अन्य विषयों के साथ जुड़ने के कारण उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है, और हिन्दी को भी पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता है।

(5) योजना में छात्रों को परामर्श और मार्ग प्रदर्शन की सुविधा प्रदान करने की बात स्वीकर करते हुए भी इस दिशा में कोई भी सक्रिय कदम नहीं उठाया गया।

(6) माध्यमिक विद्यालयों व छात्रों की संख्या इस तेजी से बढ़ रही है कि सरकार उन पर अंकुश नहीं रख पाती।

(7) न केवल प्रतिशत अध्यापकों की बहुत कमी है पर साथ ही नवीन प्राशिक्षण विद्यालयों में प्रशिक्षण की भी समुचित व्यवस्था नहीं है।

(8) माध्यमिक विद्यालयों से 3,4,व 5 कक्षाओं के अलग कर दिये जाने के कारण बहुत से व्यक्ति अपने बालको को घर पर ही पॉचवी कक्षा तक शिक्षा देने के उपरांत छठीं कक्षा में उन्हें प्रविष्ट करा देते है। अतः इससे शिक्षा की आधारशिला कमजोर पड़ जाती है, और शिक्षा स्तर भी गिरता जा रहा हैं।

(9) माध्यमिक विद्यालयों के पास उपयुक्त भवन, आवश्यक शिक्षण सामग्री, उत्तम पुस्तकालय और प्रयोग शालायें नहीं हैं।

(10) अध्यापकों की दशा भी ठीक नही है और उन्हें न केवल कम वेतन मिलता है बल्कि समय भी नही मिलता। साथ ही प्रबंध समितियॉ जब भी चाहें शिक्षाको को पदमुक्त कर सउनके स्थान पर नये शिक्षकों की नियुक्ति करती हैं।

सुझाव

माध्यमिक शिक्षा की उक्त त्रुटियों का उल्लेख करने के उपरांत आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने उन दोषों का निराकरण करने कि लिए अधोलिखित सुझाव प्रस्तुत कियें–

(1) हिन्दी के साथ संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाय, और आठवीं कक्षा से बारहवीं कक्षा तक संस्कृत की शिक्षा दी जाय। हिन्दी के तीन प्रश्न–पत्र हो, जिनमें से तीसरे प्रश्न पत्र में अनिवार्य संस्कृत का पाठ्यक्रम सम्मिलत किया जाय।

(2) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य भारतीय भाषा या विदेशी भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायें।

(3) कक्षा 9 और 10 में गणित को अनिवार्य विषय बना दिया जाय तथा कक्षा 11 व 12 में उसे वैकल्पिक विषय माना जाय।

(4) कक्षा 9 और 10 में 8 विषय और कक्षा 11 व 12 में 5 विषय पढ़ायें जायें।

(5) विषयों का मुख्य और गौण नामक विभाजन करने की जो प्रथा प्रचलित है, उसे समाप्त कर दिया जाय। और माध्यमिक शिक्षा स्तर में सुधार करने की दृष्टि से प्राथमिक, बेसिक व जूनियर हाईस्कूलों के पाठ्यक्रम में आवश्यक सुधार किये जायें।

(6) बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान एक अनिवार्य विषय बना दिया जाय।

(7) उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को तभी मॉन्यता प्रदान की जाय, जब उनके पास आवश्यक विषयों की शिक्षा देने के लिए उचित व पर्याप्त साधन है।

(8) टेकनिकल स्कूलों की स्थापना करते समय स्थान की भौगोलिक उपयुक्तता पर अवश्य ध्यान रखा जाय।

(9) टेकनिकल शिक्षण संस्थाओं को शिक्षा विभाग के नियंत्रण में रखा जाय और राज्य में अधिक से अधिक इन संस्थाओं का निर्माण किया तथा कुछ पॉली टेकिनिक का रूप प्रदान किया जाय। प्रत्येक जिले में कम से कम एक विद्यालय ऐसा अवश्य होना चाहिए।

(10) टेकनिक्ल शिक्षा को आकर्षण बनाने की दृष्टि से उसे निःशुल्क कर देना चाहिए।

(11) टेकनिकल स्कूल के अध्यापकों को प्रशिक्षित करने की उचित व्यवस्था की जाय।

(12) पाठ्य विषयों के चयन में विद्यार्थियों का उचित मतों में प्रदर्शन करने की दृष्टि से प्रत्येक जिले में एक मनोवैज्ञानिक केन्द्र की स्थापना की जाय, जहॉ कि एक ऐसा प्रशिक्षित अध्यापक अवश्य हो जो कि छात्रों की रूचि विषय का पता लगाकर उसके विषयों को चुनाव करने में सहायता दें।

(13) प्रांत में एक 'मनोवैज्ञानिक व्यूरो' की स्थापना की जाय जहॉ कि विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण तैयार किये जायें और उनके आधार पर छात्रों की मनोवैज्ञानिक जांच की जाय।

(14) इलाहाबाद के 'मनोवैज्ञानिक शिक्षा केन्द्र' का सुधार कर उसमें प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय, और प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को एक वर्ष का पाठ्यक्रम पूरा कर लेने पर प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक का प्रमाण पत्र दिया जाय।

(15) प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में वर्ष 200 कार्य दिवस या 400 बैठकें अवश्य हो और कोई भी विद्यालय वर्ष में 235 दिन से अधिक अध्यापन कार्य न करें।

(16) गर्मी व शरद में 6 या 7 सप्ताह से अधिक छुट्टियाँ न होनी चाहिए, इनके अतिरिक्त वर्ष 31 से अधिक छुट्टियाँ न हों, प्रधानाचार्य को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कुछ छुट्टियाँ देने का अधिकार होना चाहिए।

(17) प्रत्येक विद्यालय जुलाई की 8 तारीख को अवश्य खुल जाना चाहिए, और यदि उस दिन छुट्टी हो तो उसके दूसरे दिन विद्यालय अवश्य खुल जाये।

(18) विद्यालय में नैतिक व धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य रूप से कर दी जाय और प्रत्येक विद्यालय के कार्यारम्भ से पूर्व 10 मिनट तक प्रार्थना अवश्य हो।

(19) विद्यार्थियों को विभिन्न धर्मों के मूल सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाय और समय–समय पर महान् पुरूषों के जीवन चरित्रों पर भाषाओं का भी प्रबन्ध किया जाय।

(20) छात्रों और अध्यापकों में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध रहने पर ही विद्यालय में उत्तम अनुशासन व्यवस्था रह सकती है, और जिन विद्यालयों का अनुशासन अच्छा हो, उन्हें पुरूस्कार मिलना चाहिए।

(21) प्रत्येक विद्यालय के छात्रों को 20 से 30 तक के दलों में विभाजित कर प्रत्येक दल के लिए कई शिक्षक संरक्षक की युिक्ति हो, और विद्यालय के शिक्षकों व अभिभावकों में भी संपर्क स्थापित करने का प्रयास किए जायें।

(22) विद्यार्थियों को पुस्तकीय ज्ञान के साथ–साथ शारीरिक श्रम के लिए भी प्रोत्साहित किया जाय, और प्रत्येक छात्र को कुछ न कुछ सामाजिक कार्य करने के लिए अवश्य बाध्य किया जाय।

(23) अध्यापकों को चाहिए कि छात्रों के लिए उचित व शिक्षाप्रद सिनेमा दिखाने का अलग से प्रबन्ध करें और प्रत्येक विद्यालय में एक रेडियो रखा जाय, जिससे मध्यावकाश में देश देशान्तर की सूचनाएं व अन्य शिक्षाप्रद कार्यक्रम सुनायें जायें।

(24) इण्टरमीडिएट कक्षाओं को समाप्त कर 12वीं कक्षा डिग्री कोर्स के साथ मिला जाय और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 9,10, व 11 कक्षाएं रखी जाय तथा 11वीं कक्षा के अंत में माध्यमिक परीक्षा की व्यवस्था की जाय।

(25) सोलह वर्ष से कम आयु वाले छात्रों को उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में सम्मिलित होने की आज्ञा न दी जाय, और जिन विद्यार्थियों की उपस्थित 75 प्रतिशत हो उन्हें ही परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाय।

(26) कक्षा 8 के पश्चात् छात्रवृत्ति परीक्षा ली जाय, और उसमें उत्तीण होने वाले विद्यार्थियों को दो वर्ष तक छात्रवृत्ति दी जाय, तथा छात्रों को विद्यालयों की प्रत्येक कक्षा में तीन परीक्षाओं में प्राप्त अंकों के आधार पर ही प्रत्येक कक्षा से दूसरी कक्षा में उन्नति दी जाय।

(27) पाठ्य पुस्तकों की स्वीकृति का वर्तमान ढंग इतना दोषपूर्ण है कि उसे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त कर कक्षा 9 से 12 तक के लिए केवल पाठ्यक्रम ही निर्धारित किया जाय पर किसी भी विषय के लिए कोई पुस्तक स्वीकार न की जाय। प्रत्येक विद्यालय के प्रधानाध्यापकों के परामर्श के विभिनन विषयों की पाठ्य पुस्तकें निर्धारित कर लेनी चाहिए, और उनकी सहायता के लिए शिक्षा–विभाग पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी जाने वाली उपयुक्त व उत्तम पुस्तकों की सूची प्रकाशित करें, ताकि पुस्तकों के चुनाव में आसानी हो।

(28) उपयोगी या उचित पुस्तकों की रचना व प्रकाशन के लिए इंग्लैण्ड और अमेरिका आदि देशों की भॉति विशेष समितियां व संस्थाये निर्धारित होनी चाहिए।

(29) पुस्तकें प्रति वर्ष न बदली जायें और जो पुस्तक एक बार चुन ली गयी है उन्हें कम से कम तीन वर्ष तक अवश्य चालू रखा जाय।

(30) स्वंय सरकार को अच्छी पुस्तकों के लेखन व प्रकाशन को प्रोत्साहित करना चाहिए और श्रेष्ठ व उपयोगी पुस्तकों को बाजार में भिजवाने की व्यवस्था की जाय।

(31) पुस्तकों की छपाई और कागज आदि पर भी ध्यान दिया जाय।

शिक्षक सेवा शर्तो के सुधारक के रूप में–

आचार्य जी के अनुसार अध्यापक वर्ग अपने कर्तव्य और तृत का पूर्ण परिपालन कर सकें। इसके लिए उसका स्तर उन्नत करना होगा, और उसकी जीविका की ऐसी व्यवस्था करनी होगीकि आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त होकर वह एकचित्त हो अपने कर्तव्य– पालन में लग सकें। उसकी बौहिक और अध्ययनगत स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखनी होगी।

(1) विद्यालय की प्रबंध–समितियों में तुरन्त सुधार किया जाय, और प्रबंध समिति में अधिक से अधिक 12 सदस्य होने चाहिए, जिनका निर्वाचन प्रति वर्ष तीन वर्ष के उपरांत हो। साथ ही में विद्यालय का प्रधानाध्यापक तथा शिक्षकों का भी एक प्रतिनिधित्व तथा इन प्रबंध समितियों का निर्माण धर्म व जाति के आधार पर न किया जाय। जिन विद्यालयों की प्रबन्ध समितियाँ ठीक नहीं है, उन्हें भंग कर सरकार उनका प्रबन्ध अपने हाथ में ले ले और एक प्रशासक द्वारा उसका प्रबन्ध करें।

(2) प्रबन्ध समिति के पॉच सदस्यों की एक उप समिति, जिसमें कि विद्यालय का प्रधान अध्यापक भी हो, द्वारा अध्यापकों की नियुक्ति की जानी चाहिए और नियुक्ति के पश्चात् विद्यालय निरीक्षक द्वारा स्वीकृति लेनी आवश्यक है।

(3) अध्यापक की नियुक्ति के 4 माह के अन्दर ही उससे संविदा पत्र भरवा लिया जाय और अध्यापकों व प्रबन्ध समितियों से किसी भी विवाद का निर्णय करने के लिए पंच फैसला

बोर्ड का निर्माण किया जाय, उनका निर्माण दोनों ही पक्षों द्वारा मान्य हो। यदि कोई प्रबन्ध समिति का निर्णय मानती है तो उसके द्वारा संचालित विद्यालय सहायता अनुदान बंद या कम कर दिया जाय।

(4) गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों के स्थानान्तर के लिए स्थानान्तरण बोर्ड बनाये जायें और अध्यापकों के वेतन व सेवा प्रतिबन्धों में भी सुधार किये जायें।

"आचार्य जी के व्यक्तित्व, उनकी विद्वता, उनकी नेतृत्व क्षमता , उनके चिंतन की गहराई तथा उनकी वक्तृत्व शक्ति के बारे में थोडे में कुछ कहना बहुत कठिन है"।

नारायण दत्त तिवारी

"हमने एक महान् व्यक्तित्व को खो दिया है। वह बहुत स्नेहपूर्ण, नरम दिल वाले, भले मानस एक ही संत थे, जो निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करते रहे। उन्होंनें कभी किसी का दिल नहीं दुखाया।

उन्होंने हमारे लिए जो धरोहर छोड़ी है उसे सहेजकर रखना एक बड़ा काम है। हम और आगे आने वाली पीढ़ियां प्रेरणा ले, उनके उदाहरण से।"

पंडित गोविन्द बल्लभ पंत

'विषपायी' डॉ0 राममनोहर लोहिया

जीवनवृत्त

किसी भी सपाट जिन्दगी का लेखा –जोखा लिखना आसान होता है,क्योकि उसमें पेचीदगी नहीं होती। उसमें काल को चुनौती देने की बात नहीं होती। ऐसी जिन्दगी तो काल की हर चोट को अपनी नियति मानकर अपने को समर्पित करती चलती है। काल के प्रवाह के साथ बहते चलने में ही वह खत्म भी हो जाती है। हम क्षण भर के लिए ही यही रूक जॉय, उसके प्रति दो ऑसू बहा लें। पर इसके बावजूद हम उस सपाट जिन्दगी को उस कोण से भी देखने–समझने में अक्षम होते हैं। सपाट जिन्दगी में शायद कुछ समझने के लिए होता भी नहीं।

किन्तु एक ऐसे व्यक्ति के जीवन का लेखा–जोखा लिखना कठिन होता है, जा काल के स्थिर स्वरूप को अस्वीकर करके उसे क्षण के कालखण्ड में प्रवहित देखता हो और ऐसे क्षण के पारदर्शी यर्थाथ के माध्यम से वह पूरे जीवन को देखने की कोशिश करता हो। इतिहास, दर्शन मिथक तथा पुरातत्व को ऐसा व्यक्ति बीता या ठहरा हुआ नहीं मानता । वह मानता है कि जिस कालखण्ड के क्षणों में वह जी रहा है, उसमें वह सबका सब जीवन रूप में वर्तमान है। मरा कुछ नहीं है। सब कुछ उस पारदर्शी क्षण में जीवित है और एक निरन्तरता के साथ हमारे आवेग में साथ–साथ चल रहा है। डॉ0 लोहिया का पूरा जीवन इस अतीत,

वर्तमान और भविष्य के एकान्तिक दर्शन में डूबा हुआ जीवन है। इसी क्षण के सत्य से उनका सारा जीवन–दर्शन प्रभावित है। इसीलिए चाहे 'राम' हो या 'कृष्ण' या 'शिव या इतिहासचक्र हो या धर्म या पुरातत्व हो, वह सबको इस क्षण सेसम्बृद्ध मानते हैं। उनके लिए मरा हुआ वह है जो काल के क्षण को पहचान नहीं पाता, और न पहचानने के कारण वह उस कालचक्र हो अपनी नियति मानकर उसके सामने आत्मसर्मपण करता हो। ऐसे व्यक्ति में इच्छा–शक्ति भी नहीं होती, इसीलिए वह क्षण की कटुता को बदलने का साहस भी नहीं कर पाता। डॉ0 लोहिया काल की गति को बदलने का साहस रखते थे। वह कहते थे कि मनुष्य चाहे तो अपनी इच्छा–शक्ति से इतिहास और काल की गति दोनों को बदल सकता है।

भारत माता से शिव का मस्तिष्क, कृष्ण का हृदय और राम का कर्म एवं वचन के साथ ही असीम मस्तिक, उन्मुक्त हृदय और जीवन की मर्यादा मांगने वाले लोहिया का जन्म 23 मार्च 1910 कृष्ण चैत्र तृतीया (अक्षय तृतीया) को उत्तर–प्रदेश के अकबरपुर में हुआ था। पिता हीरालाल लोहिया कोशलं और माता चंद्रीदेवी मिथिला प्रांत के झुनझुलवाला परिवार की थी। करीब ढ़ाई साल की अवस्था में पुत्र का मुण्डन कराकर माता ने इस संसार को छोड़ दिया। लोहिया का परिवार मिर्जापुर से अकबरपुर आकर बसा था। पूरा परिवार एक ब्रहम की छाया में अकाल मृत्यु को प्राप्त कर गया। केवल बचे एक राम मनोहर।

1918 में पिता हीरालाल जी राममनोहर को अपने साथ अहमदाबाद कांग्रेस में ले गए। लोहिया पिता के साथ गांधी जी से मिलने गए। तब पिता पुत्र बंबई में रहते थे। इण्टर के दो साल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बीते। बी0ए0 कलकत्ता के विद्यासागर कॉलेज से किया। उस समय लोहिया मारवाड़ी छात्रावास में रहते थे। बी0ए0 के बाद लोहिया कुछ मारवाड़ी ट्रस्टों की सहायता से इंग्लैड पढ़ने गयें। वहॉ उनका मन नहीं लगा। वे अर्मनी चले गयें।

जेनेवा में लीग ऑफ नेशन्स की बैठक हो रही थी। भारत से अंग्रजी सरकार के प्रतिनिधि बीकानेर के महाराज थे। यह वह अवसर था जब भारत में नमक सत्याग्रहियों पर हुए जुल्म से वातावरण अत्यंत क्षुब्ध था। लोहिया ने दर्शक दीर्घा में जाकर तेज सीटी बजाई। लोहिया अपने एक अन्य साथी के साथ बाहर निकाले गए। उन्होंने बीकानेर के महाराजा भारत के प्रतिनिधि हैं, इस बात को चुनौती दी थी। 1932 में लोहिया ने 'नमक और सत्याग्रह' पर बर्लिन विश्वविद्यालय से पी0एच0डी0 प्राप्त की।1936 में जवाहर लाल नेहरू के कांग्रेस अध्यक्ष चुने जाने पर लोहिया को उन्होंने परराष्ट्र विभाग का मंत्री नियुक्त किया। नेहरू लोहिया की चाह,

गांधी, स्वप्न और सुभाष, साहस थे। इसीलिए लोहिया ने साहस नहीं स्वप्न का साथ दिया। 1942 से 20 मई 44 तक लोहिया भूमिग्त होकर आंदोलन चलाते रहे। भूमिगत का अधिकतर जीवन कलकत्ता और बंबई में बिताया। कांग्रेस रेडियों चलाया। नेपाल में गिरफ्तार हो गए। किन्तु लोगों ने जेल पर धावा कर इन्हें जयप्रकाश को छुड़ा लिया। लोहिया लाहौर और बाद में आगरा जेल में रखे गये। 11 अप्रैल 1946 को जेल सेरिहा हुए। इस बीच उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी। गांधी जी के रहते लोहिया कांग्रेस छोड़ने के पक्ष में नहीं थे। लोहिया नेपाल और गोवा की मुक्ति के लिए जेल गए। लोहिया ने विन्ध्य प्रदेश के विभाजन के विरोध में भी भाग लिया। गिरफ्तार हुए।

हिमालय निति पर सम्मेलन बुलाया। लोहिया अनेक बार विदेश गए। अमरीका में कालों की समस्या को लेकर गिरफ्तार हुए। इआइन्सटीन से भेंट की। उनसे बातचीत की। एशियाई समाजवादियों का सम्मेलन रंगून में बुलावाया। किन्तु खुद नहीं गए। लोहिया ने मार्क्सवाद का स्पष्ट विरोध किया। लोहिया को अपनी पार्टी प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने जयप्रकाश नेहरू 14 सूत्री कार्यक्रम और अशोक मेहता के पिछड़ी अर्थ व्यवस्था की मजबूरी का विरोध किया। निहत्थों पर गोली चलाने पर केरल की सरकार से इस्तीफा मागा। 'स्पेशल पावर्स एक्ट' के अन्तर्गत गिरफ्तार हुए। मणिपुर में प्रतिनिधि शासन के लिए सत्याग्रह किया।

लोहिया ने प्रजा सशिलिस्ट पार्टी से अलग होकर 1955 की 28 दिसम्बर से 1 जनवरी, 1956 तक नयी सोशलिस्ट पार्टी बनायी। इसका स्थापना सम्मेलन हैदराबाद में हुआ। लोहिया ने भारत सरकार पर आरोप लगाया कि वह पूरे समाज को न उठाकर कुछ लोगों को उठाती है। अतः बहुमत के कीचड़ में कुछ कमल खिलते हैं। उन्होंने उस कमल की खेती का विरोध किया। 23 नवम्बर, 1959 में लोहिया उर्वसीयम् में प्रवेश करते समय गिरफ्तार हुए। स्वतंत्र भारत में लोहिया ने यह 13वीं गिरफ्तारी दी। लोहिया ने शिक्षण संस्थानों और सेना के जातिवादी नामों का भी विरोध किया। डांक बंगला, सर्किट हाउस आदि जनता की सम्पत्ति हैं। इनमें सबको टिकने के लिए लोहिया ने गिरफ्तारी दी। 1962 में पं० नेहरू के विरूद्ध चुनाव लड़े। फर्रूखाबाद से लोकसभा का चुनाव जीते।

लोहिया ने मानव सवारी रिक्शा पर न बैठने की प्रतिज्ञा की थी। वे कभी –2 अत्यंत भावुक हो उठते थे, विशेषकर किसी बलिदानी को देखकर। भारत–पाकिस्तान

युद्ध में बलि देने वाले क्वार्टर मास्टर अब्दुल हमीद के घर जाते समय उन्होंने कहा– '' बलिदान में हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। भारत सर्वधर्मियों की मातृभूमि है, इसका साक्षात्कार होता है।'' उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। लोहिया गांधी की अपेक्षा अधिक भौतिकवादी और मार्क्स के मुकाबले विश्वदृष्टि वाले व्यक्ति थे।

''शिव का मस्तिष्क, कृष्ण का हृदय,राम का कर्म ' तीनों का समन्वय डॉ0 लोहिया के घटना बहुल जीवन के 57 वर्ष पर विहंगम दृष्टिपात''

विषय	स्थान	समय
जन्म	अकबर पुर	23 मार्च, 1910
प्राथमिक शिक्षा	टण्डनपाठशाला अकबरपुर	1916
गांधी जी का प्रथम दर्शन	अहमदाबाद कांग्रेस	1918
मिडिल शिक्षा	विनाथहा0स्कूल अकबरपुर	1920
मैट्रिक परीक्षा में प्रवेश	मारवाडी विद्यालय बम्बई	1920
तिलक दिवस पर विद्यालय में हड़ताल करवाई	बम्बई	1 अगस्त 1920
मैट्रिक शिक्षापास प्रथम श्रेणी	मारवाडी विद्यालय बम्बई	1925
इण्टर में प्रवेश	काशी विश्व0 वाराणसी	1925

विषय	स्थान	समय
गुवाहाटी भ्रमण	गुवाहाटी आसाम	1926
इण्टर तीसरी श्रेणी में	मारवाडी विद्यालय बम्बई	1927
बी0ए0 में प्रवेश	कलकत्ता	1927
राजनीति में सक्रिय रूचि 'साइमन वापस जाओ' में सक्रिय भाग	कलकत्ता	1928
अखिल भारतीय वंगाली विद्यार्थी संगठन के सक्रिय सदस्य	कलकत्ता	1928
बी0ए0 प्रथम श्रेणी में पास	कलकत्ता	1929
इंग्लैण्ड में पढने के लिए प्रस्थान	लण्दन	जुलाई 1929
छः महीने बाद जर्मनी में शोध के लिए प्रस्थान	बर्लिन, जर्मनी	30दिसम्बर 1929
जर्मनी में मध्य यूरोपीय संगठन का जन्म	बर्लिन, जर्मनी	1930
जेनेवा में लीग आफ नेशन्स की सभा में भारतीय पतिनिधि का विरोध	जेनेवा	1930
जर्मनी की सोशलिस्ट पार्टी, कम्यूनिष्ट पार्टी, और नात्सी पार्टी से मित्रता और बहस	जर्मनी	1930—1931
डाक्टरेट की डिग्री	बार्लिन, जर्मनी	दिसम्बर 1932

विषय	स्थान	समय
भारत वापसी, मद्रास में 'हिन्दू पत्रिका'	मद्रास	1933
में पहला लेख प्रकाशित	कलकत्ता	1933–34
भारतीय समाज और राज का अध्ययन	पटना	17 मई, 1934
समाजवादियों का प्रथम सम्मेलन		
कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का स्थापना सम्मेलन	बम्बई	27,28 अक्टूबर
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की विदेश मंत्री	बम्बई	1936
सूरीनाम, फिलीपीस, मारीशस आदि देशों में भारतीयों से सम्पर्क		1936–1938
गांधी के नाम स्वतंत्रता आंदोलन छेडने के लिए पहला पत्र	इलाहाबाद	1938
लाहौर में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन	लाहौर	1939
बंदी बनाए गए	कलकत्ता	24मई 1939
जेल से छोडे गए	कलकत्ता	जून, 1939
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में अधिवेशन में सक्रिय भाग	–	जून, 1939
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य से झडप	बम्बई	15सितम्बर,1939
सुल्तापुर जिला राजनैतिक सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण	सुल्तानपुर	11मई 1940
उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी में अंग्रेजों के विरूद्ध आंदोलन हेतु प्रस्ताव	इलाहाबाद	18 मई, 1940

विषय	स्थान	समय
गिरफ्तारी	इलाहाबाद	7जून 1940
सुल्तानपुर के भाषण पर, जेल से गांधी के नाम 'हरिजन' में प्रकाशनार्थ पत्र लिखा	इलाहाबाद	15जून,1940
मुकदमें का फैसला, दो साल की कैद	इ0–सु0 जेल	1जुलाई 1940
सुल्तानपुर जेल से बरेली जेल तबादला	बरेली जेल	12 अगस्त1940
गांधी के नाम दूसरा पत्र	बरेली जेल	15 सितम्बर1940
जेल से रिहाई	बरेली	4 दिसम्बर 1941
गांधी–लोहिया वार्ता, क्रिप्स–मिशन के अवसर पर	सेवाग्राम	23 अप्रैल 1942
'भारत छोडो' आन्दोलन का बम्बई अधिवेशन	बम्बई	8 अगस्त 1942
भूमिगत हुए	कलकत्ता	9 अगस्त 1942
भूमिगत हालत में प्रथम पुस्तिका 'जंगजू आगे बढ़ो' का प्रकाशन	कलकत्ता	अगस्त 1942
दूसरी पुस्तिका 'मै आजाद हूँ' का प्रकाशन	कलकत्ता	सितम्बर 1942
कांग्रेस रेडियों की स्थापना	कलकत्ता	सितम्बर 1942
तीसरी पुस्तिका 'करो या मरो' प्रकाशित की	कलकत्ता	अक्टूबर 1942
कांग्रेस रेडियो के भूमिगत कार्यालय पर पुलिस का छापा, कलकत्ता से फरारी	कलकत्ता	नवम्बर 1942
भूमिगत हालत में नेपाल जाना	नेपाल	दिसम्बर 1942

विषय	स्थान	समय
जय प्रकाश नारायण से प्रथम भेंट	नेपाल	दिसम्बर 1942
नेपाल के जंगलों में कांग्रेस रेडियो की पुर्नस्थापना	नेपाल	1913
नेपाल में भूमिगत स्थानों पर नेपाली सिपाहियों द्वारा छापा,	नेपाल	मार्च 1943
लोहिया, जयप्रकाश, अच्युत पटवर्धन की पुत्री जया का नेपाल बंन्दी ग्रह में कैद होना।	नेपाल	1943
'आजाद हिन्द' के छापामार दस्तों द्वारा नेपाल जेल को तोडकर लोहिया, जयप्रकाश आदि को निकालना	नेपाल	1943
नेपाल को छोडकर लोहिया का कलकत्ता वापस आना।	कलकत्ता	1943
भूमिगत कार्यकर्ताओं का बम्बई में सम्मेलन	बम्बई	15,16मई1944
पुनः गिरफ्तारी	बम्बई	20मई 1944
लाहौर जेल में तबादला	लाहौर जेल	जून 1944
लाहौर जेल की यातनाएं	लाहौर जेल	1944
बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर	लाहौर हा0को	दिसम्बर 1944
लाहौर हाईकोर्ट में दायर याचिका खारिज	—	जनवरी 1945
ब्रिटिश लेवर पार्टी के अध्यक्ष प्रा0 लास्की के नाम पत्र	लाहौर जेल	अक्टूबर 1945
लाहौर जेल से आगरा जेल वापसी	—	1945

विषय	स्थान	समय
पिता श्री हीरालाल लोहिया का निधन	कलकत्ता	1945
ब्रिटिश सरकार द्वारा पैरोल पर छोड़े जाने के आदेश का तिरस्कार	आगरा जेल	1945
जेल से रिहाई	आगरा जेल	11अप्रैल 1946
जेल से छूटने के बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रथम भाषण	कलकत्ता	24अप्रैल 1946
सोशलिस्ट पार्टी पर से प्रतिबंध हटा	—	1946
''गोवा आन्दोलन'' का शुभारम्भ	गोवा	5जून 1.46
सिविल नाफरमानी करते हुए गिरफ्तार	—	18जून 1946
महात्मा गांधी ने लोहिया के बंदी होने पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की, वायसराय के पास पत्र भेजा।	—	जून 1946
जेल से रिहाई	गोवा जेल	21जून 1946
गोवा में फिर सिविल नाफरमानी और गिरफ्तारी	गोवा	29 सितम्बर1946
जेल से रिहाई	गोवा जेल	8 नवम्बर 1946
कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का सम्मेलन	कानपुर	26,28फरवरी1947
नेपाली आंदोलन के समर्थन में डा0 लोहिया का प्रथम वक्तब्य	कलकत्ता	1947
नेपाली आन्दोलन के सिलसिले में भारतं सरकार द्वारा दार्जलिंग में गिरफ्तार	दार्जलिंग	25अप्रैल 1947
भारत में हुए साम्प्रदयिक दंगों पर तीखा बयान	कलकत्ता	जून 1947

विषय	स्थान	समय
स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर जुलूस का नेतृत्व	कलकत्ता	15अगस्त 1947
साम्प्रदायिक दंगों का विस्फोट	कलकत्ता	30 अगस्त1947
गांधी जी का अनशन	कलकत्ता	31 अगस्त1947
गांधी जी के आदेश पर 'शांति समिति' स्थापित की	कलकत्ता	1 सितम्बर 1947
गांधी जी के आदेश पर दंगा करने वालों से हथियार वापस करने की अपील	कलकत्ता	सितम्बर 1947
गांधी जी ने अनशन तोड़ा	कलकत्ता	4 सितम्बर1947
गांधी जी के आदेश पर सरकार द्वारा स्थापित अन्न समिति की सदस्यता स्वीकार की।	दिल्ली	1947
गांधी जी के आदेश पर बम्बई के हड़ताली मजदूरों के बीच जाकर वार्ता	बम्बई	जनवरी 1948
गांधी जी को मजदूरों से की गई बातचीत का हवाला देना	दिल्ली	26 जनवरी1948
गांधी जी से अंतिम भेंट	दिल्ली	29 जनवरी1948
गांधी जी की निर्मम हत्या	दिल्ली	30 जनवरी1948
कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का नासिक सम्मेलन और कांग्रेस से अलग होने का फैसला	नासिक	मार्च 1948
नेपाल कांग्रेस के आन्दोलन के समर्थन में जुलूस का नेतृत्व करते हुए आजाद भारत में गिरफ्तारी	दिल्ली	25 मई 1949

विषय	स्थान	समय
जेल से रिहाई	दिल्ली	3 जुलाई 1949
स्टाक होम की यात्रा	स्टाक होम	24 अगस्त,1949
रीवा में किसान पंचायत का अधिवेशन, गोली काण्ड	रीवा (म0प्र0)	दिसम्बर 1949
कोरिया युद्ध पर अेशाक मेहता, जे0पी0 तथा अन्य समाजवादियों से मतभेद	—	जुलाई 1950
सोशलिस्ट पार्टी के मद्रास सम्मेलन में लोहिया का न जाने का फैसला	—	1950
'हिमालय बचाओ' सम्मेलन का आयोजन	लखनऊ	22,23,दिसम्बर1950
समाजवादी सम्मेलन में भाग लिया	रंगून	19,29 मार्च1951
दिल्ली में एक लाख लोगों द्वारा 'जनवाणी दिवस' का आयोजन, प्रदर्शन—नेतृत्व	दिल्ली	3 जून 1951
'पुलिस—ज्यादतियों के खिलाफ किसान आन्दोलन में गिरतारी	मैसूर	14 जून 1951
जेल से रिहाई	मैसूर	21 जून 1951
अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्लेन में भाग लिया।	फ्रैरर्कफर्टजर्मनी	3 जुलाई 1951
युगोस्लाविया, अमेरिका, हवाईद्वीप, जापान, हांगकॉग, थाईलैण्ड इण्डोनेशिया और श्रीलंका की यात्रा के बाद भारत—वापसी	—	1952
पंचमढ़ी समाजवादी पार्टी के अधिवेशन में अध्यक्षता	पंचमढ़ी	1952

विषय	स्थान	समय
मार्क्सवादी सिद्धांत त्यागने की सलाह तथा गांधी के मार्ग पर नई नीति बनाने का संकल्प, समाजवादी आंदोलन के नेतृत्व का आरंभ सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के विलय की पहल	पंचमढी	1952
सोशलिस्ट पार्टी की कौसिंल की बैठक एवं किसान मजदूर प्रजा पार्टी के साथ विलयन का प्रस्ताव पारित	बम्बई	24,25 सित01952
के0एम0पी0पी0 और सोशलिस्ट पार्टी के कौंसिलों की सम्मिलित बैठक द्वारा विलय की पुस्टि, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के भीतर नेहरू और कांग्रेस से मिलकर साझा सरकार बनाने वालों से का मतभेद	बम्बई	26 सितम्बर1952
लोहिया द्वारा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के पॉच आधार भूत सिद्धांतों की घोषणा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी द्वारा कांग्रेस से सहायोग या संयुक्त मंत्रिमण्डल बनाने के प्रस्ताव की निंदा।	—	मार्च 1953
किसान सत्याग्रह का नेतृत्व इलाहावाद प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन	इलाहाबाद	29,31दिस01953
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के राजनैतिक, नीति और कार्यक्रम बनाने वाली कमेटी के अध्यक्ष के रूप म डा0 लोहिया के राजनीतिक प्रस्ताव बहुत से पारित	इलाहाबाद	दिसम्बर 1953

विषय	स्थान	समय
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का प्रधानमंत्री का पद स्वीकार और चौखम्भा राज विकेंद्रीकरण, आर्थिक समानता, कृषि एवं औद्योगिक नीतियों की घोषणा	इलाहाबाद	1जनवरी 1954
स्पेशल पावर एक्ट (1932) के धारा 30 के अन्तर्गत फर्रूखाबाद कायमगंज में गिरफ्तार हुए।	नैनी सेन्ट्रल जेल इलाहाबाद	4 जुलाई 1954
बन्दी–प्रत्याक्षीकरण की दरख्वास्त पँर सुनवाई के लिए हाईकोर्ट की मंजूरी	इलाहाबाद	9 जुलाई 1954
हाईकोर्ट में सुनवाई शुरू	इलाहाबाद	20 जुलाई 1954
केरल–सरकार द्वारा निहत्थे मजदूरों पर गोली चलाए जाने के कारण मुख्यमंत्री से इस्तीफा माँगा।	नैनी सेन्ट्रल जेल	17अगस्त,1954
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के महामंत्री के पद और कार्य कारिणी से त्यागपत्र	नैनी सेन्ट्रल जेल	17अगस्त, 1954
जस्टिस देसाई और जस्टिस चर्तुवेदी के फैसले पर पुनर्विचार करके जस्टिस अग्रवाल ने डा0 लोहिया का मुक्त किया।	इलाहाबाद	28 अगस्त1954
नागपुर में पार्टी का अधिवेशन हुआ, खुले अधिवेशन में दिल्ली में कार्यकारिणी द्वारा पारित प्रस्ताव का अनुमोदन किया गया।	नागपुर	26,28नवम्बर1954

विषय	स्थान	समय
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के मुख्य पत्र 'जनता' में अशोक मेहता ने कांग्रेस के आबादी प्रस्ताव का स्वागत किया और घोषणा की कि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में और कांग्रेस में अब कोई अंतर नहीं है, डा0 लोहिया ने अशोक मेहता का विरोध किया।	नागपुर	26 जनवरी1955
बम्बई में मधु लिमये ने अशोक मेहता का विरोध किया और बम्बई के महापालिका के दस में से नौ सदस्यों ने मघु लिमये का समर्थन दिया।	बम्बई	फरवरी 1955
मघु लिमये को पार्टी की सदस्यता से मुअत्तल कर दिया गया।	—	अप्रैल 1955
पार्टी के नेताओं ने पुरी में मघु लिमये के 'युवक समारोह' में शामिल होने पर रोक लगाई, दिल्ली में राष्ट्रीय कार्य कारिणी की बैठक हुई जिसमें कार्य कारिणी ने उत्तर प्रदेश की कार्य कारिणी को बरखास्त कर दिया।	दिल्ली	4,5 जून 1955
उत्तर प्रदेश प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का विशेष अधिवेशन हुआ, जिसमें मघु लिमये ने उद्घाटन किया और लोहिया ने मघु लिमये का स्वागत किया।	गाजीपुर	11,12,13,जून1955

विषय	स्थान	समय
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी ने डा० लोहिया को भी पार्टी से मुअत्तल कर दिया।	–	10 जुलाई 1955
नई सोशलिस्ट पार्टी का हैदराबाद में स्थापना सम्मेलन।	हैदराबाद	28 दिसम्बर1955
सोशलिस्ट पार्टी का प्रथम अधिवेशन।	सिरोहा	28,31जनवरी1956
सोशलिस्ट पार्टी द्वारा एक लाख किसानों का जुलूस लोहिया के नेतृत्व में निकाला गया।	लखनऊ	मार्च 1956
जयप्रकाश नारायण को पत्र लिखा।	लखनऊ	2जून 1956
जय प्रकाश नारायण से भेंट की।	लखनऊ	15 जुलाई 1956
'मैनकाइन्ड' का प्रकाशन।	दिल्ली	अगस्त 1956
लोहिया –जयप्रकाश की दूसरी भेंट।	कलकत्ता	12 अगस्त 1956
हरिजनों का मंदिर–प्रवेश, सोशलिस्टों की गिरफ्तारी।	बनारस	सित+अक्टू01956
चकिया–चन्दौली से चुनाव लड़े और हारे।	चकियाचन्दौली	फरवरी 1957
सिविल नाफरमानी आंदोलन, पाँच हजार से ज्यादा सत्याग्रही जेल गये।	उत्तर प्रदेश	10 मई, 1957
देश में अंग्रेजो की मूर्तियां हटाने का आन्दोलन।	–	जून 1957
बिक्रीकर कार्यालय के सामने सत्याग्रह।	लखनऊ	जून 1957
सोशलिस्ट पार्टी द्वारा लोहिया दिवस मनाया गया।		16 नवम्बर 1957

विषय	स्थान	रामय
लोहिया का, लखनऊ जेल में जबरदस्ती अंगूठे का निशान लिया गया।	लखनऊ	30नवम्बर 1957
उच्च न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण दरख्वास्त।	लखनऊउ0न्या0	6 दिसम्बर 1957
फैसले में न्यायमूर्ति बेग और न्यायमूर्ति मुल्ला की राय में मतभेद हुआ।	लखनऊउ0न्या0	12दिसम्बर 1957
न्यायमूर्ति रघुवर दयाल की निगरानी अदालत में मुकदमा।	लखनऊउ0न्या0	13,16दिस01957
लोहिया की दरख्वास्त खारिज हो गई।	लखनऊउ0न्या0	17 दिसम्बर1957
सुप्रीम कोर्ट में मुकदमा दाखिल हुआ।	सुप्रीम कोर्ट	21दिस0 1957
डा0 लोहिया की रिहाई।		23दिस0 1957
द्रविड़ मुनेन्न कड़गम के नेता रामास्वामी नायकर के पास पत्र भेजा।	हैदराबाद	जनवरी 1958
डा0 अम्बेदकर को पत्र।	हैदराबाद	फरवरी 1958
जेल में डा0 लोहिया की रामास्वामी नायकर से भेंट।	हैदराबाद मद्रास	1958
'उर्वसीयम्' में कैद किये गये और छूटने के बाद यह संकल्प लिया कि साल भर बाद फिर यहाँ आयेगें।	नेफा	23 नवम्बर 1958
गीता के 'कर्मव्येवाधिकारस्ते' की एक नई व्यवस्था 'निराशा के कर्तब्य' के नाम से प्रस्तुत की।	बम्बई	दिसम्बर 1958
1954 में इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले के खिलाफ सरकार द्वारा सुप्रीम कोर्ट में अपील।	सुप्रीम कोर्ट	10अग0 1959

विषय	स्थान	समय
एथेन्स में आयोजित 'विश्व समाज सम्मेलन' में भाग लेने के लिए ग्रीस रवाना।		21 अक्टू0 1961
लोहिया द्वारा 'सप्त–क्रांतियों' की पुर्नव्याख्या एवं गैर कांग्रेसवाद का सुझाव।		नवम्बर 1961
1962 से चुनाव की तैयारी।		दिसम्बर 1961
जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ फूलपुर क्षेत्र से चुनाव लड़े ओर चुनाव में हारे।	फूलपुर	जनवरी 1962
सोशलिस्ट पार्टी का गोरखपुर में शिविर	गोरखपुर	11,15,जून 1962
हैदराबाद में तीसरा 'अंग्रेजी हटाओं' सम्मेलन।	हैदराबाद	12,14,अक्टू,1962
भारत पर चीन का आक्रमण, लोहिया ने देश का दौरा किया कांग्रेस सरकार को 'राष्ट्र की शर्मनाक सरकार' घोषित किया।	—	20 अक्टूबर,1962
'हिमालय बचाओ' आंदोलन की तैयारी, भारत के राष्ट्रपति द्वारा उद्घाटन।	पटना	अक्टूबर 1962
उत्तर प्रदेश विधान सभा में समाजवादी और प्रजा समाजवादी विधायकों का एक पार्टी के रूप में संगठित होना।	लखनऊ	13 दिसम्बर1962
समाजवादियों का छठा सम्मेलन।	भरतपुर	28,31दिस0 1962

विषय	स्थान	समय
समाजवादी पार्टी की राष्ट्रीय समिति और प्रजा समाजवादी पार्टी की मिली जुली बैठक।	दिल्ली	जनवरी 1963
समाजवादियों और प्रजासमाजवादियों की मिली जुर्ली बैठक एकता का आहवान।	महाराष्ट्र	22 फरवरी 1963
'उर्वसीयम्' का दौरा और ऑखों देखा हाल का वर्णन।	नेफा	12 मार्च 1963
उत्तर प्रदेश की विधान सभा से समाजवादी विधायकों को निकाले जाने की आलोचना।	लखनऊ	22 मार्च 1963
फर्रूखाबाद क्षेत्र से कांग्रेस प्रत्याशी डा0 केशकर के पराजित करके संसद में प्रवेश।	फर्रूखाबाद	मई,जून 1963
संसद में नेहरू के प्रति अविश्वास के प्रस्ताव की योजना।	नई दिल्ली	17अगस्त 1963
संसद में दिया गया प्रथम भाषण, 3आना बनाम 12 आना की बहस।	लोकसभा	23 अगस्त 1963
प्रजा सोशलिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियों के विलयन की बात शुरू करने की पहल।	नई दिल्ली	अक्टूबर 1963
गैर कांग्रेसवाद के सिद्धांत की व्याख्या।		नव0,दिस01963
प्रसोपा की कार्यकारिणी ने अशोक मेहता के पार्टी से निकालने का फैसला लिया।		जनवरी 1964

विषय	स्थान	समय
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी ने सोशलिस्ट पार्टी द्वारा प्रस्तावित बिना शर्त एकता के प्रस्ताव का स्वागत किया।	दिल्ली	फरवरी 1964
'जनवाणी' दिवस का आयोजन, प्रदर्शन में प्रसोपा ने भाग नहीं लिया।	दिल्ली	13 मार्च 1964
विश्वव्यापी दौरे के लिए प्रस्थान।	दिल्ली	16 अप्रैल 1964
मिसीसिपी राज्य के जंक्शन गांव के एक होटल में रंगभेद के खिलाफ सत्याग्रह, विश्वव्यापी हलचल, लोहिया की गिरफ्तारी।	अमेरिका	17 मई 1964
प्रधानमंत्री पं० नेहरू का निधन, लोहिया का वक्तव्य।	अमेरिका	27 मई 1964
लंदन के 'महात्मा गांधी हॉल' में भारतीय छात्रों के बीच का ओजस्वी भाषण।	लंदन	12 जून 1964
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों की बैठक।	नई दिल्ली	7,8 मई 1964
'संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी' की विधिवत् घोषणा।	दिल्ली	6 जून 1964
लोहिया और सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों के खिलाफ प्रसोपा घटक की कटु आलोचना।	—	अगस्त 1964

विषय	स्थान	समय
संसोपा का सम्मेलन, डा0 लोहिया का सम्मेलन में न जाना, अशोक–मेहता और कांग्रेस समर्थकों का संसोपा से अलग होना।	वाराणसी	29,31जन01965
कच्छ पर पाकिस्तान का आक्रमण और लोहिया की प्रतिक्रिया, समाजवादियों द्वारा कच्छ में सत्याग्रह।		19मई 1965
पटना बंद का आयोजन तथा 25 नवम्बर को संसद का घेराव करने की घोषणा, गिरफ्तारी।	पटना	9अगस्त 1965
सुप्रीम कोर्ट में अपने मुकदमें पर बहस।	सुप्रीमकोर्ट	26अगस्त 1965
ताशकन्द सुलह और लाल–बहादुर शास्त्री की मृत्यु।	ताशकन्द	10जनवरी 1966
बत्सर में आदिवासियों पर किये गये जुल्म के खिलाफ संसद में जोशीला भाषण।	लोकसभा	18मार्च 1966
कलकत्ता में पुलिस हिंसा का विरोध।	कलकत्ता	मार्च 1966
12 जुलाई 1866 से शुरू होने वाले उ0प्र0 बंद के सिल–सिले में गिरफ्तार।	लखनऊ	10 जुलाई 1966
गैर कांग्रेसवादी आंदोलन के लिए आहवान तथा आम चुनाव की तौयारी।	इलाहाबाद	1967
आम चुनाव में 'मुस्लिम पर्सनलला' के खिलाफ डा0 लोहिया का जिहाद और फर्रूखाबाद संसदीय क्षेत्र से केवल 400 मतों से जीतकर संसद सदस्य चुने गये पूरे हिंदी भाषी क्षेत्र में सरकार का गठन।	फर्रूखाबाद	1967

विषय	स्थान	समय
भारतीय विदेश नीति में संराद में भाषण।	लोक सभा	17 जुलाई 1967
दलाईलामा के पक्ष में ओर चीन के विरोध में संसद में भाषण।	लोकसभा	16 सितम्बर 1967
संसद में अंतिम भाषण।	लोकसभा	12 अगस्त 1967
विलिगंटन अस्पताल में भर्ती।	दिल्ली	28 सितम्बर 1967
निधन।	दिल्ली	12 अक्टूबर 1967

भारतीय नारी तथा तुलसी के प्रति डा0 लोहिया के विचार

रामायण मेला के प्रवर्तक डा0 लोहिया यमुना को राग और रस वाली नदी मानते थे सरयू को मर्यादा की और गंगा को भक्ति की। वह यह मानते थे कि तुलसीदास एकमात्र ऐसे कवि हैं जो नारी को आदर देना जानते थे। वह नारी की पीड़ा के भी सहभागी थे। वह राम भक्त तुलसीदास को बहुत बडा कवि मानते थे। वह जयन्त के कथा प्रसंग की एक चौपाई पर मुग्ध थे।

एक बार चुनि कुसुम सुहाये, निज कर भूषण राम बनाये।
सीतहिं पहिराये प्रभु सादर, बैठे फटिक शिला पर सुन्दर।।

वह मानते थे कि पत्नी को सादर पहनाने की बात कोई छोटा कवि नहीं लिख सकता। पत्नी को आदर देने की बात तुलसीदास जैसा महान् कवि ही कर सकता है। प्रेमिका के लिए तो अपने हाथ से भूषण बनाने की बात बहुत मिलती है। पर पत्नी को पति आदर से पहनायें, ऐसा प्रसंग कहीं नहीं मिलता। प्रेमिका तो विशेष है। पत्नी सामान्य जीवन की सहचरी। असली कवि की परख इस सामान्य पद में विशेष भाव पैदा करने में होती है। लोहिया रामराज्य के स्थान पर सीताराम राज्य को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं औरतों का महत्व बढे।

इतिहास पुराणों के ज्ञाता तथा भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में अनुरोग रखने वाले चिंतक

डॉ0 लोहिया की जीवनी केवल तिथियों की श्रखला नहीं है। साथ ही वह काल का सपाट रूप भी नहीं हैं। उसमें इतिहास, पुराण, जीवन के क्षणों के यर्थाथ के साथ जीने का संदेश है। यहीं नहीं इन सबके जीवन रूप में जीवन के प्रवाह का गतिशील दर्शन है। अपने

साथ इन सब तथ्यों को जोड़कर कैसे जिया जाय, इसका भी संदेश है। यह सारा इतिहास या पुराण काल–चक्र की किताब नहीं है। वह पोथी या संग्रहालय की चीज भी नहीं हैं। वह जब सरयू से अपना सम्बंध स्थापित करते थे, या भारत की नदियों, पहाड़ों या वनों के साथ रामात्मक सम्बंध की बात करते थे, या शकुन्तला, कालिदास, वाल्मीकि, वशिष्ठ की चर्चा करते थे। तो वह इस सबको केवल कालखण्ड के पात्र के रूप में नहीं लेते थे। वह इस सम्पूर्ण विरासत को अपने जीवन के साथ जीवंत रूप में जुड़ा हुआ देखते थे। उनको वह अपनी प्रत्येक सांस में जीते थे। कभी–2 कहते थे– " मैं सरयू तट में जन्मा हूँ। मेरी माँ मिथिला की थी, मेरा सम्बंध इन दोनों भूखण्डों से है, श्रीराम की जन्मभूमि से और माँ सीता की जन्मभूमि से सरयू मिथिला का यह सम्बंध वह महत्वपूर्ण मानते थे। निराश का कर्तव्य करते हुए वह यह भी कहते थे, कि सरयू और मिथिला का संयोग ही परिवर्तन लायेगा।

लेखक के रूप में

सन् 1933 में 'मद्रास' में 'हिन्दू' पत्रिका में पहला लेख प्रकाशित सन् अगस्त 1942 में भूमिगत हालत में इनकी प्रथम पुस्तिका 'जंगजू आगे बढ़ो' का प्रकाशन हुआ। सितम्बर 1942 में इनकी दूसरी पुस्तक 'मैं आजाद हूँ' का प्रकाशन हुआ। अक्टूबर 1942 में इनकी तीसरी पुस्तक 'करो या मरो' का प्रकाशन हुआ। 'कांग्रेस सोसलिस्ट' पत्रिका का सम्पादन किया। इस पुस्तकों ने जनता में उत्साह भर दिया।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण

26 दिसम्बर 1962 में नागार्जुन सागर के एक भाषण में डॉ0 लोहिया ने कहा था, " लोग मेरी बात सुनेंगे लेकिन मेरे मरने के बाद ।यह विश्वास और आत्मनिष्ठा डॉ0 लोहिया को अपनेक्षण के यर्थाथ के पारदर्शी दर्शन से मिलती थी। इसी त्रिकाल दर्शन में उन्हें जीवन और मृत्यु का अनुभव केवल एक घटना के आदि अंत के रूप में होता था। काल के प्रवाह के प्रति उनका सरल भाव था। इसीलिए वह स्थिर जीवन के समर्थक नहीं थें। वह जीवन के निरंतर प्रवाह में ही अढिंग विश्वास रखते थे। वह उस जीवन के समर्थक थे जो काल गति के साथक्षण से क्षण तक अविरल और निरन्तर भाव से प्रवाहित होता रहता हैं। वह काल के इस निरंतर प्रवाह में ही यह सत्य देखते थे कि ' मेरी बात सुनेगें, लेकिन मेरे मरने के बाद।

कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष की प्रधानता

डॉ0 लोहिया ने इतिहास की मुर्दा तिथियों से कहीं अधिक बल, भव पक्ष पर दिया है। एक बार राम की ऐतिहासिकता के विषय में जब लोगों ने प्रश्न किया तो डॉ0 लोहिया ने कहा था– "राम का जन्म हुआ था या नहीं, महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है। महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि राम

का नाम लेकर करोड़ों लोग जीते हैं। अपने सुख में उसको भागीदार बनाते हैं। दुःख में भी उसी के सहारे जीते हैं।" राम का यह भावसत्य इतिहास सत्य से ज्यादा मूल्यवान है। डॉ0 लोहिया इसी विश्वास के साथ जीते थे। वह इतिहास में भी मानव–पुरूषार्थ के साथ उसकी जिजीविषा को रेखांकित करते थे।

भूमिगत जीवन में लोहिया नदियों के नाम से जाने जाते थे।

डॉ0 लोहिया

सम्पादक के रूप में

लोहिया ने विदेश से लौटकर कलकत्ते से अंग्रेजी में 'कांग्रेस सोशलिस्ट' निकाला। उसका संपादन वे स्वयं करते थे। यह साप्ताहिक पत्र था। बाद में यह बम्बई स्थानान्तरित होगया । इसमें अ ने करीब 42 लेख लिखे थे।

सन् 1956 में लोहिया ने अपने प्रधान सम्पादकत्व में अंग्रेजी में 'मैनकाइन्ड' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन हैदराबाद से प्रारंभ किया, बाद में दिल्ली से निकलने लगा।

समाजवादी विचारों के साथ–2 अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर, विश्व मानववादी विचार भी पत्रिका में छपने लगे। ग्राम पंचायत से लेकर विश्व सरकार की पूरी कल्पना इस पत्र में साकार हो गई।

हिन्दी में 'जन' का प्रथम प्रकाशन कलकत्ता से श्री बालकृष्ण पुप्त की दखरूप में हुआ। बाद में यह भी दिल्ली चला गया। 'जन' में समाजवादी विचारों की प्रखरता उभर कर आयी डॉ0 लोहिया ने इसके माध्यम से हिन्दी भाषा –भाषी जनता में अपने विचार स्तर पर फैलाये। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार भी इस पत्रिका से जुड़े।

बाद में "चौखम्भा" नामक एक साप्ताहिक पत्र भी हैदराबाद से प्रकाशित किया गया। 'संघर्ष' समान ही यह समाचार प्रधान पत्र था। लोहिया की मृत्यु के बाद यह भोपाल, फिर इन्दौर से निकलकर बंद हो गया। डॉ0 लोहिया ने 'बंगलाकृषक' का भी सम्पादक किया था। इसी प्रकार ओरियंट पत्रिका के संपादन की भी सूचना है।

" लोहिया के समाजवादी मासिकों में पाठकों की चिट्ठियॉ भी खूब छपती थी। ऐसा नहीं कि चिट्ठियॉ इनमें छपे लेखों से संबद्ध होती थी। ये चिट्ठियॉ समाजवादी कार्यकर्ताओं के कर्म से सम्बंधित होती थीं। लोहिया के भाषण महत्वपूर्ण पत्र –व्यावहार आदि होते थे। इनकी भाषा सरल किन्तु अरबी फारसी से लदी नहीं होती थी।डॉ0 लोहिया के कुछ शब्द प्रयोगों को छोड़कर भाषा लोक की ही होती थी। सामान्य तत्सम, सामान्य तद्भव।अरबी–फारसी

के सहज शब्द भी। चौखम्भा की भाषा – सरकार को रोटी सा उलटते पलटते रहो। अपने आप में विश्वास पैदा करो। नये वित्तमंत्री ने संसद में घोषणा की कि अनिवार्य जमा योजना केवल आयकर देने वालों पर लगेगी और स्वंय नियन्त्रण ढीला कर दिया गया। ' जन की भाषा कई प्रदेशें में जहाँ कांग्रसी सरकारें बनी हैं, उनके जल्दी ही टूटने की सम्भावना है। केन्द्र में भी कांग्रेस सरकार का भविष्य अनिश्चित है। समाजवादी आंदोलन के बिखराव ने इन सभी पत्रों को समाप्त कर दिया।''

राजनेता के रूप में

डॉ0 लोहिया के राजनितिज्ञ जीवन के विविध सोपान

भारतीय व्यक्तित्व की कमजोरी पर प्रहार – यह भारतीय जीवन की कैसी विडम्बना है कि मानसिंह जैसे मुगल परस्त व्यक्ति को लोग उसके जीवन –काल में पूजते हैं, और महाराणा प्रताप जैसे चरित्रवान और दृढ़ प्रतिज्ञ की पूजा उसके मरने के बाद होती है। डॉ0 लोहिया की इस उक्ति से पहले तो लोग चौंकते थे, पर जब गहराई से सोचते थे तो उनके इस कथन में निहित भारतीय चरित्र की कृत्रिमता समझ में आ जाती थी, मानसिंह की निन्दा करने वाले लोग उसके वैभव और शक्ति आतंक में आकर उसके मुंह पर ठकुर–सोहाती कहते थे और पीठ पीछे भी निन्दा करने की हिम्मत नहीं करते थे। उसी मेवाड़ के जंगलों में महाराणा प्रताप अपने बच्चों को घास की रोटी खिलाकर जीवन निर्वाह कर रहे थे। राणा प्रताप अपने जीवन भर उपेक्षित रहे। अपने जीवन –काल में उन्हें कोई भी खुलकर प्रशंसा करने वाला नहीं मिला, पर उनके मरने के बाद उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा होने लगी। जीवन काल में नाम भी न लेना और मरने पर प्रशस्ति गाना, यह भारतीय चरित्र की विडम्बना है। भारतीय जन मानस की यह कमजोरी उन्हें आजीवन खटकती रही।

जीवन काल में आतंकवश वैभव की पूजा करना और भयवश प्रखर तपस्वी की प्रशंसा करने से डरना भारतीय व्यक्तित्व की कमजोरी है। डॉ0 लोहिया मानते थे कि यह मानसिक गुलामी का प्रतीक है। वह इसे निनदनीय मानते थे। अनको भारतीय चरित्र का यह रूप सदैव खटकता था।[15]

ओजस्वी वक्ता

सन् 1928 में विषय समिति में लोहिया ने इतना ओजस्वी भाषण दिया कि सारे बंगाली विद्यार्थी उनके भक्त हो गये। स्वयं जवाहर लाल नेहरू, लोहिया के भाषण से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने एक प्रकार से लोहिया को अपने वृत्त में ले लिया।

अन्याय का प्रतिकार प्रारम्भ

अन्याय विरोध के विचार ने लोहिया के आन्दोन को व्यापक वना दिया। क्योंकि अन्याय व्यापक था। इसमें अनेक क्षेत्रों अनेक रूचियों तथा अनेक समस्याओं के लोग शामिल हुए। अन्याय विरोध दर्शन ने सनातन क्रांति का मार्ग खोल दिया। रावण अगर सनातन है तो राम को भी सदा धरती पर रहना चाहिए। एक क्षण के लिए भी उन्हें स्वधाम नहीं लौटना है। क्योंकि कटने के वाद भी रावण के सिर बार–बार जुड जाते हैं नये हो जाते हैं। उसके दृव्य में मोहनी सीता का बास है। इसलिए मोह के हृदय पर प्रहार आवश्यक है। सर्वोदय आन्दोलन ने लोगों के मन से यही मोह दूर करने का प्रयत्न किया और लोहिया ने इस पक्ष का समर्थन भी किया।

अन्याय का प्रतिकार

जर्मनी के 'परीले रोल्कर' ने जब लोहिया से भारत में नाजीवाद के प्रचार के संभावना पर बात की. तो लोहिया ने दो टूक शब्दों में कहा कि तुम्हारा सोचने का तरीका तो आदमी को जाति में बॉटकर वेश की श्रेष्ठता को प्रमुख बनाना है। इसलिए तुम कभी मानव मात्र या विश्व मानव या विश्व बन्धुत्व की बात सोंच ही नहीं सकते। तुम लोग अपने को श्रेष्ठ मानते हो, और हिन्दुस्तान और काले रंग वालों को निष्कृष्टतम मानते हो। आदमी–आदमी के बीच यह बॅटवारा भारतीय चिंतन के विपरीत है। उन्होंने कहा कि हम लोग तो विश्व मानव और विश्वबंधुत्व में विश्वास करने वाले हैं। हमारा तुम्हारा साथ नहीं हो सकता। नीत्शे दर्शन को स्वीकार करना भारत के आत्म सम्मान के विपरीत है। कहते हैं कि डॉ० लोहिया की स्पष्ट बात से परीले बड़ा प्रसंन्न हुआ। डॉ० लोहिया को कट्टर राष्ट्र अभिमानी समझकर उनसे बडा स्नेह दिखाता रहा। ऐसे कई अवसर आये जब लोहिया ने भारत में ही नहीं विदेश में भी निर्भीकता से अन्याय का प्रतिकार किया।

ऐसे ही एक घटना का वर्णन डॉ० साहब ने किया था, जब जर्मनी गुमनाम शहीदों के स्मारक पर फूल मालाएं चढ़ाई जा रही थीं उस अवसर पर नात्शी पार्टी वालों ने भी मालायें चढ़ायी। कोई फौजी या नेवी का अफसर जब मालायें चढ़ानें आया तो उसने नात्सी पार्टी की मालायें छॉट–छॉट कर निकाल फेंकी। इस पर बड़ा विरोध हुआ, लोहिया भी उस विरोध में खडे थे, उन्हें खड़ा देखकर किसी नात्सी पार्टी वाले ने लोहिया को उस विरोध की जगह से हट जाने को कहा। लोहिया ने उसे बहुत कड़ा जवाब देते हुए कहा।

"अन्याय के विरूद्ध खड़े होने का हक सबको है, चाहे वह तुम्हारी पार्टी का हो या न हो। रही बात यहॉ खडे होने की तो यह जमीन तुम्हारी नहीं है। जितनी जमीन पर मैं खंडा हूँ

वह मेरी है। मैं यहीं खडा रहूँगा। बात किसी बडे नीब्शे नेता तक पहुँची, वह स्वयं आकर नाजी पार्टी की तरफ से क्षमा मॉगी। लोहिया ने कहा "मैं तुम्हारी ार्टी का नहीं हूँ पर तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है, इसलिए उस अन्याय के विरोध में मैं यहॉ खड़ा हूँ।[16] लोहिया के साहस, चरित्र एवं संघर्ष शील व्यक्तित्व से वह नात्सी बडा प्रभावित हुआ। उसने लोहिया को बहुत आदर और सम्मान दिया। अन्याय के प्रति अकेले खडे होने का साहस लोहिया में अंतिम सांस तक था।

लोहिया में जहॉ अन्याय के खिलाफ विरोध करने का अदम्य साहस था, वहीं अपनी गलतियों का एहसास होने पर क्षमा मॉगने में भी उन्हें तनिक संकोच या डर नहीं लगता था। बहुत से लोग डा0 लोहिया को बड़ा जिद्दी व्यक्ति मानते थे। लेकिन डॉ0 लोहिया जिद्दी नहीं थे, वह तत्काल हर प्रकार के अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने वाले व्यक्ति थे। अमरीका में उन्होंने रंग भेद की लड़ाई लड़ी, उन्होंने जानबूझकर उस अमानुषिक कानून को तोड़ा। कुछ लोगों ने कहा कि उनके इस तरह कानून तोडने से क्या रंगभेद दूर हो जायेगा। किन्तु उनकी निंदा करने वाले यह नहीं समझ पाये कि अन्याय का विरोध हमेशा जीतने के लिए नहीं, कभी–कभी हारने के लिए भी अन्याय के विरूद्ध लडाई लडी जाती है। मूल्य हार–जीत का नही है। मूल्य है उस नैतिक शक्ति का जो उस अन्याय के खिलाफ आवाज लगाकर उस क्षण के यर्थाथ को बेनकाब करने की क्षमता प्रदान करती है, और आतताई के दुःसाहस को बिना चुनौती दिये नही जाने देती।

कांग्रेस के विदेश मंत्री के रूप में डॉ0 लोहिया

इसी रूप में डा0 लोहिया ने 'हिमालय–नीति' की व्याख्यां की थी। इसी कार्य काल में रूस और अमेरिका दोनों भारतीय संदर्भ में कितने अप्रासंगिक हैं। इसकी व्याख्या प्रस्तुत की। नेहरू इन विचारों से बहुत प्रभावित थे। लेकिन लोहिया की इन बुनियादी नीतियों का रूप जो जवाहर लाल ने आजाद भारत के विदेश मंत्री के रूप में प्रस्तुत किये, उससे लोहिया दुःखी थे। उनका कहना था कि यह अमरीका ओर रूस को अप्रासंगिक बनाने के बजाय उनकी बारी–बारी से सेवा करने वाली नीति है। जवाहर लाल की विदेश नीति को डॉ0 लोहिया राष्ट्रीय यथार्थ पर आधारित नहीं मानते थे। उसे वह विश्व बंधुत्व पर आधारित नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में जवाहरलाल की विदेश नीति 'विश्वयारी' वाले चुटकुलों की विदेश नीति के सिवा कुछ भी नहीं है।

(16) डा0 राममनोहर लोहिया, लेखक लक्ष्मीकांत वर्मा, प्रकाशक शैलेश कृष्णा निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग।

विश्व शन्ति के समर्थक

डॉ0 लोहिया ने ' शस्त्रों का नाश होगा ' शीर्षक से एक लेख लिखा था, जिसमें कुछ अहम् सवालों पर देश का ध्यान खींचा। उन्होने कहा अमरीका के हवाई –जहाज चीनी शहरों में बम फेंकते हैं, और जर्मन गोलियों द्वारा जापानी लोग चीनियों को मार रहे हैं– इसका क्या मतलब है?

स्पेनी प्रजातंत्र को हिटलर के भेजे हुए सैनिको ने ध्वस्त किया था। अपने देश में बनाई हुई गोलियों और सामग्री से उनका ध्वँस किया गया । जर्मनी ने ग्रीस को युद्ध–सामग्री दी, बदले में तमबाकू ली। अभी भी अपने देश की भूमि सेना में खिदमत करने वाले बहादुर और देशभक्त सिपाहियों की उन्हीं के देश में बनाये हुए हथियारों से हत्यायें हो रही हैं, चेकोस्लोवाकिया और पोलैण्ड के हथियारों से जो कि ज्यादा पैमाने पर ब्रिटिश या फ्रेंच कारखानों में बनाये गये हैं, जर्मनी के कब्जे में है। संभव है कि ब्रिटिश के पास जर्मनी में बनायी हुई युद्ध सामग्री काफी हो। कम या अधिक मात्रा में सभी हत्यायें जंगली है , लेकिन यह हत्यायें तो अत्यंत घृणास्पद हैं। दोस्त एक दूसरे की हत्या कर रहे हैं। राष्ट्र अपने ही नागरिकों का वध कर रहें हैं। यह कितनी बेकली उत्पन्न करने वाली बात है, यह आश्चर्यजनक है कि भद्र और बुद्धिजीवी भारतीय शस्त्रों की आरती उतार रहे हैं। वे पागल हैं ऐसे शस्त्रों का खात्मा हो।

डॉ0 लोहिया अकेले व्यक्ति थे, जो उन दिनों गाँधी के विचारों के अनुसार युद्ध का खुलकर विरोध कर रहे थे।

विश्व– नागरिकता से सम्बंधित विचार

लोहिया ने चार तत्वों का उल्लेख किया, जिससे विश्व –नागरिकता स्थापित हो सकती है। वे तत्व इस प्रकार है।

1. हर देश अपने यहा लगी विदेशी पूँजी को नष्ट कर ले।
2. किसी भी व्यक्ति को संसार में बसने और आने–जाने का अधिकार मिले।
3. दुनिया के सारे देशों को राजनैतिक आजादी दी जाय।
4. हर व्यक्ति को जन्म से ही विश्व नागरिक माना जाय।

गाँधी जी को डॉ0 लोहिया के ये विचार बहुत पसन्द थे, लेकिन तत्काल उन पर कार्यवाही करने में वह अपने को असमर्थ पा रहे थे। फिर भी डॉ0 लोहिया के उन विचारों को उन्होंने हरिजन' में छापा। उस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने इसका पूर्ण समर्थन भी किया।

हैरिस बोर्फोड ने लोहिया के बारे में लिखा –''एक वैचारिक क्रांति जो राष्ट्रवाद को ढीला करती है। उसने पूरे विश्व के लिए स्वतंत्र नागरिकता की कल्पना की। जो सारी दुनिया को अपना घर समझे।''[17]

(लोहिया एण्ड अमरीका मीट प्रव 24)

लोहिया कथनी, करनी की एकता में विश्वास करते थे, वह प्रथम समाजवादी हैं जो कालों की सहानुभूति में विदेशी राज्य (अमेरीका) में जेल गये।

स्वतंत्र वाणी पर अनुशसित कर्म

डॉ0 लोहिया ने उत्तर प्रदेश के गाजीपुर अधिवेशन में कहा था–'' हमारे देश में वाणी पर अनुशासन की कार्रवाई होती है, कर्म पर नहीं होती। पूरे देश में अनुशासन का अर्थ है, अनुशासित वाणी एवं मर्यादाहीन कर्म की छूट।'' डॉ0 लोहिया ने यह भी कहा कि ' जनतंत्र तभी सफल हो सकता है, जब वाणी की पूंण स्वतंत्रता हो और कर्म पर अनुशासन हो।' डॉ0 लोहिया ने बोलने की पूरी आजादी का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि अनुशासन कर्म पर होना चाहिए न कि वाणी पर। जब आदमी केवल बोलता है, जो मन में आता है, बोलता है तो वह सोचने समझने का अवसर देता हैं इसलिए उसको पूरी आजादी होनी, लेकिन कर्म में हमेशा अनुशासन की कड़ााई रहनी चाहिए, क्योंकि कर्म बिना अनुशासन के चल नहीं सकतां कभी उसे कर्म के परिणाम भोगने पड़ते हैं।

जनान्दोलन

1955 में हैदराबाद के अधिवेशन में डॉ0 लोहिया ने स्पष्ट शब्दों में एक जनान्दोलन की घोषणा की । चौखम्भा राज, कथनी और करनी, गाँधीवादी दृष्टि की विशद व्याख्या की गई। समाजवादी आन्दोलन की भारत सरकार के खिलाफ क्या दृष्टि हो, इसकी थीसिंस बनी। सर्वधा नये मार्ग पर चलकर आजादी और विश्व नागरिकता के सपनों को पूरा करने का संकल्प बना।

विकेन्द्रीकरण – लोहिया ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात उठाई और कहा कि सत्ता का स्रोत का स्रोत केन्द्र नहीं, गाँव की पंचायतें होनी चाहिए। चौखम्भा राज की आधारशिला ग्राम पंचायतें हैं।फिर जपनद, जिले और फिर केन्द्र या राष्ट्र।आगे चलकर इसमें एक खम्भा और जुड़ेगा, यह पांचवा खम्भा होगा विश्व सरकार का।

निराशा का कर्तव्य– दिसम्बर 1958 में बम्बई एक में भाषण दिया। इस भाषण में पहली बार उन्होंने ' निराशा के कर्तव्य ' पर अपने विचार व्यक्त किये। ' निराशा के कर्तव्य ' में

(17) समाजवाद– डा0 युगेश्वर, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग।

उन्होंने गीता के निष्काम कर्म की एक नयी व्याख्या की। लोहिया को पूरे देश की स्थिति देखकर ऐसा लगा कि चारों ओर एक विचित्र प्रकार की उदासीनता है। निष्क्रियता के साथ अनाभिज्ञता देश में छाई है। इन सबको –एकदम दूर नहीं किया जा सकता। उसे दूर करने कि लिए तो निरनन्तर कार्यरत रहना पड़ेगा।

निराशाओं के बावजूद कर्मरत रहने की स्थिति की विषद व्याख्या करते हुए उन्होंने कहां " कामनारहित अर्थात् निष्काम कर्म करना संभव नहीं है। कामना रहित कर्म करना स्वार्थ हो जाता है। निराश रहना और फिर भी कर्तव्य करते जाना संभव है। तात्कालिक असफलता के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।"
' निराशा के कर्तव्य ' में निष्काम होने पर नहीं, निराश होने की विवशता पर बल हैं।

जाति भाषा तथा दाम का आन्दोलन

1958 में ही लोहिया ने कई और आन्दोलन चलाये। 'हिमालय बचाओं', 'फावड़ा वोट और जेल' का आन्दोलन तो था ही। लोहिया ने 1958 में ही जाति, भाषा तथा दाम के सम्बंध में विभिन्न कमेटियाँ बनाई। ' जाति तोड़ो ', अंग्रेजी हटाओं ', दाम बाँधो ' समिति बनाकर उनके द्वारा उन्होंने सार्वजनिक जीवन में नयी क्रान्ति और नयी व्यावस्था का आन्दोलन शुरू किया। इन आन्दोलनों से समाज में नयी जाग्रति आई। डॉ0 लोहिया ने सामंती शोषण के विरूद्ध इन आन्दोलनों की उभारा। मद्रास में भाषा नीति को लेकर उनके ऊपर आम–सभा में पत्थर फेंके गये। अंग्रेजी भाषा को लेकर उनकी कड़ी आलोचनायें हुई।' दाम नीति और जाति ' नीति को लेकर स्वंय उनकी पार्टी वालों को लगा जैसे लोहिया किसी प्रकार का संयुक्त मोर्चा बनाना चाहते हैं। उनके अपने ही लोग उनके उद्‌देश्यों को समझ नहीं सके। कटु आलोचनायें करने लगे। पार्टी के बाहर के आलोचक समझते थे कि लोहिया की क्रान्तिकारिता सस्ते नारों में बदल रही हैं। पार्टी के भीतर लोग समझने लगे कि लोहिया निराश हो गये हैं। कोई यह नहीं समझ पाया कि लोहिया बुनियादी क्रान्ति की ओर बढ़ रहे हैं।

सांस्कृतिक आन्दोलनों की परिकल्पना

वस्तुतः 1957 से ही डॉ0 लोहिया की मूल भावना भारत के जनजीवन के उन मूल स्रोतों को जगाना था, जो हजारों वर्षो से सुप्त पड़ी थी। उनको केन्द्र में रखकर ही डॉ0 लोहिया ने कई सांस्कृतिक आनदोलनों की कल्पना की। उन्होंने 1950 –60 में रामायण मेला आयोजित करने का एक कार्यक्रम बनाया। फरवरी 1961 में वह यह मेला आयोजित करना चाहते थे।उस समय मेले के उद्‌देश्य की घोषण करते हुए उन्होंने कहां, " मेले के मुख्य उद्‌देश्य हो सकते हैं 'आनन्द' 'तुष्टि' 'संतोष' 'रस–संचार' और 'हिन्दूस्तानी को बढ़ावा'

रामायण मेला के अभाव में सांस्कृतिक और बोद्धिक शून्यता की स्थिति है। रामायण के साकार सगुन की पूर्ति किसी दूसरे धर्म–दर्शन से संभव नहीं है। भक्तों ने भारत की शास्त्रीय, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक सम्पदा को लोक या जनभाषाओं से व्यक्त किया हैं इन्होंने बड़े से वड़े परधर्मी आक्रमण की स्थिति में भी खड़ा रहने का साहस किया है। कुट और शून्य होने से बचाया है। संसार में रहकर संसार के दुश्चक्र से बचने का मार्ग बताया। भारत की भक्ति की दीर्घकालीन और पुष्ट काव्यात्मक परम्परा है। रामायण से एक साथ सबको भाषा, कविता, सौंदर्य, दर्शन और आत्मिक चेतना प्राप्त होती है। मात्र राजनितिक आन्दोलन मन की शांति नहीं बन सकते। प्रत्येक मन एक आंनदलोक, रहस्य की दुनिया भी चाहता है। रामायण उसका अवसर देता है। दुनिया में रहकर दुनिया से अलग। दुनिया की हताशा में जीकर दुनिया को सुखपूर्वक जिता देने का मार्ग रामायण ने दिया है। कोई भी देश, समाज सांस्कृतिक ओ काव्यात्मक चेतना के बिना नहीं रह सकता है। संतों, भक्तों की रचनाएं काव्यात्मक सौन्दर्य एवं दार्शनिक चिंता का महान आधार है। सगुण साकार मन को निर्गुण का विशाल आकाश भी चाहिए। जहॉ मन का पक्षी मुक्त क्रीड़ा कर सकें। डॉ0 लोहिया ने सही पहचान द्वारा भारत के सामूहिक जन को एक रास्ता बताया।

भारतीय संस्कृति में निब्वान होकर विश्व संस्कृति की परिकल्पना

डा0 लोहिया की दृष्टि सार्वभौमिक एवं सम्पूर्ण थी। वह केवल राजनीतिक नहीं थे। वह भारतीय संस्कृति संस्कृति में डूबे कर विश्व–संस्कृति की कल्पना करते थे। तथ्यात्मक इतिहास को अधिक महत्व नहीं देते थे। वह मिथकों, किंवदन्तियों, परम्पराओं और उत्सवों के माध्यम से इतिहास की तथ्यात्मकता को विश्लेषित करते थे। उन्होंने इतिहास को संस्कृति का अनुगामी बनाकर उसका नवीनीकरण किया।

उदाल विचार

21 अक्टूबर 1961 को एथेंस में ' विश्व समाज ' का एक सम्मेलन आयोजित था। डॉ0 लोहिया को उसमें आमंत्रित किया गया था। उस सम्मेलन में लोहिया के विचारों का बड़ा स्वागत किया गया। लोहिया का दिमाग साफ था। प्रेस वालों ने कहां "आप तो सिकन्दर के देश में जा रहे हैं" लोहिया ने छूटते ही कहां– "नहीं मैं सुकरात के देश में जा रहा हूँ।"

सप्तक्रांति की व्याख्या

एथेंस के विश्व समाज सम्मेलन में लोहिया के विचारों को लोगों ने बड़े ध्यान से उन्होंने सप्तक्रांति की व्याख्या की और कहा कि जब तक यह सातों क्रान्तियों पूर्व नहीं होती, तब न तो विश्व में शांति स्थापित हो सकती है , और न ही समाज में समता । विश्व को

युद्ध के आंतक और हथियारों के अभिशाप से मुक्त कराने के लिए ' सप्तक्रांति ' की विशेष आवश्यकता है ।

अमरीका और यूरोप के मशीनीकरण और यूरोप की चमक–दमक वाली संस्कृति की आलोचना करते हुए लोहिया ने कहा "यह ख्याल रहे कि अमरीका और यूरोप की चमक–दमक, मशीनी पुर्जो की अनोखी निपुणता पर टिकी हुई है। हमें डर इस बात से लगता है कि वे लोग गोरी चमड़ी वाले नहीं हैं, अपने मुल्कों में गोरी चमड़ी बालों की तड़क–भड़क की नकल तो कर रहे हैं, लेकिन मशीन पुर्जो के ज्ञान और उसकी निपुणता को पकड़ पाने में नितान्त असमर्थ हैं।"[18] वस्तुतः देश की मिट्टी और संस्कृति से जुड़कर ही मशीन के संस्कार बनते हैं, जो मशीनीकरण विदेशी उधारखाने पर होता हे, उसमें पर आश्रित होकर जीने और गुलामी की जकड़न की अनिवार्यता होती है। लोहिया गुलामी के इस नये रूप के खिलाफ थे।

राजनीति में विपक्षी दल की भूमिका

एथेन्स से लौटने के बाद लोहिया ने देश के सामने पहली बार यह विचार रखा कि भारत में एक विरोधी दल का गठन होना चाहिए। अनशक्ति का बिखराव जो छोटी –2 पाटियों के रूप में होता है, उसे एकत्र करके एक संगठित विरोधी दल के रूप में सत्ता के विरूद्ध खड़ा जरूरी हे। यह जनतंत्र की स्वस्थ परम्परा के लिए भी आवश्यक है।

दूरदर्शिता से परिपूर्ण विवेकशील व्यक्तित्व

जब भारत–सरकार के रक्षामंत्री तोपों को बनाने वाली फैक्टरियों में काफी पर्क –युलेटर बनवा रहे थे। प्रधानमंत्री 'हिन्दी–चीनी भाई–भाई' के नारे सें डूबे थे। तब लोहिया दस साल से लगातार भारत–सरकार को चेतावनी दे रहे थे।' हिमालय बचाओं ' आन्दोलन चलाकरउन्होंने देश को संभावित संकट से बचने के लिए एक हिमालय नीति बनाने का सुझाव दिया था।

पड़ोसी देश के प्रति दृष्टि साफ होनी चारिए। लेकिन लोहिया की बात कोई नहीं सुनता था। 20 अक्टूबर 1962 के दिन चीनी सेना ने भारतीय भूमि में आक्रमण करके, आसाम की सीमा से 80 मील दूर चीनियों ने अपने कैम्प गाड़ दिये थे, इस पूरे युद्ध में भारतीय सेना बुरी तरह हारी। चीनियों ने 'चीनी हिन्दी–भाई के भावुकतापूर्ण नारे की चिन्दियाँ उड़ा दी।

इस घटना ने लोहिया को सबसे ज्यादा चिंतित, दुःखी और उत्तेजित किया। 1949 में जब चीन ने तिब्बत को हड़पा था, और भारत –सरकार ने उसके प्रति कोई विरोध नहीं

---

(18) डा0 राममनोहर लोहिया, लेखक लक्ष्मीकांत वर्मा, प्रकाशक शैलेश कृष्णा निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग।

किया, तभी लोहिया ने चेतावनी के स्वर में कहा था कि भारत को चीन से सावधान रहना चाहिए। वह हमेशा नर्म गोश्त पर पंजे मारेगा। हिमालय बचाओं आन्दोलन भी उन्होंने छेड़ा था। जयप्रकाश और अन्य समाजवादी नेताओं को यह बात पसंद नहीं आई थी। लोहिया राजनीति के यर्थाथ को इतनी गहराई से जानते थे कि उनको स्पष्ट दिख रहा था कि तिब्बत के बाद चीन, हिन्दुस्तान को दबाने की कोशिश करेगा।

स्पष्ट वक्ता – 25 अक्टूबर 1962 के दिन राष्ट्रसंघ में भारतीय प्रतिनिधि ने चीन की सदस्यता के पक्ष में बड़ा जोरदार भाषण दिया। लोहिया को भारत सरकार की इस बेहयाई पर विशेष क्रोध आया। उन्होंने चीनी आक्रमण पर बालते हुए कहा " चीन हमारे देश पर हमला किए हुए है। युद्ध है। फिर भी भारत राष्ट्रसंघ में चीन की सदस्यता के लिए पैरवी करता है। कोई लाडला अपनी माँ के बलात्कारी के साथ अपनी माँ की शादी करवाने की इच्छा करें, यह कैसी बात है।"

सम्पूर्ण राष्ट्र का दौरा करने के बाद लोहिया ने कहा "भारत का मन सड़ चुका है, लेकिन क्या किया जाय? जो कुछ बदलाव होता है, ऊपर और मुलम्मा वाला होता है। असली मन दबा पडा रहता है। और हर बैठक मौके पर उभर आता है।

राजकीय ओर सेना के नायक झूठ बोलते हैं। हार का कारण है आज और पिछले हजार वर्षों से मन के अंदर मन में बैठा चोर, जीने की अत्यधिक लालसा।"

"तन्दुरूस्त जान अपने को बचाने के साथ दूसरों को बचाती है। सड़ी ज्ञान अपने को भी नहीं बचा पाती। वर्तमान सरकार इस सडी जान का एक बाहरी प्रकाश है।"

इस अवसर पर लोहिया ने अनेक कड़ी बाते कहीं।

डॉ0 लोहिया ने विश्व लंधुत्व, सत्यागृह सिविल नाफरमानी, विश्व न्यागरिकता, और विश्व चेतना के बारे में भारतीय चेतना का सही रूप प्रस्तुत किया।

शिक्षाशास्त्री के रूप में डॉ0 लोहिया

शिक्षा में आरक्षण के प्रति दृष्टिकोण

लोहिया ने हरिजनों, पिछड़ों स्त्रियों आदि के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण की बातें करते हुए स्पष्ट चेतावनी दी, इस बात की पूरी सावधानी रखी जाय कि इससे आज के हरिजन या शूद्र न हो जाय। उनके आरक्षण का उद्देश्य केवल उठाना है। गिराना नहीं।समता का उद्देश्य है, समस्तर पर लाना। समान स्वर बनाना।

किसी से बदला लेना या जलन शांत करना नहीं । इतिहास के कारण कोई दंडित नहीं हो सकता हैं। इसीलिए वे शिक्षा में आरक्षण के विरोधी थे। ऐसा न हो कि किसी भी जाति

या वर्ग का व्यक्ति शिक्षा से वंचित रह जाय। किसी को शिक्षा से रोकना कर अपराध है। शिक्षा से रोकने का कार्य जब भी, हुआ, बुरा हुआ। जब भी होगा बुरा होगा। समाज की ऐसी संरचना हो जिसमें अन्याय न हो। अन्याय को समाप्त करना हैं। अन्यायी को नहीं। जैसे वालक के हाथ से जहर छीनकर अभिभावक फेंक देते हैं। वैसे ही अन्यायी के हाथों से अन्याय का शस्त्र छीन लेना चाहिए। अन्याय रहित व्यक्ति समान सुविधा का अधिकारी है।"[19]

डॉ0 लोहिया ने 60 प्रतिशत भागीदारी का नारा दिया। इस 60 प्रतिशत में स्त्रियों और पिछड़े दोनों शामिल हैं। शेष 40 प्रतिशत को मुख्यतः अपनी अर्जित योग्यता से आता है। 40 प्रतिशत इसलिए कि शासन की योग्यता क्षीण न होने पाये। आरक्षण की सुविधा तो एक सहायता या ग्रेस मार्क जैसी हैं। इससे पिछड़ो का मनोबल बढ़ा। उनमें जागृति आई, उन्होंने राष्ट्रीय धारा में अपनी शक्ति और अस्मिता की पहचान की। सम्मानित एवं प्रभावशाली नागरिक होने के आत्मविश्वास ने उन्हें, नये सिरे से स्फूर्त किया। युगों से बैठे ह्रदयं खंड़ो और सूखी धमनियों में स्वस्थ रक्त का संचार हुआँ। मन से निरीहता और असहायता का मल मिट गया। भारतीय संविधान में प्रदत्त अधिकारों के बाद यह शंख ध्वनि नहीं थी। जो एक स्वस्थ और संपूर्ण भारत समाज के लिए निर्माणकारी स्वर है। भारत के पिछड़ो को एक चैतन्य राष्ट्रीय शक्ति के रूप में खड़ा करने के योगदान में समाजवादी की यह भूमिका स्मरणीय रहेगी।

अंग्रेजी के प्रति डॉ0 लोहिया के विचार

लोहिया अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध लड़ रहे थे। अंग्रेजी के विरूद्ध उन्होंने संघर्ष किया। किंतु वे एक भी अंग्रेज को मारने की बात नहीं करते। वे अंग्रेजी विरोधी नहीं थे। अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रति उन्हें वैसाही प्रेम था, जैसा अन्य भाषाओं के प्रति। वे केवल भारत में अंग्रेजी के सार्वजनिक प्रयोग के विरूद्ध थे। अंग्रेजी रहे। किंतु भारत की भाषाओं को दबाकर न रहे। उसका सार्वजनिक स्वरूप भारत में न रहे। भारत में अंग्रेजी का सार्वजनिक एवं सरकारी प्रयोग साम्राज्यवादी और सामती है। किंतु इंग्लैण्ड और अमरीका के लिए यह बात नहीं है। इसीलिए लोहिया किसी भी स्तर पर अंग्रेजी या साहित्य की निंदा या अपमान नहीं करते हैं। किंतु भारत के सार्वजनिक जीवन में अंग्रेजी का प्रयोग उन्हें एक क्षण के लिए भी वर्दाश्त नहीं है।

(19) समाजवाद, आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 लोहिया और जय प्रकाश की दृष्टि में, लेखक डा0 युगेश्वर, प्रकाशक अतुल बगाई, निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग।

विद्यालय सम्बंधी दृष्टिकोण

भारत के नागरिक को देशी मन की आवश्यकता है। देशी मन कौन्वेंट के स्कूलों और अंग्रेजी शिक्षा से नहीबनेगा। लोकतंत्र के सरकारी स्कूल और देशी भाषा ही देशी मन बना सकते हैं।

साम्राज्यवादी भाषा के प्रति लोहिया के विचार

लोहिया ने अंग्रेजी हटाने के लिए पांच महत्वपूर्ण काम सुझाए। सत्य, ईमानदारी, जनतंत्र और समाजवाद की रक्षा के लिए यह जरूरी हो गया है कि अंग्रेजी को फौरन सार्वजनिक इस्तेमाल से हटाया जाय।

(क) लोगों को समझा बुझाकर अंग्रेजी का सार्वजनिक इस्तेमाल बंद किया जाय।

(ख) ऐसा जनमत तैयार किया जाए कि अंग्रेजी के सभी दैनिक अखबारों का प्रकाशन बंद हो जाय।

(ग) राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश सरकारों को नोटिस दी जाये कि डाक–तार में अंग्रेजी का इस्तेमाल फौरन बंद करें।

(च) देशी भाषाओं को विकास का अवसर तभी मिलेगा, जब अंग्रेजी के दैनिक अखबार और टेलीप्रिन्टर मशीनें खत्म कर दी जाएं। इसे करने का ढ़ंग ठीक वैसा ही हो जैसा खादी के प्रसार के लिए गांधी की प्रेरणा पर लंकाशायर की मिलों के कपड़ों की होली जलाकर किया गया था। लगातार झकझोरने के बाद ही अंग्रेजी का नशा उतरेगा। (क्रंति प्र0 158)

" भारतीय संस्कृति के गर्भ में कुण्डल मारकर एक सांप बैठा हुआ है, जो जन्मना ऊँची जाति में परिवर्तित होकर सामंत भाषा अभिशाप रूप में भारत में प्राचीन काल से ही मौजूद रही है। जो केवल कुछ एक हजार लोगों के एकाधिकार में थी। शेष जनसमुदाय अपनी लोकभाषा में बोलता या लिखता था। कालिदास के नाटकों में सामंत दुष्यंत संस्कृत बोलता है, जबकि शकुन्तला और नौकर प्राकृत बोलते हैं। भारतीय इतिहास में लम्बे अरसे तक देश की आम जनता संस्कृत, फारसी या अंग्रेजी जैसी सामंत भाषाओं से पीड़ित रहीं है। सामंत भाषा, भूषा, भवन, और भोजन वाले कुछ हजार लोंगो ने आम लोगों के जीवन के रक्त संचार की गति को बुरी तरह अवरूद्ध कर दिया है, और उनमें हीनता की भावना इतना घर कर गई है, कि न तो वे देश के अंदरूनी शोषण के खिलाफ आवाज उठा पाये, और न विदेशी हमलों का ही मुकाबला कर सकें। लोकभाषा और सामंतभाषा का विलगाव भारतीय इतिहास की यह अद्भुतपरंतु दु:खद घटना है, जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। लोकभाषा और राजभाषा के बीच व्यवधान–रूप से सामंत भाषा हमेशा भारतीय संस्कृति के गलाघोंटू रूप में मौजूद रही हैं।"[20] (क्रांति प्र0 160)

(20) समाजवाद – डा0 युगेश्वर

देववाणी संस्कृत एवं लोक–भाषाओं के प्रति डा0 लोहिया के विचार

लोहिया के द्वारा भाषा का यह विभाजन मुख्यतः फारसी और अंग्रेजी को ध्यान में रखकर किया गया है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सामंत व्यवस्था दूसरे की उन्नति नहीं सह सकती। किंतु संस्कृत के वारे में ऐसी वात नहीं है। संस्कृत भाषा सभी भाषाओं और विचारों की जननी, धाय, और संरक्षिका रही है। फारसी आज एकदम व्यर्थ हैं, अंग्रेजी के अनुवादों से काम चलेगा। किंतु संस्कृत के अनुवादों से काम नहीं हो सकता। अनुवाद का उद्देश्य है जानना। जानना बुद्धि का काम है। अंग्रेजी भारत को प्रेरित नहीं करती, जनाती हैं, ज्ञान करती है, सूचना देती है। भारत में अंग्रेजी को ज्ञान–प्रकाशिका भी नहीं, सूचना प्रकाशिका कहना चाहिए। किंतु संस्कृत आत्मा की भाषा है। आत्मचैतन्य का बोध कराने वाली कविता और दर्शन की भाषा ईं। इसका ज्ञान भी केवल सूच्य न होकर बोध्य होता है। फारसी अपने सामंतों के साथ चली गयी। अंग्रेजी भी अपने बादशाहों के साथ चली गयी । भारत में अब उसका स्थान डी0ओ0जी0 डाग, सी0ए0टी0 कैट एवं टिंवकिल टिवाकिल लिटिल स्टार तक सीमित रहेगा। किंतु संस्कृत की स्थिति भिन्न है। वह न राजा, न सामंत, न सेना के साथ आयी थी, वह आयी थी ऋषियों और तपस्वियों के साथ। आई क्या थी, पैदा हुई थी। इसीलिए उसका स्थान भिन्न है। शकुन्तला अगर प्राकृत बोलती है तो इसलिए नहीं कि वह ऋषिकन्या या सामंतपत्नी नहीं है। बल्कि वह घरेलू बोली बोलती है। आज भी घर–2 में भोजपुरी, अवधी आदि और बाहर में खड़ी बोली। किंतु दोनों ही लोकभाषाएं हैं। माँ सीता की खोज में लंका पहुँचे हनुमान सर्वभाषा विशारद हैं। किंतु रावण संस्कृत समझ लेगा ओर इससे सीता भीता होगी, वे प्राकृति में बोलते है। अयोध्या के आसपास की भाषा। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि 'प्राकृत' दरवारों की मान्य भाषा थी। भगवान बुद्ध के शिष्यों में अनेक सामंत और श्रेष्टि थे। वे सभी पालि को आदर देते थे। क्योंकि उसे बुद्ध का आर्शीवाद प्राप्त था। किन्तु इस संस्कृत की स्थिति फारसी और अंग्रेजी से भिन्न रही है।

राजभाषा हिन्दी

डॉ0 लोहिया ने अंग्रेजी के रानी स्वरूप का विरोध किया। उन्होंने देश में अंग्रेजी हटाओं आन्दोलन चलाया। अनेक जगहों में अंग्रेजी विरोधी सम्मेलन किये। सत्याग्रह किया। पटों पर लिखी अंग्रेजी पर अलकतरा पोत दिया। वे अंग्रेजी हटाओं के प्रति अत्यन्त उग्र थे। सार्वजनिक जगहों से अंग्रज शासकों की मूर्तियां हटवाने का उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया।

गांधी ने गीता के महत्व पर जोर दिया था, डा0 लोहिया ने हिन्दी ग्रन्थ राम चरित मानस के महत्व पर जोर दिया। लोहिया संस्कृत विरोधी नहीं थे। फिर भी उनका जोर हिन्दी साहित्य पर था।

समाजवादी चिंतकों में भाषा की समस्या की ओर सबसे अधिक ध्यान खींचने का श्रेय डा0 लोहिया को है। उन्होंने अपने को प्रबल हिन्दी समर्थक के रूप में स्थापित किया।

सभ्यता एवं संस्कृति

हिन्दी के प्रति आग्रह ने लोहिया को भारत की संस्कृति के बारे में भी सोचने का अवसर दिया। लोहिया ने श्रीराम, कृष्ण, शिव तथा रामायण मेला को युग संदर्भ में रखा। इनके द्वारा लिखित कई निंबध उच्चकोटि का साहित्य है। डॉ0 लोहिया संस्कृति के सैद्धान्तिक पक्षों की चर्चा करते है। उनके प्रमुख चिंतन में संस्कृति, भारतीय समाज और संस्कृति, वसुधैव कुटुम्बकम्, धार्मिक आन्दोलनों में एकता स्वरूप जैसे विषय है। उन्हें संस्कृत वाड़मय के महत्व का भी अच्छा ज्ञान है।

लोहिया, संस्कृति के विवेचक से ज्यादा संस्कृति के मूर्तिकार अधिक है। इसलिए उन्हें इतिहास की अपेक्षा पुराणों की कथाएं और चरित्र अधिक प्रभावित करते हैं। राम, कृष्ण, शिव किसी भी इतिहास पुरूष से अधिक महत्वपूर्ण लगते है। इतिहास पुरूष वह मूर्ति नहीं बन सकती है जो देव–पुरूष की बनती है। पौराणिक देव चरित के सामने इतिहास पुरूष बौने है।

पाठ्यक्रम में विज्ञान और आध्यात्मिकता

आन्दोलनों की आग में जलते रहने के उपरांत भी डॉ0 लोहिया ने शिक्षा के बारे में, यद्यपि उनमें आचार्य नरेन्द्र देव जैसा नैक्ट्य नहीं दीखता था। जेल, सत्याग्रहों, प्रदर्शनों, आक्षेपों, प्रति आक्षेपों के बीच से गुजरते हुए डॉ0 लोहिया के विचारों की दाहता का अनुमान सहज है।

डॉ0 लोहिया ने विज्ञान के साथ--साथ साहित्य, दर्शन आदि की शिक्षा भी अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। बिना इस आधार के बिना इस पृष्ठभूमि के विज्ञान का दुरूपयोग होता है। उनके विचारानुसार – "आध्यात्मिकता और भौतिकता, व्यक्ति सुधार और समाज सुधार नैतिकता और सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण ये दो जो अब तक अलग–अलग सिरे पर हैं, जिनमें अभी तक सम्बन्ध नहीं कायम हो सका है, किसी तरह से उनका सम्बन्ध कायम किया जाय, ताकि मनुष्य के दिल की वे दो शक्तियों दुनिया को बदल सकें।"[21] अर्थात् भौतिक विकास पर नैतिकता और आध्यात्मिकता का अंकुश होना चाहिए।

(भारत में समाजवाद पृष्ठ 3)

साहित्य और कला

साहित्य की समस्याओं पर विचार करते समय लोहिया ने एक विशिष्ट दृष्टि का संकेत दिया है। सामान्यतः माना जाता है कि कम्युनिष्ट विचारों के लेखक पार्टी के निर्देशों

---

(21) समाजवाद – डा0 युगेश्वर

के आधार पर साहित्य रचते है। सम्भवतः यह सच भी है। किन्तु ऊँचे कलाकार की संवेदना पार्टी के निर्देशों से भिन्न होती है। शायद यह उनके अंतर का विद्रोह हो। पार्टी निर्देश बाहर–बाहर रह जाता है। इस संदर्भ में लोहिया ने विकारों की चर्चा की है। यह चर्चा इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि श्रेष्ठ कलाकार पार्टी में रहकर भी कैसे सोचता है। उसकी अभिव्यक्ति क्या सूचित करती है। लाहकिया की यह पकड़ सम्पूर्ण प्रतिबंध सहित्य के बोर में एक जबर्दस्त सूचना है। यह इस बात का संकेत भी है कि पार्टी में रहकर भी लेखक किस प्रकार से अपनी स्वतंत्रता की न केवल रक्षा करता है, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति भी करता है।

श्री जगदीश मित्तल के प्रश्नों का उत्तर देते हुए डॉ0 लोहिया ने कहा था कि केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त प्रांतीय जिला और गांव सरकारों को हैसियत होनी चाहिए। जहॉ एक तरफ चार खंभे हो तो वहॉ एक पांचवां खम्भा विश्व सरकार वाला भी हो। इसका नतीजा यह होगा कि किसी एक सरकार के हांथ में इतनी राक्षसी ताकत नहीं रहेगी कि वह कलाकारों और साहित्यकारों को बिल्कुल दबा कर रख सकें। कलाकारों के अंदर होड़ हो सकती है। और अलग–अलग शैली के कलाकर और साहित्यिक अपने –अपने संरक्षकों को ढूँढ सकते हैं। मान लो केन्द्र किसी शैली को नहीं पसंद करता है। तो कोई गॉव की सरकार उसको पसंद करेगी। कला और साहित्य के अंदर भी स्वतंत्रता इस छोड़ के जरियेकायम रह सकती है। उसके अलावा मैं " यह भी सम्भावना सोच सकता हूँ कि कलाकारों और साहित्यकारों की अपनी कुछ सहायोगी समितियां होगी। या कोई अकेला तेज साहित्यकार या बहुत तेज कलाकार हे और फक्कड़ बनकर वह अपने दिमाग में धंसी चीज को ही अगर चलाना चाहता है तो उसको कौन रोक सकता है, बशर्ते कि समाजवादी सरकार के कानून में कोई गुलामी का अंश न रह जाए। इतना तो मैं साफ कह देना चाहता हूँ कि समाजवादी हिन्दुस्तान में किसी भी व्यक्ति की साहित्य या कला की अभिव्यक्ति किसी भी हालत में अपराध नहीं रहेगी और जिसे अश्लील वगैरह कहते हैं, उसके बारे में भी यही कहना चाहता हूँ। हालांकि अश्लीलता के बारे में संभव है कि कुछ इधर–उधर के नियम बनें। संपूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। अगर कोई अदभुत चीज है तो वह अपने आप चमत्कार करेगी ही।

पिकासो द्वारा बनाये गये कबूतर का उदाहरण देकर लोहिया ने बताया कि पार्टी में रहकर भी कलाकार अपने को स्वतंत्र रख सकता है। क्योंकि कलाकार का अंतर्मन अलग है। पिकासों का कलाकार हृदय जानता था कि कम्युनिस्टों की शांति सीधी नहीं है। टेढ़ी है। ढीली– ढाली है। शांति में सोवियत की रूचि नहीं-है रूचि है शांति शब्द के प्रचार में वह शांति शब्द का प्रचारक मात्र है। इसीलिए पिकासों का कलाकार हृदय शांति के प्रतीक कबूतरों को

बिगाड़ देता था। कलाकार के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह किसी बाद के विषय में कुछ कहे ही। कलाकार तो मस्तराम है। वह कहीं भी किसी भी वरह अपनी बात कह लेगा। प्रतिबंधों को तोड़ने [illegible] है, समस्या प्रकाशन को होती है, अभिव्यक्त पर प्रतिबंध का अर्थ है प्रकाशन, संरक्षण और सहायता की समाप्ति। इनके अवसर का अभाव। किंतु श्रेष्ठ कलाकर की उपज कैसे प्रतिबंधित होसकती हैं डॉ0 निवागों ने कभी भी लिखा होगा, प्रकाशन के बाद होग उसे जान सके। शासन उसे प्रकाशन से रोक सकता है पर उसकी उपज पर प्रतिबंध असंभव है। हाँ अगर कलाकार स्वयं ही अपने को किसी विचार या मान्यता के वश में प्रतिबंधित कर लेता है तो बात दूसरी है।

किंतु जब लोहिया कैदी देश की बात करते हैं तो उसका भी विशेष अर्थ है। कैदी सोच को भी प्रतिबंधित करने की कोशिश करता है। एक ऐसे माहौल का निर्माण करता है, जिसमें स्वतंत्र चिंतन का अवसर ही न रहे। कलाकार की स्वतंत्र चेतना ही लुप्त हो जाय। कभी–2 रचना के कारण लेखक की जान पर आ बनती है। आखिर रचना एक मानवीय प्रक्रिया है। व्यक्ति मानव की सामाजिक संरचना है। अगर समाज ही उसे शिकारी कुत्तों के समान घेर ले। चीरने–फारने लगे तो कितना ही निर्भीक कलाकार हो क्या कर सकेगा ? ऐसे में कलाकार कभी–2 प्रतीकों का सहारा लेता है। किंतु डर बना रहता है कि प्रतीक उसे धोखा दे सकते हैं। क्योकि प्रतीक अगर सम्प्रेषित नहीं हुए तो व्यर्थ हैं। और सम्प्रेषित प्रतीक और भी संकट पैदा कर सकते हैं। क्योंकि प्रतीकों की सम्प्रेषण शक्ति असीम है। आखिर पिकासों का ढीला–ढाला कबूतर प्रतीक ही तो है। इस बात का ही मेरे (पिकासों) समान ही कम्युनिज्म बूढ़ा और ढीला हो गया है। सम्भव है बूढ़ा कबूतर स्वालिन स्वयं हो। पिकासी भी हो सकता है। शांति और संसार की दुर्व्यवस्था भी हो सकती है। लोहिया केवल यह कहना चाहते हैं कि श्रेष्ठ कलाकार कैद में भी काम कर लेता है। किंतु इसलिए कैद सराहना की वस्तु नहीं है। लोहिया ने पिकासो और पास्तरनाक के माध्यम से रचनाकार की स्वतंत्रता, रचना–शक्ति और प्रतिबंधों पर अच्छा सा प्रकाश डाला है।

स्त्रियों की आत्मनिर्भरता एवं सर्वसुलभ शिक्षा के प्रति डा0 लोहिया के विचार

लोहिया स्त्री को भी शोषित वर्गो या वर्णो में रखते हैं। आर्थिक आत्म– निर्भरता के बावजूद स्त्री आज भी पुरूष या परिवार पर निर्भर है। लोहिया की कल्पना की स्त्री स्वतंत्रता और आत्म–निर्भरता किसी देश में नहीं है। वे चाहे आधुनिक उद्योगों द्वारा विकासित देश हो या कथित अविकसित। शायद इसीलिए लोहिया की चिंता भी है– संसार की आधी आवादी की गुलामी की चिंता। वे सम्पूर्ण मनुष्य जाति की स्त्रियों की स्वतंत्रा और आत्मनिर्भरता के लिए चिन्तित हैं। उनकी यह चिंता राष्ट्रीय है और अर्न्तराष्ट्रीय भी।

स्त्री समाज का आधा अंग है। इस अर्धांग का पिछड़ा रह जाना दुःख की बात है। कोई भी समाज स्त्री विरोध से सुंदर और पुष्ट नहीं बन सकता। इसलिए स्त्री को भी विकास [illegible] मिलना चाहिए। स्त्री पुरुष दोनों के चरित्रों पर समान रूप से ध्यान देना चाहिए। चरित्र की मुख्य जिम्मेदारी स्त्री–पुरूष दोनों पर समान रूप से है। कोई भी न्याय, अन्याय एकतरफा सम्भव नहीं । इस प्रकार लोहिया ने स्त्री सम्बन्धी एक ऐतिहासिक निर्णय लिया। लोहिया स्त्री के पौरूष और शक्ति के विश्वासी थे।

लोकतंत्र में मतदाता का जागरण आवश्यक है। सभी को मत देने के अधिकार का कार्यक्रम तभी पूरा होगा, जबकि मतदाता चैतन्य हो। उसे देश दुनियाँ की जानकारी भी हो। सभी प्रकार से पिछड़े वर्गो को भी अगर मताधिकार का अधिकार है तो उसे समझदार भी होना होगा। इसीलिए समाजवादी गाँव पर जोर देते हैं। यह भी समझते है कि केवल अक्षरज्ञान या पोथी पढ़–पढ़ कर ही ज्ञान नहीं होता। किंतु पोथी ज्ञान भी आवश्यक है। इसीलिए लोहिया किसी को भी शिक्षा से वंचित करना अपराध मानते हैं। शिक्षा सबको समान रूप में, समान आधारों पर मिलनी चाहिए। शिक्षा के स्तर पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। प्रतिभाओं को दबाकर कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता है। सरस्वती के मंदिर में किसी का भी प्रवेश वर्जित नहीं होना चाहिए। लोहिया इतिहास का बदला नहीं लेना चाहते। वे केवल इतिहास में सुधर और उसका पूननिर्माण करना चाहते हैं। पढ़ाई–लिखाई के मामले में किसी बच्चे के दिल को न दुःखाना, चाहे वह किसी का भी बच्चा क्यों न हो। किसी बच्चे के मन में यह ख्याल न पैदा करना, कि इस स्कूल का दरवाजा उसके लिए नहीं खुला है। लोहिया अपनी समता दृष्टि को एक क्षण के लिए भी स्थगित नहीं करते। समता और स्वतंत्रता दोनों ही साथ–2 चलें। शिक्षा में किसी प्रकार के प्रतिबंध का मतलब है, स्वतंत्रता का नाश। एक ऐसी प्रतिभा का नाश जिसमें गांधी, टैगोर, न्यूटन या मार्क्स बनने की क्षमता हैं। यह एक प्रकार की बौद्धिक भ्रूण हत्या है। लोहिया हर प्रकार की भ्रण हत्या के प्रति सावधान हैं। ध्यान रहे लोहिया ने यह बात एक सरकारी कमीशन द्वारा की गई सिफारिश के संदर्भ में कही थी। इस कमीशन में शिक्षा व संस्थाओ में शूद्र हरजिन और सुसंलमानों के बच्चों की अधिकतम भर्ती की सिफारिश की थी। लोहिया की दृष्टि साफ है। पिछड़ो कें बच्चों को पढ़ने की सहायता दी जाय। किंतु किसी को भी पढ़ने से वंचित नहीं किया जाय। भेदभाव केवल काम देने में हो। सरकारी काम ।

लोहिया गाँव की शक्ति की बात इस तरह से करते हैं। जिससे वह आत्म–निर्भर तो रहें किंतु मध्यकालीन गाँवों के समान राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति अनभिज्ञ और उदासीन न रहें।

इतिहास की ग्राहयत पर डा0 लोहिया के विचार

इतिहास की घटनाओं को साम्प्रदायिक दृष्टि से न देखकर राष्ट्रीय दृष्टि से देखने का प्रयत्न हो। सम्प्रदायवादी मुर्दा साम्प्रदायिक इतिहास को पुनर्जीवित करता है। इतिहास को इस प्रकार प्रस्तुत करता है। जैसे किसी सम्प्रदाय के एक व्यक्ति का अन्याय पूरी जाति का अन्याय है। अगर किसी पूर्वज ने कोई गलती की है तो उसका दण्ड आज देने की कोशिश ठीक नहीं। इसलिए लोहिया स्पष्ट चेतावनी देते हैं। इतिहास में अच्छे और बुरे दोनों हैं। आवश्यकता है कि अच्छो को ही अपना पुरखा मानें। बुरों को समान रूप से छोड दें। इतिहास कभी भी इसके विरूद्ध नहीं हैं। इतिहास में मुद्दों का अधार देशी विदेशी रहा है, न कि हिन्दू और मुसलमान।

विद्यार्थियों के प्रति लोहिया के विचार

लोहिया ने छात्र संगठन पर बल दिया। वे छात्रों की विचारधारा पर जोर देते हैं। "विद्यार्थियों को दो रूख अख्तियार करने पडेगें। अपनी पसंद के राजनीतिक क्लबों द्वारा वह अपने राजनीतिक व्यक्तित्व को विकसित कर सकेगा। दूसरी ओर विद्यार्थियों के राष्ट्रीय यूनियन के द्वारा वह सृजनात्मक और रचनात्मक शक्ति प्रगट करेगा।"

लोहिया विचार क्रम

"गांधी महात्मा थे। विनोवा सन्त। नरेन्द्र देव आचार्य। आचार्य का अर्थ है, अध्यापक। गुरूकुल के प्रधान। जयप्रकाश को किसी ने 'लोकनायक' किसी ने 'खालिस आदमी' किसी ने 'विभूति सम्पन्न' किसी ने 'परम हंस' किसी ने 'क्रान्ति प्रकाश' कहा। गांधी ने उन्हें 'भारत माता' का 'मंगलकारी पुत्र' कहा था। 42 की क्रांति के वे अग्रदूत कहे जाते थे। किन्तु लोहिया को क्या कहा गया? क्या कहें? महादेवी उन्हें 'सक्रिय करूणा' कहना चाहती है। सक्रिय करूणा ने ही क्रांति –द्रव्य बनाया था। उनकी करूणा न केवल मनुष्य बल्कि दूसरे प्राणियों ओर प्राणितर के प्रति भी सक्रिय थी। पु0 ल0 देशपाण्डे उन्हें 'रसिक तपस्वी' कहना चाहते हैं। किन्तु उनके लिये कोई भी विशेषण प्रचलित नहीं हुआ। शायद इसलिये कि शब्द चुक गये थे। जितने भी शब्द लोहिया के व्यक्तित्व को बांधने आते, वे उनके अर्थों से बाहर आ जाते थे। भारत की राजनीति में लोहिया एक ऐसी मूर्ति हैं जो हर क्षण टूटते हैं। नवीन होते हैं। कितने ही चतुर चित्रकार लोहिया की मूर्ति बनाने बैठे, किन्तु उनकी मूर्ति बनाना कठिन था। लोहिया को बार–बार मूर्ति भंजक कहा गया है। यद्यपि यह भी उनके साथ अन्याय था। क्योंकि भारत माता की मूर्ति को अपने हृदय में जितना सहेजकर लोहिया ने रखा उतना किसी नेता ने नहीं। मूर्ति भंजक की उनकी उपाधि अर्धसत्य है। केवल इस माने में कि उन्हें

बदसूरत, डरावनी आर [illegible] मूर्ति बिल्कुल पसंद नहीं थी। उन्हें वास्तुकला का ज्ञान था। इसीलिए वे किसी भी मूर्ति का निरावरित रूप देखकर निर्णय करते थे। बदरीनाथ की मूर्ति उन्होंने रात को जब वस्त्र बदले जाते है तब देखी थी। आवरण के पीछे के सत्य को जानना लोहिया का स्वभाव था। एस व्यक्ति क आवरण का भेदकर अगर लोगों ने नहीं देखा तो यह उनकी अकृपा ही कही जायेगी। विरोधियों ने लोहिया की एकतरफा और ऐसी मूर्ति पढी, मानों लोहिया भारत मंच के प्रतिनायक हों।

महादेवी ने ठीक पहचाना था। लोहिया का मूलभाव करूणापरक था। एक जातीय पीड़ा, राष्ट्रीय अवमानना और रंगीन होने के कारण आधुनिक इतिहास के प्रति दबाव उनके व्यक्तित्व की ऊपरी सतह थी। उद्गम स्थान में तो एक समृद्ध प्राचीन जाति का गौरव, उसके कारण आधुनिक चमक को तुच्छ समझने की शक्ति ओर इस नश्वर चमक के प्रति दुखद आकर्षण ने उनके मन में गहरी करूणा पैदा की थी। जैसे सगर माया (हिमालय) पर बैठकर वे सभ्यता का विनाश देख रहे थे। 'एक पुरूष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह' । शायद इसीलिए लोहिया आजीवन शमशान साधनाकरते रह गये। दिल में श्रद्धा और वाणी में झंडा के तर्कजाल होते थे। 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल'। लोहिया के संदर्भ में जाल का अर्थ है। समूह। कभी भारत मानव के महासागर में लोहिया को केनिफनल पटकते देख, लोग समझनेकी भूल कर जाते। वह क्रोध करूणा की अभिव्यक्ति ही था। स्वयं क्रोध का कोई निजी व्यक्तित्व नहीं होता। वह किसी गहरे लगाव की अभिव्यक्ति मात्र है। क्रोध का पिता तो काम अर्थात प्रेम है राग है।

लोहिया अपने को मार्क्सवादी कभी नहीं कहते। वे चाहते हैं कि लोग उन्हें बंधे–बंधायें वाद से न जाने। बहुत हुआ तो समाजवादी कह लें। किन्तु इसके साथ ही उन्होंने एक छूट और दी है। वे स्वयं अपने को 'कुजात गांधीवादी' कहते हैं। मतलब यह कि समावादी हैं। कुजातगांधी वादी हैं। दोनों एक हैं। तो उन्होंने अपने गांधी वादी के साथ 'कुजात' क्यों जोडा? शायद इसलिए कि गांधी ने स्वयं अपने दो ही वारिस बनाए थे। राजनीति में जवाहर और अध्यात्म के विनोवा। लोहिया ने जवाहरलाल जैसे रानीतिज्ञ हैं न विनोवा जैस आध्यात्मिक पुरूष। किन्तु गांधी मे उनकी श्रद्धा अटूट है। किन्तु दोनों के बाद लोहिया के लिए क्या बचा? केवल कुजात। गांधी की सम्पूर्णता की संतान। जिसकी राजनीति और अध्ययन अलग नहीं है। जिसने गांधी के दोनों सुरक्षित रक्षा। दोनों मिलाकर विकसित कियां एक ऐसा विकास जिसमें गांधी का दोनों हो।

लोहिया का चिंतन मार्क्सवादी चिंतन की अपेक्षा अधिक उदारवादी है। मार्क्स का चिंतन वर्गवादी है। उस वर्गवाद में भी वह सम्पूर्ण वर्गों को नहीं देखता है। वह सम्पूर्ण विश्व

का विकास एक ही प्रकार मानता है। जबकि परिस्थितियों और जानियों के प्रकृति के अनुसार विकास से अलग–अलग स्तर हैं। मार्क्स ने यह कभी नहीं देखा कि ऐशिया और अफ्रीका के [illegible] जमरीका का मजदूर मोटे हुए है। उनकी आर्थिक स्थिति सुधरी है पूंजीपति ने बाजार खोलकर उन्हें काम दिया है। इस काम के लिए दाम दिया है। कम एवं सुविधाजनक काम के लिए उन्हें मोटी रकम दी है। अनेक सुविधाओं का विकास हुआ है। क्या विश्व के किसी भी देश का मजदूर संगठन इस बात की लडाई भी लडता है कि वह उपनिवेशों के कच्चे माल का प्रयोग करने वाले कारखानों में काम नहीं करेगा? ताकि उपनिवेशों का शोषण न हो सके। हम उतना ही माल तैयार करेगें, जितने से हमारी आवश्यकता पूर्ति हो सके। इसके मुकाबले योरप के मजदूरों ने दिन व दिन अपनी आवयकताएं बढ़ायी हैं। अधिकतम सुविधाएं जुटाई हैं। रंगीन देशों की हालत विगडती गयी। रंगीन देशों के मजदूर गरीब हुआ और गोरे देशों का मजदूर सम्पन्न हुआ।

मार्क्स ने बहुत सी किताबे लिखी। बडा चिंतन किया। किन्तु सबका निचोड है। सम्पत्ति का सरकारी या समाजीकरण। क्या मतलब है सम्पत्ति के सरकारी रूख का? योरप अमरीका में सम्पत्ति के सरकारी करण का मतलब है विज्ञान के विकास से उत्पन्न समृद्धि एवं रंगीन देशों की लूट से आयी सम्पत्ति को थोडे से लोग न खायें। सब में बॉटे। रंगीन देशों के शोषण का विरोध मार्क्स ने नहीं किया। आधुनिकीकरण के नाम पर रंगीन देशों में पश्चिम की कथित कष्टपूर्ण उपस्थिति ठीक और रंगीन देशों के पक्ष में बनायी गई। मार्क्स ने यह नहीं देखा कि संसार शोषक और शोषित दो प्रकार के देशों में बंट गया है। प्रायः सभी गोरे देश रंगीन देशों के शासक हैं। रंगीन देशों के सभी वर्गों के लोग शोषित हैं, अपने स्तर के अनुसार शोषित हैं। यहीं कारण है कि राष्ट्रीय लडाई का अधार वर्गीय या जातिवादी नहीं बना। यह सभी वर्गों, वर्णों का संयुक्त मोर्चा था। अंग्रेजो के जाने में सबकी भलाई थी। सभी अंग्रेजो के शोषण में थे। यहॉ के शोषक भी अंग्रेजों द्वारा शोषित थे। कहा जाता है कि अंग्रेजों के राज्य में सूरज नहीं डूबता था। इस सूरज को मार्क्सवाद ने नहीं डुबाया। यह रंगीन देशों के राष्ट्रवाद द्वारा डूबा। मार्क्सवाद का चला होता तो यह सूरज आज भी नहीं डूबता। क्योंकि मार्क्स तो अंग्रेजों को आधूनिकता और मुक्ति का वाहक माने बैठा था। योरप के लाभ ने मार्क्स की दृष्टि खराब कर दी। वह रंगीन मुल्कों का शोषण नहीं देख पाता था।

लोहिया की सर्वप्रथम दृष्टि रंगीन देशों के शोषण की ओर गयी। वे भारत सहित सम्पूर्ण रंगीन जातियों की मुक्ति के बारे में सोचते हैं। मार्क्स ने केवल औद्योगिक मजदूरों के शोषण की चिंता की थी। लोहिया के शोषित मानवता के प्रकार मार्क्स की शोषित मानवता से

कई गुना अधिक है। मार्क्स ने विज्ञान की निरपेक्ष सत्ता स्वीकार की। जबकि लोहिया ने धनी आवादी और कम जमीन वाले देश में विज्ञान और तकनीकी में शोषक स्वरूप को पहचाना। श्रम के बहुतायत वाले देश में मशीनीकरण एवं तेज तपरावाली तकनीकी लोगों के हाथ से काम छीन लेती है। कम आवादी वाले देशों में जहाँ ये आधुनिक तकनीकी सुविधाएं भोग का साधन है। वही धनी आवादी वाले देशों मे असुविधा बन जाती है। गोरे देश विज्ञान द्वारा हथियारों और प्रदूषण की बढ़ती से परेशान हैं। रंगीन देशों में यहं समस्या तो होगी ही, इसके अतिरिक्त रोजगार की सम्भावनाएं खत्म होती जाएगी। दुनिया के सभी भागों का विकास एक जैसा नहीं हुआ है। ऐसे में मुक्ति के रास्ते भी अलग–अलग होगें। मार्क्सवाद ने श्रम को महत्ता दी। किन्तु रंगीन देशों के श्रम का शोषण किया है। रंगीन श्रम को अनदेखा किया है। देखा है, तो उनको गोरों के उपयोग के लिए।

लोहिया कभी किसी की यातना का समर्थन नहीं करते हैं। किन्तु मार्क्स क्रूरता और यातना का समर्थक चिंतक है। वैज्ञानिक और मार्क्स के ढंग के सामाजिक विकास के लिए यदि क्रूरता होती है, तो बुरी नहीं है। मार्क्स ने यह नहीं देखा कि क्रूरता साम्राज्यवाद का स्वभाव है। किन्तु गोरों के साम्राज्यवादी वकील की हैसियत से वे कहते हैं कि भारत में हुए दमन और यातना का श्रेय नीचे के हिन्दू अफसरों को है, न किं गोरें शासकों को । भारत के शोषण का यह तर्क साम्राज्यवादी के साथ ही सम्प्रदायवादी भी है। लोहिया भारत के शोषण की जिम्मेदारी पूर्णतः गोरी सभ्यता को देते हैं। नीचे के अफसरों ने भारत को यातना अपने मालिकों को खुश करने और उससे पुरस्कृत होने के लिए दी। साम्राज्यवाद के प्रति वफादारी के लिए दी।

लोहिया जब सार्वजनिक जीवन में अहिंसक प्रतिरोध और उसके हिंसक दमन का विरोध करते हैं तो वे एक मानवीय संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं। निहत्थे नागरिकों को गोली का शिकार बनाना क्रूरता है। अन्याय है। मानवीय चेतना के विरूद्ध है। यह एक सार्वदेशिक सिद्धांत है। सरकारों की स्थापना हिंसा रोकने के लिए हुई थी। बाद में सरकारों ने हिंसा को ही अपना आधार बना लिया। फौज और पुलिस के साथ अफसर भी हिंसा के प्रतीक बन गए। अपराधी की अपेक्षा सामान्य एवं शांतिप्रिय नागरिक को इनसे भय होने लगा। सरकारी हिंसा सरकारी शक्ति बनकर शांति प्रिय नागरिकों को कुचलने लगी। लोहिया के भीतर का मनुष्य जगा। उसे निहत्थे नागरिकों के शांति प्रतिरोध का समर्थन किया और सरकारी हिंसा की निंदा की। इसके साथ ही नागरिक द्वारा की गई हिंसा को भी अनुचित ठहराया। उन्होंने स्पष्ट ही दोनों पक्षों की हिंसा को अस्वीकार किया। किसी भी समय समाज में हिंसा और बलात्कार के

लिए स्थान नहीं है। लोहिया का यह अत्यंतगहरा मानवीय पक्ष था। मनुष्य के मन या शरीर पर किसी भी स्तर से बलात् अधिकार अमानवीय है। इसी क्रम में उन्होंने कहा था, वेश्याओं के साथ भी बलात्कार नहीं होना चाहिए। विस्तृत ओर गहरे चिंतन के धनी लोहिया विश्व साम्राज्यवाद और वेश्या सभी के साथ होने वाले बलात्कार को हिंसा मानते है। व्यक्ति या समाज को उसकी इच्छा के विरूद्ध स्थूल था सूक्ष्म (वैचारिक) शस्त्रों से दबाना, दोनों ही हिंसा है। महत्वपूर्ण है मनुष्य, विचार और बौद्धिकता उसे अंगरक्षक जैसे है।। लोहिया के चिंतन में मनुष्य से बडा कुछ भी नहीं हे। नाहि मनुषात श्रेष्ठतरं हि किंचित्। धर्मवादी चिंतन के कारण मार्क्स ने अपनी नजरों और अपने आस–पास के वर्गों को देखा। दुनिया के कोने–कोने में फैले मनुष्य की समस्याओं को वे नहीं देख सके। उनका उद्देश्य मानव नहीं। केवल पश्चिम का मजदूर वर्ग है। इसीलिए वे किसान बहुल देशों में क्रांति की कल्पना नहीं कर सकें। अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा भारत के हाथ कटे जुलाहों के प्रति सहानुभूति का शब्द नहीं कह सकें। मार्क्स ने 'विश्व के मजदूरों एक हो'' कहा तो लोहिया ने 'विश्व के काले (रंगीन) एक हो'' का नारा दिया। लेकिन इसका मतलब कभी यह नहीं था कि गोरों के प्रति उन्हें द्वेष था। लोहिया के मानववाद का व्यवहारिक पक्ष था। पीड़ित का उद्धार और पीडित के प्रति घृणा और पीडा अन्याय के प्रति न कि अन्यायी के प्रति। मार्क्स द्वारा अन्याय और अन्यायी के भेद न करने के कारण अन्यायी के प्रति भी अन्याय हो जाने की संभावना है।

साम्राज्यवाद बुरा हे। तो सबके लिए बुरा है। वे कभी भी ऐसे दिन की कल्पना नहीं करते जब भारत साम्राज्यवादी हो। भारत किसी दूर या पडोंसी देश पर हमला करें। अधिकार करें। लोहिया ने द्वितीय महायुद्ध में पराजित देशों से हर्जाने की वसूली का विरोध किया। यह बुरा है। आक्रमण बुरा है। किन्तु पराजित देश से हर्जाना लेना भी बुरा है। यह बदले की भावना, पराहित को सताना एवं अपमानित करना लोहिया को पसंद नहीं था। बदले की भावना से किसी समस्या का समाधान नहीं होता है। इससे एक ओर हीनता और दूसरी ओर स्वामित्व के भाव का विकास होता है। हीनता और स्वामित्व दोनों ही बुरे हैं। मानवता विरोधी हैं। भारत में ब्रिटिश राज, गोवा में पुर्तगीज, नेपाल में अपने ही राजा का राज, तिब्बत में चीन का अधिकार, हंगरी में रूस का जुल्म, अमरीका में नीग्रों के साथ होने वाला व्यवहार इन सब में एक सामान्य बात है। अन्याय, अमानवीय व्यवहार। लोहिया ने इन सभी अन्यायों का विरोध किया। अन्याय विरोध की दृष्टि से लोहिया का क्षेत्र मार्क्स के अन्याय क्षेत्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत और गंभीर है। अधिक मानवतावादी और वैखिक है।

रामायण मेला के आयोजनों में तो आनंद रस और दृष्टि भी थी। रामायण रस विशेष की पोथी है किन्तु इस रस विशेष का द्वार सबके लिए खुला है। कृष्ण के व्यक्तित्व के समान उन्मुक्त है। लोहिया ने राम, कृष्ण, शिव, के मर्यादित, असीमित और उन्मुक्त ये तीन प्रतीक चुने हैं। तीनों की तीन विशेषताएं। इसी प्रकार लगता है कि लोहिया के समाजवाद का विचार और कार्यक्रम असीमित है। कर्म संचालन मर्यादित और संगठन उन्मुक्त है। इसी प्रकार लोहिया वाणी की स्वतंत्रता या उन्मुक्तता, कर्म की मर्यादा और उद्‌देश्य की सीमा हीनता में विश्वास करते है। वाणी स्वतंत्रता और कर्म मर्यादा राजनीति को लोहिया की महत्वपूण्र देन है। लोहिया भारत में समाजवादी में अकेले नेता है। जिनमें कर्म से विचार और विचार से कर्म निकलते हैं। इसीलिए उन्होंने कथनी और करनी की एकता का विचार रखा। कथनी और करनी की भिन्नता शायद संपूर्ण संसार की समस्या है। भारत में तो यह अत्यंत गहरी समस्या है। इसी प्रकार विचारों के सगुण निगुर्ण की भी उन्होंने स्थापना की। निर्गुण विचार आकर्षण होते हैं। किन्तु उनका उपयोग कर्म न करने के लिए होता है। लोहिया चाहते थे कि ढपोरशंखी भाषणों का स्थान कर्म को मिले। कार्यक्रम देते समय भी वे इस बात का ध्यान रखते थे कि कार्यक्रम उतने ही दिये जायें, जितने को पूरा करना संभव हो। लोहिया के विचार ऊँचे थे। किन्तु वे कोरा बकवास, अहमन्य घोषणाएं या मरमाने की शब्दावली से अलग रहते थे। कर्म से छूटा मनुष्य भाषा निर्माण में लग जाता है। कर्म के कारण लोहिया ने एक नयी भाषा का विकास किया। सीधी किन्तु प्रखर भाषा। काम की भाषा। लोहिया संदर्भ में बोलते हैं। बिना उनका संदर्भ समझे उनकी भाषा नहीं समझी जा सकती है। इसलिए भी कि वे दूसरों की भाषा नहीं बोलते । कर्म उनका है तो भाषा दूसरे की कैसी होगी? भाषा, भाषा–प्रतीक और कर्म प्रेरणा एक ही मन के प्रवाह है। हाथ करता है। जीभ कहती है। मगर दोनों एक ही व्यक्ति के हैं। वह व्यक्ति धूर्त या पागल नहीं है तो भाषा और कर्म दो नहीं हो सकते है। लोहिया की भाषा शहरी भद्रलोक की नहीं है। किन्तु वह गंवारू भी नहीं है। गंवारू का विनोद रस और संवेदन सरलता की अपेक्षा उनकी भाषा में तलखी और वैचारिक उत्तेजना है। गांव की भाषा सहती है। लोहिया की भाषा आक्रमण करती है। धक्का देकर जगाती है। उठो। उनके सांस्कृतिक निबंधों में भी लोकसंगीत का चिकनापन न होकर विश्लेषण की धार है। लोक संगीत का उद्‌देश्य रिझाना होता है। लोहिया शंकर के डमरू सा निबंदित करते है। नये पुराने सभी विचारों को छोडकर नयी वैश्विक चेतना की खुरदुरी ओज वाली भाषा।

धर्म और राजनीति के सम्बन्धों को जोडते हुए लोहिया ने कहा है कि धर्म दीर्घ कालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म है। लोहिया दीर्घकालीन राजनीति करते हैं। तात्कालीन धर्म करते थे। मतलब यह कि फिर राजनीति और धर्म में कोई विरोध नहीं है। दोनों एक है। अंतर है समय का । यह कि लोहिया जितने राजनेता थो, उतने ही धर्म नेता भी। वे राजनीति को धर्म और धर्म को राजनीति की दृष्टि से देखते है। इस कारण ही राम, कृष्ण, शिव सम्बन्धी लोहिया के छोटे से लेख में प्राण आ गया। तीनों पात्र मंदिरों और मूर्तियों की जडता से हटकर सामाजिक जीवन के अभिभावक, सेवक और सखा हो गये। तीनों नेतृत्व के तीन गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुष्य को तीनों चाहिए। राम, कृष्ण, दुर्गा, हनुमान और गणेश के अलग–अलग क्षेत्र हैं। उन क्षेत्रों के अलग–अलग संस्कार हैं। जैसे लोहिया इन देवताओं के लिए सचल मंदिर उनमें इनकी गतिमान मूर्तियां स्थापित करते हैं। इनकी पूजा के लिए शरीर शुद्धि आवश्यक है। इसके लिए उन्होंनें 'नदियां साफ करों' का नारा दिया। नदियां संस्कृति है। सभ्यता और धर्म है नदियों की गन्दगी का अर्थ है समाज का गंदा होना। इसके साथ है तीर्थों की सफाई। तीर्थों ने संपूर्ण भारत को एक संस्कृति में बॉधा है, सम्पूर्ण भारत की संस्कृति एक है। इसलिए नदी, तीर्थ की सफाई देश की सफाई भी है। गंदी नदी और गंदे तीर्थ देश को भी गंदा करेगें। धर्म और राजनीति, नदियों की सफाई, तीर्थों का उद्धार, एक संस्कृति की कल्पना, अंग्रेजी के स्थान पर देशी भाषा की स्थापना, देव प्रतीकों की नयी व्याख्या आदि को पूरा करता है रामायण मेला। रामायण मेला की कल्पना एक महायज्ञ की कल्पना है। सम्पूर्ण कला, विविध कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, कविता, नाट्य, नृत्य, वचन, प्रबचन, आदि का अर्धकुंभ। केवल हिन्दू नहीं, केवल धार्मिक नहीं, सभी धर्मों, वर्गों, वर्णो, कला विदों, विद्वानों, संन्यासियों, राजनेताओं आदि का विशाल संगम हो। आनंद, दृष्टि, रस, सभी एक साथ सक्रिय हो उठें। समाज का कोई भी सांस्कृतिक क्षेत्र छूटे नहीं। इसी सांस्कृतिक और सामाजिक निर्माण की दृष्टि से लेहिया ने 'हिमालय बचाओ' का नारा दिया। लोहिया अकेले नेता है, जिन्होंने हिमालय पर विस्तार से सोचा। देश का ध्यान आकृष्ट किया। उसके लिये आन्दोलन किया। नदियॉ साफ करनी हैं तो हिमालय को भी साफ और सुरक्षित रखना होगा। चीन, तिब्बत से बढ़कर तेजपुर आ गयां उसे रोका नहीं गया तो वह सभी नदियों में जहर घोल देगा। फिर नदियों की सफाई और तीर्थों का उद्धार बेकार हो जायेगा। किन्तु इन सबके लिए देशी मन भी चाहिए। देशी मन अंग्रेजी शिक्षा में नहीं बनेगा। लोकतंत्र के सरकारी स्कूल और देशी भाषा ही देशी मन बना सकते हैं।

लोहिया जितने ध्वंसात्मको, उतने ही रचनात्मक भी। विरोधी प्रायः उनके ध्वंस की चर्चा करते हैं। किन्तु वे भूल जाते हैं कि लाहकिया का ध्वंस नया समाज बनाने के लिए है। अखण्ड भ्रष्टाचार और अन्याय मिटाने के लिए है। जो अन्याय से लडेगा उसकी वाणी में 'दीपक राग' होगा। उससे मल्हार सुनने का धीरज चाहिए। लोहिया उदात्त दर्शन और उग्र कार्यक्रम के पक्षपाती थे। इसीलिए देखने में वह कठोर लगते हैं। डाक्टर के चाकू का उद्देश्य रोग निवारण है न कि अंगभंग।

लोहिया की दृष्टि में आज का मनुष्य सफलता पर ध्यान देता है। किन्तु प्रयत्न पर नहीं। भौतिकता और चेतना में विरोध नहीं है। लोहिया का मुख्य सम्बन्ध जीवन से था, वह जीवन जहॉ से भी मिले। वह भूत या परम्परा में भी हो सकता है। इसीलिये वे परम्पा के अध्ययन में विश्वास करते हैं।''[22]

निष्कर्ष – डॉ0 लोहिया के विचारों की वर्तमान युग में प्रासंगिकता

डा0 लोहिया मुझे हमेशा एक युगदृश्य, मनस्वी और मार्गदर्शक सहगामी के रूप में दिखाई पडे।

डॉ0 लोहिया ने अपने समाजवादी दर्शन की व्याख्या में नितांत सम–सामयिकता और दूरगामी भविष्य दोनों को एक साथ देखने और समझाने की दृष्टि प्रदान की है। यह दृष्टि ही वास्तविक दृष्टि है, जो उन्हें ब्यष्टि और समष्टि स्थानीय और विश्व व्यापक संवेदना से जोड़ती है। संसार में जितने भी समाजवादी आंदोलन थे, उनके न टिक़ पाने का एक मुख्य कारण यह था कि वे स्थानीय संवेदना के साथ विश्व संवेदना को साथ लेकर चलने में असरमथ थे। डा0 लोहिया की समाजवादी दृष्टि इस अर्थ में पूर्ण और समग्रतावादी थी। इस लिए वह पूरी मानव–जाति के सुख–दुख के साथ भारत के सुख–दुख को जोड़कर देखते थे। यह लक्षण तो अन्य चिंतको में भी मिलता है लेकिन उनके पास व्यापक विश्व बंधुत्व की तरह दृष्टि नहीं है जो गांधी जी या लेहिया के पास थी। यही कारण है कि सतही विश्व–लंधुत्व का नाम देते थे। डा0 लेहिया की इसी दृष्टि से 'साप्तक्रान्ति ' की बात निकलती है, इसी चिंतन–प्रक्रिया से विश्व नागरिकता तथा विश्व– सरकार की भावना पोषित होती है। उन्हीं भावनाओं के आधार पर वह भारत में प्रत्येक संघर्ष को विश्व का एक अंग मानकर चलाते थे।

---

(22) समाजवाद, आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 लोहिया और जय प्रकाश की दृष्टि में, लेखक युगेश्वर, प्रकाशक अतुल बगाई।

भारत की राजनिति में बदलाव लाने की पहल डा0 लोहिया ने ही की थी। आदर्श को बांझपन से मुक्त करके, उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए सारा देश उनका ऋणी रहेगा। उनके सिद्धांत जब कार्यक्रम का रूप ग्रहण करते थे, तब कर्म की प्रेरणा लोगों को अपने आप मिलती थी। वह सुभाषित बोलने में नहीं, बल्कि अपनी कथनी को करनी में बदलने की रूचि रखते थे। उनके कार्यक्रमों में साप्तक्रान्ति के अलावा भूसेना और अन्न-सेना बनाने की बात है, अंग्रेजी हटाने की बात है, दाम बांधने की है, आमदनी और खर्च पर सीमा लगाने की बात है। जोर ' बनाने ' पर है, 'हटाने' पर है, 'लगाने ' पर है।

आज की राजनैतिक उथल-पुथल में लोहिया जी की प्रासंगिकता सर्वाधिक है, क्योंकि उनका स्वदेशी मन जिस कर्तव्य- बोध से बांधा था, उसमें सत्ता मोह की अपेक्षा जनशक्ति और जन की इच्छा- शक्ति को संगठित करने के प्रति विशेष आग्रह है। आज की राजनीति यदि केवल सत्ताभिमुख रहेगी और जन इच्छा तथा जनशक्ति पर आधारित नहीं रहेगी तो हमारे मौलिक अधिकारों की रक्षा नहीं हो सकेगी। डा0 लोहिया की प्रासंगिकता इसलिए भी है कि उनकी समाजवादी विचारधारा समस्याओं का केवल विश्लेषण ही नहीं करती, उनका निदान भी प्रस्तुत करती है। उनकी विचारधारा 'कर्म' के साम पर चढ़कर तेज होने वाली विचाराधारा है। उसमें आग्रह है, दुरागृह नहीं है। आज के बिखराव वाले वातावरण में डा0 लोहिया के विचार ही देश और समाज में एकसूत्रता ला सकते हैं, क्योंकि उनके विचारों में चिंतन की गहराई के साथ ही कर्म की ऊर्जा पैदा करने की क्षमता है। समाज कैसे बदले, देश का आर्थिक ढाँचा कैसे सुधरे, निरन्तर बढते हुए अन्यायों का प्रतिकार कैसे ही, विषमताएं दूर करने के कौन-2 से रचनात्मक कार्यक्रम अपनाएं - ये आज के ज्वलंत प्रश्न हैं। इन सारे प्रश्नों का उत्तर हमें डा0 लोहिया के विचारों में मिलता है।[23]

श्री मुलायम सिंह यादव

(भू0पू0 मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश)

---

(23) डा0 राममनोहर लोहिया, लेखक लक्ष्मीकांत वर्मा, प्रथम संस्करण (मार्च 1991), प्रकाशक शैलेश कृष्णा निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग।

श्री सम्पूर्णानन्द के जीवन में घटित महत्वपूर्ण घटनायें

ईस्वी वर्ष	आयु	घटनायें
1890	01 जनवरी	जन्म
1906	17 वर्ष	स्वदेशी का व्रत लेना और ब्रिटिश सरकार की नौकरी न करने का संकल्प लेना।
1910	21 वर्ष	श्री रामेश्वर दयाल जी (नाना) से योग दीक्षा
1911	22	बी0एस0सी0 क्वींस कालेज वनारस से उत्तीर्ण की तथा लंदन मिशन स्कूल में अध्यापक
1912	23	प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन में अध्यापक,
1913	24	हरिश्चंद्र स्कूल काशी में अध्यापन कार्य,
1914	25	इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एल0टी0की उपाधि,
1915	26	इन्दौर में डेलीकाजेल में अध्यापक के पद पर नियुक्ति,
1916	27	'भौतिक विज्ञान' पुस्तक का लेखन, पं0 लक्ष्मीनारायण गर्दे के साथ मिलकर 'नवनीत' पत्रिका निकालना।
1918	29	बीकानेर में डूगर कालेज में प्रधानार्चाय के पद पर नियुक्त, पिता की मृत्यु ,
1919	30	'चेतासिंह और काशी का विद्रोह' पुस्तक लिखी।
1921	32	डूंगर कालेज के प्राचार्य पद से त्यागपत्र देकर,असहयोग आन्दोलन में भागीदारी, 'मर्यादा' पत्रिका का सम्पादन, ब्रिटिश युवराज प्रिन्स ऑफ वेल्स का वहिष्कार तथा गिरफ्तारी।
1923	34	काशी विद्यापीठ में दर्शन, राजनीति के प्रोफेसर पद पर नियुक्ति।

ईस्वी वर्ष	आयु	घटनायें
		अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्य निर्वाचित,
1925	36	पुत्री का विवाह,
1928	39	साइमन कमीशन का बहिष्कार, माताजी का देहात,
1930	41	'नमक सत्यागृह' में भागीदारी के लिए प्रांतीय काउंसिल से इस्तीफा, वर्षभर का कारावास।
1932	43	सविनय अवज्ञा आन्दोलन में गिरफ्तारी
1934	45	कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना में सहयोग, बम्बई में समाजवादी अधिवेशन के सभापति चुने गये।
1936	47	'समाजवाद' पुस्तक का लेखन,
1937	48	मंगलाप्रसाद पारितोषिक और मुरारका पुरस्कार प्रदान किया गया।
1938	49	2 मार्च को शिक्षमंत्री बने, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन कमेटी की नियुक्ति की गई, बद्रीनाथ मंदिर में प्रबंध–सुधार।
1939	50	पूरे प्रदेश में बेसिक शिक्षा लागू करना, वि०वि० सुधार समिति के अध्यक्ष के रूप में संस्तुति 'व्यक्ति और राज्य' पुस्तक की रचना, पत्नी का स्वर्गवास,
1940	51	हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति निर्वाचित, पुत्र की मृत्यु, पुत्री की मृत्यु, पुत्री की मृत्यु, गुरूदेव ब्रम्हलीन हुए, व्यक्तिगत सत्याग्रह में गिरफ्तारी।
1941	52	आर्यो का आदिदेश, दर्शन और जीवन, भारतीय सृष्टिक्रम विचार,
1942	53	भारत छोड़ो आन्दोलन में गिरफ्तारी
1943–44	54	जेल में अध्ययन, चिहिलास

ईस्वी वर्ष	आयु	घटनायें
1946	57	पुनः मंत्री बनना
1947	58	माध्यमिक शिक्षा का पुर्नगठन, मनोविज्ञान शाला की स्थापना,
1948	59	राजकीय केन्द्रीय पेड़ा गाजिकल इंस्टीयूट की स्थापना,
1950–51	61	उत्तर प्रदेश भाषा अधिनियम 1950–1951 का पारित कराना।
1954	65	वाराणसी में यू0पी0 स्टेट आज्जरवेटरी का कार्य प्रारंभ कराया, 28 दिसम्बर 1954 को मुख्यमंत्री बने।
1956	67	गोवधनिषेध्र अधिनियम 1956 पारित कराया वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय अधिनियम पारित कराया।
1959	70	थाट्स आंन एजूकेशनल एण्ड सम एलाइड प्राब्लम्स,
1960	71	6 दिसम्बर 1960 को मुख्यमंत्री से त्यागपत्र,
1961	72	भावनात्मक एकता समिति के अधयक्ष्ज्ञ,
1962	73	राजस्थान के राज्यपाल के पद पर नियुक्ति,
1965–67	76	'योगदर्शन' ग्रंथ की रचना।
1967	78	काशीविद्यापीठ के कुलाधिपति।
10.1.1969	80	दिवंगत हो गये।

प्राचीनता एवं नवीनता के संगम – डा0 सम्प्रर्णानन्द

जीवन वृत्त

डा0 सम्पूर्णानन्द समर्पित देश भक्त तथा सहृदय राजनीतिज्ञ के साथ ही उदारचेता शिक्षविद्, कुशल पत्रकार, समाजवादी चिंतक तथा बहुआयामी प्रतिभा के धनी प्रतिष्ठित लेखक थे। भरतीय संस्कृति के अनुयायी तथा प्राचीन जीवन–मूल्यों के पक्षधर होते हुए भी वह वैज्ञानिक विकास के हामी थे। दर्शन, इतिहास, विज्ञान तथा समाजशास्त्र आदि अनेक विषयों में उनकी गहरी बैठ थी, तथा लोकतांत्रिक परम्परा में गहरी आस्था थी।

अंग्रजी और विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह पहले शिक्षक बने, फिर पत्रकार के रूप में कार्य किया और कालान्तर में गांधी जी से प्रभावित होकर राजनीति में प्रवेश किया। अपने राजनीतिक जीवन में उन्होंने बड़ी कठोर यातनाएं झेली और अपना सारा जीवन होम कर दिया। उनकी तपश्चर्या और आपदाओं को झेलते हुए अपने पथ पर डटे रहने की साहसिकता को दखते हुए नवीन जी ने उन्हें 'विषपायी' कहा था। वह संग्राम का समय था और गांधी जी के आह्वान पर बहुतेरे स्वाधीनता – सेनानी अपना तन–मन धन न्योछावर करने निकल पड़े थे। लेकिन उनमें से कम लोग ऐसे थे, जिनके मन में भावी भारत का कोई स्पष्ट स्वरूप भी रहा हो। सॅपूर्णानन्द जी के मन में स्वाधीन भारत को लेकर जो परिकल्पना थी, वह समाजवादी व्यवस्था पर आधारित एक आदर्श देश की कल्पना थी और इसी कल्पना ने उन्हें "समाजवाद" नामक पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया था। वह चाहते थे कि भारत समाज़वाद के नाम पर दूसरे देशों का पिछलग्गू न बने, बल्कि भारतीय पेरिवेश तथा भारतीय जीवन–दर्शन को देखते हुए "समाजवाद" का स्वतंत्र रूप विकसित करें।

मंत्री और मुख्यमंत्री के रूप में सम्पूर्णानन्द जी ने प्रशासनिक कार्य– प्रणाली में कई सुधार लाने की कोशिश की थी। अंग्रजी सरकार 'अविश्वास और रोक' के सिद्धांत पर शासन चला रही थी, इसके विपरीत सम्पूर्णानन्द जी ने 'विश्वास और गति' का सिद्धांत अपनाना हितकर माना। शिक्षामंत्री के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने पाया था कि विज्ञान तथा दूसरे कई गंभीर विषयों पर हिन्दी में पुस्तकें उपलब्ध
नहीं हें। इस कमी को दूर करने के लिए उन्होंने महत्वपूर्ण ग्रंथों के लेखन– प्रकाशन की एक योजना प्रारंभ की थी जो न केंवल इस प्रदेश में बहुत लोकप्रिय हुई थी, बल्कि दूसरे प्रांतों ने भी उसे अपनाया और आज भी परिष्कृत परिव्द्धित रूप में चला रहें हैं। साहित्यकारों तथा कलाकारों को पुरस्कृत तथा सम्मानित करने की जो योजना आज चल रही है, वह उन्हीं की देन हैं।अपराधी सुधार की दिशा में उन्होंने 'बिना दीवार की जेल ' का अनूठा प्रयोग किया था, जिसकी सराहना भारत के बाहर भी हुई।

अपने श्रृम – दर्शन के लिए भी सम्पूर्णानन्द ज़ी हमेशा याद किये जायेंगे। दूसरी बार, सन् 1946 में जब कांग्रेस सत्ता में आयी तो उसने दो ऐतिहासिक संकल्प प्रस्तुत किये थे। पहला संकल्प जमींदारी समाप्त करने से संबंधित था, जिसे श्री रफी अहमद किदवई ने प्रस्तुत किया था। दूसरा संकल्प, जो उद्योगों के समाजीकरण से संबंधित था, सम्पूर्णानन्द जी ने पूरा किया था। वह श्रमिकों के सच्चे हितेषी थे और उन्होंने ही सर्वप्रथम श्रमिक वस्तियों बनाये जोन की पहल की थी। मजदूर आन्दोलन को भी उन्होंने एक रचनात्मक दिशा प्रदान

की।अपने गुरूतरं राजनैतिक एवं सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए भी अत्यंत व्यस्त जीवन में से समय निकालकर, उन्होंने विविध विषयों पर जिन पुस्तकों की रचना की, वे अद्वितीय हैं। आश्चर्यजनक तो यह है कि गम्भीर वीमारी के दिनों में भी वह स्वाध्याय तथा सृजन से विरत नहीं हुए।[24] (नारायण दत्त तिवारी)

जन्म और बाल्यकाल

भूतभावन भगवान शिव0 की मोक्षदायिनी नगरी काशी जो प्राचीन काल से वेदज्ञों एवं विद्वानों की विद्यापीठ, योगियों की तपस्थली तथा साहित्यकारों की कर्मस्थली के रूप में विख्यात रही है, के जालवादेवी मुहल्ले में एक शिवभक्त कायस्थ परिवार रहता था, जिसका सम्बंध काशी के राज प्रशासन से रहने के कारण समाज में उसे सम्मान प्राप्त था। उसके पूर्वज सदानंद बख्शी काशी के राजा चेतसिंह के अत्यंत कर्तव्यनिष्ठ और विश्वास पात्र मंत्री थे। सन् 1781 में अंग्रजी गर्वनर जनरल वरिन हेस्टिाज के द्वारा राजच्चुत कर दिये जाने एवं युद्ध में अंग्रेजी सेना से पराजित हो जाने के कारण राज चेतसिंह को काशी छोड़कर बुन्देलखण्ड जाना पड़ा था। बख्शी सदानंद भी स्वामिभक्ति में स्वेच्छा से उनके साथ थे। श्री सदानंद की चौथी पीढ़ी में श्री विजयानंद हुए, जिन्हें काशी नरेशा महाराज प्रभुनारायण सिंह के निजी सचिव श्री रामेश्वर दयाल की पुत्री ब्याही थी। काशी नरेश के नजदीकी होने के अतिरिक्त प्रतिष्ठा का आधार श्री विजयानंद का स्वयं का व्यक्तित्व था। वह अंग्रेजों के शासन में वनारस के सर्वोच्च अधिकारी अंग्रेजी कमिश्नर की अदालत में रीडर के पद पर नियुक्त थे। आपकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि अदालत में पेशकार और रीडर रहकर भी घूस नहीं लेते थे।

इनकी साध्वी पत्नी का नाम आनन्दी देवी थी। अंग्रेजी शासन काल में ईस्वी सन् के नये वर्ष के प्रारंभ के दिन न्यू ईयर्स डे को उत्सव के रूप में मनाने के उद्देश्य से सार्वजनिक अवकाश रहता था। नववर्ष 1890 ई0 के प्रथम दिन के प्रसन्नता के वातावरण मं पौस शुक्ल 11 सम्वत् 1946 दिन बुधवार पुत्रदा एकादशी के दिन श्री विजयानंद के घर में और भी अभिवृद्धि हो गई, जब उनकी पत्नी आनंदी देवी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। वंश परम्परा के अनुसार इस परिवार के बालकों के नाम के अंत में 'आनंद' लगाया जाता था। पिता विजयानंद, माता आनन्दी देवी नये वर्ष के प्रारंभ का आन्दोत्सव तथा प्रथम पुत्र रत्न, सब विधि आनंद ही आनंद के इस वातावरण में उत्पन्न हुए नवजात शिशु का नाम रखा गया सम्पूर्णानंद।

(24) समिधाा – डा0 सम्पूर्णानंद, प्रकाशक–अशोक प्रियदर्शी संस्करण – 1989

परिवार के व्यक्तियों का प्रभाव जाने या अनजाने में शिशु पर पड़ता है माता के सम्पर्क में अधिक रहने के कारण, तथा उसी के दूध के पलने के कारण सर्वाधिक प्रभाव माता का ही पड़ता है। पारिवारिक वातावरण के अनुसार ही बालक के चेतन ओर अवचेतन मन पर संस्कार अंकित होने लगते हैं, जो आगे चलकर प्रस्फुटित एवं पल्लवित होते हैं। माता–पिता दोनों धार्मि वृत्ति के थे। सम्पूर्णानंद के शब्दों में[25] "हम काशी के रहने वाले थे और मेरे माता–पिता पक्के सनातन धर्मावलम्बी थे, इसलिए हमारे घर का वातावरण निश्चय ही धार्मिक था"।

माता–पिता दोनों के नियमित रूप से नित्य पढ़ने का नियम था, इसका प्रभाव बालक पर पड़ना स्वाभाविक था। श्री सम्पूर्णानंद ने इस प्रकार के प्रत्यक्ष प्रभाव का वर्णन करते हुय लिखा है[26]

"मेरी माता सरल स्वभाव की हिन्दू गृहणी थी। सिवाय हिन्दी के और कोई भाषा नहीं जानती थी, परन्तु पढ़ने का उन्हें बहुत शौक था। गृहस्थी का दैनिक काम धन्धा समाप्त करके कोई पुस्तक लेकर लेट जाती और घंटे दो घंटे प्रायः नित्य पढ़ती। उनकी रूचि धार्मिक पुस्तकों और उपन्यासों की ओर अधिक थी। मेरे पिता भी पढ़ने के वैसे ही प्रेमी थे, नित्य रात में घंटे दो घंटे पढ़ते। ऐसे माता पिंता के साथ रहने का सहज परिणाम यह हुआ कि बहुत छोटी उम्र से मेरी भी पढने की आदत पड़ गयी।"

बालक सम्पूर्णानंद पर अपने धार्मिक एवं अध्ययन प्रेमी माता–पिता के अलावा शीतल बाबा का उल्लेख नीय प्रभाव पड़ा वे बहुत धार्मिक व्यक्ति थे तथा चारोधामों की तीर्थ यात्रा कर आये थे। छोटेपन से बालक उनको सौंप दिये जाते थे और उनके पास दिन रात में कई घंटे रहते थे, वे बच्चे की कहानियां और लोरियां सुनाते थे, जिनका जीवन पर गहरा प्रभाव पडता था। सम्पूर्णानंद ने 72 वर्ष की उम्र में लिखी अपनी पुस्तक 'कुछ स्कृतियां ओर कुछ स्फुट विचार' में शीत बाबा के सभी गुणों को बडी श्रद्धा से स्मरण किया है[27]।

"तीसरे व्यक्ति जिनसे मैं प्रभावित हुआ था शीतल बाबा थे उनकी कही हुयी कहानियों और गायी हुई लोरियों में से कुछ मुझे अभी तक याद हैं।"

सम्पूर्णानंद की पढ़ाई हिन्दी से प्रारभ कराई गयी। श्री विजयानन्द हिन्दी स्वयं पढ़ाते थे, तीन चार पुस्तकें पढा देने के पश्चात उर्दू पढाना प्रारंभ किया गया तथा कुछ दिन बाद

25. सम्पूर्णानंद, कुछ स्मृतियां और स्फुट विचार, पृष्ठ,1 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा, 7 संस्करण 1962।
26. वही, पृष्ठ 4,
27. वही, पृष्ठ 5

मौलवी मुइनुद्दीन अहमद को फारसी पढाने हेतु नियुक्त किया गया था, जिन्होंने चार साल तक घर पर फारसी पढाई थी।

धार्मिक विचारों वाले पिता ने अपने बालक में अच्छे संस्कार डालने की दृष्टि से विद्यालय में प्रवेश दिलाने के पूर्व सुखसागर और देवी भागवत पढाने के साथ ही साथ गोस्वामी तुलसीदास की रामचरित मानस को दो बार पूरा कर दिया था।

बाल्यकाल की एक घटना सम्पूर्णानंद के जीवन की दिशा देने वाल सिद्ध हुई वह थी 12 वर्ष की आयु में परिस्थितिवश मॉस खाने की तथा घृणा उत्पन्न हो जाने के कारण सदैव के लिए मॉस त्याग देने की।

शिक्षा–दीक्षा (अवधि 1903–1915 ई0)

श्री सम्पूर्णानंद का नाम ठठेरी बाजार के पास स्थित हरिश्चन्द्र स्कूल में छठवीं कक्षा में लिखाया गया, वहाँ 3 वर्ष की पढ़ाई पूरी करने के बाद क्वींस कालेज में कक्षा 9 में प्रवेश दिलाया गया। अगले वर्ष 1904 में उसे हाईस्कूल की परीक्षा में नहीं बैठना था, उस समय उसकी आयु 14 वर्ष थी उस वर्ष में बने नियमानुसार 16 वर्ष के कम आयु का विद्यार्थी हाई स्कूल की परीक्षा में नहीं बैठ सकता था, अतः सम्पूर्णानंद को दसवीं कक्षा में तीन साल रहना पडा। लेकिन पिता की असत्यभाषण न करने की दृढता ने उनके जीवन में अमिट छाप लगा दी, जो उनके जीवन में कठिन अवसरों पर मार्गदर्शन करके मोहबंधन से ऊपर उठाये रखा। बालक सम्पूर्णानंद ने इन दो वर्ष की अवधि को स्वाध्याय में लगाया और बनारस नगर के सबसे बडे पुस्तकालय कारमारकेल लाइब्रेरी का भरपूर उपयोग किया।

इसी बीच वायसराय लार्ड कर्जन ने भारत में अंग्रेजी सत्ता को सुरक्षित रखने एवं भाव में उठते क्रांति के प्रयासों को कुचलने के उद्देश्य से 1905 में बंगभंग की बंगभंग के विरोध में उठने वाला आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का एक मुख्य विन्दु बन गया। दिसम्बर 1905 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन श्री गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में बनारस में हुआ। इस अधिवेशन में पं0 मदन मोहर मालवीय, लाला लाजपतराय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी आदि के भाषणों से सम्पूर्णानंद बहुत प्रभावित हुए। सम्पूर्णानंद ने अंग्रेजी कपडा न पहनने का वृत लिया और वे सच्चे ह्रदय से निभाया भी। विद्यार्थी काल में ही सम्पूर्णानंद ने इस प्रतिज्ञा को पूर्णतया निभाया, अपितु उनके दोनों अनुज सम्पूर्णानंद और परिपूर्णानंद भी सरकारी किसी भी नौकरी में नहीं गये, श्री सम्पूर्णानंद के सुपुत्र सर्वदानंद भी सरकार की नौकरी से दूर रहे।

स्वाध्यायीय सम्पूर्णानंद ने करमाइके लाइब्रेरी में अंग्रेजों के उपन्यासों के अतिरिक्त टाड लिखित राजस्थान और ऐक्ट लिखित नोपोलियन की जीवनी पढने का विशेष उल्लेख किया है। नेपोलियन नें अंग्रेजी के विरूद्ध युद्ध लडा था। भारतीय युवकों में अंग्रेजी के विरूद्ध जो अस्फुट भावना थी, उसको नेपोलियन की जीवनी से पजिव मिलता था। इटली के उद्धारक गैरीवाली (1807–1882) तथा मेजिनी (1805–1872) को युवक आदर्श मानते थे।[28]

"इटली के स्वाधीनता संग्राम में इन दोनों (गैरी वाल्डी और मैजिनी) का कार्य इतना अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली रहा कि वह इतिहास में अजर अमर हो गया। इन दोनों ने मिलकर इटली के दुश्मनों को हराने के लिए वर्षो तक जान हथेली में लेकर ऐसे–ऐसे कारनामें किये कि वे सैकडों वर्षो तक सच्चे देश सेवकों के लिए मार्गदर्शक का काम करते रहेगें।"

अध्ययन प्रिय सम्पूर्णानंद ने बी0एस0सी0 करने के समय वनस्पति शास्त्र, जीवन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, मनोविज्ञान तथा सिद्धांत ज्योतिष की बहुत सी पुस्तकें पढ डाली थी, ज्योतिष उनका प्रिय विषय बन गया। अंग्रेजी के दो तीन स्टार ऐटलस खरीद करकें उनमें दिये आकाश चित्रों की सहायता से तथा इलेस्ट्रेटेडवीकली में प्रतिमास निकलने वाले आकाश चित्रों की मदद से मुख्य तारकपुंजों को पहचानने लगे।

इसी बीच धर्म सम्बन्धी पुस्तकें पढने की रूचि बढी बहुत से धर्मों की पुस्तकें देखी, सभी में कुछ दिन ही आकर्षण रहता था, किन्तु चित्त की स्थिरता कहीं मिलती थी। अपनी मानसिक अवस्था का शब्द चित्र सम्पूर्णानंद ने निम्नांकित प्रकार से दिया है।[29]

"मेरी अवस्था यो ही असंतोषजनक होती जा रही थी मैं अपने को निःसहाय पाता था। कोई उपाय सूझता नहीं था, जिससे उस रससागर की एक बूँद चखने को मिल जाये। जिसकी चर्चा संत साहित्य में योगवडमय में थी। घंटो न जाने क्या सोंचा करता था कभी कभी रो पडता था। स्वभाव चिडचिड़ा हो गया। पढने लिखने में जी नहीं लगतां था। बी0एस0सी0 फेल हो गया।"

यह स्थिति वर्ष 1910 की थी, असी वर्ष माता की प्रेरणा से सम्पूर्णानंद अपने नाना के सत्संग में जाने लगे उनकी मानसिक दशा सुधीर और पढने में मन लगाया एवं 1911 में बी0एस0सी0 परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

श्री सम्पूर्णानंद क्वींस कालेज के प्रिंसीपल डॉ0 आर्धखोनेस, डॉ0 गणेश प्रसाद एवं पंडित सुधाकर द्विवेदी जी का उल्लेख विशेष श्रद्धा के साथ किया है।

---

(28) राष्ट्रभक्त – महात्मा गैरीवाल्डी पृष्ठ –8 मथुरा, युग निर्माण योजना।
(29) सम्पूर्णानंद – कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 21, वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौराहा, संस्करण 1962

जिज्ञासु सम्पूर्णानंद की योग दीक्षा

अनीश्वरवादियों के ग्रंथों को पढने और बाद में ब्राह्मण ग्रंथों तथा उपनिषदों का अध्ययन किया किन्तु उससे अशांति मिटी नहीं। शंकर वेदांत की ओर रूझान बढा किन्तु प्यास बुझी नहीं तब संत साहित्य के नानक, कबीर, पलटू, दरिया, भीखा, मीरा, सहजोबाई, रैदास जैसे संतों की वाणी और साखी पढी मनन किया तो रास्ता अचछा लगा। लेकिन सद्‌गुरू की चिंता सताने लगी, साधु महात्माओं से भेंट की किन्तु अतृप्ति बनी रही, क्योंकि वे लोग मूर्तिपूजा और मंत्रजाप की बात करते थे।

'गुरू बिनु भावनिधि तरई न कोई। जो तिरंचि संकट सम होई।

'गुरू बिनु हो न ज्ञान' तथा गुरू कीजिए जान, पानी पीजे छान' कथन और चेतावनी मन में बसी थी। इनकी मानसिक उलझन को देखकर माता आनन्दी देवी ने दादा अर्थात अपने पिता श्री रामश्वर दया के पास जाने की सलाह दी। माताश्री ने वर्षो की उलझन को इशारे भाव से सुलझा दिया। 'दादा' की सेवा में प्रतिदिन जाने लगे। पहले तो उन्होंने हॅसकर, टाल दिया मार्ग की कठिनाई बतलाई परन्तु अन्ततः ज्ञानयोग की सच्ची जिज्ञासा परख लेने पर सद्‌गुरू की कृपा हो गयी, और सम्पूर्णानंद को पूर्व संतुष्टि मिली। सांकेतिक भाषा में लिखा है''[30]

"मैं योग्य आयोग्य जैसे कुछ भी था, पर मुझे फिर साधु महात्माओं के यहॉ एक हार से दूसरे हार भटकने की आवश्यकता नहीं रही। मुझे मार्ग बताने वाला, हाथ पकड़कर पथ पर ले चलने वाला मिल गया, जीवन बदल गया। सत्य का लहराता सरोवर सामने आया, उसमें अवगाहन करना अब मेरा काम था।"

श्री सम्पूर्णानंद ने अपने योगपरक काव्यग्रन्थ "गगनगुफा" में दीक्षा मिलने का वर्ष, तिथि, समय एवं स्थान का वर्णन किया है ,जिसके अनुसार सन् 1910 ई0 के क्वांर मास शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, दिन मंगलवार के सूर्योदय काल में काशी के बेनिया बाग में सद्‌गुरू देव से दीक्षा मिली।

इस दीक्षा के बाद सम्पूर्णानंद गुरू की महिला का बखान उसी तरह करने लगे जैसा संत कबीर, दरिया साहब और यारी साहब तथा सहजोबाई ने किया है,

कोटिन ब्रह्म रूद् हरि गुरू वशिष्ठ सम कोट।
कोटिन जनक कबीर पैं गुरू आगे सब छोट।।

---

(30) सम्पूर्णानंद – कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 23, वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौराहा, संस्करण 1962

"गुरू बिनु कौन दिखावै धाम, सम्पूर्णानंद कौन पिलावै अभिरस आठो याम।।

("गगनगुफा" पद सं0 189)

गुरूदीक्षा के बाद सम्पूर्णानंद की न केवल मन की विकलता मिटी अपितु जीवन बदल गया।

पारिवारिक स्थिति और आजीविका का प्रश्न

घर वालों ने आशा लगा रखी थी कि सम्पूर्णानंद पढाई पूर्व करने के बाद एक अच्छी नौकरी करेगा और बडे परिवार की आर्थिक मदद करेगा, अच्छी नौकरी अर्थात सरकरी नौकरी जैसा कि उसके बाबा नित्यानंद करते रहे थे और पिता श्री विजयानंद कर रहे थे। लेकिन जब उनके माता–पिता को पता लगा कि उनके बडे पुत्र ने नौकरी न करने की प्रतिज्ञा कर ली है, तो उनकी आशाओं पर तुषारापात हो गया। किन्तु किंसी ने कुछ नहीं कहा।

बी0एस0सी0 उर्त्तीण हो जाने के बाद दो विकल्प प्रस्तुत हुए आगे की पढाई अथवा किसी कार्य में लगना। परिवार में कमाने वाले मात्र ईमानदार पिता थे। पढने वाले दो पुत्र अन्नपूर्णानंद और परिपूर्णानंद भी थे, अतः एम0एस0सी0, एल0एल0बी0 अथवा एल0टी0 पढने की व्यवस्था न हो सकी। व्यवसाय में लगाने हेतु पूँजी नही थी। सरकारी नौकरी न करने का दृढ़ संकल्प सामने था, अतः विद्यात्यसनी सम्पूर्णानं ने किसी विद्यालय में अध्यापन करने का निश्चय किया और लंदन मिशन स्कूल में सहायक अध्यापक के रूप में 1911 जुलाई–अगस्त में कार्य करना प्रारंभ, किन्तु पूर्व भावनाओं के परिपेक्ष्य में विद्यालय की व्यवस्था में पूर्व सामंजस्य नहीं बैठ सका, अतः 1912 के मध्य में वह प्रसिद्ध देश भक्त राजा महेन्द्र प्रताप के द्वारा स्थापित प्रेम विद्यालय वृन्दावन में अध्यापन करने चले गये।

एक वर्ष के बाद पुनः काशी वापिस आकर हरिश्चन्द्र स्कूल में अध्यापक हो गये।

अध्यापन में रूचि होने के कारण सम्पूर्णानंद ने अध्यापन कार्य का विधिवत् प्रशिक्षण लेने हेतु 1914–15 में टीचर्स ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद में शिक्षाशास्त्र का प्रशिक्षण लिया और एल0टी0 उपाधि प्राप्त की। इस कालेज के प्रिंसिपल श्री मैकेन्जी ने सम्पूर्णानंद को डेली कालेज इन्दोर में अध्यापक होने के लिए प्रेरणा दी। सम्पूर्णानंद की नियुक्ति गर्वनर जर्नर मध्य भार मे एजेन्ट सर ह्यू डेली के नाम से स्थापित डेली कालेज इन्दौर में अध्यापक के रूप में हो गई। यह कालेज मध्य भारत के राजाओं के सरदारों और जागीदारों के लड़कों के लिए खोला गया था। इसमें 50 छात्र थे और 17 अध्यापक । हिन्दी के अध्यापक पं0 बनारसी दास चतुर्वेदी थे।

श्री सम्पूर्णानंद इन्दौर मे तीन वर्ष 1915–1918 तक रहे। वर्ष 1917 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आठवां वार्षिक सम्मेलन गांधी जी की अध्यक्षता में इन्दौर में हुआ था। दक्षिण अफ्रीका में उनके यशस्वी सेवा कार्यो की सर्वत्र ख्याति थी स्वयं सम्पूर्णानंद ने गांधी जी के सेवा कार्यों पर ''धर्मवीर गांधी'' पुस्तक लिखी थी, जो काशी में प्रकाशित हुई थी और उसकी आय उस कोष में दे दी गई थी, जो गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका आन्दोलन के लिए एकत्र किया गया था। इन्दौर में ही सम्पूर्णानंद ने गांधी जी के प्रथम दर्शन किये। यहीं पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापक राजर्षि पुरूषोत्तम दास टंडन जी से परिचय हुआ। इस समय तक सम्पूर्णानंद हिन्दू राज्य संस्थापक ओरछा नरेश महाराजा छत्रसा की जीवनी लिखने के अतिरिक्त ''भौतिक विज्ञान'', ''ज्योतिविनादे पुस्तक हिन्दी में लिखकरर सरस्वती के भण्डार में अपना योगदान कर चुके थे। इन्दौर में रहते हुए इन्होंने ''भारत के देशी राष्ट्र और महादजी सिंधिया'' की रचना की। इस प्रकार सम्पूर्णानंद अध्यापन कार्य में अतिरिक्त भारत की राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन करने के साथ हिन्दी भाषा में अमूल्य ग्रंथों का प्रणयन भी करते थे। इन्दौर में 3 वर्ष के अध्यापन कार्य के बाद राजस्थान के बीकानेर के डूँगर कालेज में हेडमास्टर होकर 1918 में चले गये। यहां की शिक्षा हिन्दी में दी जाती थी। बीकानेर का राज्य राजस्थान के मापदण्ड से बहुत प्रगतिशील था। महाराजा गंगासिंह अच्छी अंग्रेजी बोलते थे तथा वित्त मंत्री के भाषणों का हिन्दी अनुवाद करने का भार सम्पूर्णानंद पर था, इस प्रकार वे शासन के अंग बन गये थे। वर्ष 1918 में इनके पिता मुंशी विजयानंद ने पुत्र की गोद में सिर रखकर शरीर छोडा। सम्पूर्णानंद के ऊपर गृहस्थी का पूरा भार आ गया।

बीकानेर में रहने की अवधि में सम्पूर्णानंद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी व कृष्णदत्त पालीवाल के पत्रों में लेख काल्पनिक नाम कापालिक और 'सुखबिल' के ना से बीकानेर के किसी दूर स्थान से भेजते। 1919 में चंतसिंह का काशी विद्रोह 1920 में चीन की राज्यक्रांति लिखी। सम्पूर्णानंद ने 1921 को गर्मी की छुट्टियां काशी में बिताकर बीकानेर वापस आकर त्याग पत्र दे दिया। सम्पूर्णानंद ने अध्यापन काल के अनुभवों को संक्षेप में लिखा है ।''[31]

''मैं इन दस वर्षों में जीविका के लिए कई जगह घूमता फिरा। प्रायः एक–एक वर्ष ही रहा, कहीं तीन साल से अधिक नहीं टिका। यह बात देखने में तो अच्छी नहीं लगती परन्तु मुझे तो बहुत लाभ हुआ। राजस्थान और मध्य भारत में रहकर देशी राज्यों की रूपरेखा देखी, बीकानेर में स्वयं एक बड़े राज्य के शासन का अंग बना। साधारण घरों के लड़कों को पढ़ाया, राजा नवाबों

(31) सम्पूर्णानंद – कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 33, वाराणसी ज्ञान मण्डल लि० कबीर चौराहा, संस्करण 1962

के लड़कों को पढ़ाया, उनकी मनोवृत्ति देखी। भारत की मौलिक एकता और गहरी अनेकता का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ यह शिक्षा आगे के सार्वजनिक जीवन में मेरे काम आयी।"

कृतित्व

कृतित्व एवं व्यक्तित्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये व्यक्ति विशेष के जीवन को प्रकाशित करने वाले दो पक्ष है, दूसरे शब्दों में एक सिक्के के दो पहलू हैं। व्यक्तित्व का रचनात्मक रूप कृतित्व है, और कृतित्व भिन्न शब्द है। किन्तु उसी तरह अभिन्न है जैसे वाणी और उससे निकला हुआ अर्थ अथवा जल और उसमे उठने वाली लहरें।

"गिरा अर्थ जल विचिसम कहियत भिन्न न भिन्न।

(रामचरित मानस)

श्री सम्पूर्णानंद का कृतित्व विस्तृत है एवं विविध क्षेत्रों में निरूपित है।

लेखक के रूप में –

"राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए भी श्री सम्पूर्णानंद की लेखनी साहित्य निर्माण में लगी रही थी। वैदिक साहित्य के अनुशीलन तथा दर्शन पर मनन एवं ग्रंथ रचना का समय उन्हें फतेहगढ तथा परेली के जेल आवासकाल में मिला। अध्यापन काल में उन्होंने ज्यातिष एवं विज्ञान पर लेखनी चलाई थी। सम्राटों, अंग्रेजो से मोर्चा लेने वालों तथा सत्याग्रहों एवं राजनेताओं पर जहां उनकी लेखनी उठी, वहीं समसामयिक विषयों एवं समस्याओं पर भी पण्डितय पूर्ण लेख लिखकर जन साधारण का ध्यान आकर्षित किया। भारतीय बुद्धिजीवियों को उद्‌बोधित करके उतिष्ठ जागृत प्राय बरानिबोधत का संदेश दिय। सामान्यतः उनकी शैली पंडित्यपूर्ण और गंभीर विचार प्रधान है। साथ ही अध्यापक रहने और फिर जननायक होने के कारण उनकी शैली पर पाठक को अपनी बात समझाने की प्रवृत्ति का पुट सदैव रहता है। व्यख्या की विवेचक एवं विश्लेषक वृत्ति भी उनकी लेखों में दृष्टिगत होती है। उनकी शैली में अभिगुण का प्राधान्य रहता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा उनके ग्रंथ 'समाजवाद' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया गया था, वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी चुने गये। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष भी रहे। नागरी प्रचारिणी सभा काशी और हिन्दी भवन कालवी द्वारा उन्हें अभिनदन ग्रंथ भेंट किये गये थे। वे हिन्दी के सुविख्यात लखक तो थे हा अग्रेजी में भी अधिकार पूर्ण ढंग से लेखनी चलती रही थी। वे मॉ सरस्वती के वरदपुत्र थे।

आजीवन उनकी सेवा में लगे रहे, उनके द्वारा लिखित ग्रंथों की सूची निम्नवत है।

श्री सम्पूर्णानंद के द्वारा लिखित पुस्तकें

क्रमांक	पुस्तक का नाम	प्रकाशन का वर्ष
1.	धर्मवीर गांधी	1914 ई0
2.	महाराजा छत्रसाल	1916 ई0
3.	भौतिक विज्ञान	1916 ई0
4.	ज्योतिविनोद	1918 ई0
5.	भारत के देशी राष्ट्र	1918 ई0
6.	चेतसिंह और काशी का विद्रोह	1919 ई0
7.	सम्राट हर्षवर्धन	1920 ई0
8.	देशबंधु चितरंजनदास	1920 ई0
9.	महादनी सिंधिया	1921 ई0
10.	चीन की राज्यक्रांति	1921 ई0
11.	अकालियों का आदर्श सत्याग्रह	1922 ई0
12.	भारतीय सृष्टिक्रम विचार	1941 ई0
13.	मिश्र की स्वाधीनता	1923 ई0
14.	सम्राट अशोक	1924 ई0
15.	अन्तर्राष्ट्रीय विधान	1924 ई0
16.	When we are in power	1930 ई0
17.	समाजवाद	1936 ई0
18.	साम्यवाद का बिगुल	1940 ई0
19.	व्यक्ति और राज्य	1940 ई0
20.	आर्यो का आदिदेश	1940 ई0
21.	दर्शन और जीवन	1941 ई0
22.	कास्मोगोमी इन इण्डियन थाट	1942 ई0
23.	ब्राह्मण सावधान	1944 ई0
24.	चिद्विलास	1944 ई0
25.	गवेश	1944 ई0
26.	ऋग्वेदीय पुरूषसूक्त	1947 ई0

क्रमांक	पुस्तक का नाम	प्रकाशन का वर्ष
27.	भाषा की शक्ति और अन्य निबंध	1950 ई0
28.	हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	1951 ई0
29.	पृथ्वी से सप्तषि मंडल तक	1953 ई0
30.	अर्थवेदीय ब्रात्यकाण्ड	1955 ई0
31.	भारतीय बुद्धिजीवी	1957 ई0
32.	Trial of our democracy	1957 ई0
33.	Thoughts on education and some allied problems.	1956 ई0
34.	अलखनन्दा मंदाकिनी के दो तीर्थ	1959 ई0
35.	स्फुट विचार	1959 ई0
36.	अंतरिक्षयात्रा	1959 ई0
37.	Random Thoughts	1960 ई0
38.	भारतीय समाजवादी आर्थिक संयोजन और विक्रेन्द्रीकरण समिधा	1960 ई0
39.	कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार	1960 ई0
40.	मेमोआयर्स एण्ड रिफलेक्सन्स	1961 ई0
41.	इवोल्यूसन ऑफ दि हिन्दू पैन्यियन	1962 ई0
42.	घाघ और भड्डरी	1963 ई0
43.	हिन्दू देव परिवार का विकास	1963 ई0
44.	योगदर्शन	1964 ई0
45.	ग्रह नक्षत्र	1965 ई0
46.	वेदमंत्रों के प्रकाश में	1965 ई0
47.	स्फुट निबंध	1966 ई0
48.	वेदार्थ प्रवेशिका	1967 ई0
49.	गगनगुफा	1969 ई0
50.	अधूरी क्रांति	1969 ई0
51.	चरितचर्चा–जीवनदर्शन	1970 ई0
		1976 ई0

शिक्षा मंत्री के रूप में प्रदेश शासन में भागीदारी

नर्वनमेण्ट ऑफ इंण्डिया एक्ट 1935 के प्राविधानों के अनुसार प्रातों में विधान सभा का चुनाव हुआ। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस ने बहुमत प्राप्त किया। श्री सम्पूर्णानंद वनारस शहर से चुनाव लडे और विजयी हुए थे। चुनाव के कुछ समय बाद ही सम्पूर्णानंद पीलिया रोग के पीडित हो गये। कांग्रेस ने पं0 गोविन्द बल्लभ पंत के मुख्यमंत्रित्व में शासन संभाला। पंत जी के अतिरिक्त डॉ0 कैलाशननाथ काटजू, रफी अहमद किदवई, हाफिज मुहम्मद इब्राहीम, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित और पं0 प्यारेलाल शर्मा मंत्री बनाये गये। शिक्षा विभाग पं0 प्यारेलाल शर्मा के पास था। कानपुर में वार्षिक परीक्षा का पर्चा आउट हो जाने संदर्भ में उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

उनकें स्थान पर श्री सम्पूर्णानंद को 2 मार्च 1938 को शिक्षा मंत्री के रूप में मंत्रिमण्डल में सम्मिलित किया गया। इनको धार्मिक संस्थाओं का विभाग भी दिया गया। मंदिरों के कुप्रबन्ध की शिकायतें होती रहती थी। बद्रीनाथ मंदिर की सबसे अधिक शिकायतें थीं। सडके नहीं थी चीजें मंहगी मिलती थी। स्वच्छ जल, अस्पताल शौचालय आदि की व्यवस्था न थी।

मंदिर का सर्वोच्च अधिकारी, रावल था उनके आचरण एवं मंदिर के प्रबंध में कोई हस्ताक्षेप नहीं कर सकता था। श्री सम्पूर्णानंद द्वारा श्री बद्रीनाथ टेम्पुल एक्ट 1939 में विधान सभा से पारित कराकर मंदिर का प्रबन्ध एक समिति को सुपुर्द करा दिया गया। रावल को वेतन दिया जाने लगा, तथा यात्रियों की सुख–सुविधाओं की ओर ध्यान दिया जाने लगा।

महात्मा गांधी द्वारा समर्थित बुनियादी तालीम की रूपरेखा डॉ0 जाकिर हुसैन और श्री आजेनायकम् द्वारा की गयी थी इसके लागू करने की सलाह गांधी जी ने 22 अक्टूबर 1937 में वर्धा शिक्षा परिषद् शब्दों में की थी।[32]

"मिनिस्टर लोगों के सामने मैने अपनी योजना रख दी है वे चाहें तो इसे पूरा करें, चाहें तो ठुकरा दें। मगर मेरी सलाह है कि वे प्राइमरी तालीम के लिए तकली को ही बीच में रखें और उसी से लड़कों की पढ़ाई शुरू करें।"

वर्धा रिर्पोट के पक्ष व विपक्ष में काफी चर्चा हुई थी। श्री सम्पूर्णानंद ने मंत्रिपद ग्रहण करने के बाद ही बुनियादी शिक्षा को यू0पी0 में किस रूप में और किस प्रकार से लागू किया जाये के सम्बन्ध की संस्तुति करने हेतु आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में समिति गठन कर

(32) महात्मा गांधी – आ0 सालों का सम्पूर्ण शिक्षाक्रम, पृष्ठ–9, वर्धा, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ सेवाश्रम, 1957

दी इस समिति में वर्धा रिपोर्ट के प्रमुख डा0 जाकिर हुसैन की सदस्य रेख गए थे। आचार्य नरेन्द्र देव बुनियादी शिक्षा में इतिहास तथा चित्रकारी को समावेश करने की संस्तुति की। सरकार द्वारा संस्तुति को स्वीकार करने पर शिक्षा मंत्री श्री सम्पूर्णानंद ने सारे प्रदेश में एक साथ 09.08.39 को 1300 प्रारम्भिक स्कूल नये ढंग में परिवर्तित कर दिय। अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए अलग महिला बेसिक ट्रेनिंग कालेज स्थापित किया गया। बेसिक शिक्षा हेतु महिला अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए अलग महिला बेसिक ट्रेनिंग कालेज वनारस में खोला गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध छिड जाने से ब्रिटिश सरकार से कांग्रेस ने अपना सहयोग प्रार्शित करते हुए कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने नवम्बर 1939 के प्रारंभ में त्यागपत्र दे दिया। महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का मार्ग सुझाया और सबसे पहले विनोवा भावे ने गांधी जी के निर्देशानुसार युद्ध के विरूद्ध भाषण देते हुए गिरफ्तारी दी। उन्हें एक वर्ष की सजां हुई। फतेहगढ सेन्ट्रल जेल में रखा गया।

कुलपति के रूप में

डॉ0 सम्पूर्णानंद राज्यपाल राजस्थान के पद से 1967 में निवृत्त होकर वाराणसी आ गये, उन्हें काशी विद्यापीठ के कुलाधिपति के रूप में पद का भार संभालने हेतु काशी विद्यापीठ समिति ने राजी किया। वे जीवन के अंतिम क्षण तक इस पद पर रहे।

उन्होंने प्रवेशिका ग्रंथ इसी अवधि में लिखा। यह उनकी अंतिम रचना है। इसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है कि वेदाथ की कुंजी योगभाषा में मिलेगी। 10 जनवरी 1969 को 10 बजे भारत माता के सपूत, अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न विद्धान और प्रच्छन्न योगी पंच भौतिक शरीर को त्याग कर कैवल्य को प्राप्त हो गया।

राजनेता के रूप में

1921 में अगस्त मास में काशी आने पर सम्पूर्णानंद ने उस समय कांग्रेस के सक्रिय सदस्यों डॉ0 अब्दुल करीम, श्री बैजनाथ सिंह प्रो0 रामदास गौड़ श्री शिवसिंह आदि के साथ रहकर जनसम्पर्क स्थापित किया तथा जनसभाओं को आयोजित करने लगे नये होने के बावजूद उनकी कर्मठता को देखकर कांग्रेस के वार्षिक चुनाव में जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री चुने गये। कमेटी के अध्यक्ष डॉ0 भगवानदास जी थे। दिसम्बर 1921 में ब्रिटिश युवराज प्रिन्स ऑफ वेल्स को भारत सरकार ने आमंत्रित किया, कांग्रेस ने निश्चय किया कि अहिंसा को भंग न करते हुए स्वागत के सारे आयोजनों का बहिस्कार किया जाय। दिसम्बर को युवराज को काशी आना था। वहां नोटिस निकालकर भगवानदास, श्रीकृपलानी आदि एक दिन पूर्व गिरफ्तार कर लिये गये। प्रांतीय सरकार ने एक घोषणा निकालकर कांग्रेस का स्वयं सेवक

बनना या बनाना अपराध घोषित कर दिया। सम्पूर्णानंद ने अपने हस्ताक्षर से नोटिस निकाली तथा कोतवाली के सामने के नोटिस बोर्ड में तथा कांग्रेस दफ्तर में चिपकाकर स्वयं सेवक के रूप में आाकर भर्ती होने का आहवान किया। 24 दिसम्बर 1921 को प्रातः 9 बजे सम्पूर्णानंद गिरफ्तार करके सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये। जहॉ डॉ0 भगवानदास, श्री कृपालानी आदि थे। श्री सम्पूर्णानंद को एक वर्ष की सजा दी गई और वनारस से लखनऊ जेल भेज दिया गया। बाद में सजा घटाकर छः माह कर दी गई। जून 1922 में जेल से छूटने के बाद सक्रिय राजनीति के संचालन में संलग्न हो गए। जून 1922 में देश बन्धु चितरंजनदास की ध्यक्षता में कांग्रेस का गया में अधिवेशन हुआ, उसमें सम्पूर्णानंद ने एक पुस्तिका छपवाकर वितरित की, जिसमें कांग्रेस के भावी कार्यक्रम सम्बन्ध सुझाव थे। वर्ष 1923 में म्यूनिसपोलिटी के चुनाव हुए श्री सम्पूर्णानंद काशी के चेतसिंह वार्ड से तीन साल के लिए सदस्य चुने गये थे। उन्होंने तीन सालों में क्रमशः चुंगी, स्वास्थ्य और शिक्षा समितियों के अध्यक्ष पद पर कार्य किये। म्यूनिसलपल बोर्ड के अध्यक्ष डॉ0.भगवानदास थे, अध्यक्ष श्री शिवप्रसाद गुप्त, श्री प्रकाश, डॉ0 अमर नाथ बनर्जी, सम्पूर्णनंद आदि थे। म्यूनिसपल बोर्ड शासन में सुधार हुआ।

1926 में यू0पी0 की कौंसिल का चुनाव हुआ। काशीनगर से श्री सम्पूर्णानंद कांग्रेस की ओर से सदस्य हेतु चुनाव लडे तथा जीते। कौंसिल में कांग्रेस दल के नेता पं0 गोविन्द बल्लभ पंत चुने गये तथा कांग्रेस दल का मंत्री सम्पूर्णानंद को चुना गया। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी सदस्य थे। कांग्रेस के निर्णय के पालन में 1929 के अंत में कौंसिल के सभी कांग्रेसी सदस्यों को त्यागपत्र दे दिये। इसी वर्ष लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। 31 दिसम्बर 1929 की रात्रि में भार की पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हुआ। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने स्वतंत्रता का घोषण पत्र तैयार किया, जो प्रादेशिक भाषाओं में 26 जनवरी 1930 को सायंकाल 5 बजे सारे देश में पढ़ा गया, तब से ही 26 जनवरी का नाम "स्वाधीनता दिवस" पड गया जो 26 जनवरी 1950 से गणतंत्रात्मक संविधान लागू होने के बाद उसका नाम 'गणतंत्र दिवस' कहा जाने लगा। 6 अप्रैल से 13 अप्रैल के सप्ताह को जलियावाला बाग की स्मृति में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता था। काशी मे नमक अन्दोलन के लिए चन्दौली तहसील के फेसुडा ग्राम को चुना गया था। 13 अप्रैल 1930 को सम्पूर्णानंद व श्री श्रीप्रकाश गिरफ्तार किये गये। उत्तर प्रदेश में फसल खराब हो जाने से किसानों को लगान अदा करने में कठिनाई थी, अतः कांग्रेस ने लगानबंदी का आन्दोलन चालाया। श्री सम्पूर्णानंद को बनारस शहर तथा बनारस जिले का डिकटेटर चुना गया था।

प्रदेश भर के स्वयं सेवक संगठन, हिन्दुस्तानी सेवा दल का अध्यक्ष होने से आन्दोलन का विशेष भार उन पर आ गया था। सरकार दमन पर तुली थी। सम्पूर्णानंद की गिरफ्तारी हुई तथा छः माह की सजा हुई। जुलाई 1932 में जेल से छूटकर आने के बाद पपुनः आन्दोलन के संचालन करने पर सितम्बर 1932 में गिरफ्तार करके रायबरेली जेल में रखा गया। वहाँ से झांसी जेल भेज दिया गया। जेल से छूटने के बाद वर्ष 1993–94 में प्रदेश के पूर्वी जिलों के शक्कर के कारखानों में गन्ना लाने वाले किसानों को बहुत कष्ट होता था। श्री सम्पूर्णानंद, आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी आदि ने कई–कई दिनों रूककर गन्ना किसानों की शिकायतों पर जांच की, तथा सरकार को सिफारिश भेजी गई जिससे मिल मालिक घबडा गये और मुख्य–मुख्य सुझाव मान लिये गये तथा पानी, छाया, विलम्ब तौलाई और अच्छे कॉटे की व्यवस्था हो गयी। इसका ग्रामीण जनता पर अच्छा प्रभाव पडा। दूसरी जांच नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानंद के द्वारा गोरखपुर व देवरिया जिले में वर्ष 1930–32 के आन्दोलन में सताये गये किसानों की दुर्दशा पर की गई। जिसमें सिसता बाजार के किसानों की लूट की घटना प्रमुख थी। जॉच रिपोर्ट से घबड़ाकर जमींदार ने भूल स्वीकार की। जाली हैण्डनोट फाड दिये गये, लूट का कुछ सामान लौटा दिया गया तथा उजडे किसानों को फिर से बसाने का वचन दिया। जॉच कार्य से कांग्रेस की क्षमता पर जनता का विश्वास बढ़ा सरकार की व कर्मचारियों की बदनामी हुई। महात्मागांधी ने जेल से छूटने के बाद इस घटना की जांच रिपोर्ट का विवरण वायसराय लार्ड विलिम्स को भेजा।

कांग्रेस का बम्बई अधिवेशन अक्टूबर 1934 में समुद्र तट पर बडे मण्डप के नीचे हुआ। 21 व 22 अक्टूबर 1934 को वही पास में समाजवादी सम्मेलन श्री सम्पूर्णानंद की अध्यक्षता में हुआ। श्री जय प्रकाश नरायण महामंत्री चुने गये थे। इस प्रकार से कांग्रेस के भीतर समाजवादी दल बन गया था।

1936 में कांग्रेस का अधिवेशन जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ, जिसमें श्री सम्पूर्णानंद उसमें स्वयं सेवकों के जी0ओ0सी0 (प्रधान अफसर) के रूप में उपस्थित हुए थे।

जेल यात्राएं

श्री सम्पूर्णानंद जैसा कि उनके ग्रंथ 'कुछ स्मृतियां और कुछ स्फूट विचार में संदर्भ उपलब्ध है। छः बार जेल गये और उनके लगभग 7 वर्ष जेलों में व्यतीत हुए थे।

गिरफ्तारी की तिथि व स्थान	जेल में रहने की अवधि	गिरफ्तारी का कारण	जेल का स्थान
1. 24 दिसम्बर 1921 काशी	6 माह	प्रिन्स ऑफ वेल्स के स्वागत के बहिष्कार में प्रदर्शन	बनारस जिला जेल
2. 13 अप्रैल 1930 फेसुडा गॉव तहसील चन्दौली	11 माह	नमक बनाने का आन्दोलन	बनारस जेल
3. जनवरी 1932 काशी	6 माह	लगान बंदी आन्दोलन	रायबरेली जेल
4. सितम्बर 1932 काशी	1 वर्ष	लगानबंदी व अन्य आन्दोलन	रायबरेली व झांसी जेल
5. 1940 काशी	1 वर्ष	व्यक्तिगत सत्याग्रह	सेन्ट्रल प्रिजन फतेहगढ़
6. 9 अगस्त, 1942 काशी	$2^3/_4$ वर्ष	भारत छोडो आन्दोलन	सेन्ट्रल पिजन बरेली

सम्पादक के रूप में

श्री कृष्णकांत मालवीय ने अपने द्वारा पालित प्रिय पत्रिका 'मर्यादा' आर्थिक संकट के कारण हिन्दी प्रेमी बाबू शिवप्रसाद गुप्त को सौंप दी थी। देशरत्न श्री शिवप्रसाद गुप्त ने काशी विद्यापीठ खोलने के अतिरिक्त ज्ञान मण्डल प्रकाशन संस्था तथा दैनिक समाचार पत्र 'आज' का प्रकाशन करते थे। यह श्री सम्पूर्णानंद की विहता एवं कार्यक्षमता से प्रभावित थे। उन्होंने 'मर्यादा' मासिक पत्रिका का क़ार्यभार श्री सम्पूर्णानंद को सौंप दिया।

सम्पूर्णानंद ने पत्रिका के प्रथम पृष्ठ में उस मास में नक्षत्रों की स्थिति जो आकाश में दिखाई देगी, का चित्र देना आरंभ किया तथा उन नक्षत्रों के बारे में टिप्पणी भी दी। पत्रिका में सम्पादकीय, दिशाबोधक तथा प्रेरणादायक हुआ करता था। कुशल सम्पादन से प्रभावित श्री शिवप्रसाद गुप्त ने 'आज' दैनिक समाचार पत्र के 'टुडे' (Today) नामक दैनिक अंग्रेजी अखबार निकाला। श्री सम्पूर्णानंद ने दिन–रात परिश्रम करके अन्य अंग्रेजी समाचार पत्रों के समकक्ष खडा कर दिया था। 1935 में समाजवादी दल की ओर से एक साप्ताहिक 'जागरण' काशी निकलता था, उसके सम्पादन का भार श्री सम्पूर्णानंद पर था। सम्पादक के दायित्व के बारे में श्री पन्नालाल श्रीवास्तव ने लिखा है।[33] "सम्पादक विभाग तो उस छलनी के समान है, जहॉ हर प्रकार का सामान पहुँचता है, चाला जाता है और सार तथा भूसी तथा कूडा करकट अलग–अलग किया जाता है पर उसका काम यहीं समाप्त नहीं होता है । अपने माल को सुन्दर प्रदर्शन करना उसे ऐसे ढंग से सजाना कि राह चलता भी आकृष्ट होकर खरीदने को बाध्य हो उसी का काम है।"

दिशा बोधक, समालोचक का कार्य गुरूवर कार्य है। वरिष्ठ साहित्यकार श्री शिवसिंह 'सरोज' ने अपने काब्यसंग्रह' अमर भारतीय जय' पर श्री सम्पूर्णानंद की मूल्यवान सम्पत्ति

(33) श्री पन्नालाल श्रीवास्तव, पत्रकार कला, पृष्ठ 44, प्रकाश[illegible], इलाहाबाद, नवम्बर 1946

का आदर सहित स्मरण कर अपने प्रज्ञा, परम्परा, और पंडित्य के समीकरण, नामक लेख में किया है। पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'महापुरूषों के संस्मरण' नामक अपने ग्रंथ में श्री सम्पूर्णानंद के बहुमूल्य सुझावों एवं निश्छल परामर्श के बारे में लिखा है।[34]

"डॉ0 सम्पूर्णानंद अपने आप में एक बडी संस्था थे। उनके सम्पर्क में आने वाले निरन्तर उनसे प्रेरणा और उत्साह पाते रहते थे। मेरी पुस्तक 'कबीर' पढ कर बहुमूल्य सुझाव दिये थे। मैने विनम्रता पूर्वक उनमे से कुछ के बारे में लिखा था कि वे मेरी समझ में नहीं आ रहे हैं। कुछ को मैने मान लिया था। उन्होंने कहा था, जितना आपको सही जान पडे उतना ही स्वीकार कीजिए बाकी के लिए उनके मत में आग्रह नहीं था। उनकी योगशास्त्र वाली पुस्तक की कुछ बातों में मतभेंद प्रकट करने का साहस किया था। बाबू जी ने बडी उदारता और स्पष्टता के साथ मेरे कुछ विचारों को ग्रहण योग्य कहा था और बडालम्बा पत्र लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया था। उनके प्रत्येक वाक्य में उनकी स्पष्टवादिता, विद्या प्रेम, सत्य पर जोर होता था। ऐसा निश्चल परामर्शदाता अब कहॉ मिलेगा।"

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का उपरि संदर्भित पत्र 12.05.66 को लिखा गया था। वह नागरी प्रचारिणी सभा में प्रकाशित पुस्तक "चरित–चर्चा जीवन दर्शन" के पृष्ठ 134 में छपा है। उक्त पुस्तक में पं0 बलदेव उपाध्याय के ग्रंथ 'पुराणविमर्श' पर व्यक्त मंतब्य पृष्ठ 160 से 162 में डॉ0 हरवंशलाल शर्मा डी0लिट् के ग्रंथ "भागवत दर्शन" पर समीक्षापूर्ण पत्र पृष्ठ 170–172 में संग्रहीत है, इसी प्रकार संस्कृत नाटक 'पविनीय नाटकम्' की दिशा बोधक समीक्षा पृष्ठ 153 पर एवं इतिहास की पुस्तक 'प्राचीन सिंधु सभ्यता' पर मन्तब्य पत्र 150–152 में छपा है।

समीक्षा में मंतब्य बिना किसी लाग–लपेट के सत्य पर आधारित परामर्श पूर्ण होता है। जिसमें उनका निश्छल हृदय प्रतिबिम्बत होता था।

शिक्षा–समितियों के अध्यक्ष के रूप में

भावनात्मक एकता समिति के अध्यक्ष

देश का विघटन की प्रवृत्ति को रोकने की दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र में भावनात्मक एकता स्थापित करने के उपायों को सुझाने हेतु केन्द्रीय सरकार ने डॉ0 सम्पूर्णानंद की अध्यक्षता में एक समिति का गठन मई 1961 में किया। उस समिति ने देशभर का दौरा करके प्रमुख शिक्षाविदों, कुलपतियों एवं शिक्षा संगठनों के प्रमुख व्यक्तियों से भेंट कर उनकी राय जानी तथा अपनी संस्तुति भारत सरकार को 1962 में सौंपी थी।

(34) डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, महापुरूषों का स्मरण, पृष्ठ 120, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1987

विश्वविद्यालयी शिक्षा समिति

सन् 1938 में शिक्षा में सुधार सम्बन्धी कई समितियों का गठन किया गया था, तथा प्राइमरी और माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में लेफ्टीनेन्ट सुल्तान अहमद खां की अध्यक्षता में शारीरिक शिक्षा समिति का गठन किया गया था। विश्वविद्यालयों की शिक्षा में सुधार हेतु जो समिति गठित की गई थी, उसके अध्यक्ष शिक्षा मंत्री श्री सम्पूर्णानंद थे। उसने इलाहाबाद, लखनऊ और आगरा विश्वविद्यालयों में जाकर शिक्षा, शिक्षकों एवं कार्य प्रणाली पर अपनी रिर्पोट दी थी, किन्तु कांग्रेस मंत्रीमण्डल के नवम्बर 1939 में त्यागपत्र दे देने से कार्यवाही नहीं की गई।

सात वर्ष बाद दुबारा कांग्रेस के शासन सॅभालने पर पुनः इन विश्वविद्यालयों के कार्य सुधार हेतु समितियॉ बनाई गई, दि आगरा यूनीवर्सिटी (अमेन्डमेण्ट) एक्ट 1953 दि इलाहाबाद यूनीवर्सिटी (अमेण्डमेन्ट) एक्ट 1954 और दि लखनऊ यूनीवर्सिटी (अमेन्डमेन्ट) एक्ट 1954 द्वारा इन विश्वविद्यालयों में पूर्णकालीन उपकुलपति की नियुक्ति एवं उनके वेतन तथा निवास का प्राविधान किया गया। ट्रेजरर एवं रजिस्ट्रार के पद धारकों के कर्तब्यों का स्पष्ट निरूपण किया गया। अध्यापक वर्ग के वेतन पुनरीक्षित किये गये । विद्यालयों की सम्बद्धता के नियम तथा प्रभाव क्षेत्र का पुनः निर्धारण किया गया। मेरठ एवं कानपुर में नये विश्वविद्यालय स्थापित किये गये।

भावनात्मक एकीकरण समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा मई 1961 में श्री सम्पूर्णानंद की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। जिसमें निम्नांकित अनुशंसायें की गई।[35]

(1) भावनात्मक एकता को बढाने तथा दृढ़ करने में शिक्षा महत्वपूर्ण साधन है, यह दृष्टिकोण व्यापक करती है, अपनेपन और राष्ट्रीयता की भावना बढाती है, और त्याग तथा सहिष्णुता की भावनाएं उन्नत संकुचित सामूहिक हितों को देश के हित में विलय कर देती है। अतएव देश की नई आवश्यकताओं के अनुरूप एक रस राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली, उसका ढॉचा, पाठ्यक्रम और पद्धति बनाई जायं सामाजिक अध्ययन तथा सामाजिक विज्ञान पढाने पर बल दिया जाय और उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों का निर्माण हो।

(2) अहिंदी क्षेत्रों में हिन्दी रोमन लिपि या क्षेत्रीय भाषा की लिपि में पढ़ाई जाय।

(3) छात्र अन्य क्षेत्रों में पर्यटन पर जाय, उनके प्रदेश में अधिवास, जातियॉ, सम्प्रदाय का बंधन न हो, और अखिल भारतीय पिरषदें बनें।

(4) शिक्षकों का वेतन बढ़ाया जाय, उसकी क्षेत्रों में अदला बदली की जाय, और उसे पर्यटन की सुविधा दी जाय।

(35) उत्तर प्रदेश सरकार, उत्तर प्रदेश संहिता, पृष्ठ 451—477, इलाहाबाद, गवर्नमेण्ट प्रेस 1978

(5) विद्यालयों का अपना गणवेश हो, उसमें सामूहिक राष्ट्रीय गान गाया जाय। ध्वज के प्रति आर व्यक्त किया जाय, और राष्ट्रीय दिवस उत्साहपूर्ण ढंग से मनाये जायें।

(6) समिति द्वारा निर्देशित प्रतिज्ञा वर्ष में दो बार दोहराई जाय।

(7) पाठ्यक्रमेतर क्रियाएं, अर्तप्रादेशिक, साहित्यिक और खेलकूद, प्रतियोगितायें, एन0सी0सी0, ए0सी0सी0, स्काउटिंग गर्ल गाइड, खुली हवा में नाटक, युवा महोत्सव और शिविर आदि की व्यवस्था की जाय। विभिन्न प्रदेशों के जन–जीवन, क्रिया–कलाप, योजना निष्पादन, पुर्ननिर्माण कार्य आदि की वृत्त फिल्में दिखाई जाय।

(8) "अपना देश जानो" की परियोजना द्वारा छात्रों को विभिन्न राज्यों की जानकारी एकत्र करने के लिए अध्ययन तथा चर्चा कराई जाय" उपरि संदर्भित प्रतिज्ञा जिसके वर्ष में दुबारा दुहराने की संस्तुति समिति ने की है, वह निम्नांकित प्रकार से है।[36]

"भारत मेरा देश है, तथा सभी भारतीय मेरे भाई बहन हैं"

"मैं अपने देश से प्रेम करता हूँ, तथा उसकी सम्पन्न एवं विविध विरासत पर मुझे गर्व है।"

"मैं अपने माता–पिता, अध्यापकों तथा गुरूजनों का सम्मान करूँगा, तथा सभी के प्रति सौजन्य दिखाऊँगा।"

माध्यमिक शिक्षा के पुर्नगठन से सम्बन्धित विचार

शिक्षा का पुर्नगठन (1947–48).

श्री सम्पूर्णानंद ने दुबारा शिक्षा मंत्री का पद ग्रहण करने के बाद शिक्षा–विभाग के अधिकारियों की कान्फ्रेन्स बुलाई और शिक्षा की धीमी प्रगति के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए उसे विद्यालय वय के बच्चों तक पहुँचाने की गंभीरता पूर्ण आतुरता प्रकट की थी। उसके निर्देशन में शिक्षा–सम्बन्धी पंचवर्षीय महत्वाकांक्षी योजना तैयार की गई, जिसके 3 विभाग किये गये। (क) प्रचार–विस्तार, (ख) पुर्नगठन (ग) शिक्षक एवं उनका प्रशिक्षण। शिक्षा निदेशक के कार्यालय में एक विशेष कार्याधिकारी की नियुक्ति करे योजना के संचालन का भार दिया गया।

(क) प्रसार –विस्तार

(1) नये विद्यालय खोलना

जुलाई 1947 में छात्र–छात्राओं को शिक्षा देने हेतु 2340 सरकारी स्कूल खोले गये। इतने प्राइमरी स्कूलों के लिए अध्यापकों की आवश्यका की पूर्ति हेतु "सचल प्रशिक्षण दल" बनाया गया। जो रीजन के मुख्यालय तथा बडे जिलों में कैम्प लगाकर अध्यापकों को अल्पकालिक प्रशिक्षण देकर नये विद्यालयों के लिए अध्यापक तैयार करना था। जुलाई 1948 में 4568 नये राजकीय बेसिक प्राइमरी विद्यालय खोले गये।

(36) भाई योगेन्द्र जीत, भारतीय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ 197, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

(2) अनिवार्य शिक्षा लागू करना

प्रदेश के 80 म्यूनिसपल बोर्डों के क्षेत्र में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू की गई उसमें आने वाले अतिरिक्त व्यय के 314 भाग की पूर्ति हेतु म्यूनिसपल बोर्डों को ग्रान्ट दी गई।

(3) शिक्षा विभाग की ओर से प्रदेश के विभिन्न केन्द्रों की ग्रान्ट–इन–एड (सहायक अनुदान) आधार पर प्रौढ़–शिक्षा की व्यवस्था की गई थी।

(ख) पुर्नगठन –[37]

(1) 1947 में प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा को पूरी तरह पुर्नगठित कर दिया गया।

(2) हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल और एंग्लो हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल का भेद मिटा दिया गया।

(3) बालिकाओं के लिए प्रतापगढ़, फतेहपुर और बलिया में तीन हायर सैकेन्डरी स्कूल खोले गये।

(4) वर्ष 1947–48 में शैक्षिक प्रशासनिक प्रणाली को चुस्त बनाने हेतु पूरे प्रदेश को पॉच खण्डों में विभाजित करके, उसके प्रशासन हेतु एक क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक का पद सृजित किया गया, जो बालकों को विद्यालयों पर नियंत्रण कर सके तथा बालिका विद्यालयों के लिए प्रत्येक खण्ड में नियंत्रण कर सके तथा बालिकाओं विद्यालयों के लिए प्रत्येक खण्ड में एक क्षेत्रीय बालिका निरीक्षिका की भी नियुक्ति की गई। मुहम्मदन स्कूलों के नियंत्रण हेतु प्रत्येक खण्ड में एक 'डिप्टी इन्सपेक्टर ऑफ मोहम्मदन स्कूल्स' का पद भी सृजित किया गया। कुशल निंयंत्रण हेतु प्रत्येक जिले में एक 'डिस्ट्रिक्ट इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स' की नियुक्ति की गई।

शिक्षा निदेशक का कार्यालय इलाहाबाद में था और शिक्षा मंत्री का कार्यालय लखनऊ में था। त्वरित सलाह एवं विचार विमर्श की दृष्टि से शिक्षा–निदेशक का लखनऊ में एक कैम्प आफिस खोला गया।

माध्यमिक शिक्षा पुर्नगठन समिति 1952 की नियुक्ति

सन् 1938 में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। उसकी संस्तुतियों के आधार पर माध्यमिक शिक्षा की पुनरीक्षित योजना 1947 से लागू की गई थी। लगभग 4 वर्ष तक नयी योजना पर कार्य करने पर कई स्थानों से मॉग उठाई गई थी कि इस योजना का परीक्षण कराया जाँय कि क्या अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुई है, और इसमें क्या परिवर्तन आवश्य हो गये हैं। श्री सम्पूर्णानंद जी ने आचार्य

(37) यू0सी0 दत्त, एजूकेशनल सर्वे ऑफ उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 498, इलाहाबाद, इण्डियन प्रेस, 1960

नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन 18 मार्च 1952 में कर दिया। समिति को श्री सम्पूर्णानंद शिक्षा मंत्री ने 30 मार्च 1952 को सम्बोधित किया था। केन्द्रीय सरकार शिक्षा परिषद ने पूरे देश में माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव देने हेतु एक कमीशन नियुक्त किये जाने की संस्तुति कर दी थी। इसका संदर्भ अपने संबोधन में सम्पूर्णानंद ने देते हुए कहा था कि –[38]

"केन्द्रीय सरकार के द्वारा गठित किये जाने वाले आयोग की संस्तुति से हम लाभ उठायेगें किन्तु इस प्रदेश में जो योजना 1947 से लागू है, उसका परीक्षण तथा उसके सुधार की आवश्यकता अलग बात है, इस समिति ने 4 अप्रैल 1953 को अपनी रिर्पोट प्रेषित कर दी थी। ज्ञातब्य है कि माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर शिक्षा आयोग) को गठन 23 सितम्बर 1952 को और मुदालियर आयोग ने अपनी रिपोर्ट जून 1953 में दी थी। इससे प्रकट होता है कि श्री सम्पूर्णानंद प्रदेश को शिक्षा की द्रूतगति से सुसंगठित रूप से विस्तार देने में आगे रहने एवं रखने की इच्छा रखते थे।

संस्थान संस्थापक के रूप में

पं0 गोविन्द बल्लभ पंत जी उत्तर प्रदेश में मुख्य मंत्री थे उनके केन्द्रीय सरकार में चले जाने पर 28 दिसम्बर 1954 को सम्पूर्णानंद ने मुख्यमंत्री के पद की शपथ लेकर प्रदेश का नेतृत्व संभाला। उनके मुख्यमंत्री काल में गोरखपुर विश्वविद्यालय खोला गया। अमेरिका के लैण्ड ग्राण्ट कालेज में गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना पंतनगर मे की गई। इसमें कृषि, पशु चिकित्सा, कृषि इंजीनियरिंग, विज्ञान एवं गृह विज्ञान के कालेजों में कृषि तथा कृषि से सम्बन्धित सभी शाखाओं पर शिक्षा देने एवं शोध कार्य करके उपज बढ़ाने तथा रोजगार उपलब्ध कराने में मदद देने का उद्देश्य रखा गया है। संस्कृति भाषा को उसके अनुरूप स्थान दिलाने हेतु गर्वनमेन्ट संस्कृत कालेज, सरस्वती भवन लाइब्रेरी और स्टेट बोर्ड आफ संस्कृत एजूकेशन को सम्मिलित करके वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसेय की स्थापना की गई।

उत्तर प्रदेश की जनता की भावनाओं को महत्व देते हुए गोबध निशेध अधिनियम 1956 में पारित कराया। नैनीताल में वेधशाला की स्थापना उनके खगोल विद्या के प्रति प्रेम का घोतक है।

हिन्दी लेखकों एवं साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने तथा उनको आर्थिक सहायता देने के उद्देश्य से तथा वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय पुस्तकों को हिन्दी में लिखवाकर और अनुवाद

(38) उत्तर प्रदेश सरकार, रिपोर्ट ऑफ दि सेकेन्डरी एजूकेशन आर्गेनाइजेशन कमेटी, 1953 लखनऊ, गर्वनमेन्ट प्रेस।

कराकर प्रकाशित करके उपलब्ध कराने की दृष्टि से श्री सम्पूर्णानंद ने सूचना एवं प्रचार विभाग से सम्बद्ध करते हुए हिन्दी समिति की स्थापना की थी।

छः वर्ष तक प्रदेश शासन का नेतृत्व करने के बाद श्री सम्पूर्णानंद ने 6 दिसम्बर 1960 को मुख्यमंत्री के पद से त्याग पत्र दे दिया।

नैनीताल में वेधशाला की स्थापना

श्री सम्पूर्णानंद ने अपने ग्रंथ 'ज्योर्तिविनोद' में ज्योतिष सम्बन्धी यंत्रों एवं अंमेर के अधिपति महाराजा सवाई जयसिंह के द्वारा निर्मित उज्जैन, काशी, जयपुर, और दिल्ली के वृहत्काय वेधालयों का जिक्र किया था। काशी में मानमंदिर बेधालयों से ज्योतिषी काम लेना नहीं जानते थे। उनकी तीव्र इच्छा अनधुनिक ढंग की वेधशाला स्थापित करने की थी। उत्तर प्रदेश शासन में मंत्री बनने के बाद उन्होंने काशी के ज्योतिषविदों एवं अन्य विज्ञान विदों से चर्चा की। उन्होंने नैनीताल वेधशाला की स्थापना करायी यह कोडाइकैनाल हैदराबाद की तरह उत्कृष्ट वेधशाला है। इस वेधशाला में अपनी शैशवावस्था में ही कुछ अर्न्तराष्ट्रीय कार्यक्रमों में भाग लिया और इसकों विश्व में मान्यता प्रापत हुई। यह भारत के लिए विशेष गौरव की बात है, यह सम्पूर्णानंद के ज्योतिष प्रेम, अभिरूचि एवं सत्प्रयासों की साक्षी है।

इलाहाबाद में मनोविज्ञान शाला की स्थापना

आचार्य नरेन्द्र देव समिति (1938–39) कों मत था कि भौतिक संसाधनों के साथ ही मानव संसाधन जो बौद्धिक ऊर्जा के रूप में देश के प्रतिभाशाली बच्चों में संचित है उसको सही दिशा दिया जाना, तथा राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण में उसका संवर्धन और विकास किया जाना आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक आधार दिया जाना चाहिए। आधुनिक मनोविज्ञान अपने उपकरणों और तकनीकी साधनों के द्वारा प्रतिभा को खोजने, उसे पोषित करने तथा विकसित करने में उचित सहायता कर सकता है। इस पृष्ठभूमि में समिति ने एक मनोवैज्ञानिक संस्था खोलने की संस्तुति की थी।

प्रदेश में दुबारा कांग्रेस की सरकार बनने एवं श्री सम्पूर्णानंद के शिक्षा मंत्री बनने के बाद उक्त संस्तुति को कार्यरूप देने की दृष्टि से जुलाई 1947 में इलाहाबाद में मनोविज्ञान शाला की स्थापना की।

"मनोविज्ञानशाला का उद्देश्य विद्यालय जाने वाले वय वर्ग के बच्चों के यथेष्ट तथा सक्षम मनोवैज्ञानिक सेवायें उपलब्ध करना है, इसमें माध्यमिक विद्यालय के [illegible]त/छात्राओं के लिए शैक्षिक, व्यावसायिक और वैयक्तिक निर्देशन का प्राविधान है, तथ[illegible] चों को अपने

विद्यालय में, व्यवसाय में तथा समान्यतः समाज में संतोषजनक स्थान प्राप्त करना आदि कार्य सम्मिलित है।"[39]

"इसे भारत की प्रथम मनोविज्ञान शाला होने का गौरव प्राप्त है इसकी स्थापना के साथ ही मनोविज्ञान के क्षेत्र में नवीन उद्भावनाओं के एक अभिनवयुग का संवरण भी हुआ।"[40]

"राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् उत्तर प्रदेश का सृजन प्रदेश की शिक्षा में गुणवत्ता के विकास एवं संवर्द्धन हेतु किया गया। 'मनोविज्ञानशाला' को उक्त परिषद् के मनोविज्ञान और निर्देशन विभाग के रूप में सम्मिलित कर दिया गया है।

गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल पेडागाजिकल इंस्टीट्यूट (राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान) इलाहाबाद,

प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के पुर्नगठन पर आचार्य नरेन्द्र देव की समिति 1939 ने अपनी रिर्पोट के पैराग्राफ 92 में संस्तुति की थी कि शिक्षा विभाग द्वारा चयनित किसी स्थान पर एक सेन्ट्रल पेडागाजिकल इन्सटीट्यूट की स्थापना की जाय।

श्री सम्पूर्णानंद जब दुबारा 1946 में शिक्षा मंत्री बने तब उक्त समिति की संस्तुति पर पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट खोलने पर विचार विमर्श किया गया। बाद में वर्ष 1896 से स्थापित गवर्नमेन्ट ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद, जिसमें उन्होंने 1915 में एल0टी0 का प्रशिक्षण प्राप्त किया था, को उच्चीकृत करके पेडागाजिकल इन्सटीट्यूट का स्वरूप देने का निर्णय किया। पहले गवर्नमेन्ट ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बन्ध था। बाद में सन् 1927 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अलग करके शिक्षा विभाग उत्तर प्रदेश के नियंत्रण में कर दिया गया था। संस्थान का परिवर्तित नाम हुआ 'गर्वनमेण्ट सेन्ट्रल–पेडागाजिकल इन्सटीट्यूट इलाहाबाद"

"आचार्य नरेन्द्र देव समिति की प्रथम रिर्पोट में बताये गये एवं सरकार द्वारा निर्मित उप समितियों में पुष्ट किये गये इस इंस्टीट्यूट के लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नांकित हैं।"[41]

1. "स्नातकोत्तर प्रशिक्षण के स्तर का मानदण्ड ऊँचा करना, जिससे यह अन्य प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए नमूने का काम भी कर सकें।

---

(39) सूर्यदत्त उपाध्याय, निदेशक, प्रदेश में मनोवैज्ञानिक सेवा एक परिचय, पृष्ठ 2 इलाहाबाद, मनोविज्ञानशाला 1985।

(40) ज्ञान दत्त पाण्डेय, सम्पादक एक दशक, पृष्ठ 40 इलाहाबाद, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् 1991।

(41) गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल पेडागाजिकल इंस्टीट्यूट परिचय, इलाहाबाद, पृष्ठ 273, 1967

2. सेवाकालीन शिक्षकों के लिय 'रिफ्रेशरकोर्स'' की व्यवस्था करना और उन्हें नवीनतम शैक्षिक विकास से अवगत कराना।
3. शिक्षा सम्बन्धी कुछ विशेष प्रयोजनाओं को कार्यान्वित करना यथा बाल–साहित्य की रचना, अर्न्तराष्ट्रीय सद्भावना के लिए पाठन सामग्री का निर्माण, विज्ञान शिक्षा का उत्कर्ष, प्रोग्राम्ड इन्सट्रक्शन, स्कूल काम्प्लेक्स तथा विद्यालय की चतुर्मुखी विकास इत्यादि।
4. नवीनयुग की परिवर्तित आवश्यकताओं के अनुसार शैक्षिक अनुसंधान करना तथा लोकतंत्रीय समाजवादी समाज के अनुरूप पाठ्यक्रम, पाठन विधियों एवं प्राविधियों का निर्माण करना।
5. शिक्षकों एवं छात्राअध्यापकों को नवीन ज्ञान देकर व्यावसायिक नेतृत्व प्रदान करना और उच्चतर शैक्षिक मूल्यों के विकास एवं संरक्षण में उनकी सहायता करना'।

आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने राज्य की शिक्षा–व्यवस्था को गति और निर्देशन प्रदान करने के लिए जिस प्रकाश स्तम्भ की परिकल्पना की थी, यह इस संस्थान ने पूर्ति की।

''राज्य की शैक्षिक व्यवस्था को और गति देने और गुणवत्ता में वृद्धि हेतु निर्देशन, परामर्श और समन्वय को भी वर्ष 1981 में राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद उत्तर प्रदेश का गठन होने पर राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान को परिषद् का मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग बना दिया गया है।[42]

नये विश्वविद्यालय की स्थापना

बनारस के गवर्नमेन्ट संस्कृति कालेज एवं सरस्वती भवन (भव्य ग्रंथालय) तथा स्टेट बोर्ड आफ संस्कृत एजूकेशन को मिलाकर 'वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय' की स्थापना का श्रेय श्री सम्पूर्णानंद को है, उन्होंने ही 22 मार्च 1958 को तीन नये विश्वविद्यालय का उद्घाटन किया था और डॉ0 ए0एन0 झा0, आई0ए0एस0 उपकुलपति नियुक्त कियां गया था। उस समय श्री सम्पूर्णानंद प्रदेश के मुख्यमंत्रीं थे। उनका भाषण संस्कृत में था जो शिक्षा (पत्रिका के अंक अप्रैल 1958) में 'संस्कृतस्य प्रथमों विश्वविद्यालयः वहनोजागरिते अवतरिरत'' शीर्षक कृषि विश्वविद्यालय पंतनगर से छपा था। श्री सम्पूर्णानंद सन् 1948 में अमेरिका के सानफ्रांससकों नाम में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भाग लेने गये थे। अमेरिका में लैण्ड अन्ट कालेज जो कृषि एवं किसान की समस्याओं के समाधान् हेतु शोध कार्य सम्पन्न करता था, देखा था, और उसी के नमूने में अपने देश में पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय की

(42) स0 ज्ञानदत्त पाण्डेय, एक दशक पृष्ठ 17 व 18 इलाहाबाद, राज्य शैक्षिक अनुसंधान, और प्रशिक्षण परिषद् उत्तर प्रदेश 1981।

स्थापना की गई। इसमें प्रारम्भ में 5 कालेज, कृषि कालेज, पशु औषधि कालेज, कृषि इंजीनियरिंग कालेज, साइंस कालेज तथा होमसाइंस कालेज खोले गये। यह अपने ढंग का अनूठा विश्वविद्यालय है।[43]

यह श्री सम्पूर्णानंद के उर्वर मस्तिष्क की औार पं0 गोविन्द बल्लभ पंत पूर्व मुख्य मंत्री जिनके नाम पर पंतनगर नाम किया गया है, कि याद दिलाता रहेगा।

शिक्षक सेवा शर्तों के सुधारक के रूप में – 91,157,159,161,162

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर ब्रिटेन में चुनाव हुए जिसमें मजदूर दल विजय हुआ। 10 जुलाई 1945 को एटली के नेतृत्व में मजदूर दल की सरकार बनी। भारत के कायसराय लार्ड वेवल को परामर्श हेतु इग्लैण्ड बुलाया गया। इंग्लैण्ड से लौटने के बाद लार्ड वेवल ने संविधान सभा बनाने को संकेत दिया और भारतीय कांग्रेस से समझौता वार्ता प्रारम्भ की गई। केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनावों की घोषणा की। 1946 के चुनाव में केन्द्रीय असेम्बली और नौ राज्य विधान सभाओं में कांग्रेस को प्रत्याशित विजय प्राप्त हुई।

संयुक्त प्रांत में पं0 गोविन्द बल्लभ पंत के नेतृत्व में सरकार गठित हुई, सम्पूर्णानंद मंत्री बने। वह 1946 से 1954 तक उत्तर प्रदेश शासन के शिक्षा, श्रम, जेल, गृह तथा वित्त मंत्रालयों में मंत्री के रूप में कार्यभार सम्भाला और अपने मौलिक विचारों को कार्यान्वित करके उनमें सुधार भी किये।

शिक्षा मंत्री के रूप में पदभार संभालने के पश्चात् वेतन समिति गठित की और अध्यापकों के वेतनमानों में समुचित बढ़ोत्तरी की गई। समाज में उनकों सम्मानजनक जीवन विताने हेतु अध्यापकों की सम्मानजनक वेतनयुग की मॉग थी। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत एवं फारसी के अध्यापकों के वेतनों को समुचित स्वरूप प्रदान किया गया। प्राइवेट विद्यालयों के लिए भी वही वेतनमान दिया जाना आवश्यक बनाया गया। निजी विद्यालयों के प्रबंधन की त्रुटियों को दूर करने हेतु वेटर मैनेजमेन्ट कमेटी बैठाकर उसकी संस्तुतिं के अनुसार सुधार किया गया।

अध्यापकों को समुचित वेतन दिलाने हेतु (वेतन समिति 1946) पें कमेटी' का गठन

20 सितम्बर 1935 को वाराणसी में हुई वार्षिक माध्यमिक शिक्षा कान्फ्रेन्स में श्री सम्पूर्णानंद तत्कालीन शिक्षा मंत्री ने कहा था कि [44]– "मैं आपके बीच केवल मंत्रिमण्डल के

(43) यू0सी0 दत्त, एजेकेशनल सर्वे आफ उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 444, इलाहाबाद, इंडियन प्रेस 1960।
(44) सम्पूर्णानंद–राय उत्तर प्रदेश पत्रिका, सम्पूर्णानंद अंक, पृष्ठ 65, लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1989।

सदस्य के रूप में ही नहीं आया हूँ बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के रूप में आया हूँ, जिसने एक स्कूल में अध्यापक होने के कारण उन सब सुखों–दुःखों को स्वयं झेला है, जो आज भी अध्यापक की नियति है।''

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, फारसी के अध्यापकों का स्थान सी0टी0 ग्रेड के अध्यापकों से नीचा होना था। उनकी पदोन्नति किसी गजटेड पद पर नहीं हो सकती थी। वर्ष 1946 में दूसरी बार कांग्रेस सरकार बनने पर श्री सम्पूर्णानंद पुनः शिक्षा मंत्री बने। उन्होंने अध्यापकों को समुचित वेतन तथा समाज में उनको उचित सम्मान मिले, इसके लिए वेतन समिति गठित की। उसकी संस्तुति आने पर 1947 से अध्यापकों को नये वेतनमान स्वीकृत किये गये। भाषा अध्यापकों ने केवल वेतन बढ़ा दिया गया, अपितु उनके लिए पदोन्नति के द्वार खोल दिये गये। प्राइवेट संस्थाओं के अध्यापकों के वेतन भी तय किये गये। उन्होने प्राइवेट स्कूलों में प्रबंध व्यवस्था दुरूस्त करने की दृष्टि से 1947 में वेटर मैनेजमेन्ट कमेटी का गठन करके उसकी संस्तुतियों के आधार पर सुधार लागू कर दिये, जिससे शिक्षा की स्थिति में तथा अध्यापकों की सेवा शर्तों को सही दिशा मिली।

अध्यापक एवं उसका प्रशिक्षण

1. अध्यापकों के वेतन पुनरीक्षण हेतु वेतन समिति 1946 में गठित कर दी गई थी।
2. बेसिक प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों के लिए 'सचल प्रशिक्षण दल' खोला गया था। प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी को ध्यान में रखकर ए0टी0सी0 को पुर्नजीवित कर दी, दो माह के रिफ्रेशर कोर्स कराये गये। गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल पेडागाजिकल इंस्टीट्यूट इलाहाबाद में एल0टी0 और सी0टी0 डिप्लोमा की व्यवस्था की गई।

आचार्य नरेन्द्र देव ने भी श्री सम्पूर्णानंद पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्हें प्राचीनता एवं नवीनता का संगम कहा है।[45]

''उनके विचारों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। वह आधुनिक भी है प्राचीन भी है। एक जिक्र देखें तो मालुम होगा कि वह नवीन से नवीन है। दूसरी ओर उनके आचार विचार पर प्राचीनता की गहरी छाप है। यह छाप कभी इतनी गहरी होती है कि उसका आधुनिक विचारधारा से तीब्र विरोध पाया जाता है। यह ठीक है कि अतीत के गर्भ से वर्तमान का जन्म होता है। पुनः अतीत और वर्तमान का नैरतर्य है। यह हम नहीं कह सकते कि यहाँ अतीत का अंत होता है, यहां से वर्तमान का आरंभ होता है। इसलिए असामंजस्य का होना स्वाभाविक है– विशेषकर उन लोगों के लिए जिनकी आरंभिक

(45) आचार्य नरेन्द्र देव युग और विचार– सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित, पृष्ठ 197, 198।

शिक्षा–दीक्षा पुराने युग में हुई हो। किन्तु सम्पूर्णानंद जी में प्राचीन अनुष्ठान और पद्धति के प्रति आकर्षण बहुत ज्यादा है। जब किसी व्यक्ति के विचार बदलने लगते हैं तो पहला प्रहार पुरानी रीति और पद्धति की रक्षा करते हुए, नये विचार स्वीकार करते हैं।

सम्पूर्णानंद जी जब किसी विषय पर बात–चीत कीजिए तो वह प्रायः आधुनिक दीख पडते हैं, किन्तु जब उनकी पद्धति और अनुष्ठानों के प्रति अगाध प्रेम की ओर ध्यान दीजिए, जो कुछ विचित्र सा मालुम पडता है।"

उक्त विन्दु उनके व्यक्तित्व व कृतित्व दोनों को प्रदर्शित करते हैं। इन सभी से सीख प्रस्फूटित होती चलती है।

अध्याय चतुर्थ

समाजवादी चिंतकों के शिक्षा–दर्शन तथा शैक्षिक विचार

समाजवादी चिंतकों के शिक्षा–दर्शन तथा शैक्षिक विचार

1. शिक्षा का अर्थ, स्वरूप तथा अवधारणा

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रंथ हैं । 'वेद' शब्द विद् धातु जिसका अर्थ ज्ञान से बना है। वेद के अर्थ को जानने में, उसके कर्मकाण्ड के प्रतिपादन में सहायता देने के लिए जो उपयोगी शास्त्र है, उन्हें वेदांग कहते हैं, ये शास्त्र छः हैं। मुण्डकोपनिषद् में वेद के इन षट् अंगों ने नाम व क्रम का उल्लेख किया गया है।

'शिक्षाकल्पों व्याकरण निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति' (1) शिक्षा, (2) कल्प, (3) व्याकरण, (4) निरूवत, (5) छन्द, एवं (6) ज्योतिष। इनमें से प्रत्येक का अपना निजी वैशिष्ट्य है, किन्तु शिक्षा को इसमें प्रथम स्थान देकर उसको महत्वपूर्ण प्रदर्शित किया गया। उसे वेदरूपी पुरुष का घ्राण (नाक) कहा गया है।

शिक्षा ध्राणंतु वेदस्य मुख व्याकरण स्मृतम्' जिस प्रकार सब अंगों के परिपुष्ट तथा सुन्दर होने पर भी ध्राण (नाक) के बिना पुरूष शरीर अशोभन प्रतीत होता है, उसी प्रकार शिक्षा नामक वेदांग से रहित होने पर वेद पुरुष का स्वरूप नितान्त असुंदर तथा वीभत्स दीख पड़ता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् के तीन खण्ड (1) शिक्षावल्ली (2) ब्रह्मानन्दवल्ली तथा (3) भृगुवल्ली है।

प्रथम खण्ड शिक्षावल्ली में नामकरण के बारे में कहा गया है कि इस प्रकरण में दी हुई शिक्षा के अनुसार अपना जीवन बना लेने वाला मनुष्य इस लोग और परलोक के सर्वोत्तम फल को पा सकता है, और ब्रह्मविद्या को गृहण करने में समर्थ हो जाता है, इस भाव को समझाने के लिए इस प्रकरण का नाम शिक्षावल्ली रखा गया है।

आचार्य अपने आश्रम में रहने वाले ब्रह्मचारी/विद्यार्थी को वेद का भली भांति अध्ययन कराकर समावर्तक के समय (स्नातक) जो अंतिम शिक्षा देता था, उसका वर्णन शिक्षावल्ली के 11वें अनुताक में दिया गया है।

वर्तमान समय में भी दीक्षान्त समारोह में स्नातकों को उपाधि प्रदान किये जाने के साथ उपनिषद के इस शिक्षा वचनों में छपे पन्नों में देकर उनके कर्तब्यों का स्मरण कराया जाता है। यह सारी शिक्षाओं का सार रूप होने के कारण उनकी उपादेयता अब भी है, अतः उसको संक्षेप में दिया जाना अनुपयुक्त न होगा।

वेदमनूच्यायोऽन्तेवासिनम् नु शास्ति। सत्यवंद। धर्मचर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः मातृदेवोभव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। यान्यमवधानि कैर्मणि। तानि सेवितव्यानि जो इतराणि। तानि त्वयोपास्यानि। जो इतराणि। अर्थात वेद का भली प्रकार अध्ययन कराकर

आचार्य अपने आश्रम में रहने वाले ब्रह्माचारी विद्यार्थी को शिक्षा देता है कि तुम सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय में कभी प्रमाद (आलस्य) न करना। तुम माता में देवबुद्धि रखने वाले बनों, पिता को देवस्वरूप समझने वाले होवो। आचार्य को देवरूप समझने वाले बनो, अतिथि को देवतुल्य समझने वाले होवो। जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हीं का तुम्हे सेवन करना चाहिए, दूसरे कर्मो का आचरण नहीं करना चाहिएँ। हमारे आचरणों में भी जो अच्छे आचरण है, उनको ही तुम्हें आचरित करना चाहिए, दूसरों का कभी नहीं। उक्त शिक्षा पूरे जीवन में मन्नीय एवं आचरणीय है और जीवन को सफल बनाने वाली है।

श्री शंकराचार्य ने विद्या (शिक्षा) को मुक्ति दिलाने वाली कहा है। सा विद्या या विमुक्तये।

संस्कृत में शिक्षा और विद्या दो शब्द प्रचलित हैं, जो कुछ भिन्नता के साथ समानार्थी माने जाते हैं। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा के शिक्षा धातु से बना है, जिसका अर्थ सीखना–सिखाना है। विद्या शब्द की धातु विद् जिसका अर्थ ज्ञान प्राप्त करना या जानना है। शिक्षा का अंग्रेजी पयार्य एजूकेशन है जो लैटिन भाषा एजूकेटम "Educatun" शब्द से निकला है जो (E) ई और ड्यूको (Duco) दो शब्दों से मिलकर बनता है। ए E का अर्थ अन्दर से तथा डयूको (Duco) का अर्थ बाहर निकालना है। इस प्रकार एजूकेशन का अर्थ अंदर से बाहर निकालना है यानि व्यक्ति के भीतर स्थित क्षमताओं को विकसित करने में सहायक होना है।

पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री प्लेटी (427 ई0–347 ई0) ने शिक्षा को बालक के शरीर और आत्मा में उन सभी सौन्दर्य और पूर्णता का विकास करने वाली, जिसके वह योग्य है, कहा है।

जे0एफ0हरबार्ट (1776–1841) ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए लिखा है– "उत्तम नैतिक चरित्र का विकास शिक्षा है"।

फेडरिच फ्रवेल (1782–1852) ने "शिक्षा को एक प्रक्रिया बताया है, जिसके द्वारा बालक की अपनी आन्तरिक शक्तियों को बाहर लाया जाता है।"

हरबर्ट स्पेन्सर (1820–1903) ने, जीवन के लिए तैयारी को शिक्षा कहा है।

जॉन डी0वी0 ने शिक्षा की परिभाषा देते हुए लिखा है–

"शिक्षा व्यक्ति की उन सभी क्षमताओं का विकास है, जिनसे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रख सकता है, और अपनी संभावनायें पूरी कर सकता है।"

स्वामी विवेकानन्द (1863–1902) के द्वारा "शिक्षा को मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णतया की अभिव्यक्ति" कहा गया है।

महात्मा गांधी (1869–1948) ने शिक्षा का तात्पर्य बताते हुए लिखा है–

"सच्ची शक्ति वही कही जाएगी, जो बालकों की आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों को प्रकट करती है, और उनका विकास करती है।"[1]

डॉ0 राधाकृषणन् (1888–1975) के द्वारा सच्ची शिक्षा का तात्पर्य कुछ पाठों को सीख लेना और कंठस्य कर लेना नहीं है, अपितु सही अर्थ में जीवन यापन करना सोद्देश्य क्रियाओं में भाग लेना वास्तविक शिक्षा कहा गया है।[2]

डॉ0 सम्पूर्णानंद (1890–1969) के द्वारा शिक्षा का अर्थ एवं उसके क्षेत्र में विषय में कहा गया है[3] – "शिक्षा का अर्थ व्यापक है, शिक्षा उत्तरकालीन जीवन के लिये तैयार करती है। शिक्षा साक्षारता से बड़ी चीज है इसलिए शिक्षा के साधनों में केवल पुस्तकों से काम नहीं चल सकता। साधारण ज्ञान की वृद्धि के लिए ऐसे उपायों से काम लेने की आवश्यकता है, जो जल्दी बोध करा सकें, और जिनका प्रभाव दूर तक पहुँचे तथा देर तक रहे"।

डॉ0 जाकिर हुसैन (1897–1969) ने शिक्षा के विषय में लिखा है–

"शिक्षा व्यक्तित्व गढ़ने वाला कोई चापयंत्र नहीं है, बल्कि स्वच्छन्द तथा उन्मुक्त करने वाली वह क्रिया है, जिसमें शिक्षार्थी के निजी विशिष्ट व्यक्तित्व को मान्यता मिलती है।"[4]

शिक्षा के उद्देश्य

भारतीय समाजवादी चिंतकों अर्थात् आचार्य नरेन्द्र देव डा0 सम्पूर्णानंद एवं डा0 राममनोहर लोहिया पर भारतीय मनीषी स्वामी शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद तथा महात्मा गांधी के अप्रतिम व्यक्तित्व तथा शैक्षिक विचारों का गहरा प्रभाव पडा है। ये मात्र राजनीतिज्ञ ही नहीं बल्कि मनीषी विचारक भी हैं। शिक्षा के प्रयोगिक क्षेत्र में इन्हें कार्य का अनुभव नहीं था, परन्तु शिक्षा, प्राध्यापक, कुलपति, राज्यपाल और शिक्षा–समितियों के अध्यक्ष पद पर कार्य करने के पश्चात् शिक्षा क्षेत्र में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया है। उंन्हें शिक्षा पर सोचने विचारने का अवसर मिला है। सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक दोनों के अनुभव के बाद उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य प्रतिपादित किये हैं।

इनके अनुसार जीवन का उद्देश्य पुरूषार्थ चतुष्ट्य की उपलब्धि करना है। उनके अनुसार जीवन के उद्देश्य एवं शिक्षा के उद्देश्य भिन्न–भिन्न नहीं हो सकते, क्योंकि शिक्षा का कार्य मनुष्य को उसके जीवन ध्येय को प्राप्त कराना है और वह उसका प्रमुख साधन है। डॉ0 सम्पूर्णानंद जी ने अपने लेखों में जीवन के उद्देश्यों एवं शिक्षा के उद्देश्यों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य व्यक्ति की बौद्धिक

---

(1) गॉधी जी– आठ सालों का सम्पूर्ण शिक्षाक्रम, पृष्ठ5, वर्धा, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, 1957।
(2) डा0 राधाकृष्णन् – विश्वविद्याय आयोग प्रतिवेदन,
(3) श्री सम्पूर्णानंद, समिधा, पृष्ठ 272–274– लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1989।
(4) सं0 ताराचद्र वर्मा– डा0 जाकिर हुसैन, व्यक्तित्व और विचार, पृष्ठ 77 जयपुर चिन्मय प्रकाशन 1984।

शक्तियों एवं व्यक्तित्व को समुन्नत करना है, जिससे कि वह अच्छा नागरिक बन सके। उनके शब्दों में –[5] "शिक्षा का प्राथमिक जीवन मार्ग पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ने के योग्य बनाना है। उसे अपने बौद्धिक व्यक्तित्व को समुन्नत करने का अवसर प्रदान करना है, और उसकी भावनाओं को परिष्कृत करना है। इन सभी उद्देश्यों को इस सीमा तक ग्रशित किया जाता है कि परिणामतः जिस राज्य में व्यक्ति रहता है वह समाज एक कल्याणकारी संस्था का रूप ग्रहण कर लेता है। शिक्षा का उद्देश्य एक अच्छे नागरिक का निर्माण करना है"।

शिक्षा का दूसरा उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह समाज द्वारा प्रस्तुत साधनों से अपनी आजीविका प्राप्त कर सके, तथा अपने परिवार का समुचित रीति से पालन–पोषण एवं संरक्षण करके उनको भी योग्य नागरिक बना सकें– इस सम्बन्ध में उनका कथन निम्न है –

"शिक्षा का उद्देश्य योग्य नागरिकों का निर्माण करना है, जिससे कि जीवन संग्राम में आत्म निर्भर हो सकें। प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता के अनुसार इस योग्य बनाना चाहिए कि वह समाज द्वारा प्रस्तुत जीविकों साधनों से लाभान्वित हो सकें, क्योंकि बेकारी एक गंभीर समस्या है। हमारे मस्तिष्क और साधनों के पूर्ण उपयोग की मांग करती है, जिससे न केवल आज खाली हांथों को काम मिल सकें, बल्कि जहॉ तक संभव हों भविष्य में खाली हांथों की संभावना ही न होने पाये"[6]।

"शिक्षा का वास्तविक कार्य तो मनुष्य को उसकी आंतरिक सामर्थ्य के अनुसार, इस योग्य बना देना है कि वह मानवीय जीवन के उद्देश्य को समझ सकें और मनुष्यता के चरम आदर्श को प्राप्त कर सकें। यहॉ पर यह असंगत न होगा यदि भारत के पुराने विचारकों के अनुसार निर्दिष्ट मानव जीवन के उद्देश्यों पर संक्षेप में दृष्टिपात कर लें। पहले दो है – अर्थ एवं काम दोनों को सामयिक शब्दावली में आत्मरक्षा और जातीय अथवा वंश परम्परा की रक्षा की प्राकृतिक भावना कह सकते हैं"[7]।

शिक्षा का तीसरा उद्देश्य व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न एवं विकसित करना है कि वह अपने कर्तब्यों को जाने एवं अपने अधिकारों की मांग करने के बजाय अपने कर्तब्यों का पालन करें। इसे उन्होंने धर्म कहा है। इस आशय का कथन निम्नांकित है –दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखना, अपने अधिकारों पर अड़ने की वजाय कर्तब्यों पर आरूढ रहना,

---

(5) डा0 सर्म्पूणानंद– शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य (लेख) कोटेड इन संमिधा, पृष्ठ 281 लखनऊ सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग 1889, उ0प्र0
(6) डा0 सर्म्पूणानंद– शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य (लेख) कोटेड इन संमिधा, पृष्ठ 282 लखनऊ सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग 1889, उ0प्र0
(7) वही, पृष्ठ 283।
(8) डा0 सर्म्पूणानंद– शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य (लेख) कोटेड इन संमिधा, पृष्ठ 283 लखनऊ सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग 1889, उ0प्र0
(9) वही।

स्वार्थहीन, निष्काम कर्म यह जीवन का तीसरा उद्देश्य है, यही तीसरा पुरूषाथ्र धर्म है।"[8]

"सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग एक अभिभावक की भाँति सबकी भलाई के लिए करना है। अधिकार केवल सेवा एवं कर्तब्य पूर्ति का है। मस्तिष्क शरीर और भावनाओं को इस लक्ष्य के अनुरूप ढ़ाल देना शिक्षा का उद्देश्य है।"

शिक्षा का चतुर्थ उद्देश्य डॉ0 सम्पूर्णानंद के अनुसार अज्ञान (अविधा) से निवृत्त कराना है। इसी को उन्होंने जीवन का सर्वोच्च एवं अंतिम लक्ष्य कहा है। इससे सम्बन्धित उनका कथन निम्नवत् है[9] –

"पग–पग पर अज्ञान के कारण मनुष्य का मार्गावरोध होता है। वह नहीं जानता कि वे दूसरे सब कौन हैं, जिनके साथ वह सम्बन्धित है ओर जिनकी सेवा उसे करनी चाहिए, वह उनका सम्बन्ध विश्व से नहीं जानता और उनकी सेवा करने का सर्वोत्तम उपाय भी नहीं जानता। वह जो करना चाहता है, कर नहीं पाता, क्योंकि उसके पास साधनों का अभाव रहता है। वह स्वयं को और विश्व को पूरी तरह नहीं जानता और वह उससे सक्रिय तादात्म्य भी स्थापित नहीं कर पाता। वह अज्ञान से अविद्या से मुक्ति पाना चाहता है और यही जीवन का वह चौथा अंतिम और सर्वोच्च उद्देश्य 'मोक्ष' है। यह किसी भी अन्य साधन यानी 'धर्म' के साधन के रूप में प्रारम्भ होकर अंत में स्वयं साध्य बन जाता है।

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी के विचारों के अध्ययन से प्रकट हुआ है कि शिक्षा के चार लक्ष्यों के अतिरिक्त निम्न तीन बातों को भी सम्मिलित किया है।

(1) भारत के प्राचीन ज्ञान साधना से तथा गौरवपूर्ण अतीत से छात्रों को भली भाँति परिचित कराया जाय।

(2) विश्व में शांति एवं सुब्यवस्था सुनिश्चित करने की दृष्टि से शिक्षा के स्वरूप में यह भावना विकसित करनी होगी। कि दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र हमारे प्रतिद्वन्दी नहीं बल्कि सहयोगी एवं सहजीवी हैं तथा एक विराट पुरूष की संतान हैं।

(3) डॉ0 सम्पूर्णानंद ने शिक्षा में सौन्दर्यानुभूति एवं सौन्दर्योपासना की अनिवार्यता प्रतिपादित करते हुए कहा है –

"मेरी यह धारणा है कि जब तक हम अपनी शिक्षा में सौन्यर्योपासना को स्थान नहीं देगें, तब तक शिक्षा अधूरी रहेगी, शिक्षित अकृत्यन रहेगा। हमारे चारों ओर सौन्दर्य का सरोवर छलक रहा है। आकाश के तारों में चटकती हुई कलियों में, भवरों के गुंजार में, पक्षियों के कलरव में, बच्चे के हॅसने में सौन्दर्य ही सौन्दर्य है।"

(8) डा0 सर्म्पूणानंद– शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य (लेख) कोटेड इन संमिधा, पृष्ठ 283 लखनऊ सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग 1889, उ0प्र0

(9) वही।

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार हमारी शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिसमें सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक मूल्यों को प्रधानता दी गई हो।

वैज्ञानिक और यांत्रिक शिक्षा का निरन्तर प्रसार और वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रगति होनी चाहिए, परन्तु विज्ञान का तुच्छ स्वार्थों की सिद्ध में दुरूपयोग न किया जाय, बल्कि उसे सामाजिक हित–कार्य में नियोजित किया जाय।

आचार्य जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना होना चाहिए। विद्यार्थियों में जीवन के उन मूल्यों की प्रतिष्ठा और प्रचार किया जाय, जो आधुनिक विश्व की प्रगति के लिए आवश्यक हो। आचार्य जी के अनुसार "शिक्षा का सच्चा ध्येय ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में सहायता पहुँचाना है, जिसमें ज्ञान, सहज प्रवृत्तियां और भाव एकीभूत होकर एक सम्पूर्ण जीवन हो।"[10]

शिक्षा के सिद्धांत

समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक सिद्धांत

(अ) दार्शनिक आधार

(1) आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ0 सम्पूर्णानंद, डा0 राममनोहर लोहिया ने शिक्षा में उद्देश्यों के निर्धारण में आदर्शवादी दार्शनिक विचारधारा को आधार माना है।

(2) इनके विचारानुसार सत्य एवं मूल्यों के आधार पर ही स्वस्थ्य शिक्षा का निर्माण किया जा सकता है, किन्तु इसके साथ ही उन्होंने आदर्शवादियों की इस विचारधारा का खण्डन किया कि सत्य एवं मूल्य स्थित होते हैं।

(3) सत्य एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा सदैव वर्तमान सामाजिक परिवेश में होनी चाहिए, इस दृष्टि से ये चिंतक प्रयोजनवादी थे।

(4) मानव जीवन के उद्देश्यों की ब्याख्या करते हुए आचार्य जी ने लिखा है कि 'आज के युग में मानव जीवन का तात्पर्य सत्यं, सुन्दरं एवं समाज कल्याण की प्राप्ति है। शिवं के स्थान पर समाज–कल्याण आज के युग की सबसे बड़ी मॉग है। जिसकी उपलब्धि व्यक्ति को शिक्षा के द्वारा करनी चाहिए।

(5) शिक्षण–पद्धतियों के निर्धारण में भारतीय समाजवादी प्रकृतिवादी दृष्टिकोण को ही श्रेष्ठ समझते थे, क्योंकि वह शिक्षा बालक के स्वभाव, रूचि, अभिरूचि एवं वैयक्तित्व विभिन्नता के अधार पर देने के पक्षपाती थे।

(6) प्रयोजनवादी दार्शनिक विचारधारा की आत्म क्रिया शिक्षा के सिद्धांत को वर्तमान शिक्षा प्रणाली का मूल बताया।

(10) डा0 सर्म्पूणानंद– शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य (लेख) कोटेड इन संमिधा, पृष्ठ 283 लखनऊ सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग 1889, उ0प्र0

अंत में निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है भारतीय समाजवादी चिंतक शिक्षा की प्रत्येक समस्या के समाधान एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए विभिन्न दार्शनिक आधारों का आश्रय लिया।

(ब) मनौवैज्ञानिक आधार

(1) इन चिंतकों ने यद्यपि स्वतंत्र रूप से किसी स्पष्ट अथ्वा मौलिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया, किंतु इनकी तीक्ष्ण बुद्धि ने यह समझ लिया था कि इस शताब्दी में वैज्ञानिक खोजों एवं मनोविज्ञान के नवीन सिद्धांतों ने मानव प्रकृति तथा जगत सम्बन्धी हमारी प्राचीन परम्नरागत विचारधाराओं को परिवर्तित कर दिया है।

(2) इन्होंने बालक को शिक्षा देने का ढंग मनोवैज्ञानिक ही बताया है।

(3) वर्तमान समाज की आवश्यक्तानुसार यही शिक्षा का नवीनीकरण करना है तो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार को अपनाना होगा, अर्थात् शिक्षा बालक की रूचि, योग्यता, बुद्धि एवं वैयक्तिक आधार पर दी जाय। बालक को मुख्य स्थान प्राप्त हो। पाठ्यक्रम निर्मित करते समय बालक की रूचि, आयु एवं स्थानीय आवश्यकता को ध्यान में रखा जाय इत्यादि।

(स) समाजशास्त्रीय अधार

(1) आचार्य नरेन्द्र देव ने शिक्षा को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रदान किया है।

(2) विद्यालय केवल ज्ञान के आदान–प्रदान की एक मात्र संस्था नहीं है, वरन् एक लघु सामाजिक संस्था है। अतः विद्यालय वह स्थल है, जहॉ बालक केवल ज्ञानार्जन करने नहीं जाता है, वरन् विद्यालयों के सामाजिक जीवन के माध्यम से अपने चरित्र एवं व्यक्तित्व का वांश्नीय विकास एवं सामाजिक गुणों का विकास करता है।

(3) शिक्षा द्वारा व्यक्ति में समाज कल्याण की भावना का विकास किया जाय, क्योंकि इससे व्यक्ति में अर्न्तराष्ट्रीय सद्भावना का विकास होगा।

(4) शिक्षा द्वारा ऐसे नागरिक उत्पन्न किये जाय, जो प्राचीन काल से चली आ रही, सामाजिक परम्परा एवं ढाँचे को तोड़कर नवीन सामाजिक व्यवस्था में अपनी आस्था उत्पन्न करें।

शिक्षक

डा0 आत्मानन्द मिश्र के अनुसार[11] –

"किसी शिक्षण संस्था में बालकों या विद्यालयों को पढ़ाने का कार्य करने वाला व्यक्ति। इसे अध्यापन करने के लिए स्वयं उपयुक्त शिक्षा प्राप्त करना तथा किसी संस्था से व्यावसायिक प्रशिक्षण लेना आवश्यक होता है।"

(11) आत्मानंद मिश्र – शिक्षाकोष पृष्ठ 623, कानपुर ग्रंथम प्रकाशन 1977

समाज में स्थान

भारतीय समाजवादियों ने समाज में शिक्षक का स्थान बहुत ही सम्मानपूर्वक माना है। शिक्षक राष्ट्र की भावी पीढ़ी का निर्माता एवं उसको समुन्नत स्थान में पहुँचाने हेतु प्रेरक होता है उसके कर्तब्यों तथा कार्यों का मूल्यांकन रूपये पैसे से उसी प्रकार नहीं हो सकता, जैसे कि माता के द्वारा शिशुपालन में किये गये कार्य का। शिक्षक का पद व्यवसायी का नहीं है, इस मानसिकता वाले के लिए इस पवित्र कर्तब्य संवाहक संवर्ग में स्थान नहीं है उसे किसी व्यवसाय में लगना चाहिए, ऐसी उनकी भावना रही है। साथ ही डा0 सम्पूर्णानन्द ने यह व्यक्त किया है कि आर्थिक कठिनाइयों के बीच अध्यापक समाज में सम्मानपूर्वक नहीं रह सकेगा और न अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व के बोझ को अपने मस्तिष्क से अलग कर सकेगा, अतः राज्य और समाज को उसके समुचित भरण–पोषण का एवं समाज में सम्मानपूर्वक स्थान प्रदान करने का दायित्व लेना होगा। इस सम्बन्ध में डा0 सम्पूर्णानंद का कथन उल्लेखनीय है – "आचार्य छात्र के लिए पूज्य हैं ही, समाज का भी कर्तब्य है कि ऐसे व्यक्तियों का समादर करें, और उन्हें निष्कंटक काम करने का अवसर दें।[12]

आचार्य नरेन्द्र देव ने भी शिक्षकों के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। आल इंडिया यूनीवर्सिटी टीचर्स कनवेंशन के दिल्ली अधिवेशन में 4 दिसम्बर 1948 को सभापति पद से दिये हुए भाषण के कुछ अंश"[13]।

"अध्यापक वर्म अपने कर्तब्य और वृत का पूर्ण परिपालन कर सकें, इसके लिए उसका स्तर उन्नत करना होगा और उसकी जीविका की ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि अर्थिक कठिनाइयों से मुक्त होकर वह एकचित्त हो अपने जीवन कर्तब्य के पालन में लग सकें। उसकी बौद्धिक और अध्ययनगत स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखनी होगी, और सभी प्रस्तुत विषयों पर अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता उसे देनी होगी। सब विषयों में उसका रूख तटस्थ तो नहीं हो सकता, पर उसकी विचारधारा पूर्वाग्रह दूषित न हो, हर चीज को वह निष्पक्ष होकर देख सके। छात्रों के समक्ष किसी विषय पर दूसरों के विचार और दृष्टिकोण सत्यता ओर सच्चाई के साथ रख सकें। अध्यापक वर्ग की विचारधारा किसी के द्वारा दबायी न जाय, और न कोई अधिकारी या राजनीतिक उसे विवश कर उससे अपने विशेष स्वार्थों की सेवा लें, विचारों की स्वतंत्रता नितान्त रूप से आवश्यक है, क्योंकि जब तक अध्यापक और छात्रों के बीच विचारों और भावनाओं का उन्मुक्त आदान–प्रदान नहीं होता, तब तक ऐसे

(12) श्री सम्पूर्णानंद – चिद्विलास पृष्ठ 245, काशी ज्ञानमंडल लि0 1959
(13) आचार्य नरेन्द्र देव– युग और विचार सम्पादक – जगदीश चन्द्र दीक्षित, निदेशक–सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0 1989, पृष्ठ 133–134।

सामाजिक जीवन का विकास नहीं हो सकता जो गतिशील हो। हम अपने विद्यार्थी वर्ग में विनय एवं शील के होने की अपेक्षा करते हैं। पर यह किसी बाह्य शक्ति किंवा अधिकार का फल न हो प्रत्युत उनकी आंतरिक प्रवृत्तियों से ही उद्भूत और विकसित हो। इस प्रकार उनमें स्वातन्त्र रूप से सोचने और कार्य करने की शक्ति बढ़ेगी।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि अध्यापकों का वेतन सबसे कम है। पर दूसरे पेशों के लोगों के साथ जिन्हें इनके बरावर ही योग्यता प्राप्त करनी पडती है, यदि इसकी तुलना की जाय तो सामाजिक स्तर की दृष्टि में अध्यापकगण दूसरों की अपेक्षा नीचे मिलते हैं।

इस युग में जबकि जीवन की बहुमूल्य वस्तुएं धनिकों के घर भरती हैं और धन ही सब बातों को मापदण्ड बन गया है, तब बेचारा अध्यापक अपने वेतन में वृद्धि और अपने जीवन का स्तर सुधारने के लिए आन्दोलन करता है तो इसमें वह दोष का भागी नहीं। अध्यापक समाज की धुरी है, क्योंकि शिक्षा राष्ट्र के पुनरूज्जीवन की सभी योजनाओं का महत्वपूर्ण अंग है। अतएव सरकार और स्थानीय अधिकारी दोनों के लिए उचित है कि ऐसी व्यवस्था करें कि नयी योजना में अध्यापक वृन्द अपने उचित स्थान एवं स्तर पर आसीन हों। अच्छी से अच्छी व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें अध्यापक अपनी अध्यापन वृत्ति त्यागकर अच्छे वेतन और जीवन के उत्तम से उत्तम अध्यापकों में से लोग विश्वविद्यालय छोड़कर सरकारी नौकरी या उद्योग–धन्धों में काम करने के लिए चले जाते हैं जिसके कारण राष्ट्र की शिक्षा को बडा धक्का पहुँचता है, तो मुझे बडी वेदना होती है।

बुद्ध एवं गांधी के विचारों में निमग्न रहने वाले नरेन्द्र जी ने शिक्षकों की सामाजिक दशा के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

आगरा विश्वविद्यालय में 8 नवम्बर 1974 को पदवीदान के अवसर पर दिये हुए भाषण के कुछ अंश –[13]।

"जब अध्यापकों का पुरंस्कार ऐसा हो, जिससे उनको संतोष हो और उनके चित्त को एकाग्रता हो सके। आज वस्तुओं का मूल्य इतना बढ़ गया है कि लेक्चरर का काम आज के वेतन में किसी प्रकार नहीं चल सकता। अतः पुरस्कार में उचित वृद्धि सब वर्ग के अध्यापकों को दी जानी चाहिए, ऐसा होने से ही हमारे अध्यापक दत्तचित्त होकर शिक्षा का काम कर सकते हैं। उचित पुरस्कार न मिलने से हमारे यहाँ योग्य शिक्षकों की नितान्त कमी है, और यह कमी तभी पूरी हो सकती है, जब शिक्षकों की आर्थिक अवस्था में सुधार किया जाय। ऐसा करने से ही हम उनको समाज में सम्मान का स्थान दिला सकते हैं।"

(13") आचार्य नरेन्द्र देव– युग और विचार (लेख) (आदर्श शिक्षा का स्वरूप) पृष्ठ 110, निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0 1989।

(ब) कर्तब्य

समाजवादी चिंतकों द्वारा शिक्षकों को प्राचीन आचार्यों, उपाध्यायों एवं कुलपतियों के उच्च आदर्शों को अपने सामने रखकर छात्रों, स्नातकों एवं जिज्ञासुओं में अपने सुआचरित बौद्धिक ज्ञान के माध्यम से उनमें उत्तम गुणों एवं धार्मिक भावना को प्रस्फुटित एवं अभिवृद्धि करें। डा0 सम्पूर्णानंद द्वारा 'शिक्षा के उद्देश्य' एवं शिक्षक सम्बन्धी लेखों में शिक्षक के कर्तब्यों एवं उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं को निम्नांकित प्रकार से व्यक्त किया है–

(1) प्राचीन आचार्यों की भांति समुज्जवल चरित्र प्रस्तुत करना

जहाँ ये चिंतक चाहते थे कि शिक्षक को छात्र तथा समाज दोनो ही सम्मान दें तथा उसका आदर करे वही शिक्षक से अपेक्षा की वह पूर्व समय के धर्म शिक्षक एवं पुरोहित की भाँति विद्वान तथा तपस्वी हो तदानुसार अपने छात्रो को शिक्षा तथा मार्गदर्शन प्रदान करें अपने स्वयं के उच्च चारित्रिक गुणो के आधार पर अनुकरणीय बने । इस सम्बन्ध मे डा0 सम्पूर्णानंद का कथन उल्लेखनीय है।

शिक्षक के चरित्र को काफी ऊँचा उदाहरण प्रस्तुत करना होता है मनुष्य होने के नाते हम सभी मे कमिया होती है । किन्तु शिक्षक को तो पग–पग पर सावधान रहना है। साथ ही कुलपतियो की तरह समावर्तन के समय उन्हें यह कहने का साहस होना चाहिये कि "यान्स्मांक सुचारितानि ताने त्वयोपोस्यानि नो इतराणि"[14]

अर्थात केवल उन्ही आचार्यो की नकल करो जो अच्छे है, दूसरो की नही ।

(2) भारतीय संस्कृति की रक्षा व समृद्वि तथा पूर्व महापुरूषों के कार्यो का स्मरण कराना

ये चिंतक चाहते थे किशिक्षक को अपने छात्रो को प्राचीन भारतीय संस्कृति से परिचय कराना चाहिये तथा उसकी रक्षा एवं समृद्वि के लिये पूर्व महापुरूषो के कृत्यो के बारे मे बताकर उनमे दृढ़ भाव उत्पन्न करना चाहिये। इस सम्बन्ध मे डा0 सम्पूर्णानंद जी का कथन दृष्टत्व है।

"भारत वर्ष ने अतीत में महान सैनिक व राजनीतिज्ञ उत्पन्न किये है। हमे इनके लियेगर्व है, लेकिन हमे अपनेमहान योगियो ,विचारकोपर और भी गर्व है। जिन्होने अलजेबरा और दशमलव प्रणाली का अविष्कार किया। डाल्टन और लूकिटियस से कितने ही शताब्दियों पहले पदार्थ के आणविक निर्माण का सिद्वान्त स्थिर कर लिया था। उन महर्षि कणाद महान भास्कराचार्य के प्रति भिन्न गणित प्रणाली की पूर्वानुवर्ती प्रणाली निकाली थी ,श्रद्वांजलि अर्पित करना सिखाते हैं"[15]।

(14) डा0 सम्पूर्णानंद– विश्वविद्यालयी शिक्षा कोटेड इन समिधा पृष्ठ 302–303 लखनऊ निर्देशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0 1989।

(15) डा0 सम्पूर्णानंद – शिक्षा के आदर्श केन्द्र कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 280, लखनऊ सूचना एवं जन सम्पर्क वि0 1989।

(3) सभी विषयो के अध्यापकों के द्वारा छात्रों मे उदार धार्मिक प्रवृत्ति जागृत करना

समाजवादी चिंतक छात्रो मे सच्ची धार्मिक प्रवृत्ति जागृत करना चाहते थे और इसके लिये वे चाहते थें कि शिक्षक छात्रो मे धार्मिक कट्टरपंथता एवं साम्प्रदायिकता की भावना उत्पन्न न होने दें तथा सच्चे धर्म के बारे मे शिक्षा दें ।इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा कि आन भी शिक्षक को चाहे उसका विषय गणित या भूगोल, इतिहास या तर्कशात्र, अपने विषयो में धर्म की प्रवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिये । धर्म का तात्पर्य पूजा पाठ नही है। धर्म उन सब कार्यो की समृष्टि का नाम है जो कल्याण कारी है।

(4) छात्रों को सत्यनिष्ठ एवं सत्यान्वेषी बनाना

आचार्य नरेन्द्रदेव ,डा0 सम्पूर्ण नंद डा0 राममनोहर लोहिया ये तीनो समाजवादी विचारक महात्मा गाँधी के अनुयायी थे, जो सत्य को ही ईश्वर मानते थे। तथा ये स्वयं ही सत्य का पालन करते थे । उनका मत था कि आचार्य को स्वयं सत्य से प्रेम होना चाहिये और वह प्रेम उसके उदाहरण से शिष्य के जीवन मे उतरे ।

(5) छात्रों को पुरूषार्थ –चतुष्ट्य का ज्ञान कराना तथा परम लक्ष्य की ओर प्रेरित करना

इनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य पुरूषार्थ –चतुष्ट्य की प्राप्ति है। वे चाहते थे कि अध्यापक छात्रों को पुरूषार्थ –चतुष्ट्य का ज्ञान कराये तथा उन्हे जीवन के अंतिम पुरूषार्थ (मोक्ष) को प्राप्त करने के लिये प्रेरित करें तथा इसके लिये समुचित वातावरण तैयार करें इस सम्बन्ध मे श्री सम्पूर्णानंद का कथन है।"[16¹] अध्यापक का कर्तब्य हैकि वह ब्यक्ति को (पुरूषार्थ की उपलब्धि का) अधिकारी बनने मे सहायता दें तथा अनुकूल वातावरण उत्पन्न करें ।"

(6) छात्रों के प्रति अग्रज की तरह भावना रखना

ये चिंतक चाहते थे कि एक शिक्षक को अपने छात्रों के प्रति सहानुभूति एवं प्रेम का भाव रखना चाहिये तथा छात्र को अनुज समझकर उसकी गलतियो को सुधारने का प्रयास करना चाहिये। इस सम्बन्ध में डा0 सम्पूर्णानंद का कथन है।

"इस भावना (योगी) से जो अध्यापक होगा वह अपने शिष्य के कामो को उसी दृष्टि से देखेगा । जिस प्रकार बड़ा भाई अपने घुटनो के बल चलने वाले छोटे भाई की चेष्टाओ को देखता है। उसकी भूलो को तो ठीक करना ही होगा परन्तु सहानुभूति और प्रेम के साथ"[16²]।

(16¹) डा0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा का उद्देश्य (लेख) कोटेड इन गद्यगरिमा पृष्ठ 85 इलाहाबाद, निदेशक राजकीय मुद्रण एवं लेखन सामग्री, उ0प्र0।
(16²) डा0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा का उद्देश्य (लेख) कोटेड इन गद्यगरिमा पृष्ठ 85 इलाहाबाद, निदेशक राजकीय मुद्रण एवं लेखन सामग्री, उ0प्र0।
(17) आचार्य नरेन्द्र देव– युग और विचार, सम्पादक–जगदीश चन्द दीक्षित, निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ0प्र0 1989 पृष्ठ 131।

अध्यापकों को उनके कर्तव्यों के प्रति सचेत करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा था– ''अध्यापक–वर्ग को अपनी उदासीनता, विराग, आलस्य और निष्क्रियता का त्याग करना पडेगा और देश की राजनीतिक और समाजिक समस्याओ के समाधान मे सक्रिय भाग लेना होगा । उसे यह निर्णय करना होगा कि पुरानी संस्कृति और शिक्षा–सिद्वान्त का कितना अंश केवल रूढ़िगत महत्व का, पर यर्थाथ में निःसार होने से निकाल फेंकना है। इस क्षेत्र में सफल होने के लिए आवश्यक है कि अध्यापक वर्ग में नवीन उद्देश्यों और आदर्शों पर दृढ़ विश्वास और आस्था हो और इन्हें प्राप्त करने के लिए उत्साह के साथ दृढ़ प्रतिज्ञ होकर पूरा प्रयत्न करें।

किन्तु इस प्रकार के सच्चे शिक्षा सिद्धांतों के चरितार्थ करने में उपयोगी होने के लिए अध्यापक को स्वयं अपने को फिर से शिक्षित करना और उसे जो कार्य और व्रत–पालन करना है, उसके लिए उपकरण एकत्र करके सन्नद्ध होना पड़ेगा।''[17]

शिक्षार्थी

व्यक्ति/छात्र के बारे में दो प्रमुख दार्शनिक विचारधाराएं हैं, भौतिकतावादी दार्शनिक व्यक्ति को परमाणुओं का एक जटिल संकलन मानते हैं, जिसे उपलक्षण से चेतना प्राप्त हो गई। शरीर के नष्ट होने के सांथ वह चेतना भी नष्ट हो जायेगी। इनके सामने व्यक्ति/छात्र का जीवन लक्ष्य भौतिक वस्तुओं की अधिकतम उपलब्धि येनकेण प्रकारेण करके ऐहिक सुख प्राप्त करने में हैं। जिस समाज, समुदाय में वह रहता है, उसके नेता की इच्छा के अनुसार चलना ही उसके आचरण का आधार होगा। उसे निजी कोई अधिकार नहीं है। दूसरी विचारध ारा यह मानकर चलती है कि चेतना (आत्मा) स्थायीगुण है, शरीर का अस्तित्व न तो गर्भ से पूर्व था और न मृत्यु के बाद रहेगा स्थायीगुण है, शरीर का अस्तित्व न तो गर्भ से पूर्व था और न मृत्यु के बाद रहेगा किन्तु चेतना का अस्तित्व मृत्यु के बाद भी रहेगा। ये विचार आत्मवादी दार्शनिक के हैं, उनके अनुसार व्यक्ति/छात्र स्थायी अस्तित्व की हैसियत से अपने निजी अधिकार रख सकता है और अपने ही नियमों के अनुकूल अपना विकास करने का अधिकारी भी है। समाज और सभी साधन व्यक्ति को पूर्णता तक पहुँचाने में सहायक होगें। ये आत्मवादी विचारधारा को मान्यता देने वाले दार्शनिक थे, वे शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवेदांत के समर्थक थे, जिसके अनुसार बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रिय, शरीर की उपाधियों से परिछिन्न आत्मा ही जीव है। जीव एक शरीर के बेकाम हो जाने पर शरीरान्तर में जाता है, इस नये शरीर में भी पुराने संस्कारों का भण्डार साथ लाता है। जीव का परमलक्ष्य

(17) आचार्य नरेन्द्र देव– युग और विचार, सम्पादक–जगदीश चन्द्र दीक्षित, निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ0प्र0 1989 पृष्ठ 131।

अपने ब्रह्मस्वरूप को पहचानता है। आत्म साक्षात्कार करना अथवा मोक्ष प्राप्त करना है, अतः जीव जो समाज के एक घटक, शिक्षक के समक्ष एक शिक्षार्थी और राज्य के लिए भावी नागरिक के रूप में आया है, उसे उसके जीवन–लक्ष्य तक पहुँचाना सबका कर्तब्य है। श्री सम्पूर्णानंद अपने ग्रंथ "व्यक्ति और राज" में राज्य के कर्तब्यों का बोध कराते इन शब्दों में लिखा है।[18] "राज को अनुकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करके व्यक्ति को आत्मज्ञान की पहली सीढी पर खड़ा कर देना चाहिए, यही उसकी सार्थकता है। इसके आगे व्यक्ति को अपना अध्यवसाय है।"

ये चिंतक चाहते थे कि हमारे शिक्षा केन्द्रों को आधुनिक जीवन की सीमाओं के भीतर पुराने कुलपति के आश्रमों जैसा बनने की चेष्टा करनी चाहिए, जिसमें शिक्षार्थी का तप और त्याग का अभ्यास कराया जाना चाहिए, तथा मनुष्य का शरीर वासनाओं की तृप्ति में नष्ट कर देने की वस्तु नहीं है, वासनाओं का दमन मनुष्य की शोभा है। दूसरों की सेवा एवं सहयोग करने का पाठ उसे पढ़ाया जाना चाहिए। छात्रों की बुद्धि कोमल होती है उसमें प्रारंभ से ही यह सिद्धांत दृढ़ करना चाहिए कि मानव मात्र का हित एक ही है और वह आपसी सहयोग से ही प्राप्त हो सकता है। जीवन का प्रधान लक्ष्य आत्म साक्षात्कार है जो पुरूषार्थ धर्म चतुष्ट्य का अंतिम पुरूषार्थ है। धर्म पुरूषार्थ के पालन से अर्थ और काम की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए पुरूषार्थ धर्म का पालन करने पर बल दिया जाना चाहिए। विद्यार्थी के समक्ष अधिकाधिक धनोपार्जन करने वालों तथा संघर्ष करके युद्ध जीतने वालों को आदर्श रूप से न रखकर उन योगियों और महात्माओं के उदाहरण देने चाहिए, जिन्होंने वैनमस्य के स्थान में विश्व की एकता का संदेश दिया है।

इनका मत था कि छात्र का साहित्य, विज्ञान, इतिहास, राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा दी जाय, किंतु उसके साथ ही सिखाया जाना चाहिए कि अर्थ और काम के सम्पादन से अधिक आवश्यक धर्म का पालन है। धर्म का वास्तविक अर्थ कर्तब्य को पहचानना और उसका पालन करना है। छात्र पर ऋषि ऋण, पितृ ऋण, और देव ऋण है। उनका परिशोध करना हर व्यक्ति का परम धर्म है। शिक्षा के द्वारा छात्र में यह भाव बैठाया जाना चाहिए कि यदि वह बल में या वैभव में दूसरों से कम रह जाता है, तो यह लज्जा की बात नहीं है, किन्तु अपने कर्तब्यों को न पहचानना और उनका पालन न करना लज्जा की बात है। सही शिक्षा वही होगी जो नानात्व की प्रार्थक्य की प्रतीति रूपी अविधा का नाश करके जीव मात्र में एकता एवं अभेद की सीख दें। ऐसी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति समाज

(18) श्री सम्पूर्णानंद– व्यक्ति और राज, पृष्ठ 135, काशी हिन्दी पुस्तक एजेन्सी 1940

का योग्य नागरिक होगा। सबको धर्ममार्ग पर चलने की प्रवृत्ति जागृत करेगी और राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय व्यवहार में सहयोग के समर्थक होते जायेगें।

श्री सम्पूर्णानंद ने कला और विशेषकर कलाओं के शिरोमणि संगीत की शिक्षा प्रत्येक शिक्षार्थी को दिये जाने की आवश्यकता प्रतिपादित की है।

उपुर्यक्त मत की पुष्टि उनके निम्नांकित कथनों से होती है।

''छात्रों की कोमल बुद्धि में यह बात आरम्भ से ही बैठानी चाहिए और यह बात समझ में आ जाय कि सबका हित एक ही है, और वह सहयोग से प्राप्त हो सकता है, तो आपस का द्वन्द बंद हो जाय। सबको सुख–समृद्धि प्राप्त हो, कम से कम हम दूसरों के दुःख को बढ़ाने के साधन न बनें।''

वे आगे कहते हैं ''उनके (शिक्षार्थियों) सामने धनोपार्जन करने वालों और विजेताओं का आदर्श रूप को न रखकर विश्व को एकंता का पाठ पढ़ाने वालों का उत्कर्ष बताना चाहिए। बचपन से ही तप और त्याग का अभ्यास न पडा तो आगे चलकर कठिनाई होगी। तासना का दमन मनुष्य की शोभा है, अपने को यथाशक्य दूसरों की सेवा में लगाना उसका आदर्श है। आत्मसाक्षात्कार उसके जीवन का प्रधान लक्ष्य है। अपने धर्म के पालन का प्रयत्न न करना, अर्थ और काम को धर्म से श्रेष्ठ मानना, मनुष्य के लिए लांछन है। यह भाव शिक्षा के द्वारा दृढ़ किया जाना चाहिए। ऐसी शिक्षा पाया हुआ मनुष्य समाज का योग्य नागरिक होगा। प्रायः सब परार्थ को स्वार्थ से ऊँचा स्थान देगें, प्रायः सब राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय व्यवहार में सहयोग और सद्भावना के समर्थक होगें।''[19]

श्री सम्पूर्णानंद ने अपना मत व्यक्त किया है '' कि शिक्षार्थियों की शिक्षा, छटाओं में प्रसारित सौन्दर्यपूर्ण वातावरण तथा कलाकृतियों के बीच होनी चाहिए, और उन्हें सुरभित पुष्पों, चटकती कलियों, पक्षियों के कलरव और सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय के मनोरम दृश्य ने, रात्रि को आकशरूपी चदौवे में टंकित तारों, नक्षत्रों के साथ तदाम्य स्थापित करने की शिक्षा अवश्य ही दी जानी चाहिए, इनके अभाव में उन्होंने शिक्षा को अधूरी कहा है।''[20]

चारों ओर सौन्दर्यमय वातावरण में प्रकृतिच्छटा और कलापूर्ण कृतियों के बीच छात्र का जीवन बीतना चाहिए''[21] मेरी यह दृढ़ धारणा है कि जब तक हम अपनी शिक्षा में सौन्दर्योपासना को स्थान नहीं देगें, तब तक शिक्षा अधूरी रहेगी, शिक्षित अकृत्स्न रहेगा।''

(19) श्री सम्पूर्णानंद– चिद्विलास, पृष्ठ 224, काशी ज्ञानमंडल लि0 1944।
(20) " " " 225 "
(21) श्री सम्पूर्णानंद – कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फूट विचार, पृष्ठ 256, वाराणसी ज्ञानमंडल लि0 1962

पाठ्यक्रम

भारतीय समाजवादी चिंतकों के अनुसार शिक्षा अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति तभी कर सकती है, जबकि पाठ्यक्रम में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों यथा शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक एवं नैतिक विकास तथा सामाजिक दायित्वों के प्रति शिक्षा को उचित स्थान प्रदान किया जाय। इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम का निर्माण व्यापक दृष्टिकोण से किया जाय। पाठ्यक्रम के संदर्भ में समाजवादी चिंतक डा0 सम्पूर्णानंद का कथन दृष्टब्य है।[22]

"हमारी शिक्षा पद्धति में विशिष्टता प्राप्त करने की ओर अत्याधिक ध्यान दिया गया है एक ओर तो हम विद्यार्थियों के उस समुदाय को देखते हैं जो वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन करता हुआ भारतीय इतिहास एवं सभ्यता का प्रारंभिक ज्ञात भी नहीं रखता है और दूसरी ओर उन विद्यार्थियों का समुदाय दिखाई पड़ता है जो प्रकृति के साधारण से साधारण दृग्विषयों को समझने में असमर्थ होते हैं। हमें ऐसी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी कि जिसके द्वारा हम प्रत्येक विद्यार्थी को आज के जटिल विश्व में सतुलित और शिक्षित युवक जैसा व्यवहार करने की हैसियत प्रदान करने वाला सामान्य ज्ञान दे सकें।

समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में पांठ्क्रमं सम्बन्धी रूपरेखा को निम्न तरह प्रस्तुत कर सकते हैं –

(अ) बौद्धिक विकास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम

मात्भाषा – बालक प्रारंभ से ही अपनी मातृभाषा में बोलता है, और उसी को सुनता है, इसलिए अन्य भाषाओं की अपेक्षा अपनी मातृभाषा में उसका शब्दज्ञान अधिक होगा। वह प्रत्येक बात को अपनी मातृभाषा में शीघ्र समझ सकेगा, और उसको प्रभावपूर्ण ढंग से बोल भी पायेगा। इसलिए ये तीनों विचारक मातृभाषा हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के पक्षधर थे।

हिन्दी के प्रति आग्रह ने आचार्य जी, श्री सम्पूर्णानंद जी एवं डा0 लोहिया जी को भारत की संस्कृति के बारे में सोचने का अवसर दिया। आचार्य जी ने अपना ध्ययन बौद्ध साहित्य को बनाया तो लोहिया जी ने राम, कृष्ण, शिव तथा रामायण मेला को युग संदर्भ में रखा।

सम्पूर्णानंद जी ने 'हिन्दी समिति' की स्थापना की, विज्ञान, पौद्योगिकी, एवं ज्योतिष आदि की पुस्तकें हिन्दी में छपवाई और हिंदी ग्रंथों के लेखन को प्रोत्साहन दिया।

गणित

गणित अंक विद्या है। बालक को प्रारंभ से ही अक्षर ज्ञान एवं अंकों का ज्ञान कराया जाता है। गणित, जीवन के प्रारंभिक काल से ही लग जाता है। इसमें नियमित अध्ययन की

(22) डा0 सर्म्पूणानंद– विश्वविद्यालयी स्वायत्तता शिक्षा सुधार (लेख) कोटेड इन समिधा पृष्ठ 311, लखनऊ, निदेशक सूचना जनसर्म्पक विभाग, 1989।

आवश्यकता रहती है। गणित को दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है विज्ञान और तर्कशास्त्र में भी गणित की बड़ी उपयोगिता है। इन्हीं सब कारणों से यह विचारक गणित को पाठ्यक्रम का प्रमुख अंग मानते हैं।

इतिहास

ये चिंतक इतिहास को पाठ्यक्रम का अंग बनाने के पक्ष में थे। जब डा0 सम्पूर्णानंद प्रथम बार शिक्षा मंत्री हुए, तो उन्होंने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक समिति बनायी, जिसमें वर्धा समिति के अध्यक्ष श्री जाकिर हुसैन भी सदस्य थे। इस समिति ने इतिहास की पढ़ाई की उचित व्यवस्था की। डा0 सम्पूर्णानंद के अनुसार यदि इतिहास का अध्यापन सही दृष्टिकोण रखकर किया जाय तो बहुत अंश में जातीय संकीर्णता, विलगाव की मनोवृत्ति, जातीय द्वेष और झूठाा अभिमान जो मनुष्य को मनुष्य से अलग किये हुये है, स्वयं भी दूर हो जाय। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि[23] "क्या मैं एक क्षण के लिए आपका ध्यान इतिहास की ओर आकर्षित कर सकता हूँ। पाठ्य पुस्तकें तो आती–जाती ही रहती हैं। पर उनकी शिक्षा के पीछे की भावना महत्वपूर्ण है। मैं एक क्षण के लिए आपसे यह नहीं चाहता कि आप इतिहास के बिगाडे अथवा राष्ट्रीय विनम्रता और विशेषता के बारे में सही धारंणाओं को बदलने की चेष्टा करें। किन्तु मैं यह जरूर चाहता हूँ कि आप जब इतिहास को पढ़ायें तो आप स्मरण रखे कि आप भारतीय हैं। आप भारतीय बच्चों को पढ़ा रहे हैं। यदि हम चाहते है कि हमारे स्कूलों से निकले बच्चे समाज पर भार न होकर उसके अलंकार बने तो हमें उनको आत्मनिर्भर बनाना होगा। हमें अपने हिन्दू, मुसिलम, सिक्ख और ईसाई विद्यार्थियों को बताना होगा कि हमारे यहां ऐसे महापुरूष हुए हैं, जिनमें धर्मों की भिन्नता के बावजूद, हम भारतीय होने के नाते गर्व कर सकते हैं।"

कला

आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में गठित समिति ने चित्रकला को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की संस्तुति दी। वे कला के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने के पक्ष में थे। किये जजाने के पक्ष में थे, इसके अन्तर्गत शिल्पकला, स्थापत्य कला, चित्रकला के अतिरिक्त अन्य विषय भी आते थे।

"कला का इतिहास व्यापक रूप में मानव जाति की कल्पना और उसकी अतिष्करण शक्ति का इतिहास कहा जायेगा, औ इसके अन्तर्गत शिल्पकला, स्थापत्य कला, उद्योग, चिकित्सा, शासन एवं कानून तथा शिक्षा के क्षेत्र में सभी मानव प्रयत्न आ जायेगें। अपने

(23) डा0 सर्म्पूणानंद– शिक्षा शास्त्रियों के सामने समस्यायें (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 269, लखनऊ, सूचना जन सम्पर्क विभाग उत्तर प्रदेश 1989।

उद्देश्य के प्रति सजग, संयमित, कल्पनाशीलता ही कला है।"[24]

संस्कृत

ये तीनों समाजवादी मनीषी भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिए दृढ़ संकल्प थे। उनके विषय में कहा जाता है कि जो काम राष्ट्र की स्वतंत्रता व अस्मिता की रक्षा के क्षेत्र में महात्मा गाँधी ने किया है वही काम संस्कृत जगत के लिए आचार्य नरेन्द्र देव एवं डा0 सम्पूर्णानंद ने किया। वे संस्कृत को केवल ब्राम्हणों तक ही सीमित न रखकर सभी भारतीयों के लिए देववाणी को अध्ययन का विषय बनाना चाहते थे। संस्कृत ग्रंथों को पूरे देश में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है किन्तु उनके जानने समझने वाले कम ही व्यक्ति रह गये हैं। संस्कृत का उदार दृष्टिकोण से अध्ययन अध्यापन किये जाने से राष्ट्रीय एकता में सहायता मिलेगी।

विज्ञान

ये विज्ञान की शिक्षा पर बल देते थे, लेकिन सभी समाज वादियों ने विज्ञान के अंधानुकरण का विरोध किया है। वे विज्ञान की शिक्षा का प्रसार गांवों तक करना चाहते थे, तथा उसे जूनियर हाईस्कूलों तक अनिवार्य करना चाहते थें। विज्ञान के विषय में डा0 सम्पूर्णानंद का मानना था "विज्ञान किन्हीं अलग-अलग शास्त्रों का मिलाया हुआ गड़बड़झाला नहीं। यह एक सुसमन्वित इकाई है जो कि अपने भिन्न अंशों के सम्पूर्ण जोड से कहीं बडी है, और इसकी बाहरी सीमायें धर्म और दर्शन की सीमाओं के पास रूकती है।"[25]

मनोविज्ञान

ये मनोविज्ञान को शिक्षा का आवश्यक अंग मानते थे। उनका मत था कि मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों को अग्रसर करने का बहुत कुछ श्रेय मनोवैज्ञानिकों को है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सक मानव जाति का एक बहुत बड़ा हितैषी है, जो व्यक्ति और समाज दोनों की बहुत बड़ी सेवा कर सकता है।

तकनीकी

यह विज्ञान का युग है। किसी देश की प्रगति उस देश की प्रौद्योगिकी की उन्नति पर निर्भर करती है। आज अभियान्त्रिकी, चिकित्सा, खगोलशास्त्र, शिक्षा और सभी क्षेत्रों में विज्ञान की नयी खोजों तथा तकनीकी का अद्यतन ज्ञान आवश्यक है।

---

(24) डा0 सर्म्पूणानंद– कला और साहित्य के प्रति हमारा कर्तब्य, (लेख), कोटेड इन समिधा पृष्ठ 51–56, लखनऊ, सूचना जन सम्पर्क विभाग ।

(25) डा0 सर्म्पूणानंद– वैज्ञानिक ज्ञान और उसका उपयोग (लेख) कोटेड इन समिधा पृष्ठ 249, लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग 1989।

डा0 सम्पूर्णानंद तकनीकी शब्दों को हिन्दी रूपान्तर कराकर प्रकाशित कराया था तथा तकनीकी ज्ञान को हिंदी भाषा के माध्यम से दिये जाने हेतु मार्ग प्रशस्त किया था।

ज्योतिष एवं आकाश दर्शन

डा0 सम्पूर्णानंद जी को स्वयं आकाश में तारों, नक्षत्रों को देखने का शौक था, वे चाहते थे कि ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन छात्रों को करवाया जाये। जेल में रहने के समय भी वे बहुत से नवयुवक साथियों को नक्षत्रों, तारों की पहचान कराते थे, एवं उनके ज्ञान के महत्व को समझाते रहते थे। उनका मत था कि ज्योतिष प्रत्यक्ष मूलक शास्त्र है, और उसकी गव्रेषण अपेक्षित है। इन्होंने इस सम्बंध में निम्नवत् कहा है[26] "ज्योतिष परलोक विषयक शास्त्र नहीं है, बल्कि उसका विषय तो प्रत्यक्ष मूलक है।" अभी बहुत शोध की आवश्यकता है। हमारी भारतीय ज्योतिषी शनि के आगे के ग्रहों की गतिविधि से अपरिचित हैं, परन्तु उनका प्रभाव भी कुछ न कुछ पड़ता ही होगा।"

सौन्दर्योपासना

ये समाजवादी चिंतक प्रकृति में फैले सौंदर्य के देखने एवं अनुभव करने के पक्षधर थे। इस सम्बध में डा0 सम्पूर्णानंद ने लिखा है –[27]

"मेरी यह दृढ़ धारणा है कि जब तक हम अपनी शिक्षा में सौंदर्योपासना का स्थान नहीं देगें, तब तक शिक्षा अधूरी रहेगी, शिक्षित अकृत्सत रहेगा। हमारे चारों ओर सौन्दर्य का सरोवर झलक रहा है। आकाश के तारों में, चटकती हुई कलियों में, भ्रमण के गुंजार में, पक्षियों के कलरव में, बच्चों के हँसने में सौन्दर्य ही सौन्दर्य है। ऑख खोलने की, उस रस के प्रवाह में निश्चेष्ट होकर अपने को डाल देने की आवश्यकता है। बचपन से ही सौन्दर्य अनुभूति और कला, विशेषतः कलाओं के सम्राट संगीत की शिक्षा मिलनी चाहिए। श्रुति कहती है रसो वै सः" – परमात्मा रस स्वरूप है। प्रकृति उसका आभूषण है। सौन्दर्यानुभूति भूमि शिवशक्ति की अभिन्न मूर्ति का दर्शन है।"

(ब) शारीरिक विकास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम

इनके अनुसार मनुष्य के लिए ब्यायाम और शारीरिक शिक्षा नितान्त आवश्यक है। मनुष्य द्वारा अपना स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए जो शारीरिक कार्य किये जाते हैं उन्हें व्यायाम कहते हैं, और उनके नियमित रूप से संचालित कराने की प्रक्रिया को शारीरिक शिक्षा कहते हैं।

सैनिक शिक्षा

ये तीनों भारतीय समाजवादी हमेशा ही अनुशासन के पालन पर जोर देते रहे। व्यक्तियों में आत्मानुशासन की भावना उत्पन्न करने एवं उसके विकसित करने के उद्देश्य

(26) श्री सम्पूर्णानंद – कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 254, 255, वाराणसी, ज्ञान मंडल लि0 1962।
(27) श्री सम्पूर्णानंद – कुछ स्मृतियां और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 256, वाराणसी ज्ञान मंडल लि0 1962

से तथा सैनिक की सी अनुशासन भावना बनाये रखने के दृष्टिकोण से वे प्रत्येक छात्र को सैनिक शिक्षा दिये जाने के पक्षधर थे। जब 1926 में डा0 सम्पूर्णानंद कौंसिल के सदस्य चुनकर गये तो उन्होने इण्टरमीडिएट कक्षाओं में सैनिक शिक्षा अनिवार्य किये जाने सम्बंधी प्रस्ताव पास कराया। सैनिक शिक्षा का महत्व बतलाते हुये उन्होंने कहा है।

"प्रत्येक नागरिक को यह समझना चाहिए कि स्वाधीनता की रक्षा केवल सेना नहीं कर सकती। सैनिक शिक्षा भी इसी दिशा में ले जाती है। सेना को जनता कीं सहानुभूति और सक्रिय सहायता की पग–पग पर आवश्यकता होनी है। सैनिक शिक्षा विद्यार्थी में स्वदेश भक्ति और स्वतन्य रक्षा का भाव दृढ़ करती है, और उसको भविष्य के गुरूकर्तब्यों के भार उठाने के लिए तैयार करती है।"[28]

स्वास्थ्य शिक्षा

शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिए भोजन की पोषण की समुचित जानकारी एवं अस्वस्थता की दशा में आवश्यक उपचारों का प्राथमिक ज्ञान प्रत्येक नागरिक के लिए अवश्यक है। ऐसी भावना से भारतीय समाजवादी चिंतक चाहते थे कि छात्रों को स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान की जाय।

नैतिक विकास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम

नैतिक शब्द 'नीति' से बना है। और नीति वह है जो आगे ले जाय, अतः नैतिक शिक्षा का अभिप्राय ऐसी शिक्षा से है जो बालक को उसके उचित लक्ष्य की ओर ले जाये।

आज हम अपने देश की ओर दृष्टिपात करने पर पाते हैं कि राष्ट्रीय नैतिक चरित्र का अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। इसका मूल कारण है – शिक्षा में नैतिक शिक्षा का अभाव। शिक्षा में नैतिकता का पुट होने से मनुष्य को संसार का वास्तविक ज्ञान (इस तरह का ज्ञान कि संसार हर प्राणी में वह ईश्वर का अंश देखे तथा यही उसका ध्यये हो) होता हैं। उसे अपने जीवन की अंतिम उद्देश्य की जानकारी होती है। समाज से अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, पापाचार जैसी बुराइयाँ दूर होती हैं। वसुधैव–कुटुम्बकम् की भावना का विकास होता है। नैतिक शिक्षा को दो भागों में दिया जाना चाहिए।

(1) नैतिकता का अध्ययन एक विषय के रूप में ।

(2) नैतिक आचरण का विकास।

नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्रों को निम्न बाते सिखायी जानी चाहिए – ईश्वर के प्रति आस्था, सत्यता, प्रेम, बड़ों का आदर, निर्भीकता, समाज की आवश्यकताओं के प्रति

(28) श्री सम्पूर्णानंद – शिक्षा में नवीन दृष्टिकोण (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ–273 से 274 लखनऊ सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1989.

जागरूकता, दयाभाव, करूणा, मुदिता, मैत्री, उपेक्षा, धर्म की शिक्षा एवं उच्च चारित्रिक विकास की शिक्षा आदि।

श्री सम्पूर्णानंद जी का विचार था कि छात्रों को इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे अपने कर्तब्यों को पहिचानें एवं पालन करें।

"जो कर्तब्य का पालन करना चाहता है, उसके लिए कर्तब्य को पहचानना परम आवश्यक है। यदि अपना कर्तब्य सम्यकरूपेण पहचाना जा सकें और उसका सम्यक रूपेण पालन किया जा सके, तो जगत् में निःसीम सुख–समृद्धि का राज्य हो और प्रत्येक व्यक्ति का अनायास अभ्युदय हो। जो अपने अर्थ और काम को जितना ही भुला सकेगा, वह कर्तब्य को पहचानने और उसका पालन करने में उतना ही सफल होगा, इसलिए कर्तब्य को पहचानना और उसका पालन करना जीवन का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए"[29]।

धार्मिक शिक्षा

समाजवादी चिंतकों ने धार्मिक शिक्षा में धर्म का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है – "धर्म को तात्पर्य पूजा–पाठ नहीं है। धर्म उन सब कामों की समष्टि का नाम है, जो कल्याणकारी है।"

वे चाहते थे कि छात्र अपने से बडों का एवं गुरूओं का आदर करें। इस सम्बन्ध में उनका कथन है "आचार्य छात्र के लिए पूज्य है।"

चारित्रिक शिक्षा

चरित्र–निर्माण को सर्वोपरि समझते थे, उनका मत था कि छात्र को उत्तम चरित्रवान होना चाहिए, छात्रों को कैसी चरित्र शिक्षा दी जाय, इस सम्बन्ध में उनके विचार थे कि छात्र के चरित्र को इस प्रकार विकास देना है कि वह "मैं" "तू" से ऊपर उठ सकें।

शिक्षा–विधि

शिक्षा–शास्त्रियों, विचारकों, दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्राचीनकाल से वर्तमान तक शिक्षण की विभिन्न विधियां बतलाई गयी हैं, जिनमें से प्रमुख हैं प्राचीन एवं परम्परागत विधि, पाठ्यपुस्तक विधि, व्याख्यान विधि, संवाद विधि, प्रश्नोत्तर विधि, आगमन एवं निगमन विधि, तर्क विधि, प्रयोग विधि, खेल द्वारा शिक्षा, अभ्यास व आवृत्ति करके सीखना, अनुभव द्वारा सीखना, योजना विधि, निरीक्षण विधि आदि।

ये तीनों विचारक वेदों एवं उपनिषदों के ज्ञाता थे। भारतीय संस्कृति के पोषक थे, इसलिए वे ऋषियों के विचारों को मान्यता देते थे। प्राचीनकाल में शिक्षण की जो विधि उत्तम मानी जाती थी, उसका वर्णन श्रीमद् भागवत गीता में निम्न तरह से किया गया है–

---

(29) डा0 सम्पूर्णानंद– चिहिलास, पृष्ठ 6–7, काशी ज्ञान मण्डल लि0 1959

"भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्नों द्वारा उस ज्ञान के मर्म को जानने वाले आजीवन तुझे ज्ञान का उपदेश करेगें।"

ये चिंतक भी शिक्षा प्राप्त करने की प्राचीन विधि को उत्तम मानते थे। इनकी पुष्टि श्री प्रकाश जी के डा0 सम्पूर्णानंद के विषय में कहे गये निम्न कथन से होती है"[30]।

"कितने ही लोग आपके पास आना और रहना पंसद करते थे। अपनी बौद्धिक शंकाओं का समाधान इनसे 'प्राणिपात' 'परिप्रश्न' और सेवा की पुरानी निर्धारित विधि के अनुसार करते हैं और वे भी वात्सल्य से अपने विस्तृत ज्ञान का अंश प्रशंसा उन्हें प्रदान करते हैं"।

प्राचीन काल में आचार्य (गुरू) जिस प्रकार अपने आश्रम में रहने वाले छात्रों (शिष्यों) को प्रेम एवं सहानुभूति के साथ शिक्षा देते थे, तथा उनके व्यक्तिगत जीवन से भी सरोकार रखते थे। उसी प्रकार ये चिंतक भी चाहते थे कि शिक्षक को एक अग्रज की तरह छा.ों की त्रुटियों को बड़े ही सहानुभूति के साथ हल करना चाहिए। इस सम्बन्ध में डा0 सम्पूर्णानंद का मत था।

"एक अध्यापक को अपने शिष्य के कार्यों को उसी दृष्टि से देखना होगा, जिस प्रकार से एक बड़ा भाई अपने घुटनों के बल चलने वाले छोटे भाई की चेष्टाओं को देखता है तथा उसकी भूलों को प्रेम और सहानुभूति के साथ हल करना होगा।

अध्ययन में एकाग्रता का बड़ा महत्व है। डॉ0 सम्पूर्णानंद जी भी चाहते थे कि अध्यापक छात्रों को एकाग्रचित्त होने का प्रयास डाले। इस सम्बन्ध में उनका कथन है" एकाग्रता ही आत्म साक्षात्कार की कुंजी है। एकाग्रता का अभिप्राय यह है कि छात्र में मैत्री, करूणा, मुदिता, और उपेक्षा का भाव उत्पन्न किया जायें।"[31]

वर्तमान में पाठ्य विधि से शिक्षण दिया जाता है। डा0 सम्पूर्णानंद एवं आचार्य नरेन्द्रदेव ने शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षण कार्य किया है। वे चाहते थे कि छात्रों को उच्च स्तरीय पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध हो, इसके लिए उन्होंने विज्ञान प्राद्योगिकी के छात्रों के लिए स्तरीय पुस्तकें हिन्दी समिति के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिन्दी में उपलब्ध करायी थी।

सम्पूर्णानंद दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे अतः वे स्वयं व्याख्यान विधि से शिक्षण करते थे, अतः कहा जा सकता है कि वे उच्च शिक्षा में व्याख्यान विधि को प्रमुख विधि मानते थे। मानोवैज्ञानिक धारणा के अनुसार "करके सीखना" हुआ ज्ञान स्थिर होता है, तथा शीघ्र ही सीख लिया जाता है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और खगोल शास्त्र आदि विषयों को सीखने से आने वाली व्यवहारिक कठिनाइयों से परिचित हुआ जा सकता है।

(30) डा0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा का उद्देश्य, (लेख), कोटेड इन गद्यगरिमा पृष्ठ 90 इलाहाबाद, निदेशक राजकीय मुद्रण एवं लेखन सामग्री, उ0प्र0।
(31) डा0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा का उद्देश्य, (लेख), कोटेड इन गद्यगरिमा पृष्ठ 90 इलाहाबाद, निदेशक राजकीय मुद्रण एवं लेखन सामग्री, उ0प्र0।

अनुशासन

प्राचीनकाल में बालक, घर–परिवार छोड़कर गुरू के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करता था। गुरू/आचार्य का आश्रम ही विद्यालय था। शिष्य/छात्र गुरू के प्रति असीम श्रद्धा रखता। उसके चरणों के पास बैठकर श्रद्धापूर्वक गुरूमुख से वचन सुनता, उनपर मनन करता तथा निदिध्यासन का प्रयास करता। गुरू/आचार्य शिक्षार्थी से शुल्क नहीं लेता था। निस्वार्थ भाव से विद्या प्रदान करता था। धीरे–धीरे व्यवस्था बदलती गई और पाठशाला व मदरसों के बाद आज के विद्यालयों के रूप में सामने है। गुरू एवं आचार्य के स्थान पर अब वेतन भोगी व्याख्याता एवं अध्यापक शिक्षक हैं, तथा शिक्षार्थी शिष्य न होकर नियमित शुल्क देने वाले छात्र हैं। परिणामतः उनमें धीरे–धीरे श्रद्धा तिरोहित होती गयी। छात्र कुछ घंटे विद्यालय में बिताता है शेष अवधि समाज के विभिन्न विचारधाराओं वाले व्यक्तियों के बीच। विद्यालय में भी पाठ्यविषय से सम्बन्धित अध्यापकों के सम्पर्क में आता है। अध्यापक का विद्यार्थी के अतिरिक्त काल के कार्य कलाप से सम्बन्ध नहीं रहता। अनुशासन कर्तब्य के पहिचानने एवं उसके पालन करने के प्रति सचेष्ट प्रयत्न तथा श्रद्धा प्रेम की आधारशिला पर प्रतिष्टित हुआ करता है। छात्र के सामने जीवन का स्पष्ट लक्ष्य न होने तथा अर्थकरी विद्या में विनय व विवेक की उद्भावना न होने के कारण स्थिति विषम होती गई। समाज के विचारशील व्यक्तियों, बुद्धिजीवियों तथा राजनेताओं को अपने पवित्र आचरण के द्वारा समाज में अनुशासन की भावना पैदा करने की भावना का प्रयास किया ही जाना चाहिए। यदि ऐसा न कर सकें तो कम से कम उसके मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाले कार्यों से बचना चाहिए। छात्र समाज के वीच से ही विद्यालय में आता है। शिक्षा का उद्देश्य एवं कार्य छात्र में जीवन के परम लक्ष्य मोझ की प्राप्ति, धर्म, अर्थ और काम से श्रेष्ठ मानकर पालन करके प्राप्त करने से परिचित कराना है, तथा परसेवा का आदर्श सामने रखकर उसे शिक्षित करना है। छात्र चेतन हैं वह पुराने संस्कार लेकर जीवनयात्रा पर अग्रसर होने हेतु मार्गदर्शन हेतु विद्यालय में गुरूजनों के पास आता है। उस व्यक्ति को जिसे कल का नागरिक तथा मातृभूमि की सेवा के माध्यम से मानव जाति की सेवा करना है। यह दृष्टिकोण शिक्षक वर्ग का होना चाहिए।

वातावरण में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अशांति छाई हुयी है। मनुष्यों के स्नायुमंडल पर भारी बोझ पड़ रहा है, और ध्यान बटॉने के लिए ज्यादा से ज्यादा अंग्रेजी पन का प्रदर्शन करके घुटन को कम करना चाहता है। इसी का परिणाम है। विद्यालय में अनुशासनहीनता। आये दिन विद्यालयों में हड़ताल होती रहती है। इस समस्या की ओर ध्यान आर्कर्षित करते हुये शिक्षक वर्ग के सम्मेलन में श्री सम्पूर्णानंद ने उनके उच्चादर्श बताते हुए उनके सहयोग का आह्वान करते हुए कहा था।

"नवयुवक और नवयुवतियों को कितनी ही समस्यायें परेशान किये हैं। उनका परिणाम अशान्ति, पारस्परिक कलह और विरोध होना ही है। उन्हें आपकी सहानुभूति की आवश्यकता है। अपने मस्तिष्क को निश्चेष्ट मत होने दीजिए। उनकी सक्रियता और उत्साह का जगाये रखियें, उनके मस्तिष्क और भावनाओं उनकी आकांक्षाओं और निराशाओं तक पहुँचकर, उनकी तह में बैठने की कोशिश करियें। आपका व्यक्तिगत चरित्र ही सर्वोच्च वेदी (कसौटी) है। यदि आपका छात्र अनुभव करता है कि आप पर भरोसा किया जा सकता है। तो समझिए कि विद्यालय की समस्या काफी सीमा तक सुलझ जायेगी, लेक्रिन आपको अपने विषय में सावधान रहना होगा।"[32]

समाजवादी चिंतक आचार्य नरेन्द्र देव ने भी सन् 1949 में लखनऊ विश्व–विद्यालय के रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर उन्होंने अनुशासन की समस्या पर भी अपने विचार व्यक्त किये थे।"[33]

"आजकल छात्रों ने अनुशासन हीनता की शिकायत प्रायः सुनने को मिलती है। इस अनुशासन हीनता के अनेक कारण हैं। हम एक उलझन और संघर्ष से भरे जमाने में रह रहे हैं। जीवन के आधारभूत मान्यताओं के सम्बन्ध में पढ़े लिखे लोगों में एक राय नहीं है। लोगों की निष्टा परस्पर विरोधी विचारधाराओं के प्रति है। आर्थिक कठिनाइयां और बेकारी उत्साह भंगता को जन्म देती है। समाज की विश्रंखलता स्वभावतः विद्यार्थियों में प्रतिबिम्बित होती है। अनुशासनहीनता दूर करने का उपाय यही है कि छात्रों के जोश को रचनात्मक कार्य में लगाया जाय, और शिक्षकों और शिक्षार्थियों के बीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो।

शिक्षा एक सहकारी प्रयत्न है, जिसमें अध्यापक और छात्र दोनों ही भाग लेते हैं दोनों में आदर्श की एकता होने पर ही शिक्षा संस्थानों में सच्चे अनुशासन की स्थापना सम्भव है। अनुशासनहीनता को समाप्त करने के लिए हमें अनुशासन की पुरानी धारणा में भी संशोधन करना होगा और शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों के बीच सौहार्द स्थापित करना होगा, किन्तु अनुशासनहीनता की समस्या मूल रूप से नये समाजिक संगठन की समस्या के साथ हो सकेगी।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने आत्मानुशासन की आवश्यकता पर बल दिया है।[34] "विद्यार्थियो की संख्या निरन्तर बढती जाती है। और इसलिये अध्यापक और विद्यार्थी का सम्पर्क भी कम होजाता है। यह अवस्था अवांछनीय है। परस्पर का सम्पर्क बढ़ने के लिये Tutorial पद्धति का विस्तार एक अच्छा उपाय है। किन्तु यह पद्धति बड़ी मँहगी है और इस कारण इसका विस्तार कठिन है। जब तक कि धन का प्रबंध न हो ।

(32) डा० सम्पूर्णानंद– समिधा पृष्ठ 269, 270 लखनऊ, सूचना एवं जन संम्पर्क विभाग 1989।
(33) आचार्य नरेन्द्र देव– युग और विचार पृष्ठ 156 लखनऊ सूचना एवं जनसंम्पर्क विभाग 1989।
(34) आचार्य नरेन्द्र देव– युग और विचार पृष्ठ 108,109 लखनऊ सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग 1989।

पुनः इस पद्धति का तभी पूरा लाभ उठाया जा सकता है , जब विद्यार्थी इसको अपने कालेज के जीवन का केन्द्र समझे। हालत यह है कि विद्यार्थी पाठ्यक्रम का एक सामान्य अंग मात्र समझते हैं और जब तक परीक्षा का स्वरूप नहीं बदलेगा, तब तक अधिकांश विद्यार्थी शिक्षा को वह महत्व नहीं देगें, जो उन्हें देना चाहिए। इतना कहने पर भी यह मानना पडेगा कि इस पद्धति से कुछ विद्यार्थियों को लाभ अवश्य होता है। अतः समस्या यह है कि इस पद्धति को जारी करने के अतिरिक्त और क्या करना चाहिए, जिससे विद्यार्थी अध्यापकों के निकट सम्पर्क में आये।

अनुशासन का प्रश्न भी इससे सम्बद्ध है। आज चारों ओर से इस बात की शिकायत होती है कि विद्यार्थियों में संयम की कमी हो गयी है। इसके क्या कारण है? इस पर हमको विचार करना है। क्योंकि बिना रोग का निदोन जाने, रोग का उपशम नहीं हो सकता। इस संयम की कमी के अनेक कारण हैं। जीवन की अनिश्चितता के कारण समाज की सब श्रेणियों में असंतोष पाया जाता है। समाज के मौलिक आधार के सम्बन्ध में भी तीव्र मतभेद हैं। महायुद्ध के पश्चात् आर्थिक कठिनाइयॉ और बढ़ गई है, ओर इसका मनोवृत्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आज हमारे देश में सरकारी विभागों में भी कुशलता और अनुशासन की कमी आ गई है। सारा देश इस रोग से ग्रस्त है। आर्थिक कठिनाइयों को विना दूर किये पूर्णरूप से संयम का पुनः प्रतिष्ठित होना सुगम नहीं है। जहॉ तक विद्यार्थियों का सम्बन्ध है, उनके साथ सहानुभूति पूर्वक व्यवहार कर तथा उकने निकट सम्पर्क में आकर हम इस शिकायत को बहुत कुछ दूर कर सकते हैं। विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिसमें वह आत्मसंयम को महत्व को समझे। बाहर से अनुशासन का आरोप प्रायः व्यर्थ हुआ करता है। हमारे विद्यालयों का वातावरण ही ऐसा होना चाहिए, जिसमें असंयम के उदाहरण बहुत कम हो जाये।

हमारे विद्यार्थियों को भी समझना चाहिए कि उनको अपने राष्ट्र को सबल बनाना है तथा एक नूतन समाज का निर्माण करना है। समाज के वही नेता और निर्माता होगें। किन्तु आत्म संयम के बिना कोई भी व्यक्ति किसी जिम्मेदारी के काम को निभा नहीं सकता। डा० सम्पूर्णानंद ने शिक्षक वर्ग को याद दिलाया कि –"आपका लक्ष्य बहुत भव्य और उच्च है। आपके व्यवसाय की परम्पराएं बहुत महान् हैं, और आपको उसके योग्य बने रहने का प्रयत्न करना होगा। आपके पास अवसर है क आप चाहे राष्ट्र को बनायें अथवा नष्ट कर दें।"

शिक्षा का माध्यम

(भारतीय समाजवादी विचारक (डॉ० सम्पूर्णानंद, आचार्य नरेन्द्र देव, राममनोहर लोहिया) चाहते थे कि छात्रों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा दी जाये, क्योंकि वे इस बात को

मानते थे कि बालक प्रारंभ से ही अपनी मातृभाषा बोलता और सुनता है, इसलिए मातृभाषा द्वारा दी जाने वाली शिक्षा को शीघ्र ही ग्रहण कर लेगा। उनका कहना था कि जब छांत्र को मातृभाषा के अलावा किसी अन्य भाषा से शिक्षा दी जाती है तो बालक को सीखने में अधिक समय लगता है ओर उसकी बुद्धि सुचारू रूप से विकसित नहीं हो पाती है। इस सम्बन्ध में डॉ0 सम्पूर्णानंद का कथन दृष्टव्य है –[35] "हमारी शिक्षा का माध्यम विदेशी होने का परिणाम यह हुआ कि साधारण बालक–बालिकाओं की बुद्धि कुंठित हो गयी, और उन्हें ऐसी बौद्धिक कलाबाजी लगाने के लिए विवश होना पड़ता है, जिसका आनुपातिक परिणाम नहीं निकलता है।"

आचार्य नरेन्द्र देव ने भी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को ही स्वीकार किया है।[36]

"एक दूसरा विषय जिसकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ, शिक्षा का माध्यम है। अब समय आ गया है, जब हमकों राष्ट्र भाषा के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा का आयोजन कर लेना चाहिए। जब राजकाज की भाषा बदल गई है। तब तो यह काम तेजी से होना चाहिए। शिक्षा का माध्यम यथा सम्भव तत्काल बदल जाना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमको किसी विदेशी भाषा का अब सहारा नहीं लेना है। विदेशी भाषा की आवश्यकता बहुत दिनों तक बनी रहेगी।, किन्तु वह शिक्षा का माध्यम न होगी और शिक्षा के कार्यक्रम में उसको गौण स्थान प्रापत होगा। इस सम्बन्ध में यह कहना भी आवश्यक है कि अपनी भाषा में सब विषय की ऊँची–ऊँची पुस्तकें लिखी जानी चाहिए।

मातृभाषा मात्र हाईस्कूल या इण्टर बोर्ड तक ही शिक्षा का माध्यम न हो बल्कि विश्वविद्यालयीय शिक्षा एवं राष्ट्रीय सभाओं के विचार–विमर्श का माध्यम मातृभाषा ही हो। इस विषय में सरकार एवं विश्वविद्यालयों को सचेत करते हुए कहा है।

"यह तो सभी मानते हैं कि कम से कम हाईस्कूल तक मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम रखना चाहिए। किन्तु विश्वविद्यालयों में पहुँचने पर शिक्षा का माध्यम क्या हो, इस विषय में एकमत नहीं है। इण्टर यूनीवर्सिटी बोर्ड ने तो मातृभाषा को विश्वविद्यालय में भी शिक्षा का माध्यम रखने के विरूद्ध मत प्रकट किया है। परन्तु सेण्ट्रल ऐडवाइजरी बोर्ड आफ ऐजूकेशन' ने यह राय दी है कि उच्चतर विद्यालयों में भी मातृभाषा के ही द्वारा शिक्षा दी जाय ओर इण्टरयूनीवर्सिटी बोर्ड उसके साधन एवं उपाय सूचित करें। यह सिफारिश इस विषय की खोज करने की ही सिफारिश थी। इस क्षेत्र में एक कदम और आगे बढ़ा, जब अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन ने अपने जनवरी सन् 1948 वाले अधिवेशन में वाइसचांसलरों और कुछ विशेषज्ञों की एक समिति इस विषय पर सुनिश्चित विचार देने के लिए नियुक्त की। इस

(35) डा0 सम्पूर्णानंद– शिक्षाशास्त्रियों के समाने समस्यायें (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 265, लखनऊ सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1989।

(36) आचार्य नरेन्द्र देव– स्वतंत्र भारत में विश्वविद्यालयी शिक्षा (लेख), कोटेड इन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति, पृष्ठ 127, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 6 1988।

समिति की वैठक सन् 1946 के मई मास में हुई और बहुत कुछ विचार–विमर्श के बाद यह निश्चय हुआ कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा भी मतृभाषा के ही माध्यम द्वारा दी जाय। इस समिति के समझ एक विचार यह रखा गया था कि विश्वविद्यालयों में राष्ट्र शिक्षा का माध्यम बनाया जाय, किन्तु उन लोगों ने इसे स्वीकार नहीं किया। समिति ने यह कहा गया कि अंग्रेजी भाषा ने कम से कम एक काम यह बहुत अच्छा किया कि उससे हम सबकों विचार करने और उन्हें व्यक्त करने का एक माध्यम मिला, और इस प्रकार देश में एक एकीकरण सिद्ध हुआ। देश के सभी विश्वविद्यालयों में एक ही माध्यम रखने की महत्वपूर्ण उपयोगिता पर जोर दिया गया था और यह भी कहा गया था कि इस प्रकार जो सुमीता प्राप्त होगा, वह राष्ट्र भाषा का केवल साधारण ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे अनिवार्य रूप से पढ़ाने से नहीं सिद्ध हो सकेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि राष्ट्रभाषा को यदि विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जाता, तो राष्ट्रीय महासभा का कार्य किस प्रकार सम्पादित किया जायेगा। राष्ट्र भाषा अपने समुचित स्तर पर तभी स्थापित हो सकेगी, और राष्ट्रीय महासभा एवं अन्य राष्ट्रीय सभाओं में विचार–विमर्श का समुचित माध्यम तभी बन सकेगी, जब उसे सभी विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बना दिया जायेगा। इसके साधारण ज्ञान के द्वारा ही व्यवस्थापिका सभाओं में होने वाले विचार–संघर्षों में सदस्य अपना पूर्व सहयोग देने में समर्थ नहीं होगें। महा सभा में बहुत से महत्वपूर्ण एवं पेचीदे राजनीतिक और अर्थशास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों पर वाद विवाद होता है, और जब तक किसी को उसकी भाषा के माध्यंम से अपने सर्वोत्तम विचार व्यक्त करने का अभ्यास नहीं होता, तब तक उसे परामर्शों में भाग लेने में संकोच होगा, और यदि किसी प्रकार उसने कुछ साहस किया भी तो उसका भाषण भटकता हुआ और अप्रभावशाली होगा, और इस प्रकार वह सदस्य भाषण कला की दक्षता में कोई प्रभाव नहीं पैदा कर सकेगा। ऐसे सदस्य में एक कमी सदैव बनी रहेगी। सम्भव है कि उसमें विषय विशेष के सम्बन्ध में चलने वाले विचार–विमर्श में महत्वपूर्ण योग देने की क्षमता हो, पर सभा में उसके मत का कोई प्रभाव इसलिए नहीं पडेगा कि वह राष्ट्रभाषा में अपने विचार उन्मुक्त रूप से बिना किसी हिचकिचाहट के व्यक्त करने की क्षमता नहीं रखता। जब राष्ट्र का सब कार्य राष्ट्रभाषा के द्वारा होने लगता है, तभी राष्ट्र के भाव, और आदर्श सब एक जीवन बनते है। सोवियत रूस का उदाहरण हमारे सामने विद्यमान है। वहाँ रूसी भाषा प्रांतीय भाषाओं के साथ ही एक अनिवार्य विषय की भाँति आरम्भ से ही पढ़ायी जाती है"[37]।

डा० सम्पूर्णानंद ने मातृभाषा की शक्ति को स्वीकार करते हुए कहा है "शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो जाने से कम समय में ही विद्यार्थी आज की अपेक्षा अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।"[38]

(37) आचार्य नरेन्द्र देव, 'अध्यापकों का कर्तब्य' लेख कोटेड इन युग और विचार पृष्ठ 135, 136, लखनऊ, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, 1989।

(38) डा० सम्पूर्णानंद – माध्यमिक शिक्षा की पुर्नव्यवस्था (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 315 लखनऊ, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ०प्र० 1989।

दर्शन – (शिक्षा दर्शन का स्वरूप)

शिक्षा में जब हम दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाते हैं तो शिक्षा–दर्शन का जन्म होता है। जब हम दर्शन के स्वरूप पर विचार कर रहे होते हैं तो वहां पर हम दर्शन के विभिन्न विभागों में शिक्षादर्शन को भी एक विभाग के रूप में देखते हैं, और जब हम शिक्षा पर विचार कर रहे होते हैं तो वहाँ पर हम शिक्षा दर्शन को शिक्षा की एक शाखा के रूप में देखते हैं। दर्शन का वास्तविक कार्य शिक्षा की समस्याओं का समाधान ढूढ़ना है। इस युक्ति से सम्पूर्ण दर्शन ही शिक्षा दर्शन है।

शिक्षा दर्शन शिक्षा के विभिन्न अंगों पर मौलिक विचार प्रस्तुत करता है, किन्तु इसका प्रमुख कार्य शैक्षिक उद्देश्यों के विषय में विचार करना है।

डा0 आत्मानंद मिश्र के अनुसार –[39] "शिक्षा के उद्देश्यों, परिणामों, आवश्यकताओं, पाठ्य सामग्री, पद्धतियों एवं अभ्यासों और शिक्षालय जीवन तथा अनुशासन का सामान्य निध ारिण, विवेचन तथा मूल्यांकन करने के लिए आधार बनाया गया प्रयुक्त दर्शन। शिक्षा दर्शन अंग्राक्ति प्रश्नों का समाधान सुझाने का प्रयत्न करता है। शिक्षा व्यक्ति में किन मूल्यों को विकसित करें, उसका क्या उद्देश्य हो? पाठ्यक्रम में कौन विषय सम्मिलित किये जाय और क्यों ? साथ ही अनुशासन के क्या आदर्श हों?

शिक्षा के अंग

शिक्षा के विभिन्न अंग हैं यथा, शिक्षार्थी, शिक्षक, शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षालय एवं अनुशासन।

शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण शिक्षा–दर्शन करता है। शिक्षा के उद्देश्य देशकाल के अनुसार बदलते रहे हैं। शिक्षा विचारकों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा उद्देश्यों में भिन्नता रही है।

शिक्षा के अंग दर्शन के जिन विभागों से प्रभावित होते हैं, उनका विवरण निम्न प्रकार से है।

शिक्षा के अंग	दर्शन के अंग
शिक्षार्थी	तत्वमीमांसा
शिक्षक	तत्वमीमांसा
शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध	तत्वमीमांसा
पाठ्यक्रम	ज्ञान मीमांसा
शिक्षणविधि	ज्ञान मीमांसा
शिक्षालय	आचार मीमांसा
अनुशासन	आचार मीमांसा

अध्याय पंचम

समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का समकालीन शिक्षा शास्त्रियों के शैक्षिक विचारों से तुलना"

समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों की परस्पर तुलना (डॉ0 सॅम्पूर्णानंद, आचार्य नरेन्द्र देव एवं डॉ0 राममनोहर लोहिया)

1. डॉ0 सम्पूर्णानंद का शिक्षा दर्शन

मार्क्स का कार्यक्षेत्र मुख्यतः विचार निर्माण का था। इसका आधार अध्ययन था। इसमें आन्दोलनों के ताप के कारण वह मात्र शैक्षणिक विचारों से अलग है। जैसे आचार्य जी शैक्षिक जीवन में रहकर भी आन्दोलनों की ऊर्जा से युक्त हैं। आन्दोलनों की ऊर्जा ही उन्हें विश्वविद्यालय के बाहर की दुनिया से जोडती है। आचार्य जी के मुकाबले डॉ0 लोहिया आन्दोलनों में अधिक लिप्त हैं। यों कहिये कि वे आन्दोलनों की आग में जल रहे हैं। जेल, सत्याग्रहों, प्रदर्शनों, आक्षेपों प्रति आक्षेपों के बीच से गुजर रहे हैं। ऐसे में उनके विचारों की दाहता का अनुमान सहज हैं।[1]''

विश्व के प्रत्येक शिक्षाशास्त्री ने शिक्षा को लोकोपयोगी एवं विश्वशांति साधक बनाते हुए कुछ सिद्धांतों का निर्धारण एवं विवेचन किया है। डॉ0 सम्पूर्णानंद एक उत्कृष्ट विद्वान, बहुभाषाविद्, योगी, दर्शनशास्त्र, के ज्ञाता एवं प्रणेता अनुभवपूर्ण शिक्षाशास्त्री एवं शिक्षा विभाग के कर्णधार रहें हैं। डॉ0 सम्पूर्णानंद जी का विचार था कि –

(1) शिक्षा अध्ययन, नीति एवं धर्म से प्रेरित होनी चाहिए।
(2) छात्रों में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना का विकास किया जाना चाहिए।
(3) चिन्तन तर्क निर्णयादि पर बल दिया जाना चाहिए।
(4) प्रयोग के आधार पर बल ज्ञान प्राप्त करने के लिए दिया जाना चाहिए।
(5) अध्ययन कार्य मनोवैज्ञानिक विधि से किया जाना चाहिए।
(6) जनतंत्र के विकास का उद्देश्य होना चाहिए।

डॉ0 सम्पूर्णानंद ने विश्व में शांति एवं सुव्यवस्था सुनिश्चित करने की दृष्टि से शिक्षा के स्वरूप में यह भावना विकसित करना चाहते थे कि दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र हमारे प्रतिद्वन्दी नहीं सहयोगी एवं सहजीवी हैं। उपरोक्त तथ्य से सम्बन्धित उनका निम्न कथन है।

''यदि राष्ट्र मंडल की धारणा दृढ़ करनी है तो शिक्षा का स्वरूप बदलना होगा, दूसरे राष्ट्रो को अपना प्रतिद्धन्दी न बनाकर सहयोगी बनाना होगा, अपने को सबसे उपकृत समझना होगा, प्रतिस्पर्धा के स्थान में सहयोग का मंत्र पढ़ाना होगा।''[2]

डॉ0 सम्पूर्णानंद ने शिक्षा में सौन्दर्यानुभूति एवं सौन्दर्योपासना की अनिवार्यता प्रतिपादित करते हुए उसने अभाव में शिक्षा को अधूरी माना है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आदर्शों को

(1) समाजवाद' आर्चाय नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया, और जय प्रकाश की दृष्टि में, डॉ0 युगेश्वर पृष्ठ 42 सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ, 1994।
(2) डा0 सम्पूर्णानंद – अन्तर्राष्ट्रीय विधान, पृष्ठ 276 बनारस ज्ञान मण्डल लि0, संवत् 2011।

ग्रहण करने के कारण, इनका शिक्षा–दर्शन आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत था। यह विचार से आदर्शवादी थे। व्यवहारिक परिस्थिति जन्य इनकी सोंच ने इन्हें व्यावहारिक दर्शन की ओर आकृष्ट किया।

आचार्य नरेन्द्र देव का शिक्षा दर्शन

किसी भी शिक्षा दार्शनिक ने शिक्षा दर्शन एवं शैक्षणिक विचारधारा पर उसी के जीवन के सिद्धांत एवं जीवन दर्शन का अमिट प्रभाव पड़ा है। आचार्य नरेन्द्रदेव जी का शिक्षा दर्शन एवं शैक्षणिक विचार भी पूर्ण रूप में उनके जीवन दर्शन से प्रभावित है। "आचार्य" जी एक उच्च कोटि के विद्वान, कुशल शिक्षक, अद्भुत प्रतिभा वाले शिक्षाशास्त्री, सच्चे देशप्रेमी, त्यागी और तपस्वी व्यक्ति थे।

व्यक्ति और समाज के पारस्पिरिक सम्बन्ध के प्रश्न पर पूर्व एवं पाश्चात्य की सभी विचारधाराओं में मतभेद रहा है। व्यक्तिवादियों के अनुसार व्यक्ति समाज से श्रेष्ठ है। जिस देश में व्यक्ति स्वस्थ्य होगें, सर्व गुण सम्पन्न होगें, उन्हें श्रेष्ठ गुण एंव व्यक्ति के विकास का अवसर मिलेगा। वहॉ का समाज भी श्रेष्ठ होगा। अतः व्यक्ति की सत्ता को श्रेष्ठ स्वीकार करना चाहिए। इसके विपरीत समाजवादी 'समाज' को व्यक्ति से श्रेष्ठ मानते हैं। लेकिन आचार्य नरेन्द्र जी व्यक्ति की वैयक्तिकता की स्वतंत्र सत्ता का उस सीमा तक आदर करते थे, जो समाज हित एवं समाज सेवा के लिए विकसित हो, अतः व्यक्ति को सामाजिक माध्यम के द्वारा आत्मानुभूति के लिए शिक्षा देने के समर्थक थे।

आचार्य जी सत्यं, शिवं, सुन्दरं का सिद्धांत मानते थे, अर्थात् आचार्य जी शिक्षा में आदर्शवादी विचारधारा के समर्थक थे, किन्तु साथ ही रूढ़िवादिता, धर्मान्धता एवं टूटती हुई परम्पराओं के विरोधी थे। सत्यं, शिवं, सुन्दरं पर उनकी आस्था थी, किन्तु वह सत्य एवं मूल्यों को शाश्वत नहीं मानते थे। उनका विचार था कि बदलती हुई परिस्थितियों के संदर्भ में इन मूल्यों की परिभाषा भी बदलनी चाहिए। आज के वैज्ञानिक युग में व्यक्तिगत स्वार्थ और होड़ के सिद्धांतों को छोड़कर सहकारिता के द्वारा ही अपने जीवन में इन मूल्यों का आत्मज्ञान कर सकते हैं। इस प्रकार आचार्य जी प्रयोजनवादियों की भॉति सत्य एवं मूल्यों को शाश्वत न मानकर गतिशील एवं परिवर्तनशील मानते हैं। अतः आचार्य जी आदर्शवादी होते हुए भी प्रयोजनवादी शिक्षा दार्शनिक थे। आचार्य जी के शैक्षिक विचार निम्नवत हैं।

(1) आचार्य नरेन्द्र देव जी ने शिक्षा में उद्देश्यों के निर्धारण में आदर्शवादी दार्शनिक विचारधारा को आधार माना है।

(2) आचार्य जी के विचार सत्य एवं मूल्यों के आधार पर ही स्वस्थ्य शिक्षा का निर्माण किया

जा सकता है, किन्तु इसके साथ उन्होनें आदर्शवादी की इस विचारधारा का खंडन किया कि सत्य एवं मूल्य स्थित होते हैं।

(3) सत्य एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा सदैव वर्तमान सामाजिक परिवेश में होना चाहिए, इस दृष्टिकोण से आचार्य जी प्रयोजनवादी थे।

(4) मानव–जीवन के उद्‌देश्यो की व्याख्या करते हुए आचार्य जी ने लिखा है कि 'आज के युगों में मानव जीवन का तात्पर्य सत्य, सुन्दरं एवं समाज कल्याण की प्राप्ति है। शिवं के स्थान पर समाज कल्याण आज़ के युग की सबसे बडी मांग है। जिसकी उपलब्धि व्यक्ति को शिक्षा के द्वारा करनी चाहिए।

(5) शिक्षण पद्धतियों के निर्धारण में आचार्य जी प्रकृतिवादी दृष्टिकोण को ही श्रेष्ठ समझते थे। क्योंकि वह शिक्षा बालक के स्वभाव, रूचि, अभिरूचि, एवं वैयक्तिक विभिन्नता के आधार पर देने के पक्षपाती थे।

(6) प्रयोजनवादी दार्शनिक विचारधारा की आत्म क्रिया शिक्षा के सिद्धांत को वर्तमान शिक्षा प्रणाली का मूल बताया है।

(7) आचार्य जी ने स्वतंत्र रूप से किसी स्पष्ट अथवा मौलिक सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया। किन्तु आचार्य जी की तीक्ष्ण बुद्धि ने यह समझ लिया था कि इस शताब्दी में वैज्ञानिक खोजों एवं मनोविज्ञान के नवीन सिद्धांतों ने मानव प्रकृति तथाा जगत सम्बन्धी हमारी प्राचीन परम्परागत विचारधाराओं को परिवर्तित कर दिया है।

(8) आचार्य जी ने बालक को शिक्षा देने का ढंग मनोवैज्ञानिक आधार ही बनाया।

(9) वर्तमान समाज की आवश्यकतानुसार यही शिक्षा का नवीनीकरण करना है तो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार को अपनाना होगा। अर्थात् शिक्षा बालक की रूचि, योग्यता, बुद्धि एवं वैयक्तिक आधार पर दी जाय, बालक को मुख्य स्थान प्राप्त हो। पाठ्‌यक्रम का निर्माण करते समय बालक की रूचि, आयु, एवं स्थानीय आवश्यकता को ध्यान में रखा जाय इत्यादि।

(9) भारतवर्ष में आचार्य जी ही वह प्रथम शिक्षा शास्त्री हैं, जिन्होंने भारतीय शिक्षा को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रदान किया।

(10) विद्यालय केवल ज्ञान के आदान–प्रदान की एक मात्र संस्था नहीं है, वरन् एक लघु सामाजिक संस्था है। अतः विद्यालय वह स्थल है, जहाँ बालक केवल ज्ञानार्जन करने नहीं जाता है, वरन् विद्यालयों के सामाजिक जीवन के माध्यम से अपने चरित्र एवं व्यक्तित्व का वांशनीय विकास एवं सामाजिक गुणों का विकास करता है।

(11) शिक्षा द्वारा व्यक्ति में समाज कल्याण की भावना का विकास किया जाय, क्योंकि इससे व्यक्ति में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास होगा।

(12) शिक्षा द्वारा ऐसे नागरिक उत्पन्न किये जाँय, जो प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक परम्परा एवं ढांचे को तोड़कर नवीन सामाजिक व्यवस्था में अपनी आस्था उत्पन्न करें।

डॉ० राममनोहर लोहिया का शिक्षा–दर्शन

डॉ० राममनोहर लोहिया नें जीवन के चार पुरूषार्थ माने हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और यही शिक्षा का उद्देश्य भी उन्होंने माना है। शिक्षा इन चारों पुरूषार्थों को प्राप्त करने का साधन है।

(1) 'भारत की शिक्षा उद्योगपरक हो, ताकि बेकारी की समस्या न फैले। छोटे और मझोले उद्योगों के समर्थन में लोहिया जी का तर्क था कि "भारत की आवादी अधिक और भूमि कम है। भारत जैसे देश में मानव श्रम इतना अधिक है कि यहां यंत्रीकरण बेकारी बढ़ाता है। केन्द्र और स्वचालित यंत्र भारत की समस्यांए नहीं सुलझा सकते हैं इनके द्वारा समस्यायें और भी उलझ जायेंगी"[3]।

(2) स्वतंत्र भारत की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो समाज में फैली हुई कुरीतियों को दूर कर सकें। उदाहरण के लिए वर्ण व्यवस्था की समाप्ति, छुआ–छूत का विरोध, हरिजनोद्धार, विधवा विवाह, पर्दा–प्रथा जैसी समस्यायें।

(3) शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो निर्भीक साहित्यकारों एवं कलाकारों को जन्म दे सकें। साहित्यकारों को विचारों की स्वतंत्रता होनी चाहिए। साहित्यकारों एवं कलाकारों की शासन की राक्षसी ताकत के अधीन कार्य करने की अनुमति नहीं होंनी चाहिए। इस संदर्भ में डॉ० लोहिया के विचार उल्लेखनीय हैं।

"समाजवादी हिन्दुस्तान में किसी भी व्यक्ति की साहित्य या कला की अभिव्यक्ति किसी भी हालत में अपराध नहीं रहेगी, और जिसे अश्लील वगैरह कहते हैं, उसके बारे में भी यही कहना चाहता हूँ। हलॉकि अश्लीलता के बारे में सम्भव है कि कुछ इधर–उधर के नियम बनें। संपूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। अगर कोई अद्भुत चीज है तो वह अपने आप चमत्कार करेगी।"[4]

हमारी शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्रीय भावों को जागृत करने के साथ विश्वशांति एवं विश्वमैत्री तथा विदेशनीति में पारंगत बनाने वाली होनी चाहिए।

---

(3) समाजवाद' आर्चाय नरेन्द्रदेव, डॉ० लोहिया, और जय प्रकाश की दृष्टि में, डॉ० युगेश्वर पृष्ठ 14 सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ, 1994।
(4) समाजवाद' आर्चाय नरेन्द्रदेव, डॉ० लोहिया, और जय प्रकाश की दृष्टि में, डॉ० युगेश्वर पृष्ठ 47 सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ, 1994।

शिक्षा सर्वसुलभ होनी चाहिए, भारत में शहरों की तरह गॉवों में भी शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसी शिक्षा हो जो भूख, गरीबी, अशिक्षा और शोषण आदि की अशांति को दूर कर सकें।

"लोहिया कभी गॉव में नहीं रहे। कोई आश्रम नहीं बनाया। मध्य प्रदेश में एक समता विद्यालय खोलना एक स्पप्न ही रह गया। किन्तु लोहिया का सारा जीवन ही गांव था।"[5]

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कथनी और करनी की एकता सिखायें। संत कबीर ने इस संदर्भ में कहा है

"कथनी मीठी खांड सी, करनी विष सी लोय।
कथनी तज करनी करें, विष भी अमृत होय।"

लोहिया स्त्रियों की शिक्षा के प्रति जागरूक थे। वे संपूर्ण मनुष्य जाति की स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के लिए चिन्तित थे। इसका निदान शिक्षा द्वारा ही सम्भव था।

लोहिया किसी को भी शिक्षा से वंचित रखना अपराध मानते थे।

"शिक्षा सबको समानरूप से समान आधारों पर मिलनी चाहिए। शिक्षा के स्तर पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। प्रतिभाओं को दबा कर कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता है।"[6]

लोहिया ने एक राष्ट्रीय भाषा और एक लिपि पर जोर दिया।

डॉ0 राममनोहर लोहिया के अनुसार शिक्षा में शिक्षार्थी को धर्म का वास्तविक एवं उचित अर्थ बतलाना चाहिए। "धर्म मनुष्य जीवन का एक आत्मिक विश्वास है। उसके आचारों को छोड दें तो, धर्म हर क्षण एक आनंद लोक की ओर उन्मुख रखता है। दुनिया के द्वेषों और कलहों से बचाता है। सांसारिक आचरण को ठीक रखने में सुविधा देता है। किन्तु ज्यों ही धर्म को प्रत्येक मनुष्य अपने या अपने प्रभू से अलग देखता है। अपने धर्म के रास्ते को ठीक और दूसरों को ईश्वर विरोधी समझकर विरोधी बन जाता है। वही साम्प्रदायिकता का आरंभ होता है। साम्प्रदायिकता धर्म का नाम तो लेती है, धर्म के नाम से ही सब कुछ करती है। किन्तु धर्म जहॉ मनुष्य को मनुष्य के प्रति उदार बनाता है, वहीं साम्प्रदायिकता द्वेष पैदा करती है। अपने को श्रेष्ठ मानकर, दूसरों के साथ न होकर, दूसरों को अपने साथ लाने की कोशिश करती है। दूसरे का सुनकर सबको अपना ही समझाना चाहती है। धर्म में आनंद, कल्पना और आशा है। किन्तु साम्प्रदायिकता बंधन है।"[7]

---

(5) समाजवाद' आर्चाय नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया, और जय प्रकाश की दृष्टि में, डॉ0 युगेश्वर पृष्ठ 65, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ, 1994।
(6) समाजवाद' आर्चाय नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया, और जय प्रकाश की दृष्टि में, डॉ0 युगेश्वर पृष्ठ 77 सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ, 1994।
(7) समाजवाद' आर्चाय नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया, और जय प्रकाश की दृष्टि में, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ, 1994।

लोहिया देशी भाषा और छोटी मशीनों का सुझाव देते हैं। जहॉ स्वचालित मशीनें मनुष्य को शूद्र बनाती हैं, बेकार बनाती हैं। करोडों को मारक भुखमरी और जलालत पर पहुँचा देती हैं। इन देशों में भी एक नया उच्च वर्ग तैयार हो जाता है। इस दृष्टि से पिछडे देशों के पुराने उच्च वर्ग में भी एक नया उच्च वर्ग तैयार हो जाता है। इस दृष्टि से पिछडे देशों के पुराने उच्च वर्ग का नाश होकर नया उच्च वर्ग स्थान लेता है"[8]।

लोहिया शिक्षा में स्वतंत्रता और समता पर बल देते हैं। "शिक्षा में किसी प्रकार के प्रतिबंध का मतलब है, स्वतंत्रता का नाश। एक ऐसी प्रतिभा का नाश, जिसमें गांधी, टैगोर, न्यूटन या मार्क्स बनने की क्षमता है। यह एक प्रकार की बौद्धिक भ्रूण हत्या है"[9]।

लोहिया ने यह बात एक सरकारी कमीशन द्वारा की गई सिफारिश के संदर्भ में कही थी। इस कमीशन में शिक्षण संस्थाओं में शूद्र, हरिजन और मुसलमानों के बच्चों की अधिकतम भर्ती की सिफारिश थी। लोहिया की दृष्टि साफ है। पिछडों के बच्चे को पढने में सहायता दी जाय। किन्तु किसी को भी पढने से वंचित नहीं किया जाय। भेदभाव केवल काम देने में हो सरकारी काम।

लोहिया शिक्षा में पश्चिमी साहित्य की तुलना में भारतीय साहित्य को प्रधानता देते हैं। क्योंकि पश्चिमी सभ्यता के भारी ओर बाह्य दबाव ने हमारी आंतरिक चेतना को लुप्त कर दिया है। स्वयं पश्चिम के पास कोई आंतरिक चेतना नहीं है। इसके मुकाबले भारत में आंतरिक चेतना का विशाल साहित्य है। उसकी परम्परा है। इस साहित्य ओर परम्परा के निर्माण में कबीर, तुलसी, रैदास, मीरा, अंगल, कंबन, नामदेव, नानक आदि की महत्वपूर्ण भूमिका है। लोहिया ने इस स्थिति को भलीभॉति समझकर ही रामायण मेला की कल्पना की थी। संत कबीर ने एक पद में कहा है –

"एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घट–घट में बोले।
बिंदु राम का सकल पसारा, अपर राम है जग से न्यारा"।।

लोहिया ने देखा था रामायण के माध्यम से राम के इन चारों रूपों की पूर्ति होती है। किसी भी समाज को इन चारों की आवश्यकता है। चारों का सामंजस्य ही राम कथा है। लोहिया ने समष्टि की तुलना में व्यक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। 'नाहि मानुषात् श्रेष्टतरं हि किंचित।'

डॉ0 सम्पूर्णानंद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

डॉ0 सम्पूर्णानंद ने अपने लेखों में जीवन के उद्देश्यों एवं शिक्षा के उद्देश्यों पर

(8) समाजवाद' आर्चाय नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया, और जय प्रकाश की दृष्टि में, डॉ0 युगेश्वर पृष्ठ 114 सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ, 1994।
(9) वही, पृष्ठ 115।

अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नवत् हैं –

(1) शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य जीवन–संग्राम में सफलतापूर्वक लड सकने के योग्य बनाना है। उसे अपनी बौद्धिक और व्यक्तित्व को समुन्नत करने का अवसर प्रदान करना है।

(2) शिक्षा का दूसरा उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना कि वह जीवन–संग्राम में आत्मनिर्भर हो सकें।

(3) शिक्षा का तीसरा उद्देश्य व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न करना एवं विकसित करना कि वह अपने कर्तब्यों को जाने एवं अपने अधिकारों की मांग करने के बजाय अपने कर्तब्यों का पालन करें।

(4) अज्ञान से निवृत्ति कराना। इस उद्देश्य को उन्होंने जीवन का सर्वोच्च एवं अंतिम लक्ष्य कहा है।

आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्य

(1) शिक्षा का उद्देश्य समाज में जन चेतना की भावना को विकसित करना होना चाहिए।

(2) शिक्षा ऐसी हो जिससे शिक्षार्थी का सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास हो।

(3) वैज्ञानिक और यांत्रिक शिक्षा का दुरूपयोग तुच्छ स्वार्थों की सिद्धि में न किया जाय बल्कि उसे सामाजिक हित में नियोजित किया जाय।

(4) शिक्षा राष्ट्रीय भावनाओं को विकसित करने में सहायक हो।

(5) शिक्षा में ऐसी गतिशीलता हो, जिससे पद दलित जनता के जीवन का उत्थान हो।

(6) जन साधारण को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे उनमें वर्तमान समस्याओं के गंभीर अध्ययन और समाज की नवीन प्रवृत्तियों को समझने की जागरूकता आ सकें।

(7) शिक्षा का उद्देश्य युवक को भावी जीवन के लिए तैयार करना होना चाहिए।

डा0 राममनोहर लोहिया के द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्य

(1) शिक्षा ऐसी हो जो विद्यार्थी को जीवन संग्राम में उतरने योग्य बना सकें, उसे आत्म–निर्भर बना सकें।

(2) शिक्षा ऐसी हो जो शिक्षार्थी का मन देशी बना सकें, ताकि वह अपने राष्ट्र अपनी संस्कृति अपनी भाषा एवं अपने साहित्य के प्रति गौरव की अनुभूति कर सकें।

(3) भारत की शिक्षा उद्योग परक हो, बेकारी दूर करने वाली हो, पढ़ाने वाली नहीं।

(4) शिक्षा में विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय हो, विज्ञान का अंधानुकरण न किया जाये।

(5) शिक्षा राष्ट्रीयता के साथ विश्वशांति को बढ़ाने वाली हो।

(6) शिक्षा सर्व सुलभ होने के साथ शोषण एवं अन्याय का विरोध करने वाली हो।

(7) शिक्षा ऐसी हो जो विद्यार्थी को विवेकशील एवं निर्भीक बना सकें।

(8) शिक्षा व्यक्ति का विकास करने वाली हो।

(9) शिक्षा हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराने वाली हो।

डॉ0 सम्पूर्णानंद द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम

डॉ0 सम्पूर्णानंद के अनुसार शिक्षा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ तभी हो सकती है, जबकि पाठ्यक्रम में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों यथा शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास तथा सामाजिक दायित्वों के प्रति शिक्षा को उचित स्थान दिया जाये। इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम का निर्माण व्यापक दृष्टिकोण से किया जाये।

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी के अनुसार पाठ्यक्रम निम्न प्रकार का होना चाहिए –

(अ) बौद्धिक विकास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम – (1) मातृभाषा (2) गणित (3) इतिहास, (4) कला, (5) संस्कृत, (6) विज्ञान (7) तकनीकी (8) ज्योतिष एवं आकाश दर्शन (9) सौन्दर्योपासना

(ब) शारीरिक विकास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम – (1) शारीरिक शिक्षा, सैनिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा

(स) नैतिक विकास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम – (1) नैतिक शिक्षा (2) धार्मिक शिक्षा (3) चारित्रिक शिक्षा

आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों का समावेश किया जाय, जिससे समाज में जन–चेतना की भावना को विकसित किया जा सकें। उन्होंने यह भी बताया कि भूत के आधार पर ही वर्तमान का निर्माण करने वाला पाठ्यक्रम होना चाहिए।

आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने प्राथमिक, एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में निम्न विचार प्रस्तुत किये –

प्राथमिक शिक्षा समिति ने पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया कि विद्यालय का पाठ्यक्रम बालक स्वभाव एवं समाज की आवश्यकताओं के आधार पर होना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्मित करते समय इस समिति ने निम्न उद्देश्य सामने रखे–

(1) पाठ्यक्रम में ऐसे विषय हों, जो बालक के स्वभाव एवं अभिरूचियों के अनुकूल हों तथा उसकी रचनात्क शक्तियों की मौलिकता का हनन न हो।

(2) बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास का पर्याप्त अवसर हो।

(3) प्राकृतिक एवं राष्ट्र उद्देश्यों की उपलब्धि हो।

(4) बालक का सर्वांगींण विकास हो।

आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने प्राथमिक पाठ्यक्रम में निम्न विषयों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया –

(1) शिल्प कला एवं हस्त कला।

(2) इतिहास, भूगोल तथा समाजशास्त्र,

(3) ब्राह्य भाषा एवं शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी,

(4) सामान्य विज्ञान,

(5) गणित।

(6) कला एवं संगीत

(7) शारीरिक प्रशिक्षण हेतु नृत्य, खेलकूद, तैराकी तथा भ्रमण आदि।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में समिति ने यह सुझाव दिया कि नए कालेजों में प्रथम दो कक्षाओं का पाठ्यक्रम प्राथमिक कक्षाओं की प्रत्येक दो कक्षाओं के पाठ्यक्रम के समान हों, किन्तु अंग्रेजी भाषा का शिक्षण माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य कर दिया जायें। माध्यमिक स्तर पर नवीन पाट्यक्रम में परिशिष्ट विषयों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया गया।

(1) भाषा साहित्य एवं सामाजिक विषय।

(2) आधुनिक विज्ञान एवं गणित।

(3) अन्य

(4) साहित्य

(5) तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा

(6) गृह विज्ञान (केवल बालिकाओं के लिए)

अंग्रेजी, शारीरिक, विज्ञान तथा सामान्य ज्ञान माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य कर दिया जाये।

डॉ0 राममनोहर लोहिया द्वारा प्रतिपादित शिक्षा का पाठ्यक्रम

डॉ0 लोहिया ने पाठ्यक्रम में निम्न विषय सम्मिलित करने का सुझाव दिया।

(1) भाषा का माध्यम हिन्दी हो।

(2) अतीत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इतिहास का अध्ययन आवश्यक हो लेकिन लोहिया इतिहास के अध्ययन का एक भिन्न सुझाव देते है।

"इतिहास पढने का एक तरीका है, जो सत्य से मेल खाता है। और जो रजिया, शेरशाह, जायसी और रहिमन के साथ–साथ विक्रमादित्त अशोक, हेमू ओर प्रताप जैसे हिन्दू ऑर मुसलमान दोनों के पुरखे बनाता है। इसी तरह हिन्दू और मुसलमान, दोनों गजनवी, गोरी और बाबर जैसों को उपद्रवी और हमलावर आततायी समझे तथा प्रथ्वीराज, सांगा और भाऊ जैसे लोगों में हिन्दुस्तान की गलती ओर कमजोरी की अभिव्यक्ति माने। हिन्दुस्तान को मध्यकालीन इतिहास में जितने युद्ध मुस्लिम और मुस्लिम के बीच हुए, उतने ही हिन्दू और मुस्लिम के बीच हुए। हमलावर मुस्लिम देशी मुस्लिम से लडा और जीता। पॉच बार देशी मुसलमान अपनी आजादी की रक्षा नहीं कर सकें। तैमूर और नादिरशाह के अभूतपूर्व कत्लेआम के वे शिकार बने। जो लोग हमलावरों ओर कातिलों को अपना पुरखा स्वीकार करते हैं वे स्तंत्रता के योग्य नहीं हैं"[10]।

इतिहास में अच्छे और बुरे दोनों हैं। आवश्यकता है अच्छों को ही अपना पुरखा मानें। बुरों को समान रूप से छोड दें। इतिहास कभी भी इसके विरूद्ध नहीं है। इतिहास में मुद्‌दों का आधार देशी–विदेशी रहा है, न कि हिन्दू और मुसलमान।

डॉ0 लोहिया ने पाठ्‌यक्रम में विज्ञान एवं आध्यात्मिकता तथा नैतिकता को समान रूप से प्रधानता दी है।

डॉ0 लोहिया कहते हैं– "आध्यात्मिकता और भौतिकता, व्यक्ति सुधार और समाज सुधार, नैतिकता और सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण ये दो जो अब तक अलग–अलग सिरे पर हैं, जिनमें अभी तक सम्बन्ध कायम नहीं हो सका है, किसी तरह से उनका सम्बन्ध कायम किया जाय, ताकि मनुष्य के दिल की वे दो शक्तियां दुनियां को बदल सकें"[11]।

मुसलमानों ने मुसलमानों को, हिन्दू ने हिन्दू को सताया और मारा है।

इतिहास में उदारता, एकता और असाम्प्रदायिकता के तत्वों को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। ताकि स्वस्थ राष्ट्रीय चेतना का विकास हो सके।

समाजशास्त्र, तार्कि शिक्षार्थी, विवाह, परिवार, जाति, वर्ण और वर्ग के प्रति विवेकशील दृष्टि का विकास हो।

विज्ञान, गणित, तकनीकी, व्यावसायिक शिक्षा, पुराण, उपनिषद, वेद, हिन्दी साहित्य रामचरित्र मानस आदि पाठ्‌यक्रम में होने चाहिए।

लोहिया संस्कृति के विवेचक से ज्यादा संस्कृति के मूर्तिकार अधिक हैं। इसीलिए उन्हें इतिहास की अपेक्षा पुराणों की कथाएं और चरित्र अधिक प्रभावित करते है। राम, कृष्ण, शिव

(10) समाजवाद, डॉ युगेश्र, पृष्ठ–93, लखनऊ, सूचना एवं जनसमपर्क विभाग, 1994.
(11) समाजवाद' आर्चाय नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया, और जय प्रकाश की दृष्टि में, डॉ0 युगेश्वर पृष्ठ 43 सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ, 1994।

किसी भी इतिहास पुरूष से अधिक महत्वपूर्ण लगते है। इतिहास पुरूष की वह मूर्ति नहीं बन सकती है, जो देव पुरूष की वनती है। पौराणिक देव चरित के समक्ष इतिहास पुरूष बौने हैं। इसलिए लोहिया शिक्षा में इतिहास की तुलना में पौराणिक प्रसंग को प्रधानता देते हैं।

लोहिया ने हिन्दी हिन्दी ग्रन्थ रामचरित मानस के महत्व पर जो दिया । लोहिया संस्कृत विरोधी नहीं थे, फिर भी उनका जोर हिन्दी साहित्य पर था।

समाजवादी चिंतकों में लोहिया प्रबल हिन्दी समर्थक थे।

डॉ सम्पूर्णानंद द्वारा प्रतिपादित 'शिक्षणविधि'

डॉ0 सम्पूर्णानंद वेद एवं उपनिषदों के ज्ञाता थें एव भारतीय संस्कृति के पोषक थे। उनकी इस विचारधारा का प्रभाव उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षणविधियों में भी पड़ा, और उन्होंने स्पष्ट किया कि बालक को चिन्तन, मनन द्वारा ज्ञान दिया जाना चाहिए। इन्होंने शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षण कार्य किया है। इसलिये वे चाहते थे कि छात्रों को पाठ्यपुस्तक विधि एवं ब्याख्यान विधि से शिक्षण दिया जाय।

वे खगोलशास्त्र के भी महान् ज्ञाता थे, इसलिये वे 'करके सीखन' को भी महत्व देते थे, क्योंकि वे समझते थे कि वैज्ञानिक ज्ञान करके सीखने से ही मस्तिष्क में स्थित होता है।

आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधि

ज्योतिपुंज आचार्य जी तीक्ष्ण बुद्धि वाले प्रतिभा सम्पन्न शिखा साध्वी थे, सन् 1939 में जब वह उत्तर प्रदेश की शिक्षा समिति के अध्ययन हो गये थे। तब देश परतंत्र था, भारत के भावी नागरिकों के अनुकूल ही शिक्षा के उद्देश्य आपने समझ रखे थे और उन्होने जिन शिक्षण पद्धतियों पर अपना ध्यान आकर्षित किया था, उनका आधार पूर्णतया मनोवैज्ञानिक था।

आचार्य जी के अनुसार बालक विद्यालय की बेंचों पर बैठे एक निश्चिन्त श्रोता की भॉति वह सब सुनता रहें, जो शिक्षक उसे सुनावें ऐसी शिक्षण–पद्धति को तिरस्कृत कर देना चाहिए। उनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिसमें क्रियाशील होकर बालक को भाग लेने का अवसर दिया जाय।

अतः शिक्षण विधि के सम्बन्ध में आचार्य जी ने मुख्य रूप से दो शिक्षण–पद्धतियां अपनाई।

(1) वैचारिक पद्धति

मनोवैज्ञानिकों ने यह सत्यापित कर दिया है कि 'करके सीखने' वाली योजना ही अधिक प्रभावशाली है। ज्ञान प्राप्त करने का यही आधार होती है, और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा करके सीखने की प्रक्रिया में बालक शीघ्र ज्ञान ग्रहण करता है। बालकों की कर्मेन्द्रिया एवं बुद्धि

जितनी अधिक क्रियाशील होगी, शिक्षण उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा। आचार्य जी का मानना था कि इन्हीं क्रियाओं द्वारा बालकों एवं परिस्थितियों में ज्ञान को उपयोग करने की क्षमता लानी चाहिए। हाथों तथा नेत्रों में कलात्मक एवं रचनात्मक कार्य करने की कुशलता लानी चाहिए। बालकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं नागरिकता की समझ पैदा करनी चाहिए। सहयोग की भावनाओं को प्रेरित करना चाहिए। यह सब तभी संभव है जबकि बालक को शिक्षा की प्रक्रिया में क्रियाशील होने का पूरा अवसर दिया जाय।

अगर 'एक्सूटेंशन लेक्चर' की व्यवस्था की जाय और शिक्षक शिक्षार्थी में निकट सम्पर्क स्थापित किया जाय तो नवयुवक विद्यार्थियों पर बिना अधिक भार डाले ही यह उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। 'ट्यूटोरियल' पद्धति को सुसंगठित कर देने पर यह अधिक लाभदायक हो जाएगा। इसमें संदेह नहीं कि यह खर्चीजी व्यवस्था है, किन्तु अगर हम अपने विद्यार्थियों का समुचित बैद्धिक विकास करना चाहते हैं तो इस अतिरिक्त व्यय की परवाह नहीं करनी चाहिए। (साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति पृष्ठ 118)

(2) खेल पद्धति

खेलों में बालक की प्रकृति का अध्ययन किया गया। और इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि खेल की क्रिया में उसकी स्वाभाविक रूचि होती है। इसलिए उन्होनें शिक्षा के क्षेत्र में खेल विधि के महत्व को स्वीकार किया। फ्रोबेल ने अपनी किंडर गार्डन पद्धति में मनोंरंजन पूर्ण रचनात्मक खेलों में दोहराना, कूदना, घूमना तथा बालू, मिट्टी आदि के विभिन्न पहलुओं का निर्माण करना आदि खेल आते हैं, यद्यपि आचार्य जी ने विशिष्ट रूप से इस पद्धति का उल्लेख नहीं किया, किन्तु उन्होनें प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्मित करते समय यह स्पष्ट कर दिया कि पाठ्यक्रम का शिक्षण क्रिया योजना के सिद्धांत पर होना चाहिए।

डॉ0 राममनोहर लोहिया द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधि

प्राचीन काल से आज तक यदि हम शिक्षा के इतिहास पर दृष्टि डाले तो देखेंगें कि प्रत्येक युग की आवश्यकतानुसार व्यक्ति के जीवन दर्शन एवं शिक्षा उद्देश्यों में परिवर्तन होता रहता है। शिक्षण–विधियां भी शिक्षा के उद्देश्यों से प्रभावित होती है। शिक्षा के स्वरूप, पद्धति एवं उद्देश्यों के प्रगति के साथ–साथ निरन्तर परिवर्तन होता जाता है।

डॉ0 लोहिया "करके सीखने का सिद्धांत" "पाठन विधि" "व्याख्यान विधि" एवं अध्यापक प्रधान शिक्षण विधि के प्रबल समर्थक हैं।

डॉ0 सम्पूर्णानंद के अनुसार शिक्षक

डॉ0 सम्पूर्णानंद ने समाज में शिक्षक का स्थान बहुत ही सम्मानपूर्ण माना है। शिक्षक राष्ट्र की भावी पीढ़ी का निर्माता एवं उसको समुन्नत स्थान में पहुँचाने हेतु प्रेरक होता है,

उसके कर्तव्यों एवं दायित्वों का मूल्यांकन रूपये पैसे से उसी प्रकार नहीं हो सकता, जैसे माता के द्वारा शिशुपालन में किये गये कार्य का। शिक्षक का पद व्यवसायी का नहीं है उसे धन के लिए लालायित नहीं होना चाहिए। राज्य और समाज को उसके समुचित भरण–पोषण का एवं समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान करने का दायित्व होना होगा। इस सम्बन्ध में उनका कथन उल्लेखनीय है।

"आचार्य छात्र के लिए पूज्य है ही, समाज का भी कर्तब्य है कि ऐसे व्यक्तियों का समादर करें और इन्हें निष्कंटक काम करने का अवसर दें।"

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी द्वारा 'शिक्षा के उद्देश्य' एवं 'शिक्षक' सम्बंधित लेखों में शिक्षकों के कर्तब्यों एवं उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं को निम्नांकित प्रकार से अभिव्यक्त किया है–

(1) प्राचीन आचार्यों की भॉति समुज्जल चरित्र प्रस्तुत करना।

(2) भारतीय संस्कृति की रक्षा व समृद्धि तथा महापुरूषों के कार्यों का स्मरण करना।

(3) सभी विषयों के अध्यापकों द्वारा छात्रों में उदार धार्मिक प्रवृत्ति जागृत करना।

(4) शिक्षार्थी को सत्यनिष्ठ एवं सत्यान्वेषी बनाना।

(5) छात्रों को पुरूषार्थ–चतुष्ट्य का ज्ञान कराना तथा परम लक्ष्य की ओर प्रेरित करना।

(6) छात्रों के प्रति अग्रज की तरह भावना रखना।

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार शिक्षक

शिक्षा पद्धति की सफलता अन्ततोगत्वा अध्यापक पर निर्भर करती है। विदेशी शासन के अन्तर्गत उसे नाम मात्र की सैद्धांतिक स्वतंत्रता थी, और वह समाज से पृथक था। विद्यालय और समाज के बीच प्रथक्करण के कारण ही शिक्षा में लोगों की दिलचस्पी कम होती गयी। एक अध्यापक को पहले समाज में अपनी उपयोगिता सिद्ध करनी पड़ेगी, तब वह समाज में मान्यता प्राप्त कर सकता है। उसको कार्यक्षेत्र केवल विद्यालय में ही सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में इनका प्रसार होना चाहिए। वह विद्या और चरित्र वाला व्यक्ति होना चाहिए, और उसमें व्यापक मानव सहानुभूति होनी चाहिए, विचार और आचार में भेद नहीं होना चाहिए। उसे विद्यार्थी के व्यक्तित्व का समादर करना चाहिए, उसके अन्तरतम में प्रवेश करने की कोशिश करनी चाहिए। तथा उसकी आवश्यकताओं और कठिनाइयां समझनी चाहिए। विद्यार्थियों के मानस का निर्माण करना, उसके चरित्र का विकास करना तथा उसमें जनतांत्रिक भाव भरना अध्यापक का कर्तब्य है। ऊपर से अनुशासन नहीं लादना चाहिए। जहॉ तक सम्भव हो, आत्म संयम की शक्ति जो मानव प्रकृति में सन्निहित होती है और जिसमें आत्मानुशासन होता है, प्रोत्साहित करना चाहिए। अध्यापक

विद्यार्थियों के लिए आदर्श होना चाहिए, जिससे वे सम्भवतः अनुकरण करने की कोशिश करें। विद्यार्थियों के जीवन निर्माण करने में अध्यापकों का बहुत बड़ा हाथ रहता है।

जो अध्यापक केवल ज्ञान वहन करता है, किन्तु विद्यार्थियों के विचार और चरित्र का निर्माण नहीं करता, वह एक योग्य अध्यापक नहीं है। सच्चा अध्यापक अपने विद्यार्थियों के सम्मान और प्रेम का भाजन होता है, और उसके लिये अनुशासन पालन कराना अत्यंत सुलभ होता है, परन्तु वर्तमान समय में अध्यापकों में अपने कर्तब्य और दायित्व की भावना का दुखद अभाव दिखाई देता है।

आमतौर पर अध्यापकों को प्रेरणा रहित और हतोत्साही परिस्थिति में काम करना पड़ता है। जबकि कुछ प्रतिशत लोग जो अपने पेशे के प्रति ईमानदार हैं और अपनी कठिनाइयों की कुछ परवाह नहीं करते हैं, वे आत्मार्पण का जीवन व्यतीत करते हैं।

आमतौर से एक अध्यापक जीवन की सभी सुविधाओं से वंचित रहता है। उसमें सुरक्षा का भाव नहीं रहता है, उसका वेतन अपर्याप्त होता है, उसे अपने कार्यों का उचित प्रतिफल नहीं मिलता और उसे साधारतः समाज में सम्मानजनक स्थान नहीं मिलता है। काम की दशा भी हमेशा संतोषप्रदः नहीं होती है। उसकी संस्था में कोई सुसज्जित पुस्तकालय नहीं होता है। साधन तथा आवास की भी कमी होती है। क्लास बडी होने के कारण उसे अपने सब विद्यार्थियों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना भी कठिन होता है।

अध्यापक में बौद्धिक ईमानदारी होनी चाहिए, परन्तु यह तभी संभव है जब उसे वैचारिक स्वतंत्रता हो। यह स्वतंत्रता ही अध्यापक की अमूल्य निधि होती है और किसी भी दश में उसका परित्याग नहीं हो सकता है। एक सच्चा अध्यापक अपने युग के विवादास्पद प्रश्नों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता है। अध्यापक को प्रचारक अथवा मंचवक्ता बनने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। उसके अंदर विचार विमर्श करने की योग्यता होनी चाहिए, तथा किसी भी प्रश्न को विद्यार्थियों के समक्ष रखने का विवेक होना चाहिए।

किसी अध्यापक को अपने देश के सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन में भाग लेने से नहीं रोकना चाहिए। हालांकि इसमें खतरे भी सन्निहित हैं परन्तु फिर भी वैचारिक स्वतंत्रता होनी चाहिए। अध्यापक और उसके प्रधान के बीच सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध होने चाहिए। अध्यापकों के सुझाव और आलोचना का बुरा नहीं मानना चाहिए। बल्कि विभागीय अध्यक्षों द्वारा उसका स्वागत करना चाहिए।

डॉ0 राममनोहर लोहिया के अनुसार शिक्षक

प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षक को अत्यंत उच्च स्थान दिया गया था। शिक्षक राष्ट्र

के भविष्य के निर्माता हैं। किसी भी विद्यालय का महत्व उसके भवनों, प्रयोगशालाओं और साधनों से नहीं होता, उसका महत्व उसके योग्य शिक्षकों से है।

(1) शिक्षक को चाहिए कि वह बालक के हृदय में राष्ट्र अपनी मातृभाषा एवं संस्कृति के प्रति अटूट अनुराग उत्पन्न कर सकें।

(2) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उन्नति वर्तमान युग की आवश्यकता है, लेकिन विद्यार्थी के अन्तस में स्वार्थ नहीं परार्थ की भावना हो, ताकि विज्ञान का दुरूपयोग न हो।

(3) राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से ऊँची से ऊँची शिक्षा देना।

(4) शिक्षार्थी को सत्यनिष्ठ एवं सत्यान्वेषी एवं निर्भीक बनाना।

(5) सभी विषयों के द्वारा उदार धार्मिक प्रवृत्ति एवं इतिहास के प्रति विवेकशील दृष्टिकोण जागृत करना।

(6) छात्रों को पुरूषार्थ चतुष्टय का ज्ञान कराना तथा परम लक्ष्य की ओर प्रेरित करना।

(7) विद्यार्थी के जीवन में शिक्षा एवं अध्यात्म का संतुलन स्थापित करना।

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी के अनुसार विद्यालय

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी का विचार था कि हमारे वर्तमान विद्यालयों को उपस्थित परिस्थितियों में अनुरूप पुनः गुरूकुलों को स्वरूप ग्रहण करना होगा। तभी छात्रों को यह केन्द्र शिक्षा में परम उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होगें। इस सम्बंन्ध में उनका निम्न कथन दृष्टव्य है।"[12]

"हमारे शिक्षा केन्द्रों को आधुनिक जीवन की सीमाओं के अन्दर पुराने कुलपति के वास्तविक आश्रमों जैसा बनने की चेष्ठा करनी होगी। उन्हें ज्ञान को स्वयं पहले आत्मसात् करके विकसित करना होगा और अध्यवसाय पूर्ण अनुसंधानों से ज्ञान भंडार की वृद्धि करनी होगी। उन्हें यह भी देखना होगा कि जीवन को अधिक निष्कलुष, सुखी और परिपूर्ण बनाने में इस ज्ञान का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है।............. मै चाहता हूँ कि हमारे शिक्षा केन्द्रों में एक वास्तविक धर्म का वातावरण व्याप्त रहे।"

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी चाहते थे कि विद्यालय हमारी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति की रक्षा एवं समृद्धि में अपना योगदान दें तथा वर्तमान में हमारे समाज में जो सभ्यता पनप रही है उसके प्रति समाज का ध्यान आकृष्ट कर उसको फैलने से रोके। उन्होनें कहा"[13]–

"शिक्षालयों का काम छात्रों को केवल विद्धान बनाना नहीं है, प्रत्युत सुशील, विद्धान और सज्जन बनाना है। आजकल हमारे यहॉ इसकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता है। हमारे देश और प्रांत की अपनी संस्कृति है। हमको आचरण में इसे उतारना चाहिए।"

(12) डॉ0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा के आदर्श केन्द्र कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 279, लखनऊ सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ0प्र0 1989

(13) डॉ0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा में नवीन दृष्टिकोण कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 275, लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1989 ।

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार विद्यालय

काशी विद्यापीठ के आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में शिक्षा जगत को नई दिशा प्रदान की। विद्यालयों के महत्व को स्वीकार करते हुए आचार्य जी ने कहा था – "इतिहास बताता है कि राष्ट्रीय भावना के निर्माण में पाठशाला का बहुत महत्वपूर्ण भाग रहहा है। पाठशाला के द्वारा राष्ट्र के प्रति श्रद्धा की भावना सबल होती रही है और राष्ट्रभिमान अपने राष्ट्र की महत्ता के विषय में अत्याधिक आस्था पैदा होती रही है।

किन्तु विश्वविद्यालयों के विस्तार के कारण और पुराने विश्वविद्यालयों की जनसंख्या चरमावधि तक पहुँच चुकी है। इस कारण अध्यापकों का यह काम अधिक कठिन हो गया है। छात्रों और अध्यापकों के बीच सम्पर्क के अवसर दिन प्रतिदिन कम होते जा रहे हैं। छात्रावासों में स्थान की कमी के कारण भी विश्वविद्यालयों को 'गुरूकुल' बनाना दुस्साध्य एवं असंभव हो रहा है।

गुरूकुल की परम्परा का शिक्षागत महत्व तो इसी में हैं कि छात्रावासों में ही हम सहकारिता, सहानुभूति एवं भाईचारे के बहुमूल्य पाठ पढते हैं। जो सामूहिक जीवन के लिए बहुत ही सहायक होते हैं।"[14]

डॉ0 राममनोहर लोहिया के अनुसार विद्यालय

समाजवादी शिक्षाशास्त्री इस बात पर सहमत है कि विद्यालय चरित्र निर्माण के केन्द्र होने चाहिए। विद्यालय कार्यशाला (वर्कशाप) का एक स्वरूप होना चाहिए, जहॉ विद्यार्थी अपने हस्त कौशलों द्वारा धनोपार्जन कर सकें, जिससे उसकी शिक्षा का खर्च वहन किया जा सके। प्रत्येक विद्यालय का 'समुदाय' से भी सम्बंध रहे ताकि विद्यार्थी सामाजिक जीवन का भी प्रशिक्षण प्राप्त कर सके। इन्होने गुरूकुल विद्यालयों के अनुसार विद्यालय के वातावरण की वकालत की है। यही विद्यालय एक आदर्श नागरिक तैयार कर सकते हैं।

शोषण एवं अन्याय का विरोध करने वाले विषपायी लोहिया, देशी भाषा एवं देशी स्कूल का समर्थन करते है। "सांस्कृतिक और सामाजिक निर्माण का कोई भी सांस्कृतिक क्षेत्र छूटे नहीं। इसी सांस्कृतिक और सामाजिक निर्माण की दृष्टि से लोहिया नें 'हिमालय बचाओं' का नारा दिया। लोहिया अकेले नेता हैं, जिन्होंने हिमालय पर विस्तार से सोचा। देश का ध्यान आकृष्ट किया। उसके लिए आन्दोलन किया। नदियॉ साफ करनी हैं तो हिमालय को भी साफ और सुरक्षित रखना होगा। चीन तिब्बत से बढकर तेजपुर आ गया। उसे रोका नही गया

(14) आचार्य नरेन्द्र देव– युग और विचार पृष्ठ 139, 140.

तो वह सभी नदियों में जहर घोल देगा। फिर नदियों की सफाई और तीर्थों का उद्धार बेकार हो जायेगा। किन्तु इन सबके लिए देशी मन भी चाहिए। देशी मन कॉन्वेंट के स्कूलों और अंग्रेजी शिक्षा से नहीं बनेगा। लोकतंत्र के सरकारी स्कूल और देशी भाषा ही देशी मन बना सकते हैं।"[15]

डॉ0 सम्पूर्णानंद के अनुसार अनुशासन

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी के विचारों से निष्कर्ष निकलता है कि वे प्रभावात्मक अनुशासन के पक्षधर थे। इस सम्बन्ध में उनका मंतब्य जो कि उन्होंने 'शिक्षा शास्त्रियों के सामने अनुशासन की समस्या' के सम्बन्ध में उद्धत किया जाता है –

"आपका व्यक्तिगत चरित्र ही सर्वोच्च वेदी है। यदि आपका छात्र अनुभव करता है कि आप पर भरोसा किया जा सकता है, तो समझिये कि विद्यालय के अनुशासन की समस्या काफी सीमा तक स्वयं ही सुलझ जायेगी, लेकिन आपको अपने विषय में सावधान रहना होगा।"[16]

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार अनुशासन

अनुशासन का प्रश्न शिक्षा जगत् से सम्बद्ध है। आज चारों ओर इस बात की शिकायत होती है कि विद्यार्थियों में संयम की कमी हो गयी है। इस संदर्भ में आचार्य जी के विचार दृष्टब्य है "अनुशासन हीनता के क्या कारण हैं? इस पर हमको विचार करना है, क्योंकि बिना रोग का निदान जाने, रोग का उपशम नहीं हो सकता। इस संयम की कमी के अनेक कारण हैं। जीवन की अनिश्चितता के कारण समाज की सब श्रेणियों में असंतोष पाया जाता है। समाज के मौलिक आधार के सम्बन्ध में भी तीब्र मतभेद हैं। महायुद्ध के पश्चात् कठिनाइयां और बढ़ गयी हैं और इसका मनोवृत्ति पर बुना प्रभाव पडता है। आज हमारे देश में सरकारी विभागों में भी कुशलता और अनुशासन की कमी आ गयी है। सारा देश इस रोग से ग्रस्त है। आर्थिक कठिनाइयों को बिना दूर किये पूर्ण रूप से संयम का पुनः प्रतिग्रित होना सुगम नहीं है। जहाँ तक विद्यार्थियों का सम्बन्ध हैं, उनके साथ सहानुभूति व्यवहार कर तथा उनके निकट सम्पर्क में आकर हम इस शिकायत को बहुत कुछ दूर कर सकते है। विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिसमें वह आत्मसंयम के महत्व को समझें। बाहर से अनुशान का आरोप प्रायः व्यर्थ हुआ करता है। हमारे विद्यालयों का वातावरण ही ऐसा होना चाहिए, जिसें असंयम के उदाहरण बहुत कम हो जायें"[17]।

(15) समजवादी (आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 लोहिया एवं जय प्रकाश की दृष्टि में), डा0 युगेश्वर, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ0प्र0 1994, ।
(16) डॉ0 सम्पूर्णानंद– शिक्षाशास्त्रियों के सामने समस्यायें कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 270, लखनऊ सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ0प्र0 1989,
(17) आचार्य नरेन्द्र देव– साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति, पृष्ठ 128, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 1988।

डॉ0 राममनोहर लोहिया के अनुसार अनुशासन

डॉ0 लोहिया दमनात्मक अनुशासन के विरोधी थे। वे चाहते थे कि बालक आदर्श शिक्षके के व्यक्तित्व के प्रभाव से आत्मानुशासन के लिए प्रेरित हो। इस संदर्भ में हम उन्हें आदर्शवादी शिक्षा दार्शनिक की श्रेणी में रख सकते हैं। डॉ0 युगेश्वर के विचार इस संदर्भ में दृष्टब्य है। "लोहिया ने छात्र संगठन पर बल दिया। वे छात्रों की विचारधारा पर जोर देते हैं। "विद्यार्थियों को दो रूख अख्यितार करने पडेगें। अपनी पसंद के राजनीतिक क्लबों द्वारा वह अपने राजनीतिक व्यक्तित्व को विकसित कर सकेगा। दूसरी ओर विद्यार्थियों के राष्ट्रीय यूनियन के द्वारा वह सृजनात्मक और रचनात्मक शक्ति प्रगट करेगा।"[18]

(2) समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों की समकालीन शिक्षा–शास्त्रियों के शैक्षिक विचारों से तुलना –

भारत के स्वाधीनता संग्राम के दौरान कुछ ऐसे युग पुरूष उभर कर सामने आाये, जिन्होंने राजनीति, इतिहास, पत्रकारिता, कला, शिक्षा, संस्कृति और साहित्य को एक साथ प्रभावित किया। उन युगपुरूषों में समकालीन युग पुरूष महात्मा गांधी, डॉ0 राधाकृष्णन्, महर्षि अरविंद, रवीन्द्र नाथ टैगोर, आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ0 सम्पूर्णानंद, डॉ0 राममनोहर लोहिया आदि थे। इनके जीवन का अर्धशताब्दी काल एक साथ व्यतीत हुआ है। इतिहास में ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जो पूरे युग पर प्रभाव डाले तथा एक दूसरे को प्रभावित करें। इन महापुरूषों ने न केवल युग को प्रभावित किया है बल्कि आने वाली पीढ़ियों का युग–युगान्तर तक मार्ग दर्शन भी किया है।

यह सभी युग–पुरूष शिक्षाविद्, दार्शनिक, अनुसंधाता, विचारक तथा सुधी लेखक रहे है। यह सिद्धांतवादी थे और सिद्धांतों से हटना इन्हें किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं था। परन्तु सभी व्यक्तियों को शिक्षा–दार्शनिक कहना अतिश्योक्ति होगी। इस अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन हेतु कुछ अपने महत्वपूर्ण शिक्षा कार्यों के कारण, कुछ अपने विचारा से सहयोग देने के कारण तथा कुछ स्वतंत्र शिक्षात्मक चिंतन के कारण समाविष्ट किये जा रहे है।

गांधी जी का शिक्षा दर्शन

गांधी जी का शिक्षा दर्शन मूलतः उनके शिक्षादर्शन से ही प्रभावित था। गांधी जी के हर क्षेत्र के कार्य और योजनाएं उनके जीवन दर्शन से अनुप्राणित होती थी। गांधी जी ने यह अनुभव कर लिया थ कि सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और राजनैतिक प्रगति के लिए शिक्षा ही मात्र साधन है। उनका शिक्षा से तात्पर्य पूर्ण रूपेण साक्षर बनाना मात्र ही नहीं, क्योंकि

(18) समाजवाद– डा0 युगेश्वर पृष्ठ, 145, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ 1994

साक्षरता का न आदि है न अंत। अतः शिक्षा का अर्थ बालक के शरीर, मन और आत्मा का सर्वोत्तम रूप प्रकट करना है। के0जी0 मश्रूवाला ने लिखा है कि "सेवाग्राम शिक्षा व्यवस्था में साक्षरता को न तो ज्ञान का स्थान दिया है और न ज्ञान वृद्धि के साधन का ही वरन् इसके ज्ञान तथा अज्ञान का प्रतीक मात्र समझा गया है"[19]।

गांधी जी अध्यात्मिकता पर आधारित ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे। जिसका मुख्य स्तम्भ सत्य, अहिंसा, नैतिकता, प्रेम और न्याय है। गांधी जी शिक्षा में आत्म निर्भरता की भावना का समावेश चाहते थे। उसके लिए शिक्षा में हस्तकला को माध्यम बनाया। गांधी जी का कथन था कि "आपको इस विश्वास के साथ कार्य आरंभ करना है कि भारत के ग्रामों की आवश्यकता को देखते हुए हमें अपनी शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए आत्म निर्भर बनना चाहिए"[20]। एम0एस पटेल ने लिखा है कि " गांधी जी के शिक्षादर्शन का अंधार प्रकृतिवादी है, उद्देश्य आदर्शवादी एवं विधि तथा योजना प्रयोजनवादी"[21]।

इस प्रकार से शिक्षा के सम्बन्ध में गांधी जी ने निम्न विचार व्यक्त किये हैं –

(1) शिक्षा व्यावहारिक हो।

(2) आधार धार्मिक हो।

(3) शिक्षा से बालक में निहित धार्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक शक्तियों का विकास हो ।

(4) साक्षरता शिक्षा नही है ।

(5) शिक्षा का केन्द्रबिंदु बालक तथा शिल्प हो ।

(6) शिक्षा स्वावलम्बी हो ।

उपयुक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी ने ऐसा दर्शन दिया, जिसमें यर्थाथ और आदर्श, धर्म और नीति, विचार और व्यवहार का समन्वय विद्यमान है।

सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन

विवेकानंद एवं स्वामी रामतीर्थ के पश्चात् भारत के प्रमुख सांस्कृतिक संदेशवाहक डॉ0 राधाकृष्णन् एक शास्वत ज्ञान के प्रहरी व उच्चकोटि के दार्शनिक विचारक के रूप में स्मरणीय हैं। एक दार्शनिक के रूप में आपको संदेश यदि संक्षेप में देना चाहे तो वह है "आत्मवाद" का शान्ति स्वस्ति मूलक संदेश जो कि उपनिषद् काल से भारत की अनवरत् स्वर धारा में निस्तर गूँजता रहा है।"

प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षा–दर्शन उसके जीवन दर्शन से प्रभावित होता है। प्रवक्ता डॉ0 राधाकृष्णन् का जीवन दर्शन पर भारतीय धर्म, सभ्यता, संस्कृति और नैतिकता का असीमित

(19) हरिजन– 4 दिसम्बर 1937।
(20) ई0 डब्ल्यू0 आर्यनामकम् (उद्धत) दि स्टोरी आफ ट्रवेल्स इयर्स, पृष्ठ 21।
(21) डा0 रमाकांत दुबे "विश्व के कुछ महान् शिक्षाशास्त्री" पृष्ठ 263, मेरठ मीनाक्षी प्रकाशन

प्रभाव पडा है। वे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी मानव कल्याण चाहते थे। वे युद्ध विहीन संसार की कल्पना करते है। जिसमें विश्व बन्धुत्वों का बोलबाला हो। उनके विचार थे कि "सभ्यताओं का निर्माण मशीनों से नहीं, मूल्यों से होता है, उनकी परिचालक शक्तियॉ उत्तरलोक से निःसृत होती हैं। सभ्यता प्रगति का आधार बौद्धिक रचनात्मक नहीं होता है, बल्कि विनीतता ओर अनुकम्पा सम्बन्धी नैतिक गुण होता है"[22]।

राधाकृष्णन् ने बहुत आत्मविश्वास के साथ कहा है कि "आत्मिक मूल्यों के प्रति हमारी आदर भावना ही सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक बद दिमागियां दूर कर सकती हैं"[23]।

इस प्रकार से डाक्टर राधाकृष्णन् के शिक्षा दर्शन पर आदर्शवाद का पूरा–पूरा प्रभाव है। क्योंकि उनका जीवन दर्शन ही भारतीय संस्कृति से प्रभावित है।

शिक्षा के उद्देश्य

महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नवत हैं –

(अ) तात्कालिक उद्देश्य– (1) जीवकोपार्जन, (2) व्यक्तित्व का विकास

(3) सांस्कृतिक परम्पराओं की पूर्ति (4) चरित्र निर्माण (5) मोक्ष

(ब) अन्त्योद्देश्य – उपात्मानुभूति,

(स) शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज में उचित सम्बन्ध स्थापित करना।

डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

डॉ0 राधाकृष्णन् ने शिक्षा सम्बन्धी अपने विचार को "सर्चफार ट्रथ" नामक पुस्तक में व्यक्त किया है। विश्वविद्यालय आयोग की रिपोर्ट में भी उनके कुछ विचार/उद्देश्य प्रकाश में आते हैं –

(1) विश्व–बंधुत्व की स्थापना करना।

(2) व्यक्ति को ईश्वर के समीप लाना, तथा उसके लिए प्रकृति का भिन्न–भिन्न रूपों में अध्ययन करना।

(3) वर्ग रहित समाज का निर्माण करना।

(4) सादा जीवन उच्च विचार।

(5) उच्च मानवीय आदर्शों, उदात्त भावनाओं और आध्यात्मिक पद्धतियों का निर्माण।

(6) शिक्षा का आध्यात्मिक, सभ्यता और संस्कृति का पोषण करना।

महात्मा गॉधी द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम

प्रारंभ में महात्मा गांधी ने 7–14 वर्ष के शिक्षण क्रम की बात पर ही अधिक ध्यान दिया

(22) अकेजनल स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स खण्ड– 2 पृष्ठ 162।
(23) अकेजनल स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स खण्ड–10, पृष्ठ 72।

था। किन्तु 1942 आगारवॉ महन में नजरबंद हो जाने के बाद उन्हें इस क्षेत्र में सोचने विचारने का पर्याप्त अवसर मिला, अन्ततः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नवीन शिक्षण दृष्टि को पूर्णतः विकसित करने के लिए विद्यार्थियों को केवल सप्तवर्षीय शिक्षा ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि शिक्षा की प्रक्रिया जीवन भर चलती है। नजरबंदी से छूटते ही गांधी जी ने अपनी शिक्षायोजना को बढ़ाकर निम्नलिखित चार खण्डों में विभाजित किया।"[24]

शैक्षिक सोपान	आयु सीमा
1. पूर्व बुनियादी शिक्षा	7 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए
2. बुनियादी शिक्षा	7 से 14 वर्ष आयु श्रेणी के लिए
3. उत्तर बुनियादी शिक्षा	14 वर्ष से ऊपर आयु वालों के लिए
4. प्रौढ़ शिक्षा	बड़ी उम्र के सभी पुरूषों के लिए,

गांधी जी के विचार से छोटे बच्चों को अक्षर ज्ञान कराने की अपेक्षा उत्तम संस्कार डालना, विभिन्न अंगों से उचित काम लेना, स्वच्छ रहने और आदर्श कहानियों द्वारा दया, करूणा, प्रेम और संयम की अच्छी आदतों को विकसित करना अधिक महत्व का होता है। तीनों स्तरों की शिक्षा अवधि में गांधी जी अपने विद्यार्थियों को स्वावलम्बन की ओर ले जाना चाहते थे।

(1) बुनियादी शिक्षा – गांधी जी चाहते थे कि इस काल में विद्यार्थियों द्वारा बनाई नयी चीजों से उनकी आय द्वारा कम से कम शिक्षकों को वेतन दिया जा सके।

(2) उत्तर बुनियादी काल – इस काल में विद्यार्थी अपनी शिक्षा के पूरे व्यय भार के साथ भोजन, वस्त्र, का भी व्यय भार निकाल सकें।

(3) प्रौढ़ शिक्षा काल – इस काल में पढने की कोई समय सीमा नहीं होनी चाहिए, किन्तु उसके पालकों या समाज पर उसके निर्वाह का किसी भी प्रकार का व्यय भार नहीं पडना चाहिए।

गांधी जी का दूसरा विचार था किसी उद्योग को शिक्षा का माध्यम बना देने से आज की किताबी और श्रम शून्य शिक्षा का दोष भी दूर हो जायेगा। साथ ही उसके हांथ और मस्तिष्क तथा शरीर श्रम और मानसिक श्रमता के बीच संतुलन स्थापित हो जायेगा।

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में वह पुस्तकों पर अधिक जोर नहीं देना चाहते थे। गांधी जी के विचार से "बालक जितना ऑख से ग्रहण करता है, उसकी अपेक्षा कान से सुना हुआ थोड़ा परिश्रम से ज्यादा ग्रहण कर सकता है। पाठ्यपुस्तकों के ढ़ेर से बच्चों के सोचने की शक्ति मारी जाती है।"[25]

---

(24) पाण्डेय एण्ड आदर्श– प्रमुख शिक्षादर्शन एवं शिक्षाशास्त्री, पृष्ठ 154 गोरखपुर एस0के0।
(25) पाण्डेय एण्ड आदर्श– प्रमुख शिक्षादर्शन गोरखपुर, पं0 सरयू प्रसाद स्मारक।

उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी जी का विचार था कि "मैं कालेज की शिक्षा कायापलट करके उसे राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाऊँगा। उन्होंने आगे यह भी कहा कि "जिस प्रकार की उच्च शिक्षा हस मुल्क में दी जाती है, उसका मैं दुश्मन हूँ।"

इस प्रकार गांधी जी के अनुसार पाठ्यक्रम में निम्न गुण होने चाहिए धार्मिकता, वास्तविकता, मातृ–भाषा, शिल्प का समावेश आदि है।

उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखकर निम्न विषयों को पाठ्यक्रम में रखने की संस्तुति की है।

(1) **हस्तशिल्प** – कताई, बुनाई, दफ्ती, मिट्टी, कागज तथा लकड़ी, चमडे का काम, बागवानी, कृषि आदि।

(2) **भाषा** – मातृ–भाषा, राष्टभाषा (हिन्दुस्तानी)

(3). **गणित** – अंकगणित, रेखा गणित, बीजगणित

(4) **समाज विज्ञान का अध्ययन** – भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र, तथा समाज का अध्ययन।

(5) **सामान्य विज्ञान**– भौतिकी, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जीवविज्ञान, स्वास्थ्यविज्ञान तथा ग्रह विज्ञान कला–संगीत, चित्रण आदि।

(6) **कला**– संगीत चित्रण आदि।

(7) **शरीर शिक्षा**– व्यायाम, ड्रिल, खेलकूद आदि।

(8) **आचरण सम्बन्धी शिक्षा**– प्रार्थना, समाजसेवा आदि।"[26]

सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन् द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम

पाठ्यपुस्तकों के सम्बन्ध में उनका मत था कि उनमें उन बातों का चर्चा नहीं होती, जिनमें छात्रों को अपने घरों में काम करना पडता है, परन्तु उन वस्तुओं की होती है। जो उनके लिए सर्वथा अजनवी हैं, उनका कथन है कि "आज के विद्यार्थियों को इन किताबों के ढ़ेर में ऐसा गडा रहना पड़ता है कि वे उनका दम घोटनें को काफी है। अगर मेरा बस चले तो मैं अवश्य ही अधिकांश वर्तमान पाठ्य पुस्तकों को नष्ट कर दूँ"[27]।

पाठ्यक्रम की रूपरेखा डॉ0 राधाकृष्णन ने विश्वविद्यालय आयोग की रिर्पोट जिसका सम्पादन उन्होंने सन् 1949 में किया था, दी है। आपका कथन था कि "नरनारियों को जीवन निर्वाह की कला सिखलाने की चाहे जो शिक्षा पद्धति अपनायी जायें, उसमें दार्शनिक अध्ययन को पूरा स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि जीवन सम्बन्धी आचार व्यवहारों तथा उद्देश्यों पर चिंतन मनन विशेष रूप से दर्शनों में ही हुआ है।"[28]

(26) रमाकांत दुवे– विश्व के कुछ महान् शिक्षाशास्त्री, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ पृष्ठ 252, 253.
(27) आत्मानंद मिश्र – भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक, विनोद पुस्तक मंदिर मेरठ।
(28) डा0 मणि शर्मा– समकालीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप तथा उसकी संभावनायें पृष्ठ 271, आगरा, हर प्रसाद भार्गव,

डॉ0 राधाकृष्णन ने पाठ्यक्रम में विषयों को व्यवहारिक जीवन से सम्मिलित करने के सम्बन्ध में कहा है "दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीति, इतिहास, भूगोल; कृषि शास्त्र, अर्थशास्त्र, साहित्य कला, धर्म और गणित की शिक्षा के साथ ही विज्ञान, औद्योगिक व तकनीकी शिक्षा दी जानी चाहिए।"[29] इन दोनों को राधाकृष्णन् ने परस्पर विरोधी न मानकर सत्य और वास्तविकता की खोज में लगे हुए दो अनुपूरक साधन के रूप में स्वीकार किया है। "ईश्वर सत्य स्वरूप है, अतः सत्य की खोज ईश्वर की खोज है। मशीन बनाने वाला मनुष्य मशीन से बढ़कर है। जो परमाणु को तोडता है, वह परमाणु से बढकर है। विज्ञान पदार्थ की सर्व शक्तिमत्ता चरितार्थ नहीं करता, वह मनुष्य की आत्मा के अधिपत्य का ही संकेत करता है।"[30]

महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधियां

गांधी जी ने शिक्षा की विधि के सम्बन्ध में कुछ विचार यत्र तत्र प्रगट किये हैं। शिक्षण विधि की विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हुए सहयोगी क्रिया, नियोजन, यथार्थता, पहलकदमी और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का प्रबल समर्थन किया है।

विषय प्रधान शिक्षा पद्धति के अतिरिक्त स्थानीय उद्योगों को शिक्षा का केन्द्र स्वीकार किया। उनका विचार था कि स्थानीय उद्योगों के माध्यम से शिक्षा दी जाय ताकि बालक अपने शरीर, मन तथा आत्मा के विकास के साथ भविष्य में भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्तिकर आत्म निर्भर बन सकने में समर्थ हो। गांधी जी का कथन था कि "बालक के शारीरिक अंगों का विवेकपूर्ण प्रयोग उसके मष्तिष्कं (मनस) का विकास करने के लिए अति उत्तम ढंग है"[31]।

डॉ0 जाकिर हुसैन समिति के अनुसार "गांधी जी ने अपनी शिक्षण विधि में सहयोगी क्रिया, नियोजन, यथार्थता, पहलकदमी और व्यक्ति उत्तरदायित्व पर बल दिया है।"

गांधी जी ने बाल केन्दित शिक्षा का समर्थन करते हुए उसके आधार पर स्वानुभव, स्वाध्ययन, करके सीखना एवं अनुकरण द्वारा सीखने की विद्या को उपयोगी माना है। सभी विषयों को समन्वित करके पढाने का आदेश भी आपके विचारों से परिलक्षित होता है। ज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन की महत्ता को भी स्वीकार किया है। इस प्रकार निम्न शिक्षण विधियां गांधी जी द्वारा प्रतिपादित कही जा सकती हैं।

(1) क्रिया विधि अथवा सृजनात्मक विधि, प्रयोग प्रदर्शन एवं निरीक्षण, खेल विधि,

(2) मौखिक विधि प्रश्नोत्तर, तर्क, व्याख्यान, एवं कहानी विधि,

---

(29) डा0 मणि शर्मा– समकालीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप तथा उसकी संभावनायें पृष्ठ 157, आगरा, हर प्रसाद भार्गव,
(30) डा0 मणि शर्मा– समकालीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप तथा उसकी संभावनायें पृष्ठ 157, आगरा, हर प्रसाद भार्गव,
(31) डा0 श्रीमती मणिशर्मा, समकालीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप तथा उसकी सम्भावनायें, पृष्ठ 139, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।

(3) अनुकरण विधि

(4) सहयोगी विधि

(5) सहसम्बन्ध विधि

(6) श्रवण, मनन, निदिध्यासन।

सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन् द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधि

डॉ0 राधाकृष्णन का दर्शन जहाँ "जीने का तरीका" और "शिक्षा का उद्देश्य" "आत्म विकास" की बात करता है, वहाँ शिक्षण पद्धति में जीने की कला का महत्व परिलक्षित होता है। शैक्षणिक प्रक्रिया में रचनात्मकता को विशिष्ट या आदरपूर्ण स्थान देने का प्रस्ताव करते हैं। उनके अनुसार मनुष्य की अपनी विशिष्ट या आदरपूर्ण स्थान देने का प्रस्ताव करते हैं। उनके अनुसार मनुष्य की अपनी विशिष्टि विशेषता यह है कि यह भी ईश्वर की तरह ही सृष्टिकर्ता है। सृष्टि के रचनात्मक विकास में वह ईश्वर का पूरा–पूरा सहयोग दे रहा है। वह एक सक्रिय उद्देश्यपूर्ण अभिकर्ता है। परिवर्तन प्राथमिक रूप में मानव के मस्तिष्क में होते हैं। और फिर क्रियात्मक रूप में परिवर्तित होते हैं।

डॉ0 राधाकृष्णन पाठन विधि हेतु सुझाव देते हैं कि पाठन पद्धति के सम्पर्क द्वारा शिक्षा देना चाहिए। प्रयोग द्वारा शिक्षा देना तथा निर्देश विधि द्वारा एक कुशल अध्यापक धर्म तथा नैतिक शिक्षा दें, ऐसा प्रावधान करना चाहिए। आदर्श व्यवहार मानवता हेतु आपने शिक्षा को उचित माना है। साथ ही अनुकरण पद्धति, विभिन्न प्रक्रियाओं एवं उद्योगों की शिक्षा और योगाभ्यास एवं अन्तर्ज्ञान द्वारा विभिन्न विषयों का अनुभव कराना आना चाहिए।

पाठ्यविधि में राधाकृष्णन् निरीक्षण और प्रयोग, और समाज में सम्पर्क को बहुत लाभप्रद मानते हैं, उनका मत है कि नैतिक आदर्शों की शिक्षा निर्देशन और वास्तविक उदाहरण द्वारा देनी चाहिए। उद्योगों की शिक्षा में वे अनुकरण का महत्व स्वीकार करते है। चिंतन और योगाभ्यास द्वारा वे मनुष्य को अपने आदर्श की प्राप्ति की ओर उन्मुख करना चाहते हैं। विभिन्न विषयों के अनुभव में वे अन्तर्ज्ञान के महत्व को स्वीकार करते हैं।

महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षक

शिक्षक के सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी ने आदर्शवादी विचार दिये हैं। उनके अनुसार शिक्षक में कुछ विशेषताओं की अपेक्षा होती है, शिक्षक को सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, सहानुभूति का पुजारी होना चाहिए। तभी वह विद्यार्थियों को गुरू, मित्र, पथ पदर्शक, और सहयोगी की भाँति आगे बढ़ा सकता है। शिक्षके के चरित्रवान, कर्तब्यनिष्ठ, धार्मिक पवित्रता मिलनसार संयमी, क्षमाशील, तथा क्रियाशील होना चाहिए। गांधी जी स्वयं लिखते हैं कि

"अध्यापक ही वह केन्द्र विन्दु है, जिसके चारों ओर सम्पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा पद्धिति को घूमना चाहिए। यदि वे (अध्यापक) अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं तो सम्पूर्ण पद्धति ही विनष्ट हो जायेगी।" १

गांधी जी को पूरा विश्वास था कि जो हमारा अध्यापक चाहेगा, हम वही बन सकेगें, विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण से लेकर पाठ्यवस्तु को रोचक और ग्राहय बनाने तक का कार्य केवल एक कुशल प्राध्यापक ही कर सकता है, सही नहीं क्योंकि :–

"किसी विषय के प्रति विद्यार्थियों की रूचि उस विषय के तथ्यों पर नहीं, अध्यापक पर निर्भर करती है।"

गांधी जी की निगाह में सच्चा अध्यापक वही है जो घुलमिलकर इन बच्चों में तन्मय हो जाता है, वह जितना अधिक उन्हें सिखाता हो, उससे अधिक उनसे सीखता है। उनका कथन है कि "जो अध्यापक अपने विद्यार्थियों से कुछ सीखता नहीं मेरी दृष्टि में वह निकम्मा है।" शिक्षक पथप्रदर्शक, प्रकाश स्तम्भ, संकेतबोर्ड, संदर्भ पुस्तक शब्दकोष, द्वावक और शिक्षा की जटिल प्रक्रिया को सहज रूप में सुलझाने वाले के रूप में माना।"[32]

गांधी जी का विचार है कि अध्यापक को कक्षा के बाहर भी विद्यार्थियों का ध्यान रखना चाहिए। वह कहते हैं कि "मैने अनुभव किया है कि शिक्षक का कार्यक्षेत्र कक्षा की अपेक्षा कक्षा से बाहर अधिक है। इस दैनिक कार्य के जीवन में जहाँ अध्यापक और प्रोफेसर परिश्रमिक के लिए अध्यापन कार्य करते है। छात्रों को कक्षा के उपरांत समय नहीं दे पाते। आज के छात्रों के चरित्र और व्यक्तित्व के विकास में सबसे बडा रोडा यही है।

गाँधी जी शिक्षक को एक माँ का स्नेह देने के रूप में देखना चाहते हैं। "जो शिक्षक एक माता का स्थान ग्रहण न कर सकें, वह एक शिक्षक नहीं हो सकता"[33]।

गांधी जी ने राष्ट्र के विकास में अध्यापक के योगदान को एक महान् धुरी माना है। उनका कथन है कि "जिस राष्ट्र के अध्यापक अपना पुरूषत्व खो देते हैं, वह राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता।"

डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षक

प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षक को अत्यंत उच्च स्थान दिया गया था। किसी भी विद्यालय का महत्व उसके विशाल भवनों, प्रयोगशालाओं और साधनो से नहीं होता, उसका महत्व उसके योग्य शिक्षकों से है। राधाकृष्णन् के शब्दों में – "हम किस प्रकार की शिक्षा अपने नवयुवकों को दे सकते हैं, वह इस बात पर निर्भर करती है कि हम किस प्रकार के शिक्षक प्राप्त कर सकते हैं।"

(32) बाइंड यंग इन्डिया अप्रैल 4, 1929।
(33) गाँधी जी– आत्मकथा, पृष्ठ 05, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन।

"शिक्षक राष्ट्र के भविष्य के निर्माता है। प्राचीन भारत में गुरू का दर्जा बहुत ऊँचा था, और उसका जीवन तथा योग्यता भी ऊँचे थे। आधुनिक शिक्षा पद्धति में अधिकतर समस्याओं का मूलकरण शिक्षक है। विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण के पहले शिक्षक में चरित्र होना चाहिए। राधाकृष्णन् ने लिखा है कि हमारे युवकों के मस्तिष्क में, हृदय के निर्माण में, शिक्षकों का विशिष्ट स्थान है। डॉ0 राधाकृष्णन् ने विश्वविद्यालय आयोग के प्रधान के रूप में अपनी सिफारिशों में योग्य शिक्षकों की भर्ती पर और शिक्षाव्यवस्था में सब प्रकार के शिक्षकों के हितों पर ध्यान देने पर जोर दिया है।

महात्मा गांधी के अनुसार विद्यालय

महात्मा गांधी ने प्रत्येक परिवार को सच्ची पाठशाला के रूप में देखा है, क्योंकि यही बच्चों का संस्कार जन्म लेता है और फलता फूलता है, उनका कथन है कि "हिन्दुस्तान का प्रत्येक घर विद्यापीठ है, महाविद्यालय है, मॉ बाप आचार्य है। इन्होंने आचार्य का काम छोडकर अपना धर्म छोड दिया है"[34]।

गांधी जी ने पाठशाला को चरित्र निर्माण से अलग कुछ नहीं समझा उन्होंने पाठशालाओं का कार्य विद्यार्थियों की आत्मा को जागृत करने, प्रकाशित करने और विकसित करने तक बढ़ाया। उनका कथन था "राष्ट्रीय शाला का अर्थ है राष्ट्र के जीवन की पोषकशाला जिसकी बुनियाद है चरित्र"[35]।

यहॉ अवश्य एक बात मिलती है जो आदर्शवादी सिद्धांत के अनुकूल न भी हो। शिक्षालय को उन्होंने किसीी सुरम्य, भव्य अथवा प्रकृति की गोद में बनाने का कोई संकेत नहीं किया है, यह अवश्य है कि वहॉ का वातावरण चरित्रवान् अध्यापकों एवं विद्यार्थियों द्वारा सुन्दर तथा कार्य से बनाया जाय।

गांधी जी ने लिखा है कि "प्रधान विचार यह है कि शरीर और मन तथा आत्मा की सम्पूर्ण शिक्षा को हस्तकौशल के माध्यम से प्रदान की जावे"[36]।

इस प्रकार विद्यालय इस दृष्टिकोण से गॉव तथा शहरों में भी बनाये जा सकते हैं। विद्यालयों का संगठन इस ढंग से हो, जिससे वे आत्मनिर्भर हों अर्थात् हस्तकौशलों के उत्पादन से विद्यालय का खर्च निकाला जा सके। इस प्रकार विद्यालय को वह कार्यशाला के रूप में देखना चाहते थे। ऐसे विद्यालय समुदाय के साथ संलग्न होगें और सामाजिक जीवन केन्द्र बनेगें। इस सम्बन्ध में एम0एस0 पटेल ने लिखा है कि –

(34) पाण्डेय, श्रीवास्तव तथा त्रिपाठी, प्रमुख शिक्षा दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री, पृष्ठ 159, गोरखपुर एस0के0 पिन्टर्स,।
(35) पाण्डेय, श्रीवास्तव तथा त्रिपाठी, प्रमुख शिक्षा दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री, पृष्ठ 159, गोरखपुर एस0के0 पिन्टर्स,।
(36) लक्ष्मीनरायन गुप्त, कुछ महान शिक्षक, डी0वी0 और गॉधी, पृष्ठ 78 इलाहाबाद, कैलाश प्रकाशन।

''वह चाहते हैं कि हम स्कूलों को समुदायों में बदल दें, जहाँ पर विद्यार्थियों की वैयक्तिकता नष्ट न हो, बल्कि सामाजिक सम्पर्कों और सेवा के अवसरों से विकसित हों''[37]।

डॉ0 राधाकृष्णन् के अनुसार विद्यालय

कहा जाता है कि सच्चाई के साथ कहा जाता है कि विश्वविद्यालय का कार्य ऐसे युवकों का निर्माण करना है जो मानव समाज में उपयुक्त स्थान ग्रहण कर सकें। उसे अपने सदस्यों को वह ज्ञान और कुशलता देनी होगी, जो उन्हें योग्य नागरिक बना सकें।

विद्यालय का कर्तव्य केवल सिद्धांत तैयार करना ही नहीं है, उसे देश के लिए श्रेष्ठ नेता भी तैयार करना है। विश्वविद्यालयों को समस्त जनता पर अपना प्रभाव डालना चाहिए। विश्वविद्यालयों में एक ऐसा विभाग होना चाहिए, जो उनकी चहार दीवारी के बाहर उपर्युक्त केन्द्रों में व्याख्यानों का समुचित प्रबंध करके और विशिष्ट विषयों के अध्ययन के लिए उपाधि परीक्षाओं का आयोजन करें।

महात्मा गांधी के अनुसार अनुशासन

गांधी जी अनुशासित जीवन पर बहुत अधिक बल देते हैं। उनका कहना था कि अनुशासन जीवन के हर क्षेत्र के लिए आवश्यक है। शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के अनुशासन आवश्यक माना हैं। अनुशासन की स्थापना परिवार द्वारा होती है। गांधी जी ने लिखा है कि ''अनुशासन रखने का प्रशिक्षण बचपन में और घर में ही शुरू होना चाहिए। अनुशासनहीन बालक शीघ्र ही विगड जाते हैं।''

गांधी जी ने राष्ट्रीय जीवन के उत्थान के लिए भी अनुशासन की आवश्यकता प्रतिपादित की है। उन्ही के शब्दों में – ''अनुशासन के बिना न तो परिवार चल सकता है, न संस्था न राष्ट्र। वास्तव में अनुशासन ही संगठन की कुंजी और प्रगति की सीढ़ी है''[38]।

अनुशासन के स्वरूप का निर्धारण करते समय गांधी जी के विचार आदर्शवादी तथा प्रयोजनवादी दोनों ही प्रकार के विचारकों से मेल खाते हैं। जब वह मानसिक अनुशासन की चर्चा करते हैं, तब वह आदर्शवादियों के निकट पहुँच जाते हैं। उन्होंने लिखा है कि ''बाहरी दुनियां की भाँति अपने मन और शरीर को भी अनुशासन में रखना चाहिए। इसी प्रकार जब वह ईश्वरीय अनुशासन की बात करते है, तब भी उनके विचारों में आदर्शवाद की झलक आ जाती है। वह लिखते हैं कि यह सारी सृष्टि एक दैवी अनुशासन पर चलती है, जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र, आकश, समुद्र, पर्वत और हमारे चतुर्दिक दृष्टमान नक्षत्रगण एक अनुशासन पर चलकर अपनी–अपनी मर्यादा पर रहते हैं। वैसे ही मनुष्य को अपने चतुर्दिक के सभी कामों में अनुशासन का पालन अचूक और नियमित रूप से करना चाहिए।

(37) एम0एस0 पटेल– एजूकेशनल फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधी, पृष्ठ 56।
(38) एस0खान– गाँधी जी का शिक्षा दर्शन, लघुशोध प्रबन्ध, 1990–91 झाँसी बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय पृष्ठ–11।

अनुशासन का पालन तभी संभव है, जब मनुष्य को उस काम में अनुराग हो जिसमें वह लगा हुआ हो, इसके बिना अनुशासन तो अनुकरण मात्र होगा। इस प्रकार कार्य के ध रातल पर अनुशासन की व्याख्या गांधी जी के विचारों को प्रयोजनवादियों की कार्यवांछित अनुशासन पद्धति के निकट पहुँचा देगी।

डॉ0 राधाकृष्णन् के अनुसार अनुशासन

डॉ0 राधाकृष्णन् पर महात्मा गांधी जी का भी प्रभाव था। गाँधी जी आदर्शवादी थे। अतएव उनके द्वारा प्रतिपादित अनुशासन का भी प्रभाव राधाकृष्णन् के मन और मस्तिष्क पर था। डॉ0 राधाकृष्णन् विद्यालय विश्वविद्यालय में अनुशासन के अर्थ में नियंत्रण रखना चाहते थे। अतः कहीं–कहीं पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह दमनात्मक अनुशासन पर बल दे रहे हैं, लेकिन वह यह चाहते थे कि बालक का सर्वांगीण विकास भौतिक उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए बल्कि अध्यात्म को प्ररित करने के लिए है। वहाँ पर प्रभावात्मक अनुशासन के पक्षधर हैं। प्लेटों, आदि शंकराचार्य तथा रवीन्द्र नाथ टैगोर की की विचारधाराओं के समीप होने के कारण वह स्वयं शांति के आहूतों में थे अतः उनका अनुशासन पूर्वरूपेण प्रभावात्मक ही कहा जा सकता है।

अध्याय षष्ठम्

वर्तमान समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन एवं प्रासंगिकता

वर्तमान समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन एवं प्रासंगिकता

किसी भी वस्तु की सत्यता या उपयोगिता या प्रासंगिकता को परखने के लिए कुछ मापदण्ड निर्धारित करने होते हैं, यदि मापदण्ड पहले से निश्चित होते हैं, तो उनका उपयोग किया जाता है, यदि नहीं होते तो वे निर्धारित करने होते हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में उस वस्तु को परखा जाता है।

समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता को परखने के लिए प्रदेश में और देश में उपस्थित शिक्षा सम्बन्धी समस्यायें ही वह कसौटी या मापदण्ड हो सकती है। समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना ही शैक्षिक विचारों की उपयोगिता या प्रासंगिकता को सिद्ध करेगा। इस संदर्भ में वर्तमान काल में उपस्थित शैक्षिक समस्याओं का जानना व अंकित करना आवश्यक है। ये समस्यायें निम्न हैं –

(1) प्राथमिक शिक्षा

(2) माध्यमिक शिक्षा

(3) प्रौढ़ शिक्षा

(4) स्त्री शिक्षा

(5) राष्ट्रीय एकता

(6) जनसंख्या शिक्षा

(7) अनुशासनहीनता

(8) साम्प्रदायिकता

(9) राष्ट्रीय भाषा

(10) सांस्कृतिक मूल्य,

(1) प्राथमिक शिक्षा

भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में यह आकांक्षा की गयी थी कि संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के भीतर राज्य 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक–बालिकाओं को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करें, किन्तु 48 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी देश इस पुनीत लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका है। प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य को पूरा न कर पाने के कई कारण हैं, यथा –

(क) उचित प्रेरणा की कमी,

(ख) प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी,

(ग) शिक्षा भवनों की कमी,

किसी भी वस्तु की सत्यता या उपयोगिता या प्रासंगिकता को परखने के लिए कुछ मापदण्ड निर्धारित करने होते हैं, यदि मापदण्ड पहले से निश्चित होते हैं, तो उनका उपयोग किया जाता है, यदि नहीं होते तो वे निर्धारित करने होते हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में उस वस्तु को परखा जाता है।

समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता को परखने के लिए प्रदेश में और देश में उपस्थित शिक्षा सम्बन्धी समस्यायें ही वह कसौटी या मापदण्ड हो सकती है। समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना ही शैक्षिक विचारों की उपयोगिता या प्रासंगिकता को सिद्ध करेगा। इस संदर्भ में वर्तमान काल में उपस्थित शैक्षिक समस्याओं का जानना व अंकित करना आवश्यक है। ये समस्यायें निम्न हैं –

(1) प्राथमिक शिक्षा
(2) माध्यमिक शिक्षा
(3) प्रौढ़ शिक्षा
(4) स्त्री शिक्षा
(5) राष्ट्रीय एकता
(6) जनसंख्या शिक्षा
(7) अनुशासनहीनता
(8) साम्प्रदायिकता
(9) राष्ट्रीय भाषा
(10) सांस्कृतिक मूल्य,

(1) प्राथमिक शिक्षा

भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में यह आकांक्षा की गयी थी कि संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के भीतर राज्य 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक–बालिकाओं को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करें, किन्तु 48 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी देश इस पुनीत लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका है। प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य को पूरा न कर पाने के कई कारण हैं, यथा –

(क) उचित प्रेरणा की कमी,
(ख) प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी,
(ग) शिक्षा भवनों की कमी,

(क) उचित प्रेरणा की कमी

देश की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में बसती है। जहॉ अब भी अशिक्षा तथा धन का अभाव है, वहॉ के वासियों के मस्तिष्क में विकास का प्रकाश नहीं फैल सका है। देश की स्वतंत्रता के बाद भी उनको दोनों वक्त का यथोचित भोजन, वस्त्र एवं भवन तथा जीविका उपलब्ध नहीं हो सकी है। शिक्षा का क्रम भोजन और वस्त्र एवं आवास व्यवस्था के बाद आता है। स्वभावतः निर्धन व्यक्ति पले अजीविका की ही चिंता करता है। बच्चों को शिक्षा देने के दायित्व की ओर वह सोंच ही नहीं पाता। मजदूर अपने बच्चे के लिए कपडे, पुस्तक, कापी, कलम तथा विद्यालय के मध्यावकाश के समय के भोजन की व्यवस्था कर पाने में सक्षम नहीं होता, उसे भविष्य में 15–20 वर्ष के पश्चात् बच्चे की अच्छी अजीविका की बात नहीं सूझती, फिर वह अपने बढे परिवार के सदस्यों के भोजन में से अधिक कटौती भी नहीं कर पाता। छात्रों को निर्धारित विषयों के अतिरिक्त ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि वह दो पीरियड हांथ से उत्पादक कार्य को सीखे और करें, उस बनी वस्तु की बिक्री की व्यवस्था की जाये और उससे होने वाली आय छात्र के पासबुक में जमा की जाये। इससे बच्चे में पढने तथा अभिभावक को पढाने के प्रति रूचि जागृत होगी।

शिक्षा की महत्ता बतलाने तथा बच्चों को विद्यालय भेजने की प्रेरणा देने हेतु समाज के प्रगतिशील एवं प्रबुद्ध व्यक्तियों को आगे आना चाहिए। उदार पुरूष कुछ बच्चों को आर्थिक मदद, पुस्तक, कापियॉ एवं वस्त्रों की सहायता देकर शिक्षा दिलाने का दायित्व संभाले तो यह पुण्यप्रद कार्य होगा। इसके स्वस्थ्य सार्धा उत्पन्न करने की आवश्यकता है। डॉ0 सम्पूर्णानंद जी ने अपना मत व्यक्त किया है –''शासन को देहात की ओर ध्यान देना स्वाभाविक नहीं है, यदि इसको शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात की सुविधा उपलब्ध नहीं है तो शासन असफल है।''

समाजवादी चिंतक डॉ0 सम्पूर्णानंद ने अपने शिक्षामंत्री एवं मुख्यमंत्रित्व काल में गांवों का नियोजन इसी दृष्टिकोण से किया था। शिक्षा का प्रसार का दायित्व समाज को वहन करना चाहिए, इस बात को भी प्रतिपादित किया है। क्योंकि बिना समाज के सहयोग के इतना बड़ा महत्वपूर्ण कार्य पूरा नहीं हो सकता।

(ख) प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी

प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में दूसरी बाधा प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी है। शिक्षक का काम केवल क,ख,ग या गिनती पहाड़ा पढ़ा देना नहीं है जो एक अप्रशिक्षित व्यक्ति भी कर सकता है। प्रशिक्षित अध्यापक का प्रशिक्षण मनोवैज्ञानिक ढंग से होता है, और यदि उसने

यदि ठीक से प्रशिक्षण लिया है तो अपने पढ़ाने का ढंग से खेती के द्वारा, खेल द्वारा किसी विषय को सरल, मनोहर व रूचिकर बना देगा, तथा अपने अतिरिक्त समय में पढने लिखने की योग्यता के लाभ भी रोचक ढंग से समाज में प्रस्तुत करर सकने में समर्थ होगा। जब तक पूर्ण प्राशिक्षित अध्यापक न मिले तब तक अप्रशिक्षित अध्यापकों को नियुक्ति देकर सेवा अवधि में उनको दो या तीन अवधियों का अल्पकालीन प्रशिक्षण देकर कमी को पूरा किया जा सकता है।

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी के समक्ष ऐसी ही समस्या उस मसय उपस्थित हुई थी, जब महात्मा गांधी द्वारा समर्थित बेसिक शिक्षा को पूरे प्रदेश में लागू किया जाना था। उसके लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी एक बडी बाधा थी। श्री सम्पूर्णानंद जी ने सचल शिक्षा दल की व्यवस्था की थी, जो अध्यापकों को अल्पकालीन प्रशिक्षण देते थे। जो प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी को पूरा करता था।

(ग) शिक्षा भवन की कमी

प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में तीसरी बाधा शिक्षा भवनों की कमी है। यह दो प्रकार की है –

(1) गांव में छात्रों की संख्या अधिक है, किन्तु विद्यालय में कमरे एवं बैठने का स्थान कम है।

(2) विद्यालय है ही नहीं।

प्रथम प्रकार की समस्या का तो दो या दो से अधिक पारियों में कक्षायें लगाने की व्यवथा करके समाधान किया जा सकता है। दूसरे प्रकार की समस्या समाज के सहयोग से ही किसी धर्मशाला, मंदिर की दालानों या अन्य सार्वजनिक स्थान या किराये के मकान अथवा किसी उदारचेता द्वारा उपलब्ध कराये गये उसके भवन में शिक्षा कक्षाएं लगाकर हल की जा सकती है। राज्य सरकार भवन बनवाने हेतु प्रयत्नशील है, समाज के उदार एवं प्रगतिवादी व्यक्ति आपस में सहयोग अंशदान करके विद्यालय बनाने का भारत ले सकते हैं, धनी पुरूष अपने बुजुर्गों (पूर्व पुरूषों) के नाम पर भवन बनवा सकते हैं। दान में देने की अथवा दान देकर शिक्षा संस्थान बनवाने का ढंग भी अपनाया जा सकता है।

(2) माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा

(1) मुदालियर आयोग 1952–1953 (माध्यमिक शिक्षा आयोग) के द्वारा तत्कालीन शिक्षा संरचना 10+2+2 में मध्यवर्ती 2 वर्षीय इण्टर कक्षायें (11वीं एवं 12वीं) को उपर्युक्त न समझकर इन दो वर्षो को दो भागों में विभाजित कर प्रथम एक वर्ष को विद्यालयी शिक्षा में तथा द्वितीय वर्ष को विश्वविद्यालयी शिक्षा में जोडकर स्नातक उपाधि 3 वर्षीय बनाने का प्रस्ताव किया गया था, इस प्रकार विद्यालयी शिक्षा 11 वर्षीय तथा प्रथम स्नातक उपाधि शिक्षा 3 वर्षीय हो गई, जिसें 11+3 के रूप में प्रकट किया जा सकता है। देश

के कुछ प्रांतों जैसे – मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि ने इसे स्वीकार कर अपने यहाँ संगठनात्मक ढांचे में तदनुसार परिवर्तन कर लिया, लेकिन उत्तर प्रदेश शासन के द्वारा आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक कमेटी 18 मपार्च सन् 1952 को प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा की संरचना के समपरीक्षण तथा उसमें सुधार हेतु नियुक्त कर रखी थी। इस कमेटी के द्वारा उत्तर प्रदेश में 10+2+2 शिक्षा संरचना बनाये रखने की संस्तुति की थी।

(2) उत्तर प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ0 सम्पूर्णानंद की, जो स्वयं एक शिक्षा विचारक थे 10+2+2 शिक्षा संरचना के बारे में आचार्य नरेन्द्र देव समिति (जिसमें 29 शिक्षाविद्) थे । की संस्तुति से पूर्णतया सहमत थे। इस सहमति में उनका तर्क था

''माध्यमिक शिक्षा शिक्षण की एक पूर्ण इकाई है। इस स्तर की शिक्षा के बाद अधिकांश विद्यार्थियों को जीवन में प्रविष्टि होना चाहिए, और विश्वविद्यालयों में केवल मेघावी विद्यार्थियों को ही जाना चाहिए, अतः जीवन के प्रविष्टि द्वार की शिक्षा की अवधि में एक वर्ष कम करना ठीक नहीं होगा, क्योंकि इसका अर्थ होगा छात्रों की प्रौढ़ता एवं परिपक्वता में से एक वर्ष कम करना। डिग्री कोर्स में एक वर्ष जोडने का अर्थ है विश्वविद्यालयों में उस उम्र के विद्यार्थियों की भीड को बढ़ाना जो सर्वथा आवंछनीय है। अतः मुदालियर कमीशन चाहे जो भी निर्णय करे और उसकी संस्तुतियों का यथाशक्ति जितना भी कार्यान्वयन सम्भव हो किया जाय, परन्तु उत्तर प्रदेश में 12 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा चलती रहेगी।''

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी अपने इस निर्णय पर अटल रहे और 13 वर्ष बाद जब कोटारी कमीशन (1964–66) की नियुक्ति हुयी तो उसने बाबू जी की इस नीति का समर्थन अपने माध्यमिक शिक्षा के ढॉचे में किया, इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षानीति 1986 की संस्तुतियों में भी 10+2+2 शिक्षा संरचना को मान्यता दी गयी है, जिसको श्री सम्पूर्णानंद जी ने अपने उत्तर प्रदेश में चालू रखा था।

माध्यमिक शिक्षा की पुर्नव्यवस्था में बाबू जी ने अमूल–चूल परिवर्तन किये। उन्होंने परीक्षा प्रणाली, परीक्षा व्यवस्था तथा माध्यमिक शिक्षा परिषद् को भी पुर्नव्यवस्थित करने सम्बन्धी अपनी रूपरेखा प्रस्तुत की। बाबू जी ने हिन्दुस्तानी और ऐम्यूलर हिन्दुस्तानी स्कूलों के बीच रहने वाले भेद को भी समाप्त करने का निश्चय किया। उन्हें के शब्दों में ''हिन्दुस्तानी और एग्लों हिन्दुस्तानी के बीच रहने वाले भेद को बहुचर्चित निश्चय हमारे ऊपर एक बहुत बडा भार डाल देता है, हमें ऐग्लों हिन्दुस्तानी स्कूलों का स्तर नीचा करना नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तानी स्कूलों का स्तर ऊँचा उठाना है।''

शिक्षकों की आवश्यको को डॉ सम्पूर्णानंद जी ने महसूस किया और उन्होंने इण्टरमीडिएट के पाठ्यक्रम में शिक्षाशास्त्र विषय सम्मिलित कराया, और उन्होंने दो प्रकार के प्रशिक्षण संस्थान –

(1) नर्सरी ट्रेनिंग कालेज जो प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित थे।

(2) राजकीय केन्द्रयी अध्यापन विज्ञान संस्थान खोला, जो एशिया की सबसे बड़ी संस्था माध यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित थी।

स्वतंत्रता प्राप्त के पश्चात् माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का विकास तीब्रगति से हुआ। जिस तीब्र गति से संख्यात्मक विकास हुआ है, उतनी गति से गुणात्मक विकास नहीं हो पाया है। आज माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा में जो प्रमुख समस्यायें हैं वह लगभग एक सी हैं। उन समस्याओं का वर्णन तथा समाधान नहीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) शिक्षा में उद्देश्य का अभाव

दोनों ही शिक्षा के लिए कहा जाता है कि शिक्षा का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं है। माध्यमिक शिक्षा प्रापत करने वाले विद्यार्थी का लक्ष्य उच्च कक्षा में प्रवेश या कोई निम्न मध्यम वर्ग की नौकरी प्राप्त करना रहता है। तथा उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षार्थी का उद्देश्य डिग्रियाँ प्राप्त करना तथा कोई सरकारी, गैर सरकारी नौकरी प्राप्त करना रहता है। यह शिक्षा छात्रों को नौकरी के लिए तैयार करती है। जीवन के लिए नहीं। समाजवादी चिंतकों का विचार या कि इन स्तरों पर छात्रों को पुरूषार्थ चतुष्ट्य का ज्ञान कराया जाना चाहिए। छात्रों को चाहे जो विषय पढ़ाये जाये उनको यह जानकारी अवश्य दी जानी चाहिए कि जीवन का अंतिम लक्ष्य धर्मपूर्वक अर्थ एवं काम के मार्ग से पलकर मोक्ष प्राप्त करना है। उसे यह भी अवगत कराया जाना चाहिए।

(ख) अनुशासनहीनता

दूसरी प्रमुख समस्या अनुशासनहीनता की समस्या है। यह समस्या विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षा में एक जैसी है। अनुशासनहीनता के लिए प्रत्यक्षतः दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली, भविष्य के प्रति अनिश्चितता, राजनैतिक दखल, कुप्रबन्ध व्यवस्था, आर्थिक कठिनाइयाँ, अध्यापकों में उत्मम चरित्र का अभाव, जीवन के लक्ष्य की जानकारी का अभाव आदि ऐसे बिन्दु हैं जो छात्र को सद्मार्ग से दूर होने में कारण बनते हैं।

समाजवादी चिंतकों ने माध्यमिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के विद्यालय खोलकर छात्रों को अपनी रूचि के अनुसार विषय चयन एवं मनपसंद पाठ्यक्रम चुनने की सुविधा तथा उसको उचित निर्देश एवं परामर्श दिया जाय। इससे छात्र अपनी रूचि से शिक्षा ग्रहण करेगा

तथा अनुशासित रहेगा। इस सम्बन्ध में डॉ सम्पूर्णानंद का कथन है –

"कई प्रकार के माध्यमिक विद्यालय बनाने की आवश्यकता है। प्रत्येक बच्चे को पहले साहित्य, विज्ञान एवं संस्कृति प्रारंम्भिक शिक्षा जो किसी एक हस्तशिल्प से सम्बंधित हो मिलनी चाहिए। वह हस्तशिल्प ऐसा होना चाहिए, जिसका बच्चे के वर्तमान जीवन और चारों ओर के वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध हो, जहॉ तक माध्यमिक विद्यालयों का सम्बन्ध है, उनको विभिन्न प्रकार का होना आवश्यक है, क्योंकि उन्हें उस व्यक्ति का भी ध्यान रखना है, जिसकी रूझान उद्योग, व्यापार की ओर है, साथ ही जिन छात्र–छात्राओं की रूझान विज्ञान की दैनन्दिन उपयोग के क्षेत्रों की ओर है अथवा वे विद्यार्थी जिनको अध्ययन–अध्यापन में रूचि है, और यदि आर्थिक परिस्थितियों ने स्वीकृति दी तो विश्वविद्यालय तक अपनी योग्यता के बल पर पहुॅच जाते हैं। इन सभी की आवश्यकता पूर्ति करनी है।"

समाजवादी चिंतकों की मान्यता थी कि महाविद्यलयों के प्रबंध व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। प्रबन्ध से सम्बंधित प्रत्येक व्यक्ति महाविद्यालय की प्रगति का इच्छुक हो, उन्हें धन का लालच न हो, बल्कि वे सामाजिक भावना से ओत प्रोत हो। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है 'हमें विश्वविद्यालय की प्रवंध व्यवस्था को इस प्रकार सुधारने की कोशिश करना है कि प्रलोभन कम से कम उपस्थित हो।

(ग) निर्देशन का अभाव

माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में निर्देशन की कमी एक गंभीर प्रश्न है। माध्यमिक शिक्षा में निर्देशन की आवश्यकता मुख्य तथा पाठ्य विषयों के चुनाव में पडती है। चूँकि इस समय बालक का मस्तिष्क अपरिपक्त होता है, अंतः यदि इस अवस्था में उसकी रूचियों, योग्यताओं, अभिक्षमताओं को जाने बिना विषय दिला दिये जाने की स्थिति में यदि यह संभावना रहती है कि वे विषय उसके लिए कई कारणों से अहितकर साबित हो। यदि छात्र द्वारा लिये गये विषय उसकी रूचि, क्षमता के अनुकूल न होगें तो वह उनमें पूर्णतया सफल नहीं हो सकता, अतः इस ओर पर्याप्त ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, इकसे लिए हर माध्यमिक विद्यालय में परामर्शदाता के पद का सृजन कर उस पर योग्य एवं सहृदय अध्यापक की नियुक्ति की जानी चाहिए।

विश्वविद्यालय स्तर पर अधिकांशतः देखा गया है कि छात्र बिना सोये समझे और अपनी योग्यताओं को परखे बिना ही विषयों का चयन कर लेते हैं, जिनपर अधिकार प्रापत करने की उसकी क्षमता नहीं होती न ही भावी जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल होते हैं। परिणाम यह होता है कि पहले परीक्षा में तथा तत्पश्चात् जीवन में असफल हो जाते हैं। अतः

यह आवश्यक है कि छात्रों के भविष्य को संवारने के दृष्टिकोण से निर्देशन एवं परामर्श को 'उच्चशिक्षा का आवश्यक अंग बनाया जाये। इसी समस्या की पूर्ति हेतु विश्वविद्यालय के शिक्षासंकायों में निर्देशन एवं परामर्श नामक विषय का अध्ययन कराया जाता है।

(घ) सामुदायिक भावना की कमी

माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के छात्रों में सामुदायिक भावना का अभाव महत्वपूर्ण समस्या है। समाजवादी चिंतक चाहते थे कि छात्रों को सामुदायिक जीवन का क्रियात्मक रूप दिखाया एवं समझाया जाना चाहिए, ऐसा करने से उनके अंदर परस्पर प्रेम, आदर, सहयोग, करूणा, मुदिता की भावना प्रबल होगी जिससे उनका चरित्रिक विकास होगा। अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों को सामुदायिक जीवन के लाभ बतायें तथा उसके लिए सांस्कृतिक कार्यक्रमों, वाद–विवाद, भ्रमण, समाजसेवा, खेलकूद इत्यादि का आयोजन करें।

प्रौढ़ शिक्षा (समाज शिक्षा)

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है चूँकि प्रजातंत्र में प्रत्येक नागरिकों को अपने अधिकारों को समझना चाहिए तथा अपने कर्तब्यों को जाना चाहिए, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक शिक्षित हो, क्योंकि शिक्षा के बिना न तो कोई व्यक्ति नागरिक के कर्तब्य का ठीक से पालन कर सकता है और न अपनी सांस्कृतिक या आर्थिक उन्नति कर सकता है। देश की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है और अधिकांशतः निरक्षर हैं, इसलिए आवश्यक है कि ऐसी स्थिति में प्रौढ़शिक्षा का विस्तार किया जाये, ताकि प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति अपने पड़ोसी समाज, गांव व देश के प्रति अपने कर्तब्यों को जान सकें, साथ ही वह अपने जीवन के लक्ष्य से भी अवगत हो सके।

भारतीय समााजवादी चिंतक इस बात को प्रोत्साहित करते थे कि गांव के बड़े–बूढ़े स्कूल में आये एवं वही अपनी सभा एवं पंचायत करें। प्रौढ़–शिक्षा का मुख्य अंग साक्षरता, बौद्धिक ज्ञान तथा समस्याओं के प्रति जागरूक बनाना है। इस ध्येय से प्रेरित होकर वर्तमान में प्रौढ़शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि करके उसे समाजशिक्षा नाम दिया गया है। समाजशिक्षा छात्रों द्वारा उचित ढंग से दी जा सकती है, इसीलिए छात्रों को इसके लिए प्रोत्साहिहत करना चाहिए तथा उन्हें ऐसे अवसर प्रदान करना चाहिए, जिसे वे इस पुनीत कार्य में अपना हार्दिक सहयोग दे सकें। इस सम्बन्ध में डॉ0 सम्पूर्णानंद जी ने सुझाव दिया है कि छात्रों की लम्बी छुट्टियाँ ऐसे समय में दी जानी चाहिए, जब खेती का कार्य हो रहा हो और छात्र देहातों में रहकर उनकी सहायता कर सकें। उनको शारीरिक श्रम कररते देखकर श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ेगी तथा पढे लिखे लोगों में श्रम से हिचक हटना प्रारंभ होगी।

डॉ0 सम्पूर्णानंद जी का कथन है कि

"आज छात्रों को देहातों और शहरों में प्रौढ़शिक्षा, किसानों की सहायता आदि कामों के लिए प्रवृत्त और प्रोत्साहित किया जाता है। समाज सेवा के काम से एक तो छाखें की वह हिचक मिट जाती है, जो पढे लिखे लोगों को शारीरिक श्रम से होती है, दूसरे उनको समाज के प्रति अपने कर्तब्य का ऐसा ज्ञान होता है, जो उनको आगे चलकर अच्छे नागरिक बनने में सहायक होता है। हम आशा कर रहे हैं कि थोडे दिनों में समाज सेवा का असर किसी न किसी रूप में प्रत्येक छात्र को मिलेगा। स्वतंत्र भारत के लिए यह परम आवश्यक है। हम यह भी सोंच रहे हैं कि लम्बी छुट्टियां ऐसी ऋतुओं में दी जायें, जब छात्र देहातों में जााकर किसानों की सहायता कर सकें।'

प्रौढ़शिक्षा के प्रसार के सम्बन्ध में डॉ सम्पूर्णानंद जी ने साधारण ज्ञान की वृद्धि के लिए चित्रपट और रेडियों से नित्यप्रति विशेष प्रोग्राम सुनाने का न केवल उपाय सुझाया है, बल्कि ऐसी व्यवस्था भी करा दी थी। शिक्षा के नवीन दृष्टिकोण सम्बन्धी चर्चा में उनके द्वारा व्यक्त विचार निम्नांकित है –

"शिक्षा साक्षरता से बडी चजी है, इसलिए शिक्षा के साधनों में केवल पुस्तकों से काम नहीं चल सकता। साधारण ज्ञान की वृद्धि के लिए ऐसे उपायों से काम लेने की आवश्यकता है जो जल्दी बोध करा सकें और जिनका प्रभाव दूर–दूर तक पहुँचे, और देर तक रहें। इस शिक्षा में चलचित्र और रेडियों से बडी सहायता मिलती है। हमने अपने प्रदेश में चलचित्रों का प्रबन्ध प्रारंभ कर दिया है, कुछ चलचित्र बनाये भी हैं। इस बात का भी शीघ्र प्रबन्ध करने जा रहे हैं कि रेडियों से शिक्षा के उद्देश्यों का नित्य प्रति प्रोग्राम सुनाया जाय।"

प्रौढ शिक्षा के काम को प्रांतीय सरकार के द्वारा बढ़ाया गया था। डॉ सम्पूर्णानंद इस ओर पूर्णतः जागरूक थे। उन्होंने एडल्ट एजूंकेशन' को बदलकर नया नाम 'सोशल एजेकेशन' करके उसके क्षेत्र को बढ़ाने का कार्य भी कराया था। उनके शब्दों में –

"अभी बहुत काम करना है, अब भी साक्षरता का प्रसार प्रौढ शिक्षा का प्रधान अंग होगा, परन्तु केवल साक्षर होना ही पर्याप्त नहीं है। इस विचार का संकेत प्रौढशिक्षा के नय ननाम से मिलता है। अव यह केवल 'एडल्ट एजूकेशन' नहीं वरन् समाज शिक्षा 'सोशल एजूकेशन' कहलाती है।"

स्त्री शिक्षा

भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 में नारी को पुरूष की समकक्षता प्रदान की गयी है– राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म स्थान यां इनमें से किसी के आधार पर कोई विरोध नहीं करेगा।"

स्वतंत्र भारत में स्त्री की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है। अब लगभग सभी बंधन जिनसे वह मुगलकाल व अंग्रेजों के काल में बंधी थी, ढीले होते जा रहे हैं। उसके बारे में पुरूषवर्ग के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन हो चुका है और होता जा रहा है। स्त्री जाति ने भी अपनी गिरी दशा को समझा है और उसने अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सचेष्टता दिखलाई है। भारत की केन्द्रयी एवं प्रांतीय सरकारे भी नारी की स्थिति सुधारने में प्रयासरत हैं।

देश और प्रदेश में लगभग आधी जनसंख्या महिलाओं की है, यदि इस आधे भाग के शिक्षा–विकास के प्रति सजगता से ही देश की सही उन्नति सम्भव होगी। उत्तर प्रदेश की जनसंख्या वर्ष 1991 में 13,91,12,287 है। जिसमें पुरूषों की संख्या 7,40,36,957 तथा स्त्रियों की संख्या 6,50,75,330 है। इस प्रकार प्रति हजार पुरूषों में 879 स्त्रियां हैं। जनसंख्या में साक्षरता की दर में वर्ष 1981 की अपेक्षा 1991 में 8.27 प्रतिशत की जनसंख्या में साक्षरता की दर में वर्ष 1981 की अपेक्षा 1991 में 8.27 प्रतिशत की जनसंख्या में साक्षरता की दर में वर्ष 1981 की अपेक्षा 1991 में 8.27 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। पुरूषवर्ग में 1981 की साक्षरता दर 47.86 प्रतिशत थी, वह बढ़कर 1991 में बढ़कर 55.73 प्रतिशत हो गई, वहीं महिलाओं की साक्षरता वर्ष 1981 में 17.18 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 25.31 प्रतिशत हो गयी। पुरूष वर्ग की साक्षतर में 7.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहीं स्त्री वर्ग में 8.13 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

मुख्य काम करने वालों में पुरूषों का प्रतिशत वर्ष 1981 के विरूद्ध 1991 में 1 प्रतिशत घट गया है। इन ऑकडों से सिद्ध होता है कि महिलाओं में साक्षरता तथा काम में भाग लेने की जागरूकता में वृद्धि हो रही है, फिर भी और प्रगति अपेक्षित है। यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्रीवर्ग में पूरी समानता प्राप्त हो गयी है तथा शिक्षा उचित स्तर तक पहुँच चुकी है। स्त्री शिक्षा के प्रति स्वतंत्रता के पूर्व प्रथम कांग्रेसी शासन 1937 से 1939 में तथा द्वितीय कांग्रेस शासन जो 1946 से प्रारंभ हुआ था, वे शिक्षामंत्री रहे श्री सम्पूर्णानंद पूरी तरह सचेष्ट रहे। उन्होंने प्रथम शिक्षामंत्री बाल में बालिका शिक्षा प्रसार की दृष्टि से महिलाओं के लिए ट्रेनिंग सेंटर बनारस में खोला था, जो बाद में इलाहाबाद स्थानान्तरित कर दिया गया। दूसरा महिला प्रशिक्षण कालेज, झांसी में खोला गया था। दुबारा शिक्षा मंत्री बनने पर पूरे माध्यमिक शिक्षा को पुर्नगठित किया था, पूरे प्रदेश को पॉच रीजन्स (संभाग) में विभाजित करके एक संभागीय उच्च शिक्षा निदेशक की निनयुक्ति की, वहीं प्रत्येक संभाग के लिए अलग से क्षेत्रीय बालिका विद्यालय निरीक्षिक का पद सृजित किया था, जिससे बालिका विद्यालयों का प्रभावी निरीक्षण व निर्देशन संपादित किया जा सकें और अधिक सुचारू रूप से बालिकाओं को शिक्षा दी जायें

जो उनका उचित बौद्धिक विकास करके जीवन में अपना योग्य स्थान बनाने में उसकी सहायक बनें।

डॉ सम्पूर्णानंद स्त्री–पुरूष को समान योग्यता एवं सभी कार्यों में भागीदार बनाने के पक्ष में तो नहीं थे, किन्तु नारी जाति को समुचित शिक्षा देकर इन योग्य बना देने के लिए प्रयत्नशील रह हैं हकि आवश्यकता पडने पर अपना तथा अपने आश्रितों का पालन कर सकने में सक्षम हो, ओर नारी को उसकी योग्यतानुसार जीविकोपार्जन हेतु अवसर उपलब्ध कराये जायें। उन्होंने लिखा है –

"जहॉ तक मुझे ज्ञात है, वैज्ञानिक खोज हो तो यह बात नहीं निकलती कि दोनों की योग्यता हर बात में बराबर है। शरीर की बनावट भिन्न प्रकार की है। इसका प्रभाव वृद्धि पर पडना युक्ति ही है। दोनों के स्वभाव में बडा अंतर है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह हर बात जिसे पुरूष कर सकता है, उसे स्त्री भी कर सकती है या स्त्री के हर काम को पुरूष कर सकता है। जिन कामों को दोनों कर सकते हैं उनमें भी दृष्टिकोण भेद रहेगा। इसके साथ यह भी ठीक है कि बहुत से ऐसे काम है, जिनकों दोनों ही प्रायः एक जैसा कर लेगें। आज यह दशा है कि स्त्री को भूखों मरने का अधिकार तो है, पर रूपया कमाने का अधिकार नहीं है। वह इस योग्य बनायी ही नहहीं जाती कि चार पैसा कमा सकें। यह बात तो दूर होनी ही चाहिए। प्रत्येक स्त्री को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि आवश्यकता पडने पर वह अपना और अपने आश्रितों का पेट पाल सकें और ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिए कि जो स्त्री धनउपार्जन करना चाहहें, उसको योग्यतानुसार इसका पूरा अवसर मिले।"

राष्ट्रीय एकता की समस्या

हमारे देश में विभिन्न वर्ग, सम्प्रदाय, भाषा एवं जाति के लोग निवास करत हैं। अलग–अलग राज्यों में वहॉ के जलवायु के अनुसार उनके जीवनयापन का ढंग भिन्न है, तथा उनकी आवश्यकतायें एवं समस्यायें भी अलग–अलग प्रकार की है। देश में तीव्रगति से होने वाले आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रविधिक परिवर्तनों से सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। आज देश के प्रत्येक भाग में क्षेत्रीयता, सम्प्रदायिकता एवं जातीयता के नारे लिये जाते हैं। फलस्वरूप आज देश में आपसी भाईचारे एवं एकता को खतरा उत्पन्न हो गया है। देश के शिक्षा शास्त्रियों, राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों एवं विचारकों के सामने राष्ट्रीय एकता को बनाये रखना एक समस्या है।

राष्ट्रीय एकता एक ऐसी समस्या है, जिससे प्रत्येक सभ्य राष्ट्र के अस्तित्व का घनिष्ट सम्बन्ध है। राष्ट्रीय एकता की हर देश को जरूरत रहती है, लेकिन हमारे भारत देश

के लिए इसकी कहीं अधिक आवश्यकता है। राष्ट्रीय एकता बनाये रखने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है।

डॉ सम्पूर्णानंद जी ने राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए शिक्षा प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन के सुझाव अपनी अध्यक्षता में गठित "भावात्मक एकता समिति" के माध्यम से व्यक्त किये हैं। समितिं ने अपने प्रतिवेदन में कहा है –

"शिक्षा भावात्मक एकीकरण' में बहुत सहायक हो सकती है। यह स्वीकार किया जाता है कि शिक्षा का उद्देश्य मात्र ज्ञानार्जन नहीं है। वरन् विद्यार्थी के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का विकास होना चाहिए। शिक्षा का दृष्टिकोण विकसित होनां चाहिए, राष्ट्रीयता, एकता, त्याग एवं सहिष्णुता की भावना को बल मिलना चाहिए, ताकि संकीर्ण सस्थानीय हित देशहित में समाहित हो जाये।"

भारतीय समाजवादी चिंतकों ने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में भावात्मक एकता समिति में तथा शिक्षा–सम्बन्धी अपने लेखों में सुधार के सुझझव प्रस्तुत किये है। सबसे पले उन्होंने पाठ्यक्रम पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि पाठ्यक्रम को धर्मनिरपेक्षता की दृष्टि से परिवर्तित किया जांय। पाठ्यक्रम में हमारे गौरवमयी इतिहास को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय, क्योंकि राष्ट्रीय एकता के पाठ को सिखाने के लिए इतिहास का शिक्षण आवश्यक है। इस सम्बन्ध में समाजवादी चिंतक डॉ0 सम्पूर्णानंद का कथन है– "क्या में एक क्षण के लिए आपका ध्यान इतिहास की शिक्षा की ओर आकर्षित कर सकता हूँ। पाठ्यपुस्तकें तो आती जाती ही रहती हैं, पर उनकी शिक्षा के पीछे की भावना महत्वपूर्ण है। एक क्षण के लिए भी आपसे यह नहीं चाहता कि आप इतिहास के तथ्यों को बिगाडे अथवा राष्ट्रीय विनम्रता और विशेषता के बारे में सही धारणाओं को बदलने की चेष्ठा करें, किन्तु मैं यह जरूर चाहता हूँ कि आप जब इतिहास पढ़ायें तो स्मरण रखे कि हम भारतीय हैं। आप भारतीय बच्चों को पढा रहे है। यदि हम चाहते है कि हमारे स्कूलों के निकले बच्चें समाज पर भार न होकर उसके अलंकार बनें, तो हमें उन्हें आत्मनिर्भर बनाना होगा। हमें अपने हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख और क्रिश्चियन विद्यार्थियों को बताना होगा कि हमारे यहॉ ऐसे महापुरूष हुये हैं, जिनके धर्मो की विभिन्नता के बावजूद हम भारतीय होने के नाते उन पर गर्व कर सकते हैं।"

वे चाहते थे कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर छात्रों को देश की भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का पर्याप्त ज्ञान दिया जाये, तथा देश की महान् विभूतियों एवं महान ग्रंथों के बारे में बताया जाय।

राष्ट्रीय एकता के लिए उनका विचार था कि प्रत्येक विद्यालय में राष्ट्रीय दिवसों एवं पर्वों को सामूहिक रूप से मनाया जाय। खेलकूद, शिक्षा यात्रा, राष्ट्रीय कैडेट कोर, स्काउटिंग आदि के विभिन्न भागों के विद्यार्थियों के सम्मिलित कैम्प लगाये जाये तथा वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया जाय। छात्रों में राष्ट्रीय गीत को सही ढंग से गाने एवं उसके गायन के समय उचित सम्मान की आदत डालनी चाहिए। देश के प्रत्येक विद्यालय में प्रातः सभा में राष्ट्रीय एकता से सम्बोधित भाषण दिये जाने चाहिए तथा वर्ष में कम से कम दो बार छात्रों को शपथ दिलानी चाहिए।

जनसंख्या शिक्षा

भारत में लोकतंत्रात्मक प्रणाली है। लोकतंत्र केवल एक शासन पद्धति ही नहीं है, बल्कि वह एक जीवन प्रणाली है। अतः लोतांत्रिक आदर्शों को केवल छेत्र तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता, मानव–जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनको प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। इसके लिए देश में लोकतांत्रिक भावना का होना आवश्यक है, जो समाज विधि धर्म और जातिगत भेदभावों से जर्जर हो गया है, और जिसमें कुल सम्पत्ति, जाति और धर्म पर आधारित विशेष स्वार्थों की सृष्टि हो गयी है, उसके अंदर लोकतांत्रिक जीवन चर्या का निर्माण करने के लिए और भी सजग प्रयास की आवश्यकता होती है।

जब तक जनता में सामाजिक और राजनैतिक चेतना उत्पन्न नहीं हो जाती तब तक लोकतांत्रिक पद्धति की सफलता सम्भव नहीं है। इसकी सफलता के लिए राष्ट्र के राजनैतिक जीवन में सब लोगों का विवेकपूर्ण और सक्रिय रूप से भाग लेना आवश्यक है। इसलिएए लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की स्थापना के लिए व्यापक शिक्षा सबसे आवश्यक है। जनता की सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी कमियों को सर्वप्रथम दूर करना पडेगा। और सभी श्रेणियों में साक्षरता का व्यापक प्रसार करना होगा। सांस्कृतिक दृष्टि से पिछडी श्रेणियों और क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना होगा और उसको शीघ्रातिशीघ्र सुसंस्कृत समाज के समकक्ष लाने के लिए कोई भी कसर उठा नहीं रखनी चाहिए। जब तक जन संस्कृति का निर्माण नहीं हो जाता तब तक ऐसे स्वतंत्र समाज की स्थापना भी नहीं हो सकती, जिसमें प्रत्येक, नागरिक, सार्वजनिक कल्याण के लिए परस्पर सहयोग कर सकें।

किन्तु साक्षरता इस दिशा में पहला कदम है। साक्षर हो जाने पर कोई व्यक्ति केवल साधारण किस्से, कहानियां पढ़ सकता है। वह राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का भी अध्ययन नहीं कर सकता। ऐसी साक्षरता से व्यावसायिक वर्ग, अनुचित लाभ उठाते हैं और केवल मुनाफा कमाने के लिए ढेर के ढेर ऐसे सस्ते भद्दे साहित्य को प्रकाशित करते

हैं, जिनके केवल मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों को उत्तेजना मिलती है। इससे जनता शिक्षित होने के बजाय पथ भृष्ट होती है। केवल साक्षर समाज आसानी से अधिनायकों ओर अधिकारियों के जाल में फंस सकता है। श्री विलास ने ठीक ही कहा है कि 'राजनीति उपचेतन समाज का दुरूपयोग है'। समाज के ये प्रवचक अपने संकुचित राजनैतिक स्वार्थों की सिद्धि के लिए प्रचार के ऐसे हथकण्डों का उपयोग करते हैं जिससे विभिन्न राष्ट्रों के बीच घृणा और द्वेष उत्पन्न हो। किसी भी राष्ट्र की जन शिक्षा में पत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। पत्रों के द्वारा ही साधारण जनता को सार्वजनिक घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है और जनमत तैयार होता है, परन्तु कुछ ऐसे समाचार पत्र भी प्रकाशित होते हैं, जिनका उद्देश्य जनता को शिक्षित करने के स्थान पर अपनी अर्थ सिद्धि होता है। ऐसे समाचार पत्रों में प्रेम, हत्या, तथा अन्य अपरोधों के उत्तेजनापूर्ण और सनसनीदार समाचार प्रकाशित होते हैं, जो मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों को जगाकर अपने घृणित स्वार्थ साधन करते हैं। इससे मानव प्रकृति का पतन होता है न कि उत्थान उदात्तीकरण। ये मानव–प्रकृति की कमजोरियों से अपने राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते हैं।

जनता को राजनैतिक विषयों की शिक्षा तभी समुचित रूप से प्राप्त हो सकती है, जबकि उसे विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं को भली प्रकार समझने और उनमें निर्णय करने का अवसर मिले। राज्य का कर्तब्य है कि वह जनता को ऐसी मौलिक शिक्षा प्रदान करें, जिससे उसके अंदर विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो और उसमें आत्म–निर्णय की क्षमता आ जाय। इसमें नागरिक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। जिसमें न केवल राष्ट्रीय बल्कि अर्न्तराष्ट्रीय नियम पालन करने की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। हमारी शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि हम आज के विश्व में सुरक्षा और सुख के साथ जीवन व्यतीत कर सकें।

हमें अर्न्तराष्ट्रीय शांति और सद्भाव और भ्रातृत्व की स्थापना करने तथा अपने दायित्व का निर्वाह करने के लिए सदैव प्रयत्न करना चाहिए। अतः हमारी जन शिक्षा योजना इस प्रकार की होनी चाहिए, जिससे जीवन के प्रति स्वस्थ्य और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण बन सकें, उसमें लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो और सामाजिक व्यवहार के नवीन संस्थानों का निर्माण हो। साथ ही शिक्षा में जीवन पर्यंत प्रगति होनी चाहिए। हम लोग एक परिवर्तन शील जगत में रहते हैं, इसलिए समय–समय पर हमारे मनोभावों और विचारों की पुर्नव्यवस्था आवश्यक है। साहित्यिक शिक्षा के अतिरिक्त राज्य का यह कर्तब्य हहै कि वह समय–समय पर जनता को महत्वपूर्ण सार्वजनिक रूप से विचार विमर्श करने की व्यवस्था करें। वास्तव में यह जनता के लिए काफी उपयोगी शिक्षा होती। डिसरैली के शब्दों में 'जनता

जनार्दन' की शिक्षा हमारा प्रधान कर्तव्य है, और उसके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा करने में हम अभी तक असफल रहे हैं। हमें जनता को यह बताना है कि किस प्रकार आज उसका भाग्य–निर्माण हो रहा है,उसके अधिकारों और कर्तव्यों का घोषणा–पत्र तैयार हो रहा है। इसी तरह से हम उनके अंदर उन नवीन अधिकारों और उद्देश्यों के प्रति चेतना उत्पन्न कर सकेंगे, जो भविष्य में स्वतंत्र हिन्दूस्तान की आधार शिला होगी।''

हमारे देश में अभी केवल लोकतांत्रिक प्रगति का श्रीगणेश हुआ है। यहां तो सामाजिक असमानता और वर्गभेद ही हिन्दू समाज का आधार रहा है। आदिवासियों की जो सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत पिछड़े हुये हैं, नैतिक और भौतिक अवस्था सुधारने के लिए, अभी तक कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है। ये सामाजिक और सांस्कृतिक असमानतायें जन–जीवन में लोकतांत्रिक भावनाओं के विकास में बहुत बड़ी बाधा है, ओरे जब तक इन संस्थाओं और परम्पराओं के, जिन पर यह भेदभाव और अमानुषिक व्यवहार कायम है, इनके विरूद्ध पूरी शक्ति से अनवरत् संघर्ष नहीं किसा जायेगा, तब तक नये लक्ष्य की प्राप्ति की ओर प्रगति असंभव है।

जन शिक्षा के प्रसार और ऐसे कानूनों के निर्माण के साथ ही, जिसमें तमाम सामाजिक असमानताओं का उन्मूलन हो जाता है, हमें ग्रामीण जनता में लोकतांत्रिक विचारों और व्यवहारों को विकसित करने के लिए देहातों में ज़ोरदार सहकारी आंदोलन चलाने की आवश्यकता है। सहकारिता से केवल आर्थिक लाभ ही नहीं है कि वह मध्यम श्रेणी के मुनाफे का अंत कर कृषि को अधिक लाभदायक बना देती है, बल्कि इसके द्वारा नवीन सामाजिक सम्बंधों का एक संस्थान भी तैयार होता है, जो प्रतिस्पर्ट्टा के बजाय सहयोग पर आश्रित है, और जनता मे भ्रात्तव्व उत्पन्न करता है।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गैर सरकारी जो भी काम कर रही हैं, करें, किंतु राज्य का प्रधान कर्तव्य है कि वह अपनी राजनैतिक विचारधारा के मौलिक सिद्धांतों और तदनुकूल आचारशास्त्र की जनता को व्यापक शिक्षा दें। इस तरीके से ही जनता के सामाजिक कार्य विवेकपूर्ण होगें इस प्रकार की शिक्षा उन प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा उत्पन्न संकट से भी राज्य की रक्षा कर सकेगी जो समय–समय पर अपना सिर उठाकर उन माननीय मूल्यों को ही विनष्ट कर देना चाहती हैं, जिसकी सुरक्षा तथा विकास का दायित्व राज्य पर है।

अनुशासनहीनता

भारतीय समाजवादी चिंतकों का विचार था कि विश्वविद्यालयों में राजनीति के अतिक्रमण से अनुशासनहीनता में वृद्धि हुई है। समाज और शासन का कर्तव्य है कि वह इन

शिक्षाकेन्द्रों को राजनीति की घटिया मानसिमकता से दूर रखे और अशांति या अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न न होने पाये। उनका मत था–

" विश्वविद्यालयों को राजनीतिक क्रांतियों के उदगम स्थल बनने के बजाय विचार आन्दोलनों का केन्द्र बनाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो राज्य कभी भी उन कर्तव्यों के प्रति उदासीन नहीं हो सकता। जिनके द्वारा उसे उन सिद्धांतो की रक्षा करना आवश्यक है, जिसके अनुसार आज हमारे समाज व देश का जीवन व्यवस्थित हो रहा है, उसके लिए चाहे उस पर विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने का आरोप ही क्यों न लगाया जाय।"

अनुशासनहीनता के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार घटक ' गिरा हुआ चरित्र ' है। आज छात्रों का चरित्र दिन व दिन गिर रहा है, इसका कारण जानना और उसके निवारण हेतु प्रबंध करना बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है। आज चरित्र को उत्तम रखकर उदाहरण प्रस्तुत करें और इस अचूक रीति से अपने छात्रों में नैतिक चरित्र विसंसित करें। विश्वविद्यालयी शिक्षा का उद्देश्य उत्तम चरित्र का विकास है, और उसकी पूर्ति करना मुख्यतः अध्यापक का कर्तव्य है। अध्यापक के चरित्र को ऊँचा बताते हुए डा0 सम्पूर्णानंद जी ने कहा है

शिक्षक का व्यक्तिगत चरित्र ही वेदी है। यदि आपका छात्र अनुभव करता है कि आप पर भरोसा किया जा सकता है, तो समझियें कि विद्यालय के अनुशासन की समस्या काफी सीमा तक सुलझ जायेगी। लेकिन

" एक अध्यापक को अपने शिष्यों के कार्यो को उसी दृष्टि से देखना होगा, जिस प्रकार से एक बड़ा भाई अपने घुटने के बल चलने वाले छोटे भार को, अपको अपने विषय में सावधान रहना होगा।"

यह बात भी सत्य है कि केवल अध्यापक इस समस्या को इल नहीं कर सकता। इसमें समाज को सक्रिय भूमिका अदा करनी चाहिए, क्योंकि छात्र अध्यापक से ज्यादा समाज के सर्म्पक में रहता है, अतः समाज के प्रत्येक नागरिक में नैतिक भावना के विकसित करे का सुसंगठित प्रयास किया जाना चाहिए।

गुरूजनों के प्रति आदर भावना का अभाव (सदाचार का अभाव)

आजकल विद्यार्थी जगत् में चारों ओर हलचल है। आये दिन हड़ताले होती हैं प्रदर्शन होते हैं, जुलूस निकाले जाते हैं, दूकानदारों से झगड़े होते हैं, अध्यापकों के मुँह पर उन्हें भला–बुरा कहा जाता है। समाज के पुराने लोग लड़कों के बहुत खराब होने की शिकायत करते हैं। इस सम्बंध में समाजवादी चिंतक डा0 सम्पूर्णानंद जी की राय थी कि " आज

का युवक पहले से बुरा नहीं होता उसको उत्पात करने में मजा नहीं मिलत न वह स्वभावतः राक्षस है यदि वह उन्मार्गमामी हो रहा हे तो इसमें उन परिस्थितियों का दोष है, जिनमें वह रहा हैं।"

जिस समाज में व्यक्ति रह रहा है, उसकी स्थिति पर हमें विचार करना होगा, समाज में जिनको मान्यता प्राप्त है, उनका आचरण कैसा है, वह किस आदर्श पर चल रहे हैं तथा प्रत्यक्ष अथवा रूप से अपने आचरण द्वारा क्या शिक्षा विकारित कर रहे हैं ? क्या वे अर्थ और काम से आगे बढ़कर धर्म का पालन कर रहें हैं या उस ओर अग्रसर हैं। कर्तव्य को पहचानने और उसका पालन करने को भारतीय समाजवादियों ने धर्म कहा है, और कर्तव्य का पालन करने को सदाचार।

साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता भारत की प्रमुख समस्या रही है। इसे अंग्रेजों ने बढ़ाया। गाँधी एवं राष्ट्रीय आन्दोलन की लाख कोशिशें के बावजूद इस समस्या का हल नहीं निकला। हल के सारे उपाये और भी उलझतें गये। पाकिस्तान बना। आशा थी अब साम्प्रदायिकता का हल हो गया। किन्तु पाकिस्तान से आये शरणार्थी बँटवारे को कभी भूल नहीं सकें। भारत के मुसलमान को याद है कि पाकिस्तान उन्होने ही बनवाया, किन्तु पाकिस्तान उनका नहीं है। उनका मोह उन्हें कष्ट देता है। समाजवादियों ने देश विभाजन का विरोध किया। किन्तु कम्युनिष्टों ने दो कौम की मान्यता देकर मुस्लिम लीग के समान देश विभाजन का समर्थन किया। आचार्य नरेन्द्र देव जी ने कहा कि –"धर्म के आधार पर राष्ट्र नहीं होते हैं। राष्ट्र की सबसे बडी पहचान भाषा है। हिन्दू और मुसलमान की नस्ल एक है। संस्कृति में भी काफी मिश्रण है" ।(रा0स0पृ099)

एक ओर मुस्लिम सम्प्रदायवाद ने पाकिस्तान बनवाया, तो दूसरी ओर हिन्दू सम्प्रदायवाद भारत को हिन्दू राज घोषित करना चाहता था। कांग्रेस के प्रभाव से हिन्दू सम्प्रदायवाद की यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। किन्तु जैसा कि डॉ0 लोहिया का विश्वास है कि, नेहरू और पटेल की जल्दबाजी ने पाकिस्तान की योजना मान ली। इससे भारत में सम्प्रदायवाद की नयी समस्या खडी हो गयी।

पाकिस्तान के बनने में मुख्य भूमिका उत्तर प्रदेश और बिहार के मुसलमानों की थी। काफी समय तक मुसलमान बहुमत वाले इलाके पाकिस्तान निर्माण के विरोधी रहे। सीमा प्रांत ने तो कभी पाकिस्तान को मान्यता नहीं दी। आजादी के बाद भी सीमांत गांधी सदा ही पाकिस्तानी शासकों से लडते रहे। उन्हें पूरा विश्वास था कि कांग्रेस अपने वादे के अनुसार

कभी भी पाकिस्तान को मान्यता नहीं देगी। इसलिए उन्हें कांग्रेस से धोखा हुआ। कोंग्रेस द्वारा पाकिस्तान की मान्यता पर उन्हें हार्दिक दुःख हुआ। किन्तु वे लाचार थे। गांधी जी भी विवश थे। पटेल और नेहरू के कारण वे विरोध करने की स्थिति में नहीं थे। समाजवादियों ने विरोध तो किया। किन्तु वे प्रभावशाली नहीं हो सके।

लोहिया ने भारत की साम्प्रदायिक समस्याओं पर विस्तार से विचार किया है। पहले तो वे हिन्दुओं की दो परम्परा मानते हैं। एक अनुदार दूसरी उदार यह हिन्दू धर्म का आंतरिक द्वन्द रहा है। लोहिया की दृष्टि में कट्टरपंथी हिन्दू अगर सफल हुए तो चाहे उनका उद्देश्य कुछ भी हो भारतीय राज्य के टुकडे कर देगें न केवल हिन्दू मुस्लिम दृष्टि से बल्कि वर्षों और प्रांतों की दृष्टि से भी। केवल उदार हिन्दू ही राज्य को कायम रख सकते हैं। इसलिए हिन्दू को उदार होना होगा।

लोहिया बँटवारे में भिन्न दृष्टि से देखते है– "हिन्दुस्तान के बँटवारे के समय हिन्दू और मुसलमान एक राष्ट्र भी थे और दो भी थे। वे मेल और अलगाव की एक अस्थिर दश में थे। राज्यों का बँटवारा आसानी से किया जा सकता है, लेकिन लोगों को बॉटना झंझट और मुश्किल का काम है।

'लोहिया ने पाकिस्तान की सम्प्रदायवादी नीति को पहचाना। अपने आपको कायम रखने के लिए पाकिस्तान को वह क्रम जारी रखना पड़ेगा। जिससे उसका जन्म हुआ है। उसे हिन्दुओं और मुसलमानों की दूरी को अधिक बढ़ाते जाना होगा, ताकि वे दो राष्ट्र बन जायं और फिर एक न हो सकें। अल्पसंख्यकों के बारे में लोहिया ने कहा चूँकि एक राज्य के अल्पसंख्यक दूसरे राज्य के बहुसंख्यक है। यह मानवीय सवाल दोनों राज्यों की एकता से सम्बन्द्ध है। हिन्दुस्तान अपने अल्पसंख्यकों के साथ उचित व्यवहार करें यह देखना पाकिस्तान का भी काम है और पाकिस्तान अल्पसंख्यकों के साथ ऐसा ही करें, यह देखना हिन्दुस्तान का भी काम है।" हिन्दुस्तान ने ठीक ही आवादी के तबादले को नहीं माना है। तबादले को जानबूझकर मान लेने से दो राष्ट्रों में तोडने का कर्म अनिवार्य ही तेल हो जायेगा।" अल्पसंख्यकों एवं आवादी की चर्चा में काश्मीर का ध्यान आता है। पूरे भारत में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं तो काश्मीर में बहुसंख्यक है। समूचे भारत का बहुसंख्यक वहाँ अल्पसंख्यक है। इसलिए संख्यकों की सुरक्षा और उन्नति काश्मीर सरकार का कर्तब्य है।

लोहिया सहित सभी समाजवादी मानते हैं कि भारत में हिन्दू–मुस्लिम एकता ही पाकिस्तान को कमजोर कर सकती हे। कुल मिलाकर तीन रास्ते है। तीन में से किसी एक या तीनों तरीकों से पाकिस्तान का अंत हो जायेगा – बातचीत के जरिए संघीय एकता,

हिन्दुस्तान में समाजवादी क्रांति और पाकिस्तान के हमला करने पर हिन्दुस्तान7 का जवाबी हमला। समाजवादी मुसलमान विरोधी कभी नहीं रहे हैं। वे कभी भी पाकिस्तान समर्थक भी नहीं रहे है। लोहिया ने भारत पाकिस्तान महासंघ की रूपरेखा उपस्थित की। उन्होंने विभाजन के आठ कारण बताए –"पहला, ब्रिटिश कपट, दूसरा, कांग्रेस नेतृत्व की ढलती उमर, तीसरा, हिन्दू–मुस्लिम दंगों की वस्तुपरक अवस्था, चौथा, जनता में साहस और शक्ति की कमी, पॉचवां, गांधी जी की अहिंसा, छठवॉ, मुस्लिम लीग की पृथकवादिता, सातवॉं, जो अवसर मिलें उनका फायदा उठाने की अक्षमता और आठवॉं, हिन्दू अहंकार।" (भारत विभाजन के पापी पुरूष, भूमिका) इसमें रूस की बैदेशिक नीति और भारत में कम्युनिष्टों द्वारा दो राष्ट्र के सिद्धांत का प्रचार छूट गया है। डॉ0 लोहिया इन्हें गौण मानते हैं। लोहिया विभाजन को कम्युनिष्ट स्वभाव का अंग मानते हैं। जब कम्युनिष्ट सत्ता में नहीं रहता, तभी एक मजबूत राष्ट्रवाद का प्रतिनिधि बन सकता है, फिर विभाजनकारी नहीं रहता। लोहिया सभी धर्मों के प्रति आदर और समझबूझ में विश्वास करते हैं।

हिन्दू मुस्लिम द्वन्द्व का कारण इतिहास में है। अतः लोहिया इतिहास के अध्ययन का एक भिन्न सुझाव देते हैं – "इतिहास पढ़ने का एक तरीका है जो सत्य से मेल खाता है। और जो रजिया, शेरशाह, जायसी और रहिमन के साथ–साथ विक्रमादित्त, अशोक, हेमू और प्रताप जैसे हिन्दू और मुसलमान दोनों के पुरखे बनाता है। इसी तरह हिन्दू और मुसलमान दोनों गजनवी, गोरी और बाबर जैसों को उपद्रवी और हमलावर आततायी समझे तथा पृथ्वीराज, सांगा और भाऊ जैसे लोगों में हिन्दुस्तान की गलती और कमजोरी की अभिव्यक्ति मानें। हिन्दुस्तान के मध्यकालीन इतिहास में जितने युद्ध मुस्लिम और मुस्लिम के बीच हुए, उतने ही हिन्दू और मुस्लिम के बीच हुए। हमलावर मुस्लिम, देशी मुस्लिम से लडा और जीता। पॉच बार देशी मुसलमान अपनी आजादी की रक्षा नहीं कर सकें। तैमूर और नादिरशाह के अभूतपर्व कत्लेआम के वे शिकार बने, जो लोग हमलावरों और कातिलों को अपना पुरखा स्वीकार करते है, वे स्वतंत्रता के योग्य नहीं है।

लोहिया को विश्वास है कि हिन्दू और मुसलमानों में कभी न कभी समझदारी आयेगी। (वही, भूमिका) दूसरी समस्या इस भारतीय क्षेत्र में शांति की है। भारत–पाक दोनों देशों का तनाव देशों का नुकसान करेगा। दोनों देशों के बीच तनाव का कारण स्वार्थ कम मानसिक अधिक है। इसलिए भी कि दोनों के स्वार्थ एक जैसे हैं। केवल काश्मीर एक समस्या है। काश्मीर पर पाकिस्तान के दावे का मूल कारण काश्मीर का मुसलमान बहुल होना है। किन्तु भारत इसे स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिए कि भारत की धर्म–निरपेक्षता बहुमत सिद्धांत

के विरूद्ध है। एक धर्म मानने वालों का एक राष्ट्र होता तो योरप एक राष्ट्र होता। पाकिस्तान में अलगाव के द्वन्द्व नहीं होते। पूर्वी पाकिस्तान का बांग्लादेश नहीं बनता। काश्मीर के राजा और जन–प्रतिनिधि दोनों ने पाकिस्तान के साथ जाना स्वीकार नहीं कियां लोहिया द्वारा उपस्थित महासंघ की योजना स्वीकार नहीं की गई, किन्तु संकट के हर क्षण में उनका स्मरण किया जाता है।

भारत और पाकिस्तान की विदेश नीति की चर्चा करते हुए लोहिया ने कहा, "हिन्दुस्तान अगर नौकर है तो पाकिस्तान गुलाम"। हिन्दुस्तान मालिक बदल सकता है। उसे आजादी है कि वह कभी अमरीका और कभी रूस का नौकर रहे। पाकिस्तान गुलाम है। वह मालिक बदल नहीं सकता है। भारत में मुस्लिम हितैषी किन्तु पाकिस्तान विरोधी नीति चलनी चाहिए।" किन्तु साम्प्रदायिकता के तनाव ने ऐसा नहीं होने दिया। उल्टे पाकिस्तान से दोस्ती और भारत में मुसलमानों से दुश्मनी होने लगी। दंगे दोनों सम्प्रदायों के नेताओं को शक्ति देते हैं। टूटता है देश। लुटते हैं साधारण लोग। वोट–प्राप्ति के लिए उन्हें गलत आश्वासन दिये जाते हैं। उनकी नासमझी, रूढिवादिता और अविश्वास को बढ़ाया जाता है। राजनीतिक खिलाड़ी दो दलों में बॅटकर साम्प्रदायिकता का खेल खेलते हैं। यही खेल कभी–कभी बढ़कर गरमा जाता है तब हाय–हाय होने लगता हैं। दोनों तरफ गैरजरूरी मांगों की सूची है। समझौता तो आवश्यकता पर होता है। लडने के लिए ही बनाई गई सूची पर समझौता कैसा? सभी समाजवादी साम्प्रदायिकता की लडाई को अंग्रेजों की देन मानते आये हैं। किन्तु अंग्रेजों के न रहने पर भी दंगों के कारणों के विश्लेषण की आवश्यकता है। समाजवादियों को इस पक्ष पर सोने का अवसर कम मिला। हॉ, लोहिया ने यह संकेत अवश्य दिया कि दंगे पाकिस्तान को शक्ति देते हैं। हिन्दू मुसलमान एकता और भाईचारा पाकिस्तान के अस्तित्व के लिए खतरा है। इसीलिए समाजवादियों ने सदा ही मुसलमानों की सुरक्षा और भाईचारे की कोशिश की। लोहिया कभी–कभी सामूहिक राखी बंधवाने का आयोजन करते थे। इसलिए कि राखी सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों का गहरा सूत्र है। विशेषकर दंगों के समय यह एक लाभकारी पद्धति थी।

चुनाव ने साम्प्रदायिकता की समस्या को विकृत किया है। मुसलमान को उसके नेताओं ने सारे प्रगतिशील आन्दोलनों से अलग रखा। धर्म के नाम पर मुसलमान को शोषित होने, पिछडा रहने जैसे अनेक कष्ट सहने हैं। नरेन्द्र देव की दृष्टि में मुसलमान आधुनिक शिक्षा में हिन्दुओं से पीछे रह गये। क्योंकि अंग्रेज–विरोध के कारण उन्होनें अपने शिक्षित करना भी आवश्यक नहीं समझा। फलतः बहुत दिनों तक उनमें आधुनिक मदृ समजा का

विकास हुआ ही नहीं। ऐसी स्थिति में उन्होंने साम्प्रदायिकता को अपनी अस्मिता का आधार बनाया। दो राष्ट्रों के सिद्धांत का विकास हुआ। आचार्य, लोहिया, सम्पूर्णानंद, जय प्रकाश आदि समाजवादियों ने इसका विरोध किया। आगे भी यह राष्ट्र–सिद्धांत पकता रहा। इसे ही ध्यान में रखकर आचार्य जी ने सभी भाषाओं के लिए एक लिपिक के महत्व पर जोर दिया। एक राष्ट्रीय भाषा। एक राष्ट्र लिपिक। एक वैज्ञानिक शब्दावली ''पुनरूज्जीवनवाद (रिवाइवल) से हमारा काम नहीं चलेगा। मैं उन लोगों में हूँ जो यह मानते हैं कि देश के लिए संघीय विधान (फेडरल कांस्टीट्यूशन) सबसे अधिक व्यावहारिक होगा, क्योंकि यह हमारे इतिहास और परम्परा के अनुकूल है। साथ ही सबके लिए एक ही कानून, एक ही राष्ट्र भाषा और एक ही राष्ट्र लिपि स्थापित की जा सकती है। (रा0स0पृ0 350)।

आचार्य जी की यह निजी राय न होकर राष्ट्रयी आन्दोलन के बीच बनी सामूहिक राय है। इसीलिएए संविधान सभा ने भी सर्वसम्मति से इसे पास कर दिया। किन्तु साम्प्रदायिक लोग इसे नहीं मानना चाहते, धीरे–धीरे उनका हौसला बढ़ा है। अब वे संविधान को भी चुनौती देने लग जाते हैं, या लग गये हैं।

सरकारे या राजनीतिक दल साम्प्रदायिक मांगों के आगे दबरक ऐसे समझौते कर लेते हैं, जो राष्ट्रीय एकता के विरूद्ध होते है। एक सम्प्रदाय से किया गया समझौता दूसरे सम्प्रदाय को भी उत्तेजित करता है। हिन्दू मुसलमान साम्प्रदायिकता और उलझी है। किन्तु इसकी देखा देखी दूसरे सम्प्रदाय भी उत्तेजित हो रहे है। राजनीतिक दल तत्कालिक प्रभाव से प्रभावित होकर काम करते हैं। दूरगामी दृष्टि में पडती जा रही है।

इतिहास की घटनाओं को साम्प्रदायिक दृष्टि से न देखकर राष्ट्रीय दृष्टि से देखने का प्रयत्न हो। सम्प्रदायवादी मुर्दा साम्प्रदायिक इतिहास को पुर्नजीति करता है। इतिहास को इस प्रकार प्रस्तुत करता है जैसे किसी सम्प्रदाय के एक व्यक्ति का अन्याय पूरी जाति का अन्याय हो। अगर किसी पूर्वज ने कोई गलती की है तो उसका दण्ड आज देने की कोशिश ठीक नहीं। इसीलिए लोहिया स्पपष्ट चेतावनी देते हैं । ''इतिहास में अच्छे और बुरे दोनों हैं। आवश्यकता है कि अच्छों को ही अपना पुरखा मानें। बुरों को समान रूप से छोड दें। इतहास कभी–'कभी इसके विरूद्ध नहीं है। इतिहास में मुद्दों का आधार देशी–विदेशी रहा है, न कि हिन्दू और मुसलमान। मुसलमानों ने मुसलमान को, हिन्दू ने हिन्दू को सताया और मारा।''

साम्प्रदायिकता पर विचार करते समय एक और महत्वपूर्ण बात की ओर ध्यान गया है। साम्प्रदायिकता की समस्या मूलतः शहरी है। अतः आधुनिक है। गांवों में साम्प्रदायिकता नहीं है। दंगे भी प्रायः शहरों में होते है। आश्चर्य है कि आजकल दंगों के क्षेत्र रांची,

जमशेदपुर, बडोदरा, अहमदाबाद, मुरादाबाद, जैंसे आधुनिक एवं औद्योगिक नगर रहे है। शायद यही कारण है कि हिन्दू बहुल होने के बावजूद गांवों में हिन्दू दलों की कोई जगह नहीं बन पायी है। पिछडे क्षेत्रों के समान ही हिन्दू मुसलमान के पुराने ख्यालों में साम्प्रदायिकता नहीं है। आचार्य जी कहते हैं "सम्प्रदायवादियों का जोर शहरों और कस्बों में रहने वाली शिक्षित, मध्यम श्रेणी तथा अशिक्षित आवारा श्रेणी को अगर अपनाने का प्रयत्न नहीं किया तो ये लोग इन प्रतिगामियों की चालबाजी के शिकार होगें।" किन्तु यही आचार्य जी एक और बात कहते हैं – "कितने ही नौजवान साम्प्रदाायिक संस्थाओं में इसलिए भर्ती हो जाते हैं कि वहाँ वे स्वयं सेवक सेना में भर्ती होकर एक प्रकार का मानसिक संतोष प्राप्त करते हैं।" मतलब यह है कि युवकों के लिए साम्प्रदायिकता एक युवकोचित संतोष भी है। ऐसे लोगों को युवकोचित काम में लगाना होगा। संतोष की दिशा बदलनी होगी। आवारागर्दी और बेकारी को समाप्त करना होगा। मानसिक संतोष का कार्यक्रम बनाना होगा। आचार्य जी ने ठीक पहचाना, साम्प्रदायिक द्वेष किसी अन्य मानसिक क्षोभ व्यक्ति समाज से कटकर अकेला हो गया हैं इस अकेलेपन की रिक्तता में कोई भी विनाशकारी नारा उन्हें तुरंत आकर्षित कर लेता है। यह आकर्षण भी तभी होगा, जब इतिहास या वर्तमान की निरंतरर घटने वाली घटनाओं ने उसमें असंतोष के बिन पहले से डाल रखा हो। इसीलिए इतिहास की आवश्यकता है। इतिहास सुधार कर कभी यह मतलब नहीं कि झूठा इतिहास गढ़ा जाय। झूठा इतिहास और भी भयानक होगा। कहना इतना ही है कि उदारता, एकता और असाम्प्रदायिकता के तत्वों को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। क्योंकि सभी इतिहास सभी तरह के तत्वों को रखता है। साम्प्रदाायिकता कभी प्रगतिशील नहीं हो सकती है। उसका प्रत्यक्ष उद्देश्य कभी आर्थिक नहीं होता है। इतना समझना मात्र समस्या का समाधान नहीं है। साम्प्रदायिकता का उचित और अहिंसक समाधान आवश्य है। वरना ध्यह जहर धीरे-धीरे भारत की काया को नष्ट कर देगा।

राष्ट्रीय भाषा

अंग्रेज साम्राज्यवादी ने भारत में अंग्रेजी भाषा लाद दी। इसलिए कि अंग्रेजी द्वारा भारत सदा-सदा के लिए पश्चिमी शिक्षा, संस्कृति सभ्यता और शासन का अंग बन जाय। भारत का निजत्व समाप्त हो जाये। इसीलिए गांधी ने आते ही भाषा की समस्या का समाधान कर डाला। उन्होंने सम्पूर्ण भारत के लिए सार्वदेशिक भाषा हिन्दी (हिन्दुस्तानी) को भारत की राष्ट्रभाषा घोषित किया। राज्यों के कार्य उनकी अपनी भाषाओं में होगें और केन्द्र के कार्य हिन्दी के माध्यम से होगें। राष्ट्र की राजभाषा हिन्दी और प्रांतों की राजभाषा प्रान्तीय भाषाएं। कितना सीधा और सरल समाधान है। भारत के किसी भी क्षेत्र में अंग्रेजी का कोई

समाधान नहीं होगा। स्वतंत्र भारत की विधान सभा ने भी इसे स्वीकृति दी। किन्तु एक पुछल्ला लगा दिया। हिन्दी अभी विकसित नहीं है। अतः उसे एक सहायिका चाहिए। नाबालिग राजा मंत्री की सहायता से राजकाज चलाता है। सहायिका के रूप में अंग्रेजी 15 वर्षों के लिए नियुक्त हो गयी। अभी तक अंग्रेजी राजरानी थी, अब उन्हीं दफ्तरों में सहायिका, यह बात उसके गले नहीं उतरी। किन्तु करती क्या? मान गयी। हिन्दी सचमुच कमजोर थी। उसमें आत्म–विश्वास का अभाव था। उसने अंग्रेजी के प्रति आवश्यक सतर्कता नहीं बरती। फलतः संविधान की किताबों में रहकर व्यवहार में अंग्रेजी और मजबूत हो गई। जैसे नाबालिग राजा को मारकर मंत्री स्वयं राजा बन जााता है।''

सभी समाजवादी भाषा के सवाल पर एक मत है, किन्तु अंग्रेजी के रानी स्वरूप का विरोध किया। डॉ0 राममनोहर लोहिया ने। उन्होंने देश में अंग्रेजी हटाओं आंदोलन चलाया। भाषा के सवाल पर आचार्य नरेन्द्र देव एवं डॉ0 सम्पूर्णानंद जी लोहिया जैसे ही स्पष्ट थे। आगरा विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषा में आचार्य जी के भाषण का अंश ''अब समय आ गया है कि जब हमकों राष्ट्र भाषा के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा का आयोजन कर लेना चाहिए। शिक्षा का माध्यम तत्काल बदल जाना चाहिए। अपनी भाषा में सब विषयों की ऊँची से ऊँची पुस्तकें लिखी जानी चाहिए।'' (रा0और स0 पृष्ठ 340)

ये सभी समाजवादी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक हैं। सन् 1937–38 में हिन्दी हिन्दुस्तानी का प्रश्न जोर से उठा था। सितम्बर 1938 में कांग्रेस कार्यकारिणी ने प्रस्ताव पपास किया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और कार्यकारिणी का काम साधारणतः हिन्दुस्तानी में हुआ करें। हिन्दुस्तानी की परिभाषा यह हुई कि वह भाषा है, जिसको उत्तर भारत में अधिकांशतः बोलते हैं, और जो नागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाती है। इस सामान्यतः बोली जाने वाली भाषा से विज्ञान, दर्शन के शब्द काम नहीं देते उनके लिए शब्द संस्कृत या अरबी, फारसी से लेने होगें। संघर्ष का मूल यह प्रश्न था कि शब्द का उद्गम क्या हो?

हिन्दी हिन्दुस्तानी के नाम पर हिंदी साहित्य सम्मेलन 1938 का अवाहेर अधिवेशन में हुएए सभापति के चुनाव में श्री सम्पूर्णानंद ने हिन्दुस्तानी के नाम पर महात्मा गांधी के उम्मीदवार डॉ राजेन्द्र प्रसाद ज़ी के विरोध तथा हिन्दी के पक्ष के श्री टण्डन जी के उम्मीदवार डॉ0 अमरनाथ झा का जोरदार समर्थन किया था। उसमें मंत्रीपद का खतरा था, किन्तु हिन्दी के लिए सम्पूर्णानंद ने मंत्रीवाद को छोटा समझा था।

सूचना विभाग के अन्तर्गत हिन्दी समिति की स्थापना की और विद्वानों से मौलिक ग्रंथ तथा अंग्रेजी के ग्रंथों का अनुवाद कराने की योजना लागू की गई, और कम मूल्यों में स्तरीय पुस्तकों का प्रकाशन कराया। साथ ही साहित्यकारों, लेखकों की आर्थिक सहायता प्रदान करने एवं पुरस्कार देकर सम्मानित करने का प्राविधान किया। इसका अनुकरण केन्द्र सरकार द्वारा किया गया और जयपुर, भोपाल, पटना में हिन्दी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना की गई। उनका लेख "अंग्रेजी को सर पर ढ़ोना डूब मरने के बराबर है।" बहुत प्रसिद्धि पा चुका है। वह 'स्फूट निबंध' ग्रंथ में प्र0 33 से 37 तक छपा है। हिन्दी में लिखी उनकी मुस्तक 'समाजवाद' पर हिन्दी सहित्य सम्मेलन द्वारा 'मुरास्का पुरस्कार' तथा मंगला प्रसाद पारितोषिक' दिया गया था।

उत्तर प्रदेश में हिन्दी को राजभाषा मान्यता प्रदान करने हेतु सन् 1950 में (अधिनियम सं0 1, 1950) उत्तर प्रदेश भाषा (विधेयक तथा अधिनियम 1950) को भारत के संविधान के अनुच्छेद 348 के खण्ड 2 के अन्तर्गत पारित कराकर यह प्राविधान कराया था कि विधान मण्डल में विधेयक देवनगरी लिपि में प्रस्तुत होगें तथा अधिनियम इसी भाषा व लिपि में पारित होगें तथा न्यायालय में हिन्दी का प्रयोग होगा सिवाय उच्च न्यायालय के निर्णय को जो अंग्रेजी में लिये जा सकते हैं।

से समाजवादी हिन्दी के प्रबल समर्थक ही नहीं थे, वे साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने और मार्ग दर्शन करने वाले भी थे। वरिष्ठ पत्रकार व कवि श्री शिवसिंह सरोज' ने लिखा है –"सम्पूर्णानंद की हिन्दी निष्ठा से मैं अत्यंत प्रभावित हुआ, इसीलिए उनका समीप्य भी मेरे लिए सुलभ हो गया था। उन्होंने मेरी पत्रकारिता को ही नहीं प्रकाशित किया वरन् साहित्यक साधना को अपपनी प्रखर प्रेरणा से आगे बढ़ाया।"

सांस्कृतिक मूल्य

"संस्कृति शब्द का व्यवहार अंग्रेजी शब्द के कल्चर के लिए होता है। रवि बाबू प्राचीन आर्य शब्द 'कृष्टि' का व्यवहार करते हैं। संस्कृति शब्द की व्याख्या करना कठिन है। यदि हम शाब्दिक अर्थ लें तो हम कह सकते हैं कि संस्कृति चित्त भूमि की खेती है। चूँकि कर्म में मन या चित्त की प्रधानता है, अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि जिसका चित्त सुभावित है, उसकी वाणी और उसकी शरीर चेष्टा भी सुसंस्कृत होगी। जिस प्रकार की हमारी दृष्टि होगी उसी प्रकार का हमारा क्रिया कलाप होगा।

हमको यह न भूलना चाहिए कि जीवन के साथ–साथ संस्कृति बदलती रहती है। जीवन स्थिर और जड नहीं है। इसीलिए संस्कृति भी जड और स्थिर नहीं है। समाज के

आर्थिक और सामाजिक जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं। और साथ –साथ सांस्कृति जीवन भी बदलता रहता है।

परिवर्तन का यह अर्थ कदापि नहीं है किं अतीत की सर्वथा उपेक्षा की जावे। ऐसा हो भी नहीं सकता। अतीत के वह अंश जो उत्कृष्ट और जीवन प्रद है, उनकी तो रक्षा करना ही है, किन्तु नए मूल्यों को हमको स्वागत करना होगा, तथा वे विचार जो युग के लिए अनुपयुक्त और हानिकारक हैं, उनका परित्याग भी करना होगा।

'संस्कृति' का ठीक–ठीक अर्थ कर और उसके स्वरूप को समझकर ही हम आगे बढ सकते हैं, अन्यथा 'सस्कृति' के नाम पर बहुअनर्थ होगा और राष्ट्रीय एकता के काम में बाधा पडेगी।"

"आचार्य जजी प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन पर जोर देते हैं। इस अध्ययन का दरवाजा खोलते हैं। डॉ0 लोहिया आचार्य जी मुख्य रूप से संस्कृति के सैद्धांतिकं पक्षों की चर्चा करते हैं। संस्कृति की परिभाषा करते हैं। उनके प्रमुख चिंतक में संस्कृति, भारतीय समाज और संस्कृति, वसुधैव कुटुम्बकम्, धाार्मिक आन्दोलनों में एकता का आधार, विविधिता में एकता, सांस्कृतिक स्वतंत्रता का प्रश्न, समाजवाद का सांस्कृतिक स्वरूप जैसे विषय है। उन्हें संस्कृति वाडमय के महत्व का भी अच्छा ज्ञान है। इस प्रकार आचार्य जी सांस्कृतिक समस्याओं की सीधी चर्चा करते हैं। इन विषयों को ध्यान से देखने से लगता है कि आचार्य जी युग में उठाये गये विवादों और समस्याओं का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष उत्तर प्रस्तुत कर रहे हैं, जबकि लोहिया जी इनसे सीधे सम्बंधित होकर भी वे इनका उत्तर न देकर सांस्कृतिक यात्रा तय करते हैं। यह यात्रा केवल बौद्धिक चिंतन या बुद्धि विलास न होकर स्वयं में प्रभावोत्पादक सांस्कृतिक प्रतिभा बन जाती है। इस दृष्टि लोहिया, संस्कृति कि विवेचक से ज्यादा संस्कृति के मूर्तिकार अधिक हैं। इसीलिए उन्हें इतिहास की अपेक्षा पुराणों की कथाएं और चरित्र अधिक प्रभावित करते हैं। राम, कृष्ण, शिव, किसी भी इतिहास पुरूष से अधिक महत्वपूर्ण लगते हैं। इतिहास पुरूष की वह मूर्ति नहीं बन सकती है। जो देव पुरूष की बनती है। पौराणिक देव चरित के सामने इतिहास पुरुष बौने हैं।"

भारत के सभी समाजवादी व्यवहारवादी थे। उनके सामने देश की समस्या थी। इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना था। वे न तो किसी बंधी बंधायी विचार धारा के व्याख्याता थे न केवल सिद्धांत गढ़ने वाले विचारक थे। वे भारत की सत्ता के भागीदार भी थे। इसलिए वे कल्पना में नहीं जी सकते थे। उनके चिंतन में भारत की समस्याएं प्रत्यक्ष हैं। हम कह सकते हैं कि इन समस्याओं के समाधान में उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किय। ये

समस्याएं वर्गगत वर्णगत भी थी और सामूहिक एवं राष्ट्रीय भी थी। आचार्य जी विश्वविद्यालयों के कुलपति और शिक्षा परिवर्द्धन के चेअर मैन एवं भारतीय शिष्ट मण्डल के सदस्य थे। ऐसे में वर्गगत दृष्टि न अपनाकर राष्ट्र की सामूहिक इच्छा और समाधान प्रस्तुत करना अनिवार्य था।

भारत की सभी समाजवादियों में विज्ञान का अंधानुकरण नहीं है। वे विज्ञान और आध्यात्मिकता की मिली जुली संस्कृति को ही महत्व देते हैं। उनकी इस दृष्टि का कारण वैज्ञानिक या भौतिक समाजवाद के नाम पर होने वाली क्रूरताएं भी होंगी। जैसे तकनीकी के क्षेत्र में वे समन्वय की खोज करते हैं। उसी प्रकार आध्यात्मिकता और भौतिकता में वे समन्वय चाहते है। आध्यात्मिकता अगर पूर्व है तो भौतिकता पश्चिम है। अतः पूर्व–पश्चिम, गॉधी और मार्क्स, रोटी और मानव–मूल्यों का भी समन्वय है। इस दृष्टि से मार्क्स के समाजवाद और इनके समाजवाद में मौलिक अंतर है। मार्क्स का समाजवाद उत्पादन की पूंजीवादी मशीनों को स्वीकार कर उत्पादन करता है। किन्तु इस उत्पादन को वह श्रम या श्रमिक की सम्पत्ति मानता है।

विज्ञान के चरम विकास ने विशाल मानव समुदाय को लाभ अवश्य पहुँचाया है। किन्तु उसने मनुष्य को आहार, निद्रा, भय, मैथुन का पशु बना दिया है। उसके भीतर की ज्योति बुझ गयी है। वह चेतना लुप्त हो गयी है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। भारत के समाजवादी इस तथ्य को समझते थे। इसीलिए सभी ने अलग–अलग ढंग से विज्ञन और आध्यात्म के संतुलन की बात की। अपने विचारों नीति वक्तब्यों और कार्यक्रमों में स्थान दिया।

आजकल विद्यार्थी जगत् में चारों ओर हलचल है। आये दिन हडताले होती है। प्रदर्शन होते हैं, जुलूस निकाले जाते हैं। दुकानदारों से झकडे होते हैं, अध्यापकों के मुँह पर उन्हें भला–बुरा कहा जाता है। समाज के पुराने लोग लड़कों के बहुत खराब होने की शिकायत करते हैं। श्री सम्पूर्णानंद जी की इस सम्बन्ध में राय थी कि –"आज के युवक पहले से बुरा नहीं होता, उसको उत्पात करने में मजा नहीं मिलता न वह स्वभावतः राक्षस है यदि वह उन्मार्गगामी हो रहा है तो इसमें उन परिस्थितियों का दोष है, जिनमें वह रहा है।"

जिस समाज में व्यक्ति रह रहा है, उसकी स्थिति पर हमें विचार करना होगा, समाज में जिसको मान्यता प्राप्त है, उनका आचरण कैसा है, वह किस आदर्शन पर चल रहे हैं, तथा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने आचरण द्वारा क्या शिक्षा विकसत कर रहे हैं? क्या वे अर्थ और काम से आगे बढकर धर्म का पालन कर रहे हैं या उस ओर अग्रसर हैं। कर्तब्य को पहचानने और उसका पालन करने को श्री सम्पूर्णानंद ने धर्म कहा है, और कर्तब्य का पालन करने को सदाचार। सदाचार के अर्थ और उसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए

श्री सम्पूर्णानंद कहते हैं – "सदाचार की निरूक्ति दो प्रकार से हो सकती है, अच्छा आचार और अच्छे लोगों का आचार। पर अच्छे लोगों की यही तो परख है कि उनका आचरण अच्छा होता है। जो अच्छा आचरण करता है वह अच्छा है, इसलिए उभयतः सदाचार का अर्थ अच्छा आचार ही होता है। जैसा आचरण होना चाहिए यदि वैसा होतां है तो यह अच्छा शब्द का प्रयोग करता है, अतः सदाचार वह आचार है जो करणीय है। कर्तब्य का भी यही अर्थ है।"

कर्तब्य का पालन करना सदाचार कहलाता है, इसलिए इस प्रश्न का रूप यह हुआ कि मैं क्यूँ सदाचारी बनूँ? साधारणतः यह बात ठीक है कि मनुष्य के अर्थ और काम की सिद्धि समाज में ही रहकर ठीक–ठीक हो सकती है। और सामाजिक जीवन तभी चल सकता है, जब सब लोग सदाचारी हों। दुराचारी को अपने दुराचार से जो थोड़ा बहुत लाभ पहुँचता है, यह भी इसलिए कि अधिकांश मनुष्य सदाचारी हैं। यदि सब्र झूठ बोलने लगे, सभी चोरी करने लगें, सब परदारगामी बन जायं तो समाज उत्सन्न हो जायेगा। और सब लोग अर्थ और काम खो बैठेगें।

सदाचरण क्यों आवश्यक है, यह बताने के बाद सदाचार का पालन करने में बौद्धिक मानसिक स्थिति कैसे हो जाती है को स्पष्ट करते हुए श्री सम्पूर्णानंद बतलाते हैं– सत्कर्म सदाचार, धर्म की यही लक्ष्य है कि उसमें क्षणभर के लिए देह और वासना के वह पर्दे जो एक जीव को दूसरे जीव से पृथक किये हुए है, उठ जाते हैं, नानात्व का प्रायः लोप हो जाता है, अभेद का साक्षात्कार होता है।"

युवकों में सदाचार की कमी क्यों है समाजवादी चिंतक श्री सम्पूर्णानंद इसका कारण इस प्रकार बताते हैं " युवकों के सामने जीवन तरीके के लिए कोई पतवार नहीं, सामाजिक या धार्मिक कोई बंधन नहीं, किसी तत्व, किसी व्रिचार पर कोई श्रद्धा नहीं। ऐसी अवस्था में युवक का मस्तिष्क एक प्रकार का पागलखाना बना होता है, जो बात किसी सुन ली उसी के पीछे दौड पडे।"

इसका उपाय सुझाते हुए श्री सम्पूर्णानंद कहते हैं "समाज में नयी मान्यतायें स्थापित करनी होगी, श्रद्धा और विश्वास का फिर से संचार करना होगा। यह एक दिन का काम नहीं है। बरसों तक एडी चोटी का पसीना एक करना होगा, सुविचारित, सुनियोजित ढंग से काम करना होगा। त्यागवृत्ति, उत्साह और लगन से निरन्तर श्रम करना होगा।

अध्याय सप्तम्

निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष एवं सुझाव

1. समाजवादी चिंतकों के शिक्षा के दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक आधार सम्बन्धी निष्कर्ष

शिक्षा के दार्शनिक आधार

भारतीय दृष्टि में दर्शन और जीवन इतने सम्पृक्त रहे हैं कि इनमें अंतर नहीं देखा गया। प्राचीन काल में सम्पूर्ण जीवन का क्षेत्र दर्शन का क्षेत्र था। महर्षिगण, तपस्या करके सत्य का दर्शन करते थे, तथा जीवन में उतारते थे, एवं अपने व्यवहारपरक अनुभव की शिक्षा दूसरों को प्रदान करते थे। भारतीय दार्शनिकों के सामने दुखों के आत्यान्तिक नाश तथा पूर्ण आनंद अथवा मोक्ष की प्राप्ति का लक्ष्य था। उन्होंने अपने–अपने दृष्टिकोण से उसकी प्राप्ति का मार्ग शोधा था, अतः उनमें बीच की कुछ बातों में भिन्नता होने पर भी कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर साम्य है। सर्वश्री सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय एवं वीरेन्द्र मोहनदत्त ने निम्नांकित आठ नैतिक व आध्यात्मिक विन्दुओं में समानता निरूपित की है–

1. भारत के सभी दर्शनों का उद्देश्य पुरूषार्थ साधन रहा है।
2. दर्शन की उत्पत्ति आध्यात्मिक असंतोष से होती है, परन्तु अध्यात्मिक मनोवृत्ति के कारण उसमें आशा का संचार होता रहता है।
3. जगत् में सार्वभौम नैतिक व्यवस्था है, यह विश्वास व्यक्तियों में बनी रहती है कि वह वर्तमान जीवन में सुकर्म करके अपना भविष्य सुखमय बना सकता है।
4. भारतीय दर्शनों में कर्मवाद के सिद्धांत को मान्यता दी गई हैं संसार एक रंगमंच की तरह है जिसमें मनुष्य को योग्यतानुसार कर्म करना है, और उसी के अनुसार उसका वर्तमान तथा भविष्य सुखमय होगा।
5. भारतीय दर्शनों की एक समानता यह भी है कि वे अज्ञान को बंधन का कारण मानते हैं अतः दुःखों को दूर करने ज्ञान की प्राप्ति परमावश्यक है।
6. अज्ञान को दूर करने तथा आदर्श की प्राप्ति के लिए एकाग्र चिंतन और निद्विध्यासन की आवश्यकता है। योग दर्शन में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। सांख्य, वेदांत तथा न्याय और वैशेषिक में भी इसका वर्णन किसी न किसी रूप में किया गया है।
7. सिद्धांतों का एकाग्रचित्त से मनन करने तथा उन्हें जीवन में चरितार्थ करने के लिए आत्मसंयम की आवश्यकता है, मन,राग, द्वेष, ज्ञानेन्द्रियों तथा कमेन्द्रियों पर नियंत्रण ही आत्मसंयम कहलाता है।
8. चार्वाक के अतिरिक्त अन्य सभी दर्शन मोक्ष को जीवन का अंतिम लक्ष्य मानते हैं।

भारतीय समाजवादी चिंतकों के अनुसार दर्शनशास्त्र उज्जवल प्रकाश प्रदान करे मोक्ष मार्ग की सूचना देता है, किन्तु शुष्क ज्ञान लक्ष्य प्राप्ति नहीं पाता। काल्पनिक तत्वज्ञान को व्यवहारिक रूप में परिवर्तन करने का वर्णन योगसूत्रों में किया गया है। योग दर्शन में वर्णित प्रक्रियाएं भारत के प्रत्येक दर्शन को मान्य है। न्याय, सांख्य, वेदांत के अनुयायियों का दृढ़ विश्वास है कि तर्क द्वारा सिद्ध किया गया कि दार्शनिक सिद्धांत तब तक हमारे अज्ञान की पर्तो को दूर कर सकने में समर्थ नहीं होता है, जब तक हम श्रवण के पश्चात् मनन के द्वारा आत्मसात न कर लें।

इस कार्य हेतु इन तत्वों का निरंतर रूप से अभ्यास और मनन आवश्यक है। हमारे जीवन में अविद्या, राग तथा द्वेष इस प्रकार व्याप्त है, जो ज्ञान तत्व के अविच्छिन्न रूप से मनन तथा अभ्यास के बिना अन्य प्रकार से नष्ट नहीं किये जा सकते।

सामान्यतया दर्शन के क्षेत्र में सृष्टि की उत्पत्ति एवं प्रलय सृष्टि का विस्तार–क्रम, आत्मा पुरूष, प्रकृति, माया, महत्व, मन, इन्द्रिया, दृव्य, महाभूत, ब्रह्म, जीव, ईश्वर, पुर्नजन्म, धर्म, दिक्, काल, तर्क, ज्ञान, ज्ञान का आभास, प्रमाण, प्रत्यक्ष अनुमान, कर्मसिद्धांत, करणीयकार्य, यम, नियम, आदि का समावेश हुआ है। दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण किसी दर्शन शाखा ने कुछ विन्दुओं पर विशेष स्थान दिया है तो कुछ को गौण स्थान।

शिक्षा अपना कार्य उसी दशा में कर सकती है, जबकि शिक्षा साफ स्पष्ट हो, जैसा कि डी0वी0 महोदय ने लिखा है – "उद्देश्य कार्य करने में अर्थपूर्ण है, स्वयं चलने वाली मशीन की भांति नहीं।" शिक्षा वह श्रेष्ठ जटिल प्रक्रिया है, जिसमें बहुत से उद्देश्य हैं, जैसे दक्षता की प्राप्ति, संस्कृति और समाज की परम्पराओं का हस्तान्तरण, मस्तिष्क का विकास एवं व्यक्तित्व का उचित विकास इत्यादि।

किसी भी देश, काल एवं परिस्थिति में शिक्षा के उद्देश्य उस देश के नागरिकों के जीवन के उद्देश्य से सम्बंधित होते हैं। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति करता है। ज्यों–ज्यों देश, काल एवं परिस्थिति केअनुसार किसी देश के नागरिकों का जीवन दर्शन परिवर्तित होता जाता है उसी प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन करना पडता है।

जीवन के उद्देश्य तत्कालीन परिस्थिति, संस्कृति, सभ्यता एवं ढॉचे से प्रमाणित होते रहते हैं। जीवन के उद्देश्य ठोस दार्शनिक सिद्धांतों पर आधारित होते हैं, अतः शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में भी कुछ ठोस दार्शनिक सिद्धांतों की आवश्यकता होती है। प्राचीन भारत में व्यक्ति एवं समाज धर्म प्रधान था अतः शिक्षा के उद्देश्य भी धार्मिक एवं नैतिक थे, किन्तु देश की वर्तमान स्थिति में जब हमने धर्म निरपेक्षता के आधार पर जनतंत्र शासन पद्वति अपनाई है।

शिक्षा के प्राचीन उद्देश्य हमारे लिए निरर्थक है। साथ ही हमें ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है, जिसकी लोकतंत्र में गहरी आस्था हो, एवं जो जातीयता, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता एवं धार्मिक आडम्बरों से ऊपर उठकर कर्मयुक्त समाज में आस्था रखकर मानव को जॉति–पॉति से परे मानव के प्रति प्रेम सद्भावना उत्पन्न करके समाज कलयाण हेतु अपनी सेवा को अर्पित कर सकें। और यह समाज समान होगा न मुस्लिम समाज वरन् मानव समाज होगा।

शिक्षा दर्शन जीवन के सामान्य दर्शन का वह भाग है, जो विश्व के उद्देश्य विषय–वस्तु पद्धति एवं संगठन तथा मापन से सम्बन्धित है। आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ0 लोहिया एवं डॉ0 सम्पूर्णानंद उच्चकोटि के विद्वान, विचारक, शिक्षक लेखक, वक्ता एवं प्रतिभावान् शिक्षा–शास्त्री थे। इन समाजवादी विचारकों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो भी कार्य किये, उससे देश के शिक्षा प्रेमियों का सदैव मार्ग–दर्शन होता रहेगा। ये समाजवादी चिंतक यह समझते थे कि जिस देश में विभिन्न जाति, समुदाय, धर्म के लोग रहते हैं। तथा विभिन्न ऐतिहासिक परम्पराओं के अन्तर्गत जिनका पालन–पोषण होता है, जो युगों से चलती हुई परम्पराओं, संस्कृति, धार्मिक मान्यताओं, तथा जाति–प्रथा से प्रभावित है, इन परम्पराओं को तोड़कर नवयुग के अनुसार नागरिकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा के सामने एक जटिल एवं कठिन कार्य के रूप में है। इस कार्य को करने के लिए शिक्षा में क्रांतिकारी आन्दोलन की आवश्यकता है। शिक्षा में यह क्रांतिकारी आंदोलन लाना तभी संभव है, जबकि देश के भावी नागरिकों के जीवन का उद्देश्य का आधार ठोस दार्शनिक विकल्प हो। यह समाजवादी उच्चकोटि के शिक्षा–दार्शनिक की भांति यह समझते थे कि सामाजिक जीवन के निर्माण कुछ ठोस दार्शनिक सिद्धांतों पर ही किया जा सकता है।

समाजवादी विचारक आचार्य जी ने कहा था – "यदि हम सुखी जीवन की कामना करते हैं, जिसमें दुख दर्द और संघर्ष न हो, जिसमें आज हम पीडित है, तो हमें अपने समय की चुनौती को स्वीकार करने के लिए नये सामाजिक मूल्यों का निर्धारण करना होगा, प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जीवन का क्या अर्थ है, इसकी पुनः खोज करें।

इन विचारकों के विचार से प्रत्येक व्यक्ति अपने सामाज़िक वातावरण की कृति होता है और यद्यपि अपने जीवन का अर्थ अपने वैयक्तिक स्वभाव के अनुसार ही खोजता है, जिसमें वह रहता है और वह भी अपने समय के ढॉचे के अनुसार मानवीय मूल्यों के आधार पर। आचार्य जी ने अखिल भारतीय शिक्षा–सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण में यह कहा था कि भारतीय जनता की वर्तमान आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की तृप्ति करने के लिए आधार भूत जीवन–दर्शन में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है– इसी प्रसंग में हमें शिक्षा के महत्व को समझना चाहिए।

ये समाजवादी तीक्ष्य बुद्धि वाले शिक्षा दार्शनिक थे। उन्होंने स्पष्ट किया कि शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों की भावी जीवन के लिए तैयार करना है, किन्तु निरंतर जीवन की परिस्थिति में परिवर्तन होता रहता है, अतएव नवयुवकों की शिक्षा भी स्थित जीवन पर आधारित नहीं हो सकती है। परिवर्तनशील जगत् की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए शिक्षा को गत्यात्मक बनाना पडेगा। उसमें आधुनिक समाज की आवश्यकताओं तथा आकांक्षों पर शेष विश्व की दृष्टि से विचार करना पडेगा। विद्यार्थियों में जीवन की उन मूल्यों की प्रतिष्ठा और क्रिया पर विचार करना पडेगा। जो आधुनिक विश्व की प्रगति के लिए आवश्यक है।

शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार

आधुनिक शिक्षाविद् एवं शिक्षा दार्शनिक शिक्षा को एक प्रक्रिया मानते है। शिक्षक शिक्षार्थी के व्यवहार में मनोवॉछित परिवर्तन आये, ऐसा ज्ञान प्रदान करता है। अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का प्रभाव बनाता है। अतः यहीं पर विद्यार्थी को सहमति प्रदान करने की आवश्यकता हो जाती है। जिसे शिक्षा की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक पक्ष की संज्ञा देते हैं। अतः शिक्षा की प्रक्रिया को सफलतापूर्वक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक आधार पर बालक की रूचि को जानना एवं उसकी योग्यता का अध्ययन करके, उनकी स्वीकृति एवं सद्गति प्राप्त हो जाये।

इन समाजवादी चिंतकों ने शिक्षा की प्रक्रिया को बनाने के लिए शिक्षा में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतो को अपनाया है। इनका विचार था कि मनोविज्ञान के नवीन सिद्धांतों ने मानव प्रकृति तथा जगत सम्बन्धी हमारी धारणाओं को बदल डाला है। मानव एवं प्रकृति के विषय में हमारे समाज को शिक्षा देनी होगी। आचार्य जी शिक्षा की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक आधार को सही मानते हैं। हमारी शिक्षा–पद्धति में पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है इसमें तनिक संदेह नहीं है कि किसी भी शिक्षा–पद्धति में उपलब्धंता अध्यापक पर निर्भर करती है।

आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 सम्पूर्णानंद एवं डा0 लोहिया एक आदर्शवादी शिक्षा–दार्शनिक की भॉति शिक्षक के गौरव, प्रतिष्ठा एवं सम्मान को चिरस्थाई रखते हुए यह भी कहते हैं कि शिक्षक को विद्यार्थी के व्यक्तित्व का समादर करना चाहिए। इसके अन्तर्गत उसके अन्तःमन में प्रवेश करने की कोशिश करनी चाहिए तथा उसकी आवश्यकताओं एवं कठिनाइयों को समझना चाहिए।

भारतीय समाजवादी चिंतकों का विचार था कि विद्यार्थियों के मानस का निर्माण करना, उनके चरित्र का विकास करना तथा उनमें जनतांत्रिक भाव भरना शिक्षक का कर्तब्य है। आचार्य जी शिक्षा की प्रक्रिया को शैक्षिक द्वारा बालकों पर अपने विषयों को थोपने एवं अपनी बात मनवाने के विरोधी थें। जो अध्यापक केवल ज्ञान दान करता है, किन्तु विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण नहीं करता, वह एक योग्य अध्यापक नहीं है। इन चिंतकों के विचार से शिक्षक और

विद्यार्थी में विचार विमर्श की स्वतंत्रता होनी चाहिए। अध्यापक को अपने विद्यार्थियों कें ऊपर अनुशासन लादने का प्रयास नहीं करना चाहिए। वरन् आत्मसंयम की शक्ति को जो मानव प्रगति में संनिहित होती है और जिससे आत्मानुशासन होता है, रेखांकित करना चाहिए। अध्यापक के चरित्र को ऐसा होना चाहिए जो बालकों के लिए अनुकरणीय हो। बालकों को उसके सद्भाव एवं रूचि के अनुसार शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए, जिसके लिए इन तीनों भारतीय समाजवादी चिंतकों ने करके सीखने की प्रक्रिया को श्रेष्ठ शिक्षा पद्धति बताया। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा के उद्देशें के निर्धारण में इन चिंतकों ने दार्शनिक सिद्धांतों का सहारा लिया तो शिक्षा की पद्धति के लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक आधार की श्रेष्ठता को स्वीकार किया।

(2) तत्वमीमांसा सम्बन्धी निष्कर्ष

डा0 रामसकल पाण्डेय के द्वारा पाश्चात्य दर्शन के क्षेत्र को बोधगम्य भाषा में मुख्य तीन विभागों (क) तत्वमीमांसा, (ख) ज्ञान मीमांसा, (ग) मूल्य मीमांसा तथा नौ उपविभागों में रखकर निरूपित किया गया है।

(क) तत्व मीमांसा– (1) आत्मा सम्बन्धी तत्व ज्ञान, (2) ईश्वर सम्बन्धी तत्व ज्ञान (3) सृष्टिशास्त्र, (4) विश्वविज्ञान, (5) सत्ताविज्ञान।

(ख) ज्ञान मीमांसा – ज्ञानशास्क।

(ग) मूल्यमीमांसा – (1) नीतिशास्त्र (ईथिक्स), (2) सौन्दर्य शास्त्र (ऐस्थोटिक्स), (3) तर्कशास्त्र (लौजिक)।

तत्वमीमांसा

तत्वज्ञान के अन्तर्गत आत्मा, जीव, जगत्, जगत्–सृष्टा, ईश्वर, सृष्टि का कारण, सृष्टिक्रम, प्रलय, पुनर्जन्म, बुद्धिमन्, मोक्ष आदि का विचार आता है। दर्शन की विचार सारणी में दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण नये पदार्थों की संख्या भिन्न हो गयी है, किन्तु लक्ष्य सभी का एक निःश्रेयस् अथवा अपवर्ग निःश्रेयस् (तत्वज्ञानात् निःश्रेयसाधिगमः –न्याय) निःश्रेयस

(तत्वज्ञानात् निःश्रेयस्–वैशेषिक) की प्राप्ति का रहा है। इनकी मान्यता है कि तत्वों के सम्पर्क ज्ञान, से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। तत्वों की या पदार्थों की संख्या में भिन्नता अवश्य है। पदार्थ (पद+अर्थ) उसको कहते हैं जिसमें अस्तित्व (सत्ता) अभिधेयत्व (नाम दिया जा सके) और ज्ञेयत्व (जिसे जाना जा सके) सामान्य लक्षण हो। वैशेषिक दर्शन में "[1]– (क) "सात पदार्थ– 1. द्रव्य, 2. गुण, 3. कर्म, 4. सामान्य, 5. विशेष, 6. समवाय, और 7. अभाव। न्याय दर्शन में 16 पदार्थ मान्य किये गये हैं। डा0 एस0एन0 दास गुप्त ने भी न्याय के 16 पदार्थ का वर्णन

(1) द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य विशेष समवायना पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञानात् निःश्रेयसम् पृष्ठ 111 / 114, वैशेषिक

अर्थ सहित दिया है। (ख) "न्यायसूत्रों का प्रारंभ सोलह पदार्थों के उल्लेख के साथ होता है जो इस प्रकार वर्णित हैं – 1. प्रमाण (सत्यज्ञान), 2. प्रमेय (प्रमाण का विषय), 3. संशय (संदेह), 4. प्रयोजन (अर्थकरण), 5. दृष्टान्त (प्रसंग आदि से समझाना), 6. सिद्धांत (जिन निष्कर्षों को स्वीकार कर लिया गया है), 7. अवयव (अंग), 8. तर्क (युक्तियाँ प्रस्तुत करना), 9. निर्णय (निश्चय करना), 10. वाद (बहस या वार्तालाप करना), 11. जन्यविरोध करना, नहीं मानना, 12. वितंडा (कटु आलोचना करना ध्वंसात्मक दृष्टि से), 13. हेत्वाभास (सदोषतर्क) 14. धन (दर्यर्थक बात करना), 15. जाति (तर्क से खण्डन करना), 16. निग्रह स्थान (विपक्षी को बॉध देने वाले बिन्दु ताकि उसकी हार सुनिश्चित हो सके)"[2]।

डा0 पारसनाथ द्विवेदी ने न्याय–दर्शन में 16 पदार्थ और कौशेषिक दर्शन में सात ही पदार्थ मानने का करण देते हुये लिखा है–[3] "न्याय का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रमाण मीमांसा या ज्ञान मीमांसा है। ज्ञान मीमांसा के लिए किन–किन विषयों का ज्ञान आवश्यक है, इस दृष्टि से उन्होंने पदार्थो का विवेचन किया हैं ये पदार्थ उनकी ज्ञान मीमांसा के विवेच्य विषय है, इसीलिए गौतम ने न्याय में सोलह पदार्थो का विवेचन किया है। वैशेषिक का मुख्य विषय तत्व मीमांसा है। वैशेषिक दर्शन में प्रतिपादित सात पदार्थ सत्ता पदार्थ है जो कि तत्व मीमांसा के विषय है न कि ज्ञान मीमांसा के। अतः अलग–अलग दृष्टिकोण होने के कारण उनके पदार्थ विवेचन में संख्या व्यतिक्रम है। वस्तुतः न्याय वैशेषिक दोनों में सात ही पदार्थ स्वीकार है।"[3]

पदार्थों के द्वितीय स्थान में प्रमेय (न्याय दर्शन में) तथा दृव्य (वैशेषिक दर्शन में) आते हैं। जो पदार्थ यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हों उन्हें प्रमेय कहा गया है, इनकी संख्या 12 बारह है। न्यायदर्शन के –[4] "आत्मशरीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः प्रवृत्ति, दोष, प्रत्यभाव, फल, दुख और अपवर्ग प्रमेय है।

[5]"वैशेषिक में सात पदार्थों प्रथम दृव्य आता है, दृव्य नौ पृथित्यापस्तेजों वायु शका कालोदिगात्मा मन इति दृव्याणि अर्थात् पृथ्वी, आपु (जल), तेज (अग्नि), वायु आकाश, काल, दिक, आत्मा और मन ये दृव्य हैं।[5]"

उक्त सूक्तियों में (आत्मा और मन) प्रत्यक्ष दोनों में सम्मिलित है। न्याय में आत्मा के साथ शरीर, इन्द्रिय, मन, वुद्धि की विवेचना है। वैशेषिक में पंचमहाभूतों तथा काल, दिक् की विवेचना आत्मा व मन अतिरिक्त की गई है। मीमांसा दर्शन, वैशेषिक के समान पदार्थो की सत्ता को स्वीकार करता है, किन्तु मीमांसा के तीन सम्प्रदाय, प्रभाकर, कुमारिल और मुरारि पदार्थों की

(2) एस0एन0दास गुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग एक, पृष्ठ 279–280, जयपुर राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी 1988।
(3) डा0 पारसनाथ द्विवेदी, भारती दर्शन, पृष्ठ 241, आगरा, श्रीराममेहरा एण्ड कम्पनी 1973 ई0
(4) सं0 पं0 श्रीरामशर्मा, न्यायदर्शन, 119, पृष्ठ 29 बरेली संस्कृति संस्थान 1985।
(5) सं0 पं0 श्रीरामशर्मा, वैशेषिक दर्शन, 111, बरेली संस्कृति संस्थान 1985।

सत्ता और संख्या के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। प्रभाकर ने आठ पदार्थ माने हैं। (1) दृव्य, (2) गुण, (3) कर्म, (4) सामान्य, (5) समताय, (6) शक्ति, (7) सादृश्य और (8) संख्या। वैशेषिक के द्वारा स्वीकृत 7 पदार्थों में पांच प्रभाकर को मान्य है। तीन नवीन पदार्थों 1. शक्ति, 2. सादृश्य, और 3. सांख्य को प्रभाकर ने अलग से जोडा है।

"प्रभाकर के मत में दृव्य नौ हैं – पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। ये ही नौ दृव्य वैशेषिक दर्शन में प्रतिपादित किये गये हैं।[5]"

भारतीय दर्शनों में सांख्य तथ्य प्रधान दर्शन है, इस दर्शन में तत्वों पर विस्तार के साथ विचार किया गया है। सांख्य दर्शन में 25 तत्व माने गये हैं। इनके ज्ञान होने की फलश्रुति दुःखों से मुक्ति बनाई गयी है। इन पचीस तत्वों को चार वर्गों में रखा जाता है–

1. ऐसा तत्व जो दूसरे का कारण होता है, किन्तु स्वयं किसी तत्व का कार्य नहीं है। इसको प्रकृति कहते हैं।
2. कुछ तत्व ऐसे हैं जो किसी के कार्य है यानी किसी से उत्पन्न हुए हैं, परन्तु स्वयं किसी अन्य तत्व को उत्पन्न नहीं करते इनको, विकृति कहा गया है।
3. कुछ तत्व ऐसे हैं जो किन्हीं तत्वों से उत्पन्न भी हुए हैं और अन्य तत्वों के उत्पादक भी हैं अर्थात् कार्य भी है और कारण भी हैं, इनको प्रकृति–विकृति कहा गया है।
4. ऐसा तत्व जो न तो किसी का कार्य है, और न किसी का कारण अर्थात् न किसी से उत्पन्न होता है और न किसी की उत्पत्ति करता है। ऐसे तत्व को न प्रकृति न विकृति कहा गया है।

प्रथम वर्ग प्रकृति में केवल एक तत्व, प्रकृति या प्रधान है चतुर्थ वर्ग न प्रकृति न विकृति में भी एक तत्व पुरूष है। द्वितीय वर्ग विकृति में 16 तत्व हैं। पॉच ज्ञानेन्द्रियाँ, पॉच कर्मेन्दियाँ, पॉच महाभूत, तथा एक मन। तृतीय वर्ग प्रकृति विकृति में सात तत्व हैं पॉच तन्मत्राएं, एक महत्व और एक अहंकार।

अद्वैतवेदांत दर्शन में परमतत्व ब्रह्म हैं वहीं एकमात्र सत् है। उससे भिन्न जगत् की सभी वस्तुएं असत् है। यह जगत् उस परब्रह्म का विर्वत है, माया इस प्रपंचात्मक जगत् की जननी है। यह जगत् माया का परिणाम है।

तत्व मीमांसा के क्षेत्र में आत्मा सम्बन्धी, ईश्वर सम्बन्धी विचार तथा सृष्टि सम्बन्धी विचार आते हैं।

आत्मा के सम्बन्ध में

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा, वेदांत सभी के विचार किया गया है। न्याय–दर्शन में 12 प्रमेय में आत्मा की गिनती है। वैशेषिक आत्मा को दृव्य मानकर विचार किया है। ज्ञान के

अधिकरण को आत्मा कहते हैं। (ज्ञानाधिकरणमात्मा) आत्मा का विशेष गुण चैतन्य है। न्याय वैशेषिक दर्शन में आत्मा के दो रूप कहे गये हैं– 1. परमात्मा और 2. जीवात्मा। परमात्मा को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा एक बताया गया है। जीवात्मका अनेक हैं प्रत्येकं शरीर में रहने वाला जीवात्मा नित्य, और विभु है। प्रत्येक जीवात्मा में एक विशेष है जो दूसरी आत्माओं से उसको पृथक करता है। आत्मा इन्द्रिय नहीं है, मन आत्मा नहीं है। शरीर आत्मा नहीं है, इनका प्रतिपादन किया गया है। तथा आत्मा को शरीर, इन्द्रिय या मन कहने वाले या मानने वाले मतों का खण्डंन किया गया है । सांख्य में पुरुष को आत्मा कहा गया है। तथा प्रत्येक जीव का पृथक–पृथक आत्मा होता है। वेदांत का कहना है कि इन जगत् का आत्मा एक ही है और वह ज्ञानरूप है, तथा ज्ञाता भी है। पूर्व मीमांसा के अनुसार आत्माकर्ता और भोक्ता दोनों हैं, वह व्यापक और प्रतिशरीर में भिन्न है।

ईश्वर सम्बन्धी विचार

ईश्वर न्यायदर्शन का एक मौलिक तत्व है, जिसे आधार पर उसका आचार और धर्म की विस्तृत विवेचना की गई है। ईश्वर के अनुग्रह के बिना जीव न तो प्रमेय का यथार्थ ज्ञान पा सकता है और न इस जगत् के दुःखों से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त कर सकता हे। ईश्वर को इस जगत् का रचयिता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता माना है। वह जगत् को व्यवस्थित रूप से चलाने वाला है।

नैयायिकों के द्वारा ईश्वर की सिद्धि (1) कार्यकारण सम्बंध से (2) प्राणियों के भाग्य में अंतर होने तथा (3) श्रुति या वेद कहता है कि ईश्वर है।

ईश्वर को ज्ञान, सुख, इच्छा, प्रयत्न और धर्म को विशिष्ट पुरूष विशेष माना गया है। सांख्य में ईश्वर को नहीं माना है। योग ने सांख्य के 25 तत्वों को स्वीकार करते हुए छब्बीसवां तत्व ईश्वर को माना है। वेदांत के अनुसार ब्रह्म जब माया से आच्छादित होकर सगुण रूप को धारण करता तो वह 'ईश्वर' कहलाता है। वह ईश्वर विश्व का साक्षी तथा संसार का सर्जक, रक्षक एवं संहारक है। योगशास्त्र में ईश्वर का महत्वपूर्ण स्थान हे। ईश्वर के प्राणिधान से समाधि लाभ होता है, ईश्वर के स्वरूप का निर्देश पंतजलि के योगदर्शन में कहा गया है।[6] "क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरसृष्टः पुरूष विशेष ईश्वरः। अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशयों से रहित पुरूष विशेष ईश्वर है।

सृष्टि की रचनाक्रम एवं प्रलय

न्याय वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति होती है, जब परमेश्वर की सृष्टि विषयक इच्छा होती है तो सर्वप्रथम वायुके परमाणुओं में स्पंदन होता हैं और दो परमाणु

(6) सं० पं० श्रीरामशर्मा, वैशेषिक दर्शन, 115, बरेली संस्कृति संस्थान 1985।

परस्पर मिलते हैं। इन परमाणुओं के मिलने से दृयणुक की उत्पत्ति होती है। परमाणु और दृयणुक दोनों ही अतीन्द्रिय होते हैं। इसके बाद तीन दृवणुकों के संयोग से 7युवक (त्रसरेणु) की उत्पत्ति होती है उसका प्रत्यक्ष होता है। इसके बाद चार त्रसरेणुओं के संयोग से चतुरवुक की उत्पत्ति होती है उसका प्रत्यक्ष होता है। इसके बाद चार श्रसरेणुओं के संयोग से चतुरवुक की उत्पत्ति और इसी प्रकार पंचवुक आदि की उत्पत्ति परम्परा से महावायु उत्पन्न होता है। महावायु की उत्पत्ति के पश्चात् जलीय परमाणुओं में स्पंदन होता है और उसी क्रम से जलमहाभूत की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार पार्थिव परमाणुओं के संयोग से पृथ्वीमहाभूत भी उत्पन्न होता हैं । तदन्तर तेजस परमाणुओं के स्पंदन से तेज महाभूत की उत्पत्ति होती है। चारों महाभूतों की उत्पत्ति के अनन्तर परमेश्वर के ध्यानमात्र से हिरण्यमय पिण्ड, जिसे हिरण्यगर्भ कहते हैं, उत्पन्न होता है, उसे चतुर्मुखी ब्रह्म की उत्पत्ति आदि आर्यप्रलय जब ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु, पूरी हो जाती है तो उसकी इच्छा कुछ विश्राम की होती है, और वह सृष्टिकार्य से विरत हो जाते हैं। उस समय शरीर से आत्मा पृथक हो जाता है। शरीर और इन्द्रियों के परमुाण अलग–अलग हो जाते हैं। पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु भी क्रमशः विलग हो जाते हैं, इसी को प्रलय या संहार की अवस्था कहते हैं। इस प्रकार इस अवस्था में समस्त जीव विश्रान्त हो जाते हैं। केवल परमाणु शेष रहता है, क्योंकि वह नित्य है और उसका कभी विनाश नहीं होता। इस प्रकार न्याय वैशेषिक के मत से सृष्टि और प्रलय का चक्र निरंतर चलता रहता है।

सांख्यमत में प्रकृतिजड़ है किन्तु वह पुरूष के संसर्ग से सृष्टि में प्रवृत्त होती है, दोनों का संयोग ही सृष्टि है। सृष्टि का प्रयोजन पुरूष को मोक्ष दिलाना है। सांख्यमत में सृष्टि का अर्थ परिणाम है, उत्पन्न होना नहीं। यह जगत् प्रकृति का परिणाम है सत्, रज, और तम् इन तीनों गुणों के न्यूनाधिक से ही परिणाम है। प्रकृति और उसके परिणाम प्रसवधर्मि है। प्रसव और प्रतिप्रसव अथवा परिणाम है। प्रसव विरूप परिणाम है अर्थात् सजातीय का विजातीय में बदल जाना। सृष्टि, सत्व, रज और तम की वैशम्यावस्था से होती है, और इनमें नाना कार्यो की उत्पत्ति होती है। प्रतिसर्ग इन नाना कार्यो का विलोपन है, जिसमें सत्य, रज, और तम के मूल रूप में बदल जाते हैं।

प्रकृति का प्रथम परिणाम महन्तत्व (बुद्धि) है। महत्तत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार के सात्विक अंश से मन पॉच ज्ञानेन्द्रियां तथा पॉच कर्मेन्द्रियॉ उत्पन्न होती हैं तथा अहंकार के तामस अंश से पॉच तन्मात्राएं उत्पन्न होती हैं, इन तन्मात्राओं से पॉच महाभूत उत्पन्न होते हैं। ये ही सांख्य के 25 तत्व हैं। अथार्त् पुरूू 1, प्रकृति 1, महत्तत्व 1, अहंकार 1, मन 1, ज्ञानेन्द्रियॉ 5, कर्मेन्द्रियॉ 5, तन्मात्राएं 5, और महाभूत 5।

वेदांत दर्शन में सृष्टि के दो रूप बताये गये हैं समष्टि रूप और व्यष्टि यप। माया में जब सत्वगुण प्रधान रहता है और रजोगुण एवं तमोगण गौण होते हैं, तब शुद्ध सत्व प्रधान से आवृत्त चैतन्यसमष्टि रूप 'ईश्वर' कहलाता है। और जब रजस् एवं तमस् से अभिभूत चैतन्य व्यष्टिरूप जीव कहलाता है, माया की दो शक्तियॉ आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति है। इन दोनों शक्तियों से आच्छन्न चैतन्य जगत् ही सृष्टि का कारण है। सृष्टि की विपरीत अवस्था प्रलय है। प्रलयावस्था में सभी कार्य अपने कारण में लीन हो जाते हैं। स्थूल शरीर, सूक्ष्म में, सूक्ष्म शरीर कारण शरीर में कारण शरीर माया में और माया ब्रह्म में लीन हो जाती है। अंत में केवल चैतन्य मात्र शेष रहता है यही ब्रह्म है। इसीलिए कहा गया है कि प्रलयकाल में केवल ब्रह्म ही अवभाषित रहता है।

सृष्टि का विधान कार्य कारण सिद्धांत पर आधारित है, जिसे अनुसार प्रत्येक कार्य कारण से उत्पन्न होता है। कार्य कारण भाव के सम्बन्ध में न्याय, वैशेषिक सांख्य वेदांत बौद्ध आदि सभी दार्शनिकों ने विचार किया है। सांख्य सत्कार्यवाद को मान्यता देता है उसके अनुसार प्रत्येक कार्य अपने कारण में सत् रहता है। उसके अनुसार जगत का मूल कारण प्रकृति है और यह जगत् उस प्रकृति का परिणाम है। सांख्य में परिणामवाद को सत्कार्य वाद कहा गया है। इसके विपरीत न्याय, वैशेषिक असत्कार्यवाद को स्वीकार करते हैं उनके अनुसार कार्य कारण में असत् रहता है। कार्य की सत्ता कारण से भिन्न है। वेदांतदर्शन कार्य को कारण से भिन्न नहीं मानता बल्कि कार्यकारण का ही भ्रान्त या अध्याय रूप मानता है। इसे ही वेदांत में विवर्तवाद कहा गया है। बौद्धों का सिद्धांत शून्यवाद है वे शून्य से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं। सांख्य के मत से पुरमाणुओं की उत्पत्ति पंचतन्मात्राओं से होती है। परमाणु तन्मात्राओं के परिणाम (बिकार) है और पॉच तन्मात्रायें प्रकृति के (विकार) परिणाम है, अतः परमाणु अनित्य है, किन्तु न्याय वैशेषिक परमाणुओं को जगत् का उपादान कारण मानता है। सांख्य आकाश को तत्व (परमाणु) मानता है, जबकि वैशेषिक आकाश को परमाणु नहीं मानता शेष चार महाभूतों पृथ्वी, जल, तेज और वायु को दोनों परमाणु मानते हैं। सांख्ययोग इन्द्रियों को भौतिक नहीं मानता वह उन्हें सात्विक अहंकार, से उत्पन्न से अहंकारिक मानता है। न्याय वैशेषिक इन्द्रियों को भौतिक मानता है, इनके मत से भूतों के विशेष गुणों को ग्रहण करने के कारण इन्द्रियॉ भौतिक हैं न्याय वैशेषिक मन को भौतिक नहीं मानते उसे अलग दृव्य मानते हैं। सांख्ययोग सात्विक अहंकार से मन की उत्पत्ति मानत हैं। वेदांत में महाभूतों के सात्विक अंश से मन की उत्पत्ति मानी गयी है।

काल तथा दिक्

वैशेषिक दर्शन में नौ दृव्य, पॉच महाभूत (क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश) आत्मा, मन के अलावा काल और दिक् स्वीकार किये गये हैं "[7]–

(7) सं० प० श्रीरामशर्मा, वैशेषिक दर्शन, 44, बरेली संस्कृति संस्थान 1990।

पृथिव्या परस्तेजों वायुराकाशं का लोक्षिगात्मा मन इति द्रत्याणि।

भूत, वर्तमान, भविष्य के व्यवहार का हेतु (कारण दृव्य) काल है। वह एक नित्न और सर्वव्यापी है। काल समस्त विश्व में व्याप्त है।

काल के समान दिक् भी एक नित्य तथा विभु (व्यापक) है, उपाधिभेद से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण आदि कई प्रकार मालूम पडते हैं। काल और दिक् दोनों ही निराकार, निखयव, और नित्य तथा सर्वव्यापक हैं। किन्तु दिक् और काल अलग पदार्थ हैं। दिक् दैशिक परत्व (दूरी) और अपरत्व (निकटता) का कारण है, तथा काल कालिक पर त्व और अपरत्व का कारण हैं। दिक् विभाग अनिश्चित है, परन्तु काल के विभाग निश्चित होते हैं। ये प्रत्यक्ष नहीं हैं, आकाश वत् व्यापक हैं। ये क्रियारहित।

[8]"दिक्कालाकाशन्च क्रियावद्वैधर्म्यान्नी षिक्रयाणि।"

समाजवादी चिंतक (श्री सम्पूर्णानंद) के तत्वमीमांसा के क्षेत्र में आने वाले विषय तथा पदार्थों (तत्वों) के सम्बन्ध में विचार,

आत्मा सम्बन्धी विचार

समाजवादियों ने आत्मा सम्बन्धी दो मतों देहात्मवाद तथा प्रज्ञानवाद (विज्ञानवाद) पर विचार 'चिहिलास' के ज्ञान खण्ड के तीसरे अध्याय में किया है। किसी क्षण विशेष में चित्त का जो रूप होता है, उसे प्रज्ञान कहते हैं। प्रज्ञानवादी कहता है कि आत्मा प्रज्ञान ही है।"[9] "चित्त में बराबर आत्मा का प्रतिबिम्ब पडता रहता है, चेतन के बिना शरीर रह सकता है किन्तु चेतना विरहित चित्त नहीं रह सकता। चित्त को सदैव चेतना का आश्रय चाहिए। जिस प्रकार चेतना के बिना चित्त नहीं रह सकता, उसी प्रकार चित्त के बिना आत्मा का ज्ञातृत्व भोक्तृत्व और कतृत्व सामर्थ्य काम नहीं कर सकती। आत्मा तभी तक ज्ञाता, भोक्ता और कर्ता है जब तक उसका चित्त के साथ योग है। जो ज्ञाता, भोक्ता और कर्ता होता है उसी को चेतन कहते हैं। चित्तयुक्त आत्मा, चेतन आत्मा को जीव या जीवात्मा कहते हैं"

[10]"आत्मा के सम्बन्ध में नीचे लिखी 5 बातें कही जा सकती है, पहली बात यह है कि आत्मा है वह सत्य है सत् है वह नित्य अर्थात् अज और अमर है, दूसरी बात यह है कि आत्मा चेतना है, चेतन नहीं। वह शुद्ध परिपूर्ण केवल चेतना है, इसलिए उसको चित् चिन्मय, चिहन कहते हैं। तीसरी बात यह है कि वह दिक्काल से अनवच्छिन्न है, दिक् और काल से परे है। चौथी बात भी निश्चित रूप से कही जा सकती है कि आत्मा एक और अखण्ड है। चेतन अनेक है परन्तु आत्मा, चेतना, चेतन होने की योग्यता, ज्ञाता, भोक्ता, कर्ता होने की

(8) सं० पं० श्रीरामशर्मा, वैशेषिक दर्शन, 47, बरेली संस्कृति संस्थान 1990।
(9) श्री सम्पूर्णानंद, चिहिलास पृष्ठ 154 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि० 2016 वि०।
(10) श्री सम्पूर्णानंद चिहलास, पृष्ठ 160–161, वाराणसी ज्ञान मण्डल लि० 2016 वि०।

शक्ति एक हैं। पांचवी बात यह है कि आत्मा एक रस है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। सारांश यह है कि आत्मा एक अखण्ड, दिक्काला नवच्छिन्न, दृशिमात्र, चित्त मात्र केवल ज्ञान स्वरूप, सच्चिदानंद (सत्+चित्+आनंद) है।''

ईश्वर सम्बन्धी विचार

श्री सम्पूर्णानंद ने अपने ग्रंथ 'चिहिलास' के ज्ञानखण्ड के द्वितीय अध्याय मनः प्रसूति में ईश्वराधिकरण में लिखा है कि यह बहुत पुराना और व्यापक विश्वास है कि इस जगत् का कोई कर्ता है, इस जगत् का पालन भी हो रहा है और वही एक दिन जगत् का संहार करेगा। इस कर्ता, पालक, संहर्ता को ईश्वर कहते हैं। ईश्वर प्रत्यक्ष का विषय नहीं है अतः उसका ज्ञान अनुमान और शब्द प्रमाण से ही हो सकता है। इसके बाद ईश्वर के अस्तित्व के न मानने वाले सांख्य के तर्क का तथा ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने वाले तर्क पर विचार प्रस्तुत किये हैं। तत्पश्चात् ईश्वर से उनका क्या तात्पर्य है, वह इस प्रकार दिया है ।

''चेतना के सक्रिय रूप का नाम चित्त है। चेतना ब्रह्म है और परमात्मा उसका सक्रिय रूप है। अतः परमात्मा ही अपना चित्त है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा ही ज्ञाता है और परमात्मा ही ज्ञान का साधन संस्कारादि रहित निर्मल सूक्ष्म चित्त है। इस आदि चित्त रूपी ब्रह्म में, ब्रह्म का जो प्रतिबिम्ब है व परमात्मा है। परमात्मा की ईश्वर और हिरण्यगर्भ दो और संज्ञाएं हैं। जब परमात्मा को चित्त रूप से निर्दिष्ट करना होता है उस समय उसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। यह वह चित्त है, जिसमें अभी कृतत्व–भक्तित्व व्यक्त नहीं हुए और संवित् नहीं उठ रहे हैं। परमात्मा –ईश्वर–हिरण्यगर्भ में सारा जगत् है। हिरण्यगर्भ में ज्ञातृत्व शक्ति के रूप में है, इस शक्ति के द्वारा ईश्वर अपना ज्ञाता है।[11]''

[12]''माया सबल ब्रह्म परमात्मा का ही नाम ईश्वर है। वही एक से अनेक होकर जीवात्मा हुआ है। उसी की बुद्धि हिरण्यगर्भ से सारा जगत् निकाला है, महाप्रलय के बांद फिर उसी में समा जाता है।''

श्री सम्पूर्णानंद योगी तथा उपासक है। योग के अष्टांगों में दूसरा अंग नियम है। नियम पॉच है, शौंच, संतोष, तप, स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः 2/32 अर्थात् शौंच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राविधान ये नियम हैं। ईश्वर प्रावीधान पॉचवॉ नियम है। महर्षि पंतजलि ने ईश्वर प्राविधान से समाधिकी सिद्धि होना प्रतिपादित किया है। समाधि सिद्धीश्वर प्राणिधानात् 2/45 श्री सम्पूर्णानंद ने ईश्वर की उपासना करने वाले व्यक्ति योगी तथा ईश्वर प्राविधान के बारे में लिखा है।

(11) श्री सम्पूर्णानंद, चिहिलास पृष्ठ 173–174 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।
(12) श्री सम्पूर्णानंद चिहलास, पृष्ठ 202 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।

"ईश्वरोपासक में चरित्रगुण तो होना ही चाहिए, उसका सबसे बडा साधन अनुरक्ति है। अनुरक्ति को भक्ति, ईश्वर, प्राणिधान ओर प्रपत्ति भी कहते हैं। भक्त चारों ओर से अपने चित्त को बटोरकर ईश्वर के चरणों में उसे लगा देता है। अपनी सारी सम्पत्ति ईश्वरार्पण समझता है। अपने सारे कर्मो को ईश्वर प्रेरित मानता है। प्रत्येक वस्तु को ईश्वर की विभूति समझता है। प्रत्येक दृग्विषय को ईश्वर की शक्ति की अभिव्यक्ति मानता है, सुख–दुख को ईश्वर की देन मानकर शिरोधार्य करता है।[13]"

सृष्टि व सृष्टिक्रम प्रलय (सर्ग–प्रतिसर्ग)

ईश्वर के अस्तित्व के पक्ष मों जो तर्क दिये जाते हैं, उनमे इस जगत् को उत्पन्न करने वाला एवं उसके नष्टकर्ता की मान्यता भी है। हम वस्तुओं का बनना–बिगडना देखते हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस जगत की कभी सृष्टि हुई होगी, नाश भी होगा। भारतीय समाजवादी चिंतकों को कहना है कि जिसको वस्तुओं का बनना बिगडना कहते हैं, उसमे छोटे टुकडों के मिलने से बडे पिण्ड बन जाते हैं और बडे पिण्ड टूटकर छोटे टुकडों में बिखर जाते हैं। तत्वों के मेल से मिश्रित पदार्थ बनते है और मिश्रित पदार्थों के अवयव पृथक हो जाते हैं, स्थूल से सूक्ष्म रूपों में परिणत हो जाते हैं, परन्तु ऐसा कदापि नहीं होता कि जो है वह कुछ नहीं हो जाय, या कुछ नहीं से कुछ बन जाय। सत् का असत् नहीं होता, असत् से सत् नहीं निकलता। बनना–बिगडना केवल रूपान्तरित होने का नाम है। इसको हम सर्ग–प्रतिसर्ग कहते हैं, पर इसमें उत्पत्ति विनाश की कोई बात नहीं है।

[14]"जगत के उत्पत्ति उसके स्वरूप के बारे में वे अपने निष्कर्ष की अभिव्यक्ति इस प्रकार देते हैं –

"चरितार्थ यह निकला कि जिसको हम जगत कहते है, वह सदा एक सा नहीं रहता, रूप बदलता रहता है, पर उसका न प्रागभाव था, न प्रहवंसाभाव होगा, परिणाम प्रवाह निरंतर जारी रहता है, इसलिए उसके आत्यंतिक उत्पाद और विनाश की कल्पना निराधार है[15]"।

प्रतिसर्ग – प्रलय के बारे में श्री सम्पूर्णानंद ने लिखा है –

"विज्ञान को ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वायु की सक्रियता कम हो रही अर्थात् धीरे–धीरे सारे भौतिक पिण्ड निश्चेष्ट, गतिहीन होते जा रहे हैं। यदि ऐसा है तब भी संभवतः एक दिन इन पर प्राणी न रह सकेगें, परन्तु जीव नष्ट नहीं होते, वह प्रसुत्त हो जाते हैं। ऐसी दशाओं, जिसमें जगत का बहुत बडा भाग नष्ट या जीवों के भोग के अयोग्य हो जाता है, महाप्रलय कहते हैं। महाप्रलय में उस खण्ड के जीव हिरण्यगर्भ में निमज्जित रहते हैं जब फिर

(13) श्री सम्पूर्णानंद, चिहिलास पृष्ठ 204 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।
(14) श्री सम्पूर्णानंद चिहलास, पृष्ठ 110 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।
(15) श्री सम्पूर्णानंद चिहलास, पृष्ठ 111 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।

परिस्थिति अनुकूल होती है तो नयी सृष्टि होती है। यो ही सर्ग और प्रतिसर्ग का प्रवाह चला जाता है।[16]"

सृष्टि क्रम

श्री सम्पूर्णानंद ने संवत् 1998 वि0 में 'भारतीय सृष्टि क्रम विचार' नामक पुस्तिका में भारतीय दार्शनिकों द्वारा सांख्य, वेदांत, वैशेषिकों द्वारा सृष्टिक्रम की समीक्षा करते विज्ञान में हुए खोजों से ज्ञात जानकारी का उपयोग करते हुए की है। उन्होंने इस बात पर खेद व्यक्त भी किया है। "हमारे पंडित वर्ग ने स्वतंत्र विचार करना छोड़ दिया है, आजकल विज्ञान के अविष्कारों ने जगत के सम्बन्ध में जो प्रकाश डाला है, उसको पंडित समाज को पता नहीं है, अतः वे इस युग के उपयुक्त स्वतंत्र टीका भी नहीं लिख सकते, केवल पुरानी टीकाओं को रटने रटाने में अपनी इतिकर्तब्य मानते हैं।"[17]

यह जगत् महाभूतों से निर्मित हुआ है। किसी दर्शन नें चतुर्भूत, वायु, तेज, जल एवं क्षिति को तथा अन्य ने पंचमहाभूत आकाश, वायु, तेज, अप और क्षिति जगत की निर्माण सामग्री कहा है, किन्तु उनके अर्थ स्पष्ट एवं सर्व सम्मत नहीं है। श्री सम्पूर्णानंद ने अपना मत दिया है"[18] –

"इस वैज्ञानिक युग में महाभूत केवल शास्त्रार्थ का विषय नहीं रह सकते। विज्ञान ने इस सम्बन्ध में बडी खोज की है, और जगत जिस सामग्री से बना है, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। यदि इस क्षेत्र में दर्शन का अपना कुछ वक्तब्य है तो वह ऐसा हो ना चाहिए, जिसका विज्ञान के साथ सामंजस्य हो अन्यथा वह अमान्य होगा।"

भारतीय समाजवादी चिंतकों ने वेदांत सांख्य और वैशेषिक दार्शनिकों के द्वारा सृष्टिक्रम को चित्र द्वारा अंकित करने के पश्चात् उनके भेद को अंग्राकित प्रकार से स्पष्ट किया है "वेदांत के अनुसार महाभूत क्रमशः ब्रह्म से निकले हैं और शब्दादि इनके गुण हैं। सांख्य के मत से पुरूष के सन्निध्य में प्रधान में विकार उत्पन्न होता है। तन्मात्राएं इसी प्रकार की क्रमागत विकार हैं। इनमें से महाभूत निकले हैं। महाभूत एक दूसरे से स्वतंत्र हैं, अर्थात इनमें कोई निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कारण कार्य सम्बन्ध नहीं है। वैशेषिक कहता है कि पांचों महाभूत नित्य ओर स्वतंत्र है और शब्दादि इनके गुण हैं।"

श्री सम्पूर्णानंद ने पंचमहाभूतों आकाश, वायु, तेजस अप और क्षिति के बारे में अपना विज्ञान से अविरोधी मत देते हुए लिखा है।

(16) श्री सम्पूर्णानंद, चिद्विलास पृष्ठ 194–195 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।
(17) सम्पूर्णानंद, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, पृष्ठ 1, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा 1996 वि0।
(18) सम्पूर्णानंद, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, पृष्ठ 22, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा 1996 वि0।

आकाश

"आकाश पहला महाभूत है। आकाश को दिक् से भिन्न मानना अनावश्यक है। आकाश ही वह अवकाश देता है जिसमें सब वस्तुएं रहती हैं और घटनाएं घटती हैं। आकाश अखण्ड और निःसीम है, इसीलिए व्यापकता की दृष्टि से ईश्वर की उससे उपमा दी जाती है।"[19]

वायु

"स्पर्शयुक्त होकर आकाश का रूप भी बदला। इस नये रूप में उसे वायु कहते हैं। वायु गतिशील है। मेरा विश्वास है कि वायु शब्द से प्राचीन आचार्यों का तात्पर्य भौतिक शक्ति के सूक्ष्मतर रूप में था चाहे वह विद्युत हो या विद्युत से भी सूक्ष्म और जिसका अभी विज्ञान को पता नहीं है। शक्ति का धर्म है प्रकंपन गतिमत्ता।"[20]

तेज

"रूप से तेज नामक तीसरा महाभूत प्रकट हुआ। तेज आग नहीं है, न नैयायिकों के कथन के अनुसार सोना उसका धनीभूत रूप है। मेरी समझ में विद्युत युक्त कणों की अवस्था को तेजस कहा है वे निरंतर प्रकंपन की दशा में रहते हैं। कण कहीं टूटकर शक्त्यात्मक हो जाते हैं शक्ति कहीं मूर्त होकर अपने दृव्यमान गुण को धारण करके विद्युतकण बनती है"[21]।

अप

"अप का अर्थ जल नहीं हो सकता। पुराणों में ही नहीं अपितु श्रुति में भी वही कहा है कि अप से सृष्टि होती है और इसी में लीन होती है। कार्य कारण लय होता है कारण कार्य में नहीं तेज अप का कारण है, इसलिए अप तो तेज में विलीन हो सकता है पर तेज अप में विलीन नहीं हो सकता। सूर्य्यादि का अप से निकलना और उसी में लीन होना बतलाया गया है। अतः अप् का अर्थ जल नहीं हो सकता। यह ठीक है कि पीछे के लोगों ने नासमझी के कारण अप को जलवाची मान लिया।"[22]

क्षिति

"योगियों का कथन है कि उनको बराबर सूक्ष्म रसों और गंधों की अनुभूति न तो मिट्टी है न यह पृथ्वी। यह शब्द सभी ठोस, तरल और वाष्पीय द्रव्यों के लिए आया है। सभी तत्व और तत्वों के मिश्रण से बने सभी दूसरे पदार्थ क्षति के अन्तर्गत हैं।[23]"

---

(19) सम्पूर्णानंद, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, पृष्ठ 39–40, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा 1996 विं0।
(20) सम्पूर्णानंद, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, पृष्ठ 39–40, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा 1996 विं0।
(21) सम्पूर्णानंद, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, पृष्ठ 42, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा 1996 विं0।
(22) सम्पूर्णानंद, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, पृष्ठ 43–44, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा 1996 विं0।
(23) सम्पूर्णानंद, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, पृष्ठ 45, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा 1996 विं0।

भारतीय समाजवादी चिंतकों ने ऐसा विश्वास व्यक्त किया है कि जन ऋषियों ने भारतीय दर्शन की नींव डाली थी वे योगी थे और उनको एतद्विषयक ज्ञान समाधि की अवस्था में प्राप्त हुआ था। इसी संदर्भ में डॉ0 सम्पूर्णानंद ने अपने द्वारा निकाले गये अर्थ के बारे में लिखा है –

"भूतों के सम्बन्ध में मेरा यही मत है जहॉ तक मैं देखता हूँ यह विज्ञान सम्मत है मेरा विश्वास है कि मैं इस प्रकार वही अर्थ दिखला रहा हूँ जो प्राचीन आचार्यो को अभिमत थे नवीनों के पास न योग का अनुभव था न वैज्ञानिक अनुभव। इसी से वे लोग चूक गये।[24]"

दिक्

श्री सम्पूर्णानंद ने दिक् और काल के बारे में विस्तार से विचार व्यक्त किये है। दिक् की परिभाषा देते हुए श्री सम्पूर्णानंद कहते है [25]"जगहों के समुदाय को आकाश या दिक् कहते हैं। दिक् वह है जो घटनाओं को अर्थात् इन्द्रिय ग्राहय विषयों को अवकाश देता है, जिसमें इनके सबधर्म परिणाम होते हैं" हमको दिक् में तीन दिशाओं की प्रतीत होती है। समतल मे एक दूसरे के समकोण पर काटने वाली दो दिशाएं हैं और तीसरी इन दोनों को समकोण पर काटती है। भौगोलिक शब्दों में इनका पूर्व–पश्चिम, उत्तर–दक्षिण और ऊपर–नीचे कह सकते हैं। परन्तु दिशाएं वस्तुगत नहीं वरन् बुद्धि निर्माण है। वस्तुतः दिक् एक और अखण्ड है वह सर्वव्यापक है अर्थात् सर्व इन्द्रियग्राह्य विषयों से ओत प्रोत है, उनके भीतर और बाहर व्याप्त है। शरीर के एक–एक परमाणु के भीतर और बाहर है। सब वस्तुएं उसमें और वह सब वस्तुओं में है। दिक् गत अनुभव स्वभावतः सापेक्ष है। स्थान परिवर्तन दाहिने–वाये, ऊपर–नीचे को उलट देता है। दिक् मैं स्वयं कोई स्थिर विन्दु नहीं है किसी विन्दु को स्थिर मानकर ही दूसरे विन्दुओं की दिशाओं का निर्देशन किया जा सकता है।[25]"

जीवन में दिक् के प्रयोग एवं उपयोग को प्रतिपादित करते हुये श्री सम्पूर्णानंद ने कहा है – [26]"गणित शास्त्र में दिक् का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। दिक् की सत्ता को अभ्युगत किये बिना गणित का काम चल ही नहीं सकता। गणित शास्त्र भी दिक् को अखण्ड मानता है।[26]"

काल

सांख्य और वेदांत के आचार्यो ने काल की उत्पत्ति के बारे में कुछ नहीं लिखा इससे अनुमान होता है कि वे काल को पृथक पदार्थ नहीं मानते थे। डॉ सम्पूर्णानंद ने काल और काल प्रवाह को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है[27]"।

(24) सम्पूर्णानंद, भारतीय सृष्टिक्रम विचार, पृष्ठ 45, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा 1996 विं0।
(25) सम्पूर्णानंद, चिहिलास पृष्ठ 164 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।
(26) सम्पूर्णानंद, चिहिलास पृष्ठ 132 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।
(27) सम्पूर्णानंद, चिहिलास पृष्ठ 67–68 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।
(28) सम्पूर्णानंद, चिहिलास पृष्ठ 67 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 2016 वि0।

"ज्ञाता को अपने चित्त के परिणामों का जो ज्ञान होता है, उसका नाम काल है। परिणामों का नैरन्तर्य काल प्रवाह का हेतु है। चेतन को अपनी सत्ता का जो सतत् अनुभव होता रहता है, उसे क्षण कहते हैं। अनुभवों की यह अविच्छिन्न धारा, क्षणों का यह अटूट तॉता, काल प्रवाह है।"

काल और दिक् की सीमा तथा उनके स्वरूप के भेद को स्पष्ट करते हुये समाजवादी विचारक श्री सम्पूर्णानंद ने लिखा है [28]"विश्व का वही अंश दिक् में आता है जो इन्द्रिय ग्राह्य है। जो अंश किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है वह दिक् के बाहर है परन्तु वह काल की सीमा के भीतर होता है। दिक् और काल के स्वरूप में भेद है। दिक् की सत्ता की अनुभूति चित्त के भीतर नहीं होती, परन्तु काल की भी अनुभूति चित्त के भीतर होती है।"

श्री सम्पूर्णानंद ने काल दो प्रकार का माना है। (1) दिक् में काल का अध्ययन और (2) वास्तविक काल। वह काल को जीवात्मा का स्वरूप मानते हैं दोनों प्रकार के कालों का विवरण निम्नांकित प्रकार से दिया है।

"काल दो प्रकार का होता है। एक तो काल वह है जिसका हम कला, काष्ट, मुहूर्त, मिनट, घंटा, दिन, वर्ष में विभक्त करते हैं और नापते हैं। ऐसा नापना तभी हो सकता है, जब एक वस्तु की दूसरी से तुलना की जा सके और तुलना तभी हो सकती है, जब दोनों वस्तुए एक दूसरे के साथ–साथ रखी जा सकें। यह बात दिक्, आकाश में ही संभव है। अतः हम इसको काल के नाग से नापते हैं, वह काल नहीं दिक् में काल की प्रतिच्छाया है। वेदांत के शब्दों में वह दिक् में काल का अध्यास है।

"वास्तविक काल अनुभूति का विषय है। दृष्टा, जीवात्मा को निरन्तर नई अनुभूतियां होती रहती हैं। जो अनुभूति हो गई, वह फिर सामने नहीं आती उसकी तुलना किसी और अनुभूति से नहीं की जा सकती पर कोई अनुभूति नष्ट नहीं होती। वह अपना संस्कार छोड जाती है, जो पूर्ववर्ती संस्कारों से मिलकर एक हो जाता है। बस जीवात्मा की अपनी इस संस्कारमाला की, यो कहिए कि अपनी, जी अनुभूति होती है, वहीं कलानुभूति है। काल जीवात्मा का स्वरूप है"[29]।

ज्ञान मीमांसा निष्कर्ष :–(प्रमाण मीमांसा–एपिस्टोमालाजी)

ज्ञानमीमांसा दो शब्दों ज्ञान+मीमांसा से बना है। शब्दार्थ होता है ज्ञान की मीमांसा। इसके पूर्व तत्वमीमांसा शब्द प्रयुक्त हो चुका है।

---

(28) सम्पूर्णानंद, चिहिलास पृष्ठ 67 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि० 2016 वि०।
(29) वही।

मीमांसा का अर्थ

(जैसा कि प्रमाणिक हिन्दी शब्दकोष में दिया) है अनुमान और तर्क वितर्क से यह निश्चय करना कि कोई बात वास्तव में कैसी है''[30]।

''ज्ञान का अर्थ'' वस्तुओं और विषयों की वह जानकारी जो मन या विवेक को होती है, बोध जानकारी (नालेज) 2– यथार्थ बात, या तत्व की पूरी जानकारी, तत्वज्ञान''[31]।

तत्व

''[32](1) वास्तविक या मौलिक बात, गुण या आधार असलियत (2) जगत का मूल कारण (सांख्य में 24 तत्व माने गये हैं) (3) पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, में पॉच भूत (4) ब्रह्म (5) मुख्य और महत्वपूर्ण बात,

श्री रामचन्द्र वर्मा ने अध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्रों में प्रयुक्त ज्ञान को स्पष्ट करते हुए लिखा है –

''आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्रों में आत्मा और ईश्वर के स्वरूप और दोनों के पारस्परिक सम्बंधों की ऐसी जानकारी या 'बोध' को 'ज्ञान' कहते हैं जिनसे हमारी दृष्टि सभी भौतिक और सांसारिक चीजें या बाते बिल्कुल असार, तुच्छ और नश्वर जंचने लगती हैं। इस प्रकार का ज्ञान मनुष्य को आवागमन के बंधनों से छुड़ाकर मुक्ति या मोक्ष दिलाने वाला माना जाता है। ऐसे ज्ञान को तत्वज्ञान और ब्रह्मज्ञान भी कहते है।''

इसके पूर्व तत्वमीमांसा के अंतर्गत तत्वों की मीमांसा उन तत्वों की, जिनका न्याय, वैशेषिक सांख्य, मीमांसा तथा वेदांत में वर्णन है, विवेचन की गई थी। तत्वज्ञान को अंग्रेजी में मेटफिजिक्स कहा जाता है। ज्ञानमीमांसा को प्रमाणमीमांसा कहा जाता है, इसके लिए अंग्रेजी भाषा का शब्द एपिस्टोमॉलॉजी प्रयुक्त होता है। इसका विषय ज्ञान की विवचेना है। अर्थात ज्ञान किसे कहते है, उसका स्वरूप क्या है, ज्ञान की सीमा क्या है, तथा उसकी प्रमाणिकता, सत्यार्सय का निर्णय आदि विषयों की समीक्षा की जाती है।

न्यायदर्शन में प्रथम सूत्र में तत्वज्ञानात्।·निश्रेयसाधिगमः (प्रमाण प्रगेय आदि सोलह पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति कही है तथा सत्र में दुख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्याज्ञान के उत्तरोत्तर छुटकारा पाने पर अपवर्ग की प्राप्ति होना लिखा है। इस प्रकार तत्वज्ञान होना तथा मिथ्याज्ञान से छुटकारा दो अपेक्षाएं मोक्ष (जीवन के लक्ष्य)) की प्राप्ति हेतु की है।

(30) संव रामचन्द्र वर्मा, प्रमाणिक हिन्दी शब्दकोष, पृष्ठ 668, इलाहाबाद, लोकभारती 1997।
(31) वही, पृष्ठ 308।
(32) वही, पृष्ठ 344।

वैशेषिक में पहले अध्याय के चौथे सूत्र में दृव्यगुण कर्म सामान्य विशेष और समवाय (छः) पदार्थों के तत्वज्ञान से निःश्रेयस (तत्वज्ञानात् निःश्रेयसम्) कहा है। दोनों दर्शनों में (तत्वज्ञानात् निःश्रेयस्) तत्व ज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति प्रतिपादित की गई है।

तत्वज्ञान में दो शब्दों तत्व+ज्ञान का योग है। तत्वों के ज्ञान पर विशेष बल दिया है जबकि यर्थाथ (तात्विक) ज्ञान पर तथा प्रमाण प्रमेय का प्रतिपाद्य विषय बनाया है। न्यायशास्त्र में 'ज्ञान' जीवात्मा का विशेष गुण है। चक्षु, रसना, घृणा, त्वक् तथा क्षेत्र पांचों इन्द्रियों के द्वारा एवं मन की सहायता से आत्मा में ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ज्ञान आत्मा का आगन्तुक धर्म है स्वाभाविक नहीं।

भारतीय दर्शन के आचार्य ज्ञानमीमांसा कें आधार पर ही अपने सिद्धांतों का विवेचन करते हैं। भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों ने ज्ञानमीमांसा पर विचार किया है। भारतीय दर्शन की तत्व मीमांसा ज्ञानमीमांसा पर ही प्रतिष्ठित है। श्री मलकानी से ज्ञानमीमांसा के महत्व के सम्बन्ध में लिखा है – [33]"ज्ञान सिद्धांत में सर्वदा तत्वमीमांसा का अनुगमन किया है और यह उसका अंग बनकर रहा है। वस्तुतः तत्वमीमांसा का अध्ययन ज्ञान सिद्धांत के अभाव में अपूर्ण है, परन्तु ज्ञान सिद्धांत पर दार्शनिकों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से बल दिया है। कान्ट के पूर्ववर्ती तर्क बुद्धिवादी दार्शनिक मुख्यतः तत्वमीमांसा के अध्ययन में संलग्न रहते थे और वे ज्ञानमीमांसा पर अत्यंत अथवा नहीं के बराबर ध्यान देते थे। दूसरे सिरे पर अनुभववादी ये जो ज्ञान के विश्लेषण पर अधिक बल देते थे उनकी तत्वमीमांसा नगण्य थी"।

पाश्चात्य दार्शनिकों में जान लॉक (1632–1704) ने ज्ञान मीमांसा को अपने अन्वेषण का विषय बनाया। जॉन वर्कले (1685–1753) ने उनका अनुसरण किया। डेविड ह्यूम ने भी ज्ञान की उत्पत्ति ज्ञान की प्रमाणिकता की विवेचना की। इमैनुएल कान्ट ने (1724–1804) ज्ञान मीमांसा को प्रमुखता दी।

श्री मलकानी ने ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में कान्ट के योगदान के विषय में लिखा है– [34]"ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि कान्ट में दार्शनिक चिंतन को एक नया भाडे प्रदान किया। उसने ज्ञानमीमांसा को अग्रभूमि में रखा। अनुभववादियों के समान उसने अनुभव और हमारे द्वारा यथार्थः जानी जा सकने योग्य वस्तु पर अधिक बल दिया।

ज्ञान के भेद

ज्ञान दो प्रकार का होता है, स्मरणात्मक ज्ञान, अनुभवात्मक ज्ञान।

अनुभूत पदार्थ के नष्ट हो जाने पर भी उससे उत्पन्न भावनारूप संस्कार अनुभवकर्ता के

(33) श्री धनश्यामदास रतनमल मलकानी, वेदांत ज्ञानमीमांसा, पृष्ठ 7, भोपाल म0प्र0 हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
(34) वही, पृष्ठ 1।

हृदय में विद्यमान रहता है। समान वस्तु के पुनः दर्शन होने पर सुप्त सरकार जागृत होकर दृष्टा के सामने अनुभूत पदार्थ को पुनः दर्शन होने पर सुप्त संस्कार जागृत होकर दृष्टा के सामने अनुभूत पदार्थ को पुनः लाकर उपस्थित कर देता है इसे ही स्मृति अथवा स्मरणात्मक ज्ञान कहते हैं। यह इसी जन्म में हो सकता है अथवा दूसरे जन्म में। इस ज्ञान को यथार्थ ज्ञान नहीं कहा जाता। स्मृति से भिन्न ज्ञानेन्द्रिय तथा वस्तु के संयोग से साक्षात् या परम्परा रूप में जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे अनुभव ज्ञान कहते हैं, इसे ही प्रभा कहते हैं। किसी वस्तु के यथार्थ रूप की अनुभूति प्रभा है। और ऐसे प्रभा के साधन को प्रमाण कहते हैं। उदयन ने "यथार्थनुभवः प्रमा तत्साधनं च प्रमाणम्" कहा है। इससे यथार्थज्ञान या सत्यज्ञान भी कहते हैं। जैसे सीप को सीप ही जानना, सर्प को सर्प ही जानना यथार्थ ज्ञान है, इसके विपरीत जो वस्तु जिस रूप में है उसे उस रूप में न समझना अप्रमा या अयथार्थ ज्ञान है जैसे सीप को चांदी समझना, अंधकार में रस्सी को सर्प समझना अयथार्थ ज्ञान है। न्यायमत में संशय, विपर्यय (विपरीत ज्ञान) तथा तर्क को अयर्थाथ ज्ञान माना गया है।

प्रमाता और प्रमेय

के बिना यथार्थ ज्ञान अपूर्ण रहता है। प्रमाता का अर्थ है– जानने वाला, दृष्टा और प्रमेय का अर्थ जिसे जानना है (ज्ञेय)

प्रमाण

प्रमा (यथार्थज्ञान) के साधन को प्रमाण कहते हैं अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञेयवस्तु (प्रमेय) के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो उसे प्रमाण कहते हैं।

प्रमा चार प्रकार की होती है (1) प्रत्यक्ष (2) अनुमिति (3) उपमिति (4) शब्द।

इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग से उत्पन्न अनुभव को प्रत्यक्ष अनुभव से साध्य का अनुभव अनुमति सादृश्य ज्ञान के द्वारा उत्पन्न अनुभव को उपमिति तथा शब्द की सहायता से उत्पन्न अनुभव को शब्द कहा जाता है। इन चारों प्रकार की प्रमाओं (ज्ञानों) को उत्पन्न करने में सबसे अधिक साधक को प्रमाण कहा जाता है। प्रमाओं के नाम से मिलते हुए नाम प्रमाणों के हैं यथा 'प्रत्यक्ष' 'अनुमान' और 'शब्द' प्रमाणों के बारे में दार्शनिकों में मतवैभिन्न हैं। जिसका दिग्दर्शन नीचे कराया जा रहा है।–

चार्वाक	1 प्रमाण केवल प्रत्यक्ष	
बौद्ध	2 प्रमाण	1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान
वैशेषिक	2 प्रमाण	1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान
सांख्य	3. प्रमाण	1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द
योग	3. प्रमाण	1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द
न्याय	4 प्रमाण	1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द, 4. उपमान
मीमांसा प्रमत	5 प्रमाण	1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द, 4. उपमान, 5. अर्थापत्ति
मीमांसिक कुमारेल मत वेदांत	6 प्रमाण	1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द, 4. उपमान, 5. अर्थापत्ति, 6. अभाव

(क) प्रत्यक्ष

इन्द्रिय और अर्थ (विषय) के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं। न्याय–दर्शन प्रत्यक्ष को परिभाषित करते हुए कहा (इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्वन्नं ज्ञानम व्यपदेशम् व्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्) न्याय 01.01.4 महर्षि गौतम का कथन है कि इन्द्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है, किन्तु सभी इन्द्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होते, जिसे शब्दों के द्वारा प्रकट न किया जा सके, जो भ्रम, संशय एवं विपर्यक से रहित हो। (अव्यभिचारि) ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान ही प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।

(ख) अनुमान

अनुमान परोक्ष ज्ञान है। (अनु+मान) अनु का अर्थ है पश्चात् और मान का अर्थ है ज्ञान। अथात् एक ज्ञान के पश्चात् होने वाले ज्ञान को अनुमान कहते हैं। अनुमान का आधार 'व्याप्ति' है। बिना व्याप्ति के अनुमान हो ही नहीं सकता। साहचर्य नियम को व्यांप्ति कहते है। (यत्र–यत्र धूमस्तत्र तत्र बहिरीति साहचर्य नियमों व्याप्तिः) अर्थात् जहॉ जहॉ धुआँ रहता है, वहॉ वहॉ आग रहती है, इस साहचर्य नियम को व्याप्ति कहते हैं। यहॉ धुएं के साथ अग्नि का नियत साहचर्य है, क्योंकि धुआं अग्नि के सब जगह पायी जाती है किन्तु अग्नि के साथ सब जगह धुआँ नहीं मिलता।

(ग) उपमान

'उपमान' वह प्रमाण है जिसके द्वारा किसी प्रसिद्ध वस्तु के सादृश्य (साधर्म्य) से किसी नयी वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है। (प्रसिद्ध साधर्यत्साध्य साधनमुपमानम् न्यायदश्न 1/1/6) यथा–एक व्यक्ति को, जिसने नीलगाय नहीं देखी है, कोई पुरूष बताता है कि नीलगाय गाय के समान होती है जब वह जंगल में जाता है, तो नीलगाय को देखता है, तो उसे गाय के समान नीलगाय होती है, कथन याद आता है, तब वह उसे नीलगाय मानता है यह उपमान प्रमाण है। उपमान को पृथक प्रमाण मानने के सम्बन्ध में दार्शनिकों में मतभेद है। चर्बाक उपमान का प्रमाण नहीं मानता, वैशेषिक उपमान को पृथक प्रमाण न मानकर अनुमान के अन्तर्भूत करता है। सांख्यदर्शन उपमान का अन्तर्भाव प्रत्यक्ष अनुमान में करता है। न्याय दर्शन, उपमान को अलग प्रमाण की मान्यता देता है। मीमांसा तथा वेदांत उपमान को प्रमाण स्वीकार करते हैं।

(घ) शब्द–प्रमाण

न्याय दर्शन में 'शब्द' को स्वतंत्र प्रमाण माना है। महर्षि गौतम के द्वारा आप्तपुरूष के वचन को (आत्तोपदेशः शब्दः) न्यायसूत्र में 1/1/7 शब्द प्रमाण कहा गया है। 'आत्त' पुरुष

को कहा जाता है जो वस्तु को यथार्थ रूप से जानता है। (आप्रस्तुयथार्थवक्ता) जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में कहने वाला 'आप्त' है।

अन्य प्रमाण

न्यायदर्शन में चार प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द माने हैं। मीमांस और वेदांती उपर्युक्त चार प्रमाणों के अतिरिक्त अर्थापत्ति और अभाव नामक दो प्रमाणों को और मान्यता देते हैं।

समाजवादी चिंतकों द्वारा प्रतिपादित ज्ञानमीमांसा

समाजवादी चिंतकों ने विभिन्न दर्शनों के द्वारा विश्व के बारे में विवेचन किये जाने एवं उसके सत्यांशों को पहचानने एवं इन सत्यांशों का समन्वय करने तथा स्वयं व्यापक सर्वग्राही दृष्टिकोण को अपनाने एवं उससे विश्व को निरीक्षण करने की आवश्यकता बतायी है तथा इस दृष्टिकोण से ही यथार्थ ज्ञान परमसत्य का अनुभव होना कहा है सुप्रसिद्ध समाजवादी चिंतक श्री सम्पूर्णानंद ने दर्शनों के समन्वयात्मक रूप को अपने ग्रंथ 'चिहिलास' में प्रस्तुत किया है।

श्री सम्पूर्णानंद के दर्शनग्रंथ 'चिहिलास' के अधार खण्ड के पांचवें अध्याय का शीर्षक है। दार्शनिक पद्धति इसमें वर्गीकरण, समन्वय, निदिध्यासन और विनियोग अधिकरणों में दर्शन के अध्ययनों को किन प्रक्रियाओं को अपनाना होता है उसका वर्णन किया गया है। उनके अनुसार दार्शनिक समूचे विश्व के स्वरूप को पहचानना चाहता है, परन्तु विश्व तो बहुत बड़ा है इसके किसी एक अंग का भी पूरा–पूरा अध्ययन एक जन्म में नहीं हो सकता अतः दार्शनिक का पहला कार्य वर्गीकरण करना होता है, कोई भी वर्गीकरण कृत्रिम होता है और अपने सुभीते के लिए किया जाता है दूसरे दृष्टिकोण से एक वस्तु दूसरे वर्ग में हो जायेगी परन्तु दार्शनिक का काम हल्का हो जाता है। विज्ञान के विभिन्न अंग वर्गीकृत विश्व का ही अध्ययन करते हैं। विज्ञान के अंगों में प्रमुख गणित, भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान और मनोविज्ञान ने जीव–अजीव, जड़–चेतन, भौतिक–अभौतिक के सम्बन्ध में क्या निष्कर्ष निकाला है उससे दार्शनिक को अपना मत स्थिर करना होता है।

श्री सम्पूर्णानंद ने दार्शनिक के अगले कार्य का निर्देश देते हुए लिखा है"[35] –

"दार्शनिकों का काम इन प्रतिशास्त्र सिद्धांतों को मिलाकर, इनका समन्वय करके, उन सिद्धांतों को स्थिर करना है जो विश्व का सच्चा स्वरूप द्योतित कर सकें। जिस प्रकार दो और दो जोडकर चार होते हैं, उस प्रकार इन विभिन्न सिद्धांतों को जोडा नहीं जा सकता और यदि जोडा भी जा सकता तो इन को जोडने से जगत का स्वरूप नहीं बन सकता।"

(35) सम्पूर्णानंद, चिहिलास, पृष्ठ 43 वाराणसी ज्ञानमण्डल लि0, 2016 वि0।

श्री सम्पूर्णानंद विश्लेषण और मीमांसा को समन्वय का अंग बताते हुए समन्वय करने में दार्शनिक को क्या करना होता है, उस प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं"[36]।

"समन्वय करते समय लब्ध सामग्री पर विचार करके उसमें से कुछ का जो मिथ्या या गौण या अनावश्यक प्रतीत हो, त्याग करके शेष का संग्रह करना पडता है। समन्वय की प्रक्रिया जहदजहत् स्वरूपा होती है। जहद् जहत् का अर्थ है कुछ को छोडना कुछ को लेना। जो सामग्री ली जाती है उसकी कभी–कभी मीमांसा करनी पडती है। सच तो यह है कि समन्वय के पश्चात् इस प्रकार की सारी सामग्री की मीमांसा स्वतः हो जाती है। समन्वय करके जो सिद्धांत निकला, वह वस्तु स्वरुप का प्रकाशक है, कल्पना मात्र नहीं। इसकी परख इस बात से होती है कि वह सब प्रतिशास्त्र सिद्धांनों को एक सूत्र में ग्रंथित कर सकता है या नहीं और सब सेन्द्रिय अतीन्द्रिय अनुभवों पर प्रकाश डाल सकता है या नहीं। जो दार्शनिक सिद्धांत इस बात में होगा वह उतना ही सत्य होगा तथा मुमुझु को उतना ही परितोष देगा।[36]"

उक्त वर्गीकरण एवं समन्वय करने की प्रक्रिया को श्री सम्पूर्णानंद ने अपना कर सभी दर्शनों की सारवस्तु को एकत्र कर, गौणबातें को छोडते हुये प्रमाण या ज्ञान की मीमांसा की है। श्री सम्पूर्णानंद के अनुसार "किसी तत्व की मीमांसा करने से तात्पर्य है उसके अर्थ को ठीक–ठीक लगाना। व्याप्ति को समष्टि की पीठिका में देखना, प्रत्येक पृथक वस्तु का कुल में स्थान पहिचानना, मीमांसा है।" सम्पूर्णानंद ने विभिन्न दर्शन, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा वेदांत चार्वाक, जैन, बौद्ध, अथवा पाश्चात्य दर्शन, पदार्थों व प्रमेयों तथा सत्यज्ञान, प्रमाणों के बारे में क्या उहापोह की है, का अलग–अलग विश्लेषण न करके उनके मुख्य अंशों का समन्वय करके सारतत्व को अपने ग्रंथ में उचित शीर्षक, उपशीर्षकों में विवेचित किया है। सार रूप में उन्होंने लिखा है –

"शुद्ध ज्ञान का नाम 'प्रमा' है। प्रमा के साधनों को प्रमाण कहते हैं, ये साधन तीन हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इनके दुरूपयोग से यर्थाथ ज्ञान होता है। प्रमाणों में सबसे महत्व का स्थान प्रत्यक्ष का है। शेष दोनों प्रमाण इसी पर निर्भर करते हैं"[37]।

(1) प्रत्यक्ष

समाज वादी चिंतक श्री सम्पूर्णानंद ने प्रत्यक्ष के दो भेद बताये हैं। सेन्द्रिय (इन्द्रियों के माध्यम से होने वाला) और अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष। ज्ञानेन्द्रियॉ पांच मानी गयी हैं श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, आस्वादन और घ्राण और इनके विषय क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध है। इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले ज्ञान को सेन्द्रिय प्रत्यक्ष कहा है। इस प्रत्यक्ष के लिए विषय, इन्द्रिय और अन्तःकरण का सन्निकर्ष आवश्यक कहा। न्यायदर्शन में प्रत्यक्ष होने को नकारात्मक ढंग से कहा गया है।

(36) श्री सम्पूर्णानंद, चिहिलास, पृष्ठ 45 वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 2016वि0।
(37) वही।

(नात्ममनसों सन्निकर्षो अभावे प्रत्यक्षोत्यात्तिः 2/1/21 न्याय सूत्र) अर्थात आत्मा और मन के संयोग के अभाव होने से प्रत्यक्ष की उत्पत्ति संभव नहीं।

श्री सम्पूर्णानंद ने आत्ममनस् का अर्थ आत्मा और मनन करके अन्तःकरण लगाया है। उहोन्ने इन्द्रिय, अन्तःकरण और सन्निकर्ष शब्दों के अर्थ तथा कार्य की विवेचना की है।

अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष से क्या आशय है, को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है –

"ऐसी भी ज्ञातब्य बाते है; जो किसी इन्द्रिय का विषय नहीं होती चित्त केवल बाहरी वस्तुओं को ही नहीं जानता, अपनी वृत्तियों को भी जानता है। अपने संकल्प, अपनी इच्छाएं, राग, द्वेष, आशा, भय, यह सब चित्त के परिणाम हैं और चित्त इनको जानता है। इनका ग्रहण किसी इन्द्रिय के द्वारा नहीं होता। जिस प्रकार दीपक दूसरी वस्तुओं को प्रकाशित करता है, और अपने स्वरूप को भी प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अन्तःकरण दूसरी वस्तुओं का भी प्रत्यक्ष करता है और अपना भी प्रत्यक्ष करता है । यह प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहलाता है।[38]"

(ख) अनुमान

प्रमा का दूसरा साधन 'अनुमान' है। यदि अनुमान पर विश्वास न किया जाय तो जगत् का बहुत सा व्यवहार बंद हो जायेगा। अनुमान से वही काम किया जाता है, जहॉ प्रत्यक्ष सुकर नहीं होता परन्तु उसकी सच्चाई की कसौटी प्रत्यक्ष ही है। हमको यह निश्चय रहता है कि प्रत्यक्ष अनुमान का समर्थन करेगा। अनुमान स्वतंत्र प्रमाण नहीं है। वह प्रत्यक्ष मूलक है।

(ग) शब्द

प्रमा का तीसरा साधन 'शब्द' है। व्यवहार में इसका परित्याग नहीं किया जा सकता। हम बहुत सी बाते दूसरे के कहने से मान लेते हैं। सारी पृथ्वी का भूगोल इसी प्रकार पढते हैं। यह विश्वास रहता है कि जो बाते बतयी जा रही हैं, उसका प्रत्यक्ष किया जा सकता है। रोगी वैद्य की इस बात को मान लेना कि अमुक औषधि पीने से व्यथा का उपशमन होगा और उसका कल्याण होगा, यहॉ भी शब्द की कसौटी प्रत्यक्ष ही है। तर्क से शब्द की चाहे जितनी सिद्धि की जाय परन्तु अंत में 'शब्द' की पुष्टि प्रत्यक्ष से होनी ही चाहिए। शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान के यथार्थ होने के लिए दो बाते आवश्यक हैं। कहने वाला आप्त हो और हम उसकी बात समझने में भूल न करें। आप्त उस व्यक्ति को कहते हैं जो वस्तु का यथार्थ ज्ञाता हो, यथा ज्ञान वक्ता हो और समझाने की शक्ति रखता हो।

(घ) अन्य प्रमाण

भारतीय समाजवादी चिंतकों ने विभिन्न दार्शनिकों द्वारा स्वीकार किये गये प्रमाणों को स्वतंत्र प्रमाण नहीं माना है। तर्क को उन्होंने अनुमान के अंग के रूप में स्वीकार किया है। श्री सम्पूर्णानंद

(38) श्री सम्पूर्णानन्द, चिद्विलास, पृष्ठ 30, वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0, 2016 वि0।

ने अन्य प्रमाणों के बारे में लिखा है–

[39]" विभिन्न शास्त्रकारों ने इन तीन "प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द" के अतिरिक्त कुछ और प्रमाणों का भी उल्लेख किया है परन्तु वस्तुतः उन सब का इन तीनों में मुख्यतः अनुमान और शब्द में अन्तरभाव हो जाता है।"[39]

"दार्शनिक ज्ञान के विनियोग के विषय में श्री सम्पूर्णानंद के द्वारा दो महत्वपूर्ण बाते कहीं हैं जो अन्य दार्शनिकों के निश्रेयस के अतिरिक्त है।

1. दार्शनिक ज्ञान विश्व के सत्यस्वरूप के ज्ञान धर्म ज्ञान का साधन होगा। हमकों उससे ज्ञात होगा कि जगत में हमारा क्या स्थान है, किस किस के साथ क्या सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में हमारे कैसे कर्तब्य उत्पन्न होते हैं और इन कर्तब्यों का किस प्रकार पालन किया जा सकता है। इसके साथ ही अज्ञान के कारण जो इच्छाभिघात होता है, वह नष्ट हो जायेगा कर्तव्य पालन की क्षमता आ जायेगी। ज्ञान की इस अवस्था को धर्ममेघ समाधि कहते हैं।
2. समुदाय के राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक जीवन की नयी व्यवस्थायें देश काल पात्र के अनुसार मीमांसा और उसका प्रयोग करने वाले धर्मज्ञ अर्थात् सच्चे दार्शनिक होगें। किसी भी दार्शनिक सिद्धांत के आधार पर व्यक्ति और समुदाय के जीवन को संचालित करना अव्यवस्था से लाख गुना श्रेयस्कर है। ज्ञान का यह बहुत बडा विनियोग है।
3. ज्ञान के लिए सबसे बड़ा उपयोग अज्ञान की निवृत्ति है। अज्ञान बंधन है, ज्ञान उस बंधन का कटना है। अज्ञान से छुटकारा पाना, मोक्ष, स्वतः लक्ष्य है। वह स्वयं परमश्रेय, परमानन्दस्वरूप है।"[40]

आदर्शवादी दृष्टिकोण सम्बन्धी निष्कर्ष :–

यदि भौतिकवाद तथा प्राकृतिवाद में चरम सत्ता जड़ प्रकृति है तो ठीक इसके विपरीत आदर्शवाद में सत्ता मनस् या आत्मा है। पाश्चात्य दर्शन में मनस् अथवा माइन्ड मस्तिष्क के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जाता, अपितु 'आत्मा' के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होता है। प्रकृतिवाद के अनुसार मानव–मनस् की व्याख्या जड़ दृव्य के माध्यम से की जा सकती है।, इसके विपरीत आदर्शवादी जड़ प्रकृति को ही वास्तविक नहीं मानता, अपितु उसे मनस् की अभिव्यक्ति मात्र मानता है।

आदर्शवाद के अर्न्गत जीवन के मूल्यों, आदर्शो एवं लक्ष्यों पर विचार किया जाता है। मूल्य एक सामान्य और अमूर्त गुण है, जो किसी चीज में निहित होता है, और उसके महत्व की ओर संकेत करता है। जीवन के लक्ष्य का निर्धारण दर्शन करता है, और उस

(39) श्री सम्पूर्णानन्द, चिहिलास, पृष्ठ 33, वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0, 2016 वि0।
(40) वही पृष्ठ 48–49।

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीवन के विभिन्न पक्ष प्रयत्न करते हैं।

शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में भारतीय समाजवादी चिंतकों ने कुछ ठोस दार्शनिक आधारों का सहारा लिया है। जहाँ तक शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण का सम्बन्ध है, ये मूलरूप से आदर्शवादी शिक्षा शास्त्री थी। उनका मत था कि शिक्षा में दार्शनिक आधार ही शिक्षा के नवनिर्माण में उचित दिशा प्रदान कर सकता है। अध्यात्मिक मूल्यों पर ही डॉ0 सम्पूर्णानंद, आचार्य नरेन्द्र देव एवं डॉ0 राममनोहर लोहिया की गहरी आस्था थी। और उन मूल्यों की जीवन में उपलब्धता ही मानव जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।

दर्शन अथवा जीवन दर्शन से व्यक्ति के जीवन–मूल्य भी प्रभावित होते है। यथा यदि दर्शन, जगत को भौतिक तत्वों से निर्मित मानता है तथा मनुष्य को भी भौतिक तत्वों से विकसित प्राणिमात्र मानता है। और मनुष्य एवं जगत् का सम्बन्ध केवल भौतिक घटकों का संघटन मात्र समझता है तो जीवन के मूल्य इस संसार में सुखपूर्वक रहने के भोगवादी जीवन के ही होगें और यदि जगत् अत्मिक तत्वों से बना स्वीकार करता है। तो जीवन मूल्य सदाचार प्रेरित होगें। उसके जीवन मूल्यों में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का समावेश होगा।

मूल्यशास्त्र के अन्तर्गत मुख्य भाग कर्तब्यों के निर्धारण एवं तदनुसार आचरण जिससे जीवन लक्ष्य की उपलब्धि हो सके, की विवेचना का है।

5. प्रयोजनवाद सम्बन्धी निष्कर्ष

प्रयोजनवाद दर्शन की वह शाखा है , जो किसी प्रागनुभूत अथवा पूर्व सिद्ध सत्य को स्वीकार नहीं करती। प्रयोजनवाद अमरीकी जनजीवन से उद्भुत दार्शनिक प्रणाली है।

प्रयोजनवाद ने एक ओर आदर्शवाद द्वारा प्रतिपादित पूर्व सिंद्ध सत्य के प्रति विरूद्ध आवाज उठाई, तो दूसरी ओर प्रकृतिवाद के अमानवीय वैज्ञानिक सत्य को विरोध किया। आदर्शवाद के अनुसार जगत् पूर्व निर्धारित तथा पूर्ण है और सत्य सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है। दैवी आदर्शवाद तो मनुष्य की नियति को भी किसी अज्ञात विश्वात्मा में स्थापित कर देता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के करने के लिए कुछ नहीं रह जाता। इसी प्रकार प्रकृतिवाद मनुष्य की प्रकृति को खिलौना मानकर उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर देता है। प्रयोजनवाद इन दोनों मान्यताओं को चुनौती देते हुए अनेक नई स्थापनाएं प्रस्तुत करता है, जिनमें सर्वत्र एक नकारात्मकता झलकती है तथा पूर्व निर्धारित सभी सिद्धांतों को इन्कार करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

यद्यपि भारतीय समाजवादी चिंतकों की आदर्शवादी मूल्यों पर गहरी आस्था थी। लेकिन आदर्शवादियों की इस विचारधारा में उनकी सहमति नहीं थी कि सदियों से चले आ रहे उद्देश्यों एवं मूल्य स्थित होते हैं। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में प्रयोजनवादी दार्शनिक विचारधारा को

इन्होंने शिक्षा का आधार बनाया और उनका विचार था कि देश काल और परिस्थिति के अनुसार मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है, अतः शिक्षा को गत्यात्मक होना चाहिए, और मूल्यों का निर्धारण एवं व्याख्या नये बदलते हुए नवीन परिवेश में की जानी चाहिए। पुराने आदर्शों से आज पथ निर्देश नहीं हो पाता, पुरानी परम्परा से आज सहारा नहीं मिलता, आज नये युग की आवश्यकता है।

अखिल भारतीय शिखा सम्मेलन में आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा कि यह हमारे लिए अत्यंत लज्जा का विषय है कि हम लोग देश के महत्वपूर्ण महापुरूषों को सम्मानित स्थान देकर संतुष्ट हो गये, किन्तु उनके उत्तम उद्देश्यों को भूल गये। यहॉ तक कि उनका आध्यात्मिक एवं नैतिक शक्ति भंडार भी हमारे प्रलोभन को न रोक सका। इस समय सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन भ्रष्टाचार, पश्चाताप तथा अनुशासनहीनता में खो गया है। यहॉ तक कि विद्या–केन्द्र भी भ्रष्टाचार से बच नहीं सके हैं। हम लोगों में संकीर्णता, तुच्छता व स्वार्थपरता हो गई है। पश्चाताप की अपेक्षा स्वार्थ चिंतन ही अधिक होना है, इससे छुटकारा पाने के लिए आचार्य जी ने शास्त्रवादी एवं परम्परावादी तथा रूढ़िवादी प्रचलित शिक्षा व्यवस्था की कडी भर्त्सना की है, और विशुद्ध उपयोगिता की दृष्टि से ही शिक्षा पर विचार करने की संस्तुति की है।

6. समाज शास्त्रीय आधार सम्बन्धी निष्कर्ष

समाजशास्त्र एवं प्रजातंत्र, समाज के विकास में, आधुनिक युग में शिक्षा समाजशास्त्र का महत्व, शिक्षा शास्त्रियों के अध्ययन का मुख्य एक महत्वपूर्ण विषय हो गया है। शिक्षा की प्रक्रिया में जितना महत्व शिक्षा मनोविज्ञान का है, उतना ही शिक्षा समाजशास्त्र को क्योंकि शिक्षा व्यक्ति में ऐसे गुणों का विकास करती है, जिससे वह अपने वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुरूप अपने को बना सकें। प्रजातंत्रवादी देशों का नारा ही व्यकित में शिक्षा द्वारा सामाजिक दक्षता लाना है। शिक्षा समजाशास्त्र का ही वह अंग है, जो केवल समाज के उस अंक का अध्ययन करता है , जिसका सम्बन्ध शिक्षा से है। यो तो अनेक शिक्षा शास्त्रियों के नाम शिक्षा की प्रक्रिया में समाजशास्त्रीय आधार दिखाने के लिए, लिए जा सकता हैं। किन्तु जार्ज पैनी एवं जॉन डीवी के नाम मुख्य हैं। जिन्होंने शिक्षा में समाजशास्त्र के महत्व को समझाने का महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय कार्य किंया है। शिक्षा की प्रक्रिया में समाजशास्त्रीय आधार दिलाने की श्रेय जॉन डीवी को ही दिया जा सकता है।

आचार्य नरेन्द्र देव को एक शिक्षा दार्शनिक के नाते यदि भारत का डीवी कहें तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। हमारे देश के महान् शिक्षा मनीषियों में आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 सम्पूर्णानंद एवं डॉ0 लोहिया जी ही, वह पहले शिक्षा दार्शनिक थे, जिन्होंने शिक्षा में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाने का प्रबल समर्थन किया। ये तीनों महान चिंतक अपनी आस्था एवं कर्म से भले ही एक समाजवादी थे, फिर भी उन्होने दार्शनिक एवं मानोवैज्ञानिक आधार की अपेक्षा नहीं की, इन

समाजवादी चिंतकों ने समाजशास्त्रीय आधार को ही शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ आधार समझा।

कुछ विद्वान् व्यक्ति को समाज का मूलाधार मान कर व्यक्तिवाद के समर्थक है तो कुछ व्यकित के बजाय समष्टि के महत्व को स्वीकार करते हैं। जहॉं प्लेटों समष्टिवादी थे, वहीं अरस्तू व्यक्तिवादी थे। इसी प्रकार यदि हीगेल समष्टिवादी थे, तो काट व्यक्तिवादी थे।

भारतीय समाजवादी चिंताकें के विचार में वस्तुतः एवं समष्टि में कोई नैसर्गिक अंतर नहीं है। मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। समाज से बाहर उसका अस्तित्व नहीं है। समाज मनुष्य के जीवन का अनिवार्य तत्व है। सामाजिकता अनिवार्य है, उसको स्वीकार करके ही व्यक्ति आगें बढ़ सकता है। समाज में ही मानव का विकास हुआ है। समाज के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी सामाजिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करता है और व्यक्ति की शक्तियां जब समाज के माध्यम से विकसित होती हैं, तो व्यक्ति अपनी इन्हीं विवेकशील शक्तियों द्वारा समाज का विकास करता है। ज्यों–ज्यों समाज विस्तार में उठता है, त्यों–त्यों व्यक्तित्व के विकास की गहराई बढती जाती हैं, यही कारण है कि भारतीय समाजवादी चिंतकों ने समाजशास्त्रीय आधार मानते हुये भी किसी स्थान पर व्यक्ति के व्यक्तित्व की महत्ता को कम नहीं किया है। जहॉं तक शिक्षा का सम्बन्ध है ,आचार्य जी का विचार था कि आधुनिक युग में शिक्षा का सामाजिक प्रयोजन होना चाहिए और इसी आशय से शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में सत्यम्, शिवम्, सुँन्दरम् को उन्होंने मुख्य उद्देश्य माना है।

समाजवाद मानव स्वतंत्रता की कुंजी है। समाजवाद की स्वतंत्रता ही सम्पूर्ण स्वतंत्र मनुष्य की प्रतिष्ठित कर सकता है। यही जन प्रधान नैतिकता तथा सामाजिक न्याय की स्थापना कर सकता है। समाजवाद की स्वतंत्रता, समता और महत्व के आधार पर मनुष्य एक सुन्दर मानव संस्कृति की सृष्टि कर सकता है।

इसी आशय से समाजवादी चिंतकों ने आधुनिक युग में शिक्षा के सामाजिक प्रयोजन पर बल दिया है।

7. वैज्ञानिक विश्लेषण सम्बन्धी निष्कर्ष

भारतीय समाजवादी चिंतकों ने शास्त्रवादी एवं परम्परावादी शिक्षा के दोषों को इंगित करते हुए परिवर्तन शील संसार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतुं शिक्षा को गत्यात्मक बनाने हेतु अनुशंसा की, किन्तु साथी ही इस परिवर्तन के प्रति उन्होंने सचेत भी किया और कहा कि परिवर्तन का अर्थ यह कदापि नहीं है कि अतीत की सर्वथा उपेक्षा की जायें, वरन् अजीत के वह अंश जो जीवनप्रद है, उनकी तो रक्षा करनी ही है, किन्तु नव मूल्यों को हमको स्वीकृत करना ही होगा तथा वह विचार जो युग के लिए अनुप्रयुक्त व हानिकारक है, उनका परित्याग भी करना होगा। वर्तमान जीवन पर विज्ञान की छाप को स्वीकार करना होगा और यह मानना पडेगा कि विज्ञान संरचना हमारी अनेक समस्याओं

को हल करने में क़ाफी सहायक हुए हैं। किन्तु साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि तुच्छ स्वार्थ की सिद्धि में विज्ञान का दुरूपयोग न किया जाये वरन् उसे सामाजिक हित कार्य में नियोजित किया जाये।

"भारतवर्ष मो यदि राष्ट्रपरिवार में शांति के लिए सुदृढ आधार स्तम्भ के रूप में अपना स्थान ग्रहण करना है, तो उसे पहिले अपने बीच में दरिद्वता और अज्ञान मो हटाना आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सिद्धांतों में से एक प्रमुख सिद्धांत यह है कि एक देश की दरिद्रता बाकी और देशों की सम्पन्नता के लिए खतरा है। अज्ञान के लिए भी वही बात लागू होती है। इन दोनों खतरों को हटाने में विज्ञान सबसे बडा सहायक हो सकता है।"[41]

ये चितंक केवल परिवर्तन नहीं चाहते थे, वरन् उनकी धारणा थी कि आधुनिक परिवर्तनों के आवेश में भूत की उपेक्षा करना उचित नहीं, वे तो भूत को विवेकपूर्वक परीक्षा करके आधुनिक कुप्रभावों के प्रकाश में उसका उचित मूल्यांकन करना चाहते थे। वे शिक्षक का यह कर्तब्य समझते थे कि शिक्षक अपने कर्तब्य के प्रति इस प्रकार जागरूक रहे कि वह विद्यार्थियों के ज़ीवन में उच्च सामाजिक आदर्शों को प्रविष्ठित करें।

उन्होंने इसी आशय से शिक्षक का आहवान किया कि शिक्षक का यह पुनीत कर्तब्य है कि वे नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करें, तथा उनके अंदर समाज की सेवा करने के लिए कुशलता उत्पन्न करें।

इनके अनुसार शिक्षा का ध्येय, व्यक्तित्व के विकास एवं निर्माण में सहायता पहुँचाना है। जिसमें ज्ञान, सहज प्रवृत्यिॉं और भाव एकरूप होकर एक सम्पूर्ण जीवन बनें। उनकी धारणा थी कि पाठ्यक्रम के अतिरिक्त ऐसे काम निकाले जायें, जिससे बालकों को स्कूल के अंदर की परिस्थितियों से ही उन सामाजिक आदर्शों और चारित्रिक दृष्टान्तों की शिक्षा मिले, जो राष्ट्र को उत्तम बनाने में साधक होते हैं। इसीलिए उन्होंने एक मर्मज्ञ शिक्षा शास्त्री होने के नाते यह विचार व्यक्त किया कि इन्द्रियों के द्वारा आकस्मिक रूप से प्राप्त विषयों एवं विचारों को बिना विवेक के निष्क्रिय रूप से ग्रहण कर लेने की मनोवृत्ति उचित नहीं है। ज्ञान का मूल वस्तुतत्व का निरीक्षण है, जिसमें जीव-निर्माण तथा विवेकपूर्ण परीक्षण की सक्रिय विधियां सम्मिलित हैं। इसीलिए शिक्षा क्रम में शिष्यों को किसी विचार विशेष को ग्रहण करने के लिए विवश अवॉछनीय है। सैद्धांकि शिक्षा के साथ-साथ शिष्यों द्वारा उत्पादक कार्य और निर्माण भी आवश्यक है। समाजवादी चिंतकों ने विशुद्ध उपयोगिता की दृष्टि में कोरी सैद्धांतिक शिक्षा का खंडन किया एवं बालकों को वैज्ञानिक, समाजोपयोगी शिक्षा देना अधिक उत्तम समझा।

(41) डा0 सम्पूर्णानंद, समिधा, पृष्ठ 245

8. समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों के सबल पक्षीय निष्कर्ष–

समाजवादी चिंतको के शैक्षिक विचारों के अनेक सबल पक्ष है, जिससे शिक्षा का मंछिर आलोकित हो सकता है।

आदर्श शिक्षा का स्वरूप– यह बहुजन समाज का युग है, यह लोकतंत्र और स्वतन्त्रता का युग है। आधुनिक काल में बहुजन के हितों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लोकतंत्र की आधारशिला सार्वजनिक शिक्षा है। यदि लोकतंत्र को उन्नत करना है तो सर्वसाधारण की शिक्षा भी उन्नत होनी चाहिए। एक सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति का हमको विकास करना है। शिक्षा के प्रासाद की आधारशिला सर्वसाधारण की प्राथमिक शिक्षा है। किन्तु जिस भवन का निर्माण इस आधार पर होता है, उसके कई तल्ले हैं और सबसे ऊँचा तल्ला विश्वविद्यालय की शिक्षा तथा हर प्रकार की गवेषणा का है। राज्य का कर्तब्य है कि वह शिक्षा के प्रत्येक अंग को पुष्ट करने का प्रयत्न करें। शिक्षा का एक निरन्तर क्रम चलता रहता है और सब अंग एक–दूसरे से सम्बद्ध है। अतः एक को दुर्बल कर हम दूसरे की पुष्टि नहीं कर सकते। विश्वविद्यालय की शिक्षा में उसका चरमोत्कर्ष पाया जाता है। एक सामान्य नागरिक का विकास करना तथा एक सामान्य सांस्कृतिक दायद की शिक्षा को सर्व साधारण के लिए सुलभ कर देना सर्वसाधारण की शिक्षा का उदेश्य होना चाहिए। किन्तु बिना उच्च शिक्षा का उचित विधान किये राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों के लिए विशेषज्ञ नहीं मिल सकते।

विज्ञान के प्रति संतुलित दृष्टिकोण

आज विज्ञान का युग है। विज्ञान के द्वारा ही हमने प्रकृति पर विजय पायी है। आज विज्ञान के बल से मनुष्य की दरिद्रता दूर की जा सकती है। वियावान को हम चमन बना सकते हैं। आज मानती शक्ति की महती वृद्धि हुई है। यह विश्वास होने लगा है कि यह शक्ति असीम हैं। आज कोई भी परिवर्तन असम्भव नहीं प्रतीत होता है। इसके कारण आधुनिक वैज्ञानिक तथा यांत्रिक पद्धति ने उन लोगों की दृष्टि मौलिक रूप से बदल दी है, जो राज्य की शक्ति संचालित करते हैं। फलस्वरूप राज्यशक्ति के मद से उन्मत्त लोगों ने समाज के लिए दुर्घटनायें उपस्थित कर दी है जो भयावह है।

आज समाज में असामन्जस्य है। यह असामन्जस्य तब तक दूर नहीं होगा, जब तक हम इस बात को स्वीकार नहीं करते कि मनुष्य की शक्ति की कुछ आवश्यक सीमाएं हैं, वह अपरिमित नहीं हैं।

अनुशासन के प्रति दृष्टिकोण– अनुशासनहीनता की समस्या आज के शिक्षा जगत की मूर्तमान समस्या हैं। आज चारो ओर से इस बात की शिकायत होती है कि विद्यार्थियों में संयम की कमी हो गई है। इस संयम की कमी के अनेक कारण है समाज की सब श्रेणियों में असंतोष

पाया जाता है। समाज के मौलिक आधार के सम्बन्ध मेतं भी तीव्र मतभेद है।

विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिसमें वह आत्मसंयम के महत्व को समझें। बाहर से अनुशासन का आरोप प्रायः व्यर्थ हुआ करता है। हमारे विद्यालयों का वातावरण ऐसा होना चाहिए जिसमें असंयम के उदाहरण बहुत कम हो जाये।

हमारे विद्यार्थियों को भी समझना चाहिए कि उनको अपने राष्ट्र को सबल बनाना है तथा एक नूतन समाज का निर्माण करना है। समाज के वही नेता और निर्माता होंगे। किन्तु आत्मसंयम के बिना कोई भी व्यक्ति किसी जिम्मेदारी के काम को निभा नहीं सकता।

संस्कृति, साहित्य और भाषा पर समाजवादी चिंतकों का दर्शन– सभी समाजवादी भाषा के सवाल पर एक मत हैं। किन्तु अंग्रेजी के रानी स्वरूप का विरोध किया राममनोहर लोहिया ने। उन्होंने देश में अंग्रेजी हटाओं आन्दोलन चलाया। अनके जगहों में अंग्रेजी विरोधी सम्मेलन किये, सत्याग्रह किया, पटों पर लिखी अंग्रेजी पर अलकतरा पोत दिया। वे अंग्रेजी हटाओं के प्रति अत्यन्त उग्र थे। सार्वजनिक स्थानों से अंग्रेज शासकों की मूर्तियां हटवाने का उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया।

आचार्य नरेन्द्र देव भी माध्यम या भाषा के सवाल पर लोहिया जैसे ही स्पष्ट थे। आगरा विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण का अंश, "अब समय आ गया है कि जब हमको राष्ट्रभाषा के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा का आयोजन कर लेना चाहिए। शिक्षा का माध्यम तत्काल बदल जाना चाहिए। अपनी भाषा में सब विषयों की ऊँची से ऊँची पुस्तकें लिखी जानी चाहिए।" (रा0और सं0 पृ0 340) एक बार नहीं, बार–बार आचार्य जी ने मातृभाषा राष्ट्रभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का संदेश दिया है।

साक्षरता के प्रति सजगता–समाजवादी चिंतक साक्षरता के विरोधी नहीं थे। किन्तु वे साक्षरता के खतरों के प्रति सावधान थे। सामान्य साक्षरता का लाभ व्यवसायियों को मिलता है। वे रद्दी साहित्य बेंचकर मुनाफा कमाते हैं। केवल साक्षर समाज से काफी खतरा है, क्योंकि आसानी से वह अधिनयकों और अधिकासियों के जाल में फंस सकता है। आचार्य जी जिस खतरे का अनुभव कर रहे थे, उसे आज स्पष्ट देखा जा सकता है। आज देश में साक्षरता बढ़ी है। किन्तु शिक्षा का स्तर अत्यन्त गिर गया है अर्थात शून्य पर पहुंच गया है। उच्च से उच्च शिक्षितों को भी पंडित या विद्वान कहने में कठिनाई होगी। जो थोड़े बहुत हैं भी वे अधिकतर तोता रटंत वाले हैं। विद्या जो विनय का आधार है, उसका तो सख्त अभाव है। अक्सर ही विद्या अपात्र के पास दिखती है।

साहित्य के केन्द्र में मानव की प्रतिष्ठा– समाजवादियों के विचारानुसार "जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित कर चलने वाला साहित्य प्रगतिशील साहित्य है। इसीलिए वे

कलाकार के स्वातः सुखाय की उपेक्षा नहीं करते हैं, किन्तु यह भी मानते हैं कि इसका अर्थ यह नहीं कि कलाकार का कोई उद्देश्य ही नहीं होता है। जीवन के केन्द्र में मानव की प्रतिष्ठा की मूल भावनाओं को लेकर चलने वाले प्रगतिशील साहित्यिक के लिए विश्वव्यापी जीवन दृष्टिकोण का होना आवश्यक है। जीवन–संघर्ष से पृथक रहकर सच्चे और प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि संभव नहीं है।

लिपि की एकता– समाजवादी चिंतकों ने समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि पर भी जोर दिया है। इस दृष्टि से उन्होंने लिपि की एकता की ओर भी संकेत किया। जैसे सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं में शब्दगत एवं विषयगत साम्य है। उसी प्रकार लिपि साम्य भी है।

व्यष्टि एवं समष्टि, तथा विज्ञान एवं आध्यात्मिकता में समन्वय– समाजवादी चिंतकों ने व्यष्टि और समष्टि में विरोध नहीं, समन्वय देखने की कोशिश की। वे विज्ञान और मानवीय मूल्य का भी समन्वय करते रहते हैं। विज्ञान का उपयोग मंगल और कल्याण के लिए भी हो सकता है तथा नरसंहार और संस्कृति के विनाश के लिए भी हो सकता है। यह सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य है जो मनुष्य को हित–अनहित का ज्ञान कराते हैं और किसी निर्णय और विनिश्चय के करने में सर्मथ बनाते हैं। इसीलिए शिक्षा शास्त्रियों का मत है कि विज्ञान के साथ–साथ साहित्य, दर्शन, आदि की शिक्षा भी अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। बिना इस आधार के, बिना इस पृष्ठभूमि के, विज्ञान का दुरूपयोग होता है। भौतिक विकास पर नैतिकता और आध्यात्मिकता का अंकुश चाहिए।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि भारत के सभी समाजवादियों में विज्ञान का अंधानुकरण नहीं हैं वे विज्ञान और आध्यात्मिकता की मिली–जुली संस्कृति को ही महत्व देते हैं। आध्यात्मिकता अगर पूर्व है तो भौतिकता पश्चिम है। अतः पूर्व और पश्चिम, गाँधी और मार्क्स, रोटी और मानव–मूल्यों का भी समन्वय है।

ब) सुझाव

1. वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था हेतु सुझाव

शिक्षा के उद्देश्य– डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव एवं डॉ0 राममनोहर लोहिया पर भारतीय मनीषी स्वामी शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द तथा महात्मा गांधी के अप्रतिम व्यक्तित्व तथा शैक्षिक विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा है। लेकिन यह मनीषी मात्र विचारक हैं। शिक्षा के प्रायोगिक क्षेत्र में इन्हें कार्य का अनुभव नहीं था। परन्तु डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव शिक्षक, प्राध्यापक, कुलपति तथा राज्यपाल एवं राजनीति जैसे पद पर कार्य करने के पश्चात् शिक्षा क्षेत्र में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया है। उन्हें शिक्षा पर सोचने विचारने का अवसर मिला है। सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक दोनो के अनुभव के बाद उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य प्रतिपादित किये हैं।

इनके अनुसार जीवन का उद्देश्य पुरूषार्थ चतुष्टय की उपलब्धि करना है, उनके अनुसार जीवन के उद्देश्य तथा शिक्षा के उद्देश्य भिन्न–भिन्न नहीं हो सकते, क्योंकि शिक्षा का कार्य मनुष्य को उसके जीवन–ध्येय को प्राप्त कराना है। और वह उसका प्रमुख साधन है।

शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य जीवन की बौद्धिक शक्तियों एवं व्यक्तित्व को समुन्नत करता है, जिससे कि वह अच्छा नागरिक बन सकें।

शिक्षा का दूसरा उद्देश्य योग्य नागरिकों का निर्माण करना है। जिससे कि वह समाज द्वारा प्रस्तुत साधनों से अपनी जीविका प्राप्त कर सकें तथा अपने परिवार का समुचित रीति से पालन पोषण एवं संरक्षण करके उनको भी योग्य नागरिक बना सकें।

शिक्षा का वास्तविक कार्य तो मनुष्य को उसकी आतंरिक सामर्थ्य के अनुसार, इस योग्य बना देना है कि वह मानवीय जीवन के उद्देश्य को समझ सके और मनुष्यता के चरम आदर्श को प्राप्त कर सके। शिक्षा का तीसरा उद्देश्य व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न एवं विकसित करना है कि वह अपने कर्तव्यों को जाने एवं अपने अधिकारों की मांग करने के बजाय अपने कर्तव्यों का पालन करें। जीवन का सर्वोच्च एवं अन्तिम लक्ष्य अज्ञान से निवृत्ति है।

शिक्षा के इन लक्ष्यों के अतिरिक्त वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था हेतु निम्न सुझाव भी समीचीन है।

1. भारत के प्राचीन ज्ञान–साधना से तथा गौरवपूर्ण अतीत से छात्रों को भलीभांति परिचित कराया जाय।
2. विश्व में शांति एवं सुव्यवस्था सुनिश्चित करने की दृष्टि से शिक्षा के स्वरूप में यह भावन विकसित करनी होगी कि दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र हमारे प्रतिद्वन्दी नहीं बल्कि सहयोगी एवं सहजीवी हैं तथा एक विराट पुरूष की संतान है।
3. शिक्षा में सौन्दर्यानुभूति एवं सौन्दर्योपासना भी होनी चाहिए।

शिक्षार्थी– समाजवादी चिंतक आत्मवादी विचारधारा को मान्यता देने वाले दार्शनिक थे। वे शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवेदांत के समर्थक थे। जिसके अनुसार बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रिय। शरीर की उपाधियों से परिछिन्न आत्मा ही जीव है। जीव एक शरीर के काम हो जाने पर शरीरान्तर में जाता है, इस नये शरीर में भी पुराने संस्कारों का भण्डार साथ लाता है। जीवन का परमलक्ष्य अपने ब्रह्मस्वरूप को जानना, आत्म साक्षात्कार करना अथवा मोक्ष प्राप्त करना है। अतः जीव जो समाज के एक घटक, शिक्षक के समक्ष एक शिक्षार्थी और राज्य के लिए भावी नागरिक के रूप में आया है, उसे उसके जीवन लक्ष्य तक पहुंचाना सबका कर्तव्य है।

ये चिंतक चाहते थे कि हमारे शिक्षा केन्द्रों को आधुनिक जीवन की सीमाओं के भीतर पुराने कुलपति के आश्रमों जैसा बनाने की चेष्टा करनी चाहिए, जिसमें शिक्षार्थी को तप और त्याग का अभ्यास कराया जाना चाहिए, तथा मनुष्य का शरीर वासनाओं की तृप्ति में नष्ट कर

देने की वस्तु नहीं है, वासनाओं का दमन मनुष्य की शोभा है। दूसरों की सेवा और सहयोग करने का पाठ उसे पढ़ाया जाना चाहिए। छात्रों की बुद्धि कोमल होती है उसमें प्रारम्भ से ही यह सिद्धान्त दृढ़ करना चाहिए कि मानव मात्र का हित एक ही है और वह आपसी सहयोग से प्राप्त हो सकता है। आपस में संघर्ष या द्वन्द आवश्यक नहीं है सहयोग से सबको सुख–समृद्धि प्राप्त हो जायेगी। जीवन का प्रधान लक्ष्य आत्म साक्षात्कार है जो पुरूषार्थ चतुष्ट्य का अन्तिम पुरूषार्थ है। धर्म पुरूषार्थ के पालन से अर्थ और .काम की प्राप्ति हो जाती है, इसलिए धर्म का पालन करने पर बल जाना चाहिए।

शिक्षार्थी के समक्ष अधिकाधिक धनोपार्जन करने वाले तथा संघर्ष करके युद्ध जीतने वालों को आदर्शरूप में न रखकर उन योगियों और महात्माओं के उदा0 देने चाहिए, जिन्होंने वैमनस्य के स्थान में विश्व की एकता का संदेश दिया है।

इनके मतानुसार छात्र को साहित्य, विज्ञान, इतिहास, राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा दी जाय, किन्तु उसके साथ ही सिखाया जाना चाहिए कि अर्थ और काम के सम्पादन से अधिक आवश्यक धर्म का पालन है, धर्म का वास्तविक अर्थ कर्तव्य को पहचानना और उसका पालन करना है। छात्र पर ऋषि ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण है उनका परिशोध करना हर व्यक्ति का परमधर्म है। समाज से उसे बहुत कुछ मिला है और मिलता रहता है, उसका प्रतिपादन करना धर्म है। शिक्षा के द्वारा छात्र में यह भाव बैठाया जाना चाहिए कि यदि वह बल में या वैभव में दूसरों से कम रह जाता है तो यह लज्जा की बात नहीं है, किन्तु अपने कर्तव्यों को न पहचानना और उनका पालन न करना लज्जा की बात है। सही शिक्षा वही होगी जो नानात्व की, पार्थक्य की प्रतीति रूपी अविद्या का नाश करके जीव मात्र में एकता एवं अभेद की सीख दें। ऐसी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति समाज का योग्य नागरिक होगा। सबको धर्ममार्ग पर चलने की प्रवृत्ति जाग्रत करेंगी और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में सहयोग के समर्थक होते जायेगें।

शिक्षक

(क) समाज में स्थान–शिक्षक का समाज में स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। शिक्षक राष्ट्र की भावी पीढ़ी का निर्माता एवं उसको समुन्नत स्थान में पहुंचाने हेतु प्रेरक होता है। उसके कर्तव्यों तथा कार्यों का मूल्यांकन रूपये पैसे से उसी प्रकार नहीं हो सकता जैसे कि माता के द्वारा शिशुपालन में किये गये कार्य का। शिक्षक का पद व्यवसायी का नहीं है, इस मानसिकता वाले के लिए इस पवित्र कर्तव्य संवाहक संवर्ग में स्थान नहीं है। उन्हें किसी व्यवसाय में लाना चाहिए, ऐसी समाजवादी चिंतकों की भावना रही है। साथ ही उन्होंने यह भी व्यक्त किया है कि आर्थिक कठिनाइयों के बीच अध्यापक समाज में सम्मानपूर्वक नहीं रह सकेगा और न अपने

पारिवारिक उत्तरदायित्व के बोझ को अपने मस्तिष्क से अलग कर सकेगा, अतः राज्य और समाज को उसके समुचित भरण–पोषण का एवं समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान करने का दायित्व लेना होगा। इस सम्बन्ध मे डॉ0 सम्पूर्णानन्द का कथन उल्लेखनीय है।[42] "आचार्य छात्र के लिए पूज्य हैं ही, समाज का भी कर्तव्य है कि ऐसे व्यक्तियों का समादर करें और उनको निष्कंटक काम करने का अवसर दें।"

(ख) कर्तव्य– डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी द्वारा शिक्षकों को प्राचीन आचार्यो, उपाध्यायों एवं कुलपतियों के उच्च आदर्शों को अपने सामने रखकर छात्रों, स्नातकों एवं जिज्ञासुओं में अपने सुआचरित बौद्धिक ज्ञान के माध्यम से उनमें उत्तम गुणों एवं धार्मिक भावना को प्रस्फुटित तथा अभिवृद्धि करें। शिक्षक के कर्तव्यों एवं उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं को निम्नांकित प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

1. प्राचीन आचार्यों की भांति समुज्जवल चरित्र प्रस्तुत करना।
2. भारतीय संस्कृति की रक्षा व समृद्धि तथा पूर्व महापुरूषों के कार्यों का स्मरण कराना।
3. सभी विषयों के अध्यापकों के द्वारा छात्रों में उदार धार्मिक प्रवृत्ति जाग्रत करना।
4. शिक्षार्थी को सत्यनिष्ठ एवं सत्यान्वेषी बनाना।
5. छात्रों को पुरूषार्थ चतुष्ट्य का ज्ञान कराना तथा परम लक्ष्य की ओर प्रेरित करना।
6. छात्रों के प्रति अग्रज की तरह भावना रखना।

शिक्षक, शिक्षार्थी का सम्बन्ध– शिक्षक–शिक्षार्थी अन्तर्सम्बन्ध विद्यालयी आतंरिक रचना का केन्द्र बिन्दु है। अध्यापक का ज्ञान और अनुभव छात्र से कहीं अधिक होता है। वह आयु में भी बड़ा होता है। इसके कारण छात्र अध्यापक को अपना आदर्श मानता है। राजनीतिक तथा आर्थिक तत्वों के उभार के कारण अध्यापक के प्रति आदरभाव में कमी आती जा रही है। ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष की अपेक्षा ज्ञान की मात्रा को अधिक महत्व देना, अध्यापक की सार्थकता कक्षाकाल तक सीमित रहना, अध्यापक और छात्र सम्बन्ध उत्तरोत्तर ढ़ीला पड़ता जा रहा है।

भारतीय समाजवादी चिंतकों के अनुसार शिक्षा के केन्द्र बिन्दु शिक्षक, शिक्षार्थी तथा उचित पाठ्यक्रम है। उनके अनुसार उपाध्याय (शिक्षक) को सत्यनिष्ठ, तपस्वी, संयमी और परिश्रमशील होना चाहिए। जिससे ये गुण उसके शिष्य में अनुक्रमित एवं अवतरित हो। साथ ही शिष्य को विनम्र, सदाचारी तथा मुमुश्रु होना चाहिए जो एकाग्रता के साथ अपने उपाध्याय से जीवन के लक्ष्य एवं उसके मार्ग के जान सकें।

पाठ्यक्रम– इनके अनुसार शिक्षा अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति तभी कर सकती है जबकि

(42) श्री सम्पूर्णानंद – चिहिलास, पृष्ठ 245, काशी ज्ञान मण्डल लि0, 1959.।

पाठ्यक्रम में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों यथा शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास तथा सामाजिक दायित्वों के प्रति शिक्षा को उचित स्थान प्रदान किया जाय। इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रय का निर्माण व्यापक दृष्टिकोण से किया जाय। पाठ्यक्रम के बारे में डॉ0 सम्पूर्णानंद ने कहा है–

''हमारी शिक्षा पद्धति में विशिष्टता प्राप्त करने की ओर अत्याधिक ध्यान दिया गया है। एक ओर तो हम विद्यार्थियों के उस समुदाय को देखते है, जो वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन करता हुआ भारतीय इतिहास एवं सभ्यता का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं रखता है, और दूसरी ओर उन विद्यार्थियों का समुदाय दिखाई पड़ता है जो प्रकृति के साधारण से साधारण दृग्विषयों को समझने में असमर्थ होते हैं। हमें ऐसी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी कि जिसके द्वारा हम प्रत्येक विद्यार्थी को आज के जटिल विश्व में संतुलित और शिक्षित युवक जैसा व्यवहार करने की हैसियत प्रदान करने वाला सामान्य ज्ञान दे सकें।''[43]

इनके शैक्षिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में पाठ्यक्रम सम्बन्धी रूपरेखा निम्नवत् है।

अ) बौद्धिक विकास से संबन्धित पाठ्यक्रम

मातृभाषा– बालक प्रारम्भ से ही अपनी मातृभाषा बोलता है एवं उसी को सुनता है, अतः अन्य भाषाओं की अपेक्षा अपनी मातृभाषा में उसका शब्दज्ञान अधिक होगा। वह प्रत्येक बात को अपनी मातृभाषा में शीघ्र समझ सकेगा, और प्रभावपूर्ण ढंग से बोल भी पायेगा। अतः वे मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के पक्षधर थे।

गणित– गणित अंक विद्या है। बालक को प्रारम्भ से ही अक्षर ज्ञान एवं अंकों का ज्ञान क़राया जाता है गणित जीवन के प्रारम्भिक काल से ही साथ लग जाता है। इसमें नियमित अध्ययन की आवश्यकता रहती है। गणित का दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। विज्ञान तथा तर्कशास्त्र में भी गणित की बड़ी उपयोगिता है, इन्हीं सब कारणों से भारतीय समाजवादी गणित को पाठ्यक्रम का प्रमुख अंग मानते हैं।

इतिहास– डॉ0 सम्पूर्णानन्द इतिहास को पाठ्यक्रम का अंग बनाने के पक्ष में थे। जब वे प्रथम बार शिक्षामंत्री हुए तो उन्होंने आचार्य नरेन्द्र की अध्यक्षता में एक समिति बनाई जिसमें वर्धा समिति के अध्यक्ष श्री जाकिर हुसेन भी सदस्य थे। इस समिति ने इतिहास की उचित व्यवस्था की। इनके अनुसार यदि इतिहास का अध्यापन सही दृष्टिकोण रखकर किया जाय तो बहुत अंश में जातीय संकीर्णता, विलगाव की मनोवृत्ति, जातीय द्वेष और झूठा अभिमान जो मनुष्य को मनुष्य से अलग किये हुए है स्वयं भी दूर हो जाय।

कला– आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में गठित समिति ने चित्रकला को पाठ्यक्रम में सम्मिलित

(43) डा0 सम्पूर्णानंद – विश्वविद्यालयी स्वायत्तता और शिक्षा सुधार (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 311, लखनऊ निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग 1989।

करने की संस्तुति दी। वे कला को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने के पक्ष में थे, इसके अन्तर्गत शिल्पकला, स्थापत्य कला, चित्रकला के अतिरिक्त अन्य विषय भी आते थे।

कला के अर्थ एवं इतिहास के बारे में डॉ0 सम्पूर्णानन्द का विचार था–

"कला का इतिहास व्यापक रूप में मानव–जाति की कल्पना और उसकी अविष्करण शक्ति का इतिहास कहा जायेगा और इसके अन्तर्गत शिल्पकला, स्थापत्यकला, उद्योग, चिकित्सा, शासन एवं कानून तथा शिक्षा के क्षेत्र के सभी मानव प्रयत्न आ जायेंगे। अपने उद्देश्य के प्रति सजग संयमित कल्पनाशीलता ही कला है।"[44]

संस्कृत– डॉ0 सम्पूर्णानन्द भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिए दृढ़ संकल्प थे। वे संस्कृत के केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित न रखकर सभी भारतीयों के लिए देववाणी को अध्ययन का विषय बनाना चाहते थे। संस्कृत का उदार दृष्टिकोण से अध्ययन–अध्यापन किये जाने से राष्ट्रीय एकता में सहायता मिलेगी।

विज्ञान– भारतीय समाजवादी चिंतकों ने विज्ञान की शिक्षा पर बल दिया था। वे विज्ञान की शिक्षा का प्रसार गांवों तक करना चाहते थे, तथा उसे जूनियर हाईस्कूलों तक अनिवार्य करना चाहते थे। विज्ञान के विषय में उनका मानना था– "विज्ञान किन्हीं अलग–अलग शास्त्रों का मिलाया हुआ गड़बड़झाला नहीं। यह एक सुसमन्वित इकाई है जो कि अपने भिन्न अंशों के सम्पूर्ण जोड से कहीं बड़ी हैं और उसकी बाहरी सीमायें धर्म और दर्शन की सीमाओं के पास रूकती है।"[45]

मनोविज्ञान– वर्तमान नैराश्यपूर्ण वातावरण में मनोविज्ञान की शिक्षा आवश्यक है। उनका मत था कि मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों को अग्रसर करने का बहुत कुछ श्रेय मनोवैज्ञानिकों को है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सक मानव जाति का एक बहुत बड़ा हितैषी है जो व्यक्ति तथा समाज दोनो की वहुत बड़ी सेवा कर सकता है।

तकनीकी– किसी देश की प्रगति उस देश की प्रौद्योगिकी की उन्नति पर निर्भर करती है। आज अभियांत्रिकी, चिकित्सा, खगोलशास्त्र, शिक्षा और सभी क्षेत्रों में विज्ञान की नयी खोजों तथा तकनीकी का अद्यतन ज्ञान आवश्यक है।

ज्योतिष एवं आकाश दर्शन

ज्योतिष परलोक विषयक शास्त्र नहीं है, बल्कि उसका विषय तो प्रत्यक्ष मूलक है और उसकी गवेषणा अपेक्षित है।

सौन्दर्योपासना– भारतीय समाजवादी चिंतक जगत एवं प्रकृति में फैले हुए सौन्दर्य को देखने

(44) डा0 सम्पूर्णानंद– कला और साहित्य के प्रति हमारा कर्तव्य (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 51 एवं 59, लखनऊ, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग 1989।

(45) डॉ0 सम्पूर्णानंद– वैज्ञानिक ज्ञान और उसका उपयोग (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 249, लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1989।

एंव अनुभव करने के पक्षधर थे। सौन्दर्यानुभूति शिवशक्ति की अभिन्न मूर्ति का दर्शन है।

(ब) शारीरिक विकास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम–

(1) शारीरिक शिक्षा, (2) सैनिक शिक्षा (3) स्वास्थ्य शिक्षा,

(ग) नैतिक विकास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम

नैतिक शिक्षा– नैतिक शब्द नीति से बना है और नीति वह जो आगे ले जाये अतः नैतिक शिक्षा का अभिप्राय ऐसी शिक्षा से है, जो व्यक्ति या बालक को उसके उचित लक्ष्य की ओर ले जाय। नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्रों को निम्न बातें सिखायी जानी चाहिए। ईश्वर के प्रति आस्था, सत्यता, प्रेम, बड़ों का आदर, निर्भीकता, समाज की आवश्यकताओं के प्रति जागरूकता, दयाभाव, करूणा, मुदिता, मैत्री, उपेक्षा, धर्म की शिक्षा एवं उच्च्य चारित्रिक विकास की शिक्षा आदि। छात्रों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे अपने कर्तव्यों को पहिचाने एवं पालन करें।

धार्मिक शिक्षा– धर्म का तात्पर्य पूजा–पाठ नहीं है। धर्म उन सब कामों की समष्टि का नाम है, जो कल्याणकारी है।''

चारित्रिक शिक्षा– चरित्र–निर्माण की शिक्षा को वे सर्वोपरि समझते थे। छात्र को उत्तम चरित्रवान होना चाहिए। छात्र के चरित्र को इस प्रकार विकास देना है कि वह 'मै' 'तू' से ऊपर उठ सकें।

शिक्षण विधि

शिक्षा–शास्त्रियों, विचारकों, दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्राचीनकाल से वर्तमान तक शिक्षण की विभिन्न विधियां बतलाई गई हैं, जिनमें प्रमुख हैं प्राचीन एवं परम्परागत विधि, पाठ्य पुस्तक विधि, व्याख्यान विधि, संवाद विधि, प्रश्नोत्तर विधि, आगमन और निगमन विधि, तर्क–विधि, प्रयोग विधि, खेल द्वारा शिक्षा अभ्यास व आवृत्ति करके सीखना, अनुभव द्वारा सीखना, योजना विधि, निरीक्षण विधि आदि।

भारतीय समाजवादी चिंतक पदों एवं उपनिषदों के ज्ञाता थे। भारतीय संस्कृति के पोषक थे। ये शिक्षा की प्राचीन विधि को उत्तम मानते थे। इसकी पुष्टि श्री प्रकाश जी के उनके सम्बन्ध ा में लिखे गये निम्न कथन से होती है– ''कितने ही लोग आपके पास आना और रहना पसन्द करते थे। अपनी बौद्धिक शंकाओं का समाधान इनसे 'प्राणिपात्र'' ''परिप्रश्न'' और सेवा की पुरानी निर्धारित विधि के अनुसार करते हैं और वे भी वात्सल्य से अपने विस्तृत ज्ञान का अंश प्रशंसा उन्हें प्रदान करते हैं।''[46]

डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी चाहते है कि शिक्षक को एक अग्रज की तरह छात्रों की त्रुटियों को

(46)डा0 सम्पूर्णानंद – शिक्षा का उद्देश्य (लेख) कोटेड इन समिधा गद्यगरिमा, पृष्ठ 90, इलाहाबाद निदेशक, राजकीय मुद्रण एवं लेखन सामग्री उ0प्र0।

बड़े ही सहानुभूति के साथ हल करना चाहिए। अध्ययन में एकाग्रता का बड़ा महत्व है। वे चाहते थे कि अध्यापक छात्र को एकाग्रचित्त होने का प्रयास डालें "एकाग्रता ही आत्म साक्षात्कार की कुंजी है।"

वर्तमान में पाठ्य विधि से शिक्षण दिया जाता है। इन्होंने शिक्षा के सभी स्तरों पर कार्य किया है। वे चाहते थे कि छात्रों की उच्च–स्तरीय पाठ्य–पुस्तकें उपलब्ध हो सके, इसके लिए उन्होंने विज्ञान प्राद्योगिकी के छात्रों के लिए स्तरीय पुस्तकें हिन्दी–समिति के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिन्दी में उपलब्ध कराई थी।

सम्पूर्णानन्द जी दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे, अतः वे स्वयं व्याख्यान विधि से शिक्षण करते थे अतः कहा जा सकता है कि वे उच्च शिक्षा में व्याख्यान विधि को प्रमुंख मानते थे।

मनोवैज्ञानिक धारणा के अनुसार "करके सीखा" हुआ ज्ञान स्थिर होता है तथा शीघ्र ही सीख लिया जाता है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और खगोलशास्त्र आदि विषयों को सीखने से आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों से परिचित हुआ जा सकता है।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने जिन शिक्षण पद्धतियों पर अपना ध्यान आकर्षित किया था, उसका आधार पूर्णतया मनोवैज्ञानिक था और बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए उन्हीं पद्धतियों का आश्रय लिया। आचार्य जी ने प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए जिस पाठ्यक्रम की संस्तुति की थी उससे स्पष्ट है कि शिक्षा को बालक के सर्वागींण विकास क लिए एवं जीवन को व्यावहारिक बनाने के लिए थी। उनके अनुसार शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों को ठोस कार्य एवं उत्पादन के लिए तैयार किया जाए। नैतिकता हेतु व्यक्तित्व को तैयार किया जाए।

इसी कारण उन्होंने समझ लिया था कि परम्परागत शिक्षण–पद्धतियों द्वारा बालकों की रूचियों एवं स्वभाव के प्रतिकूल शिक्षा देना बालक के मस्तिष्क को खाली बना देता है। शिक्षा की प्रक्रिया में क्रियाशील होकर बालक को भाग लेने का अवसर दिया जाय। अतः शिक्षण–पद्धति के सम्बन्ध में आचार्य जी ने मुख्य रूप से दो शिक्षण–पद्धतियों अपनाई हैं।

वैचारिक पद्धति– मनोवैज्ञानिकों ने यह सत्यापित कर दिया कि "करके सीखना" ही अधिक प्रभावशाली एवं स्थाई होता है। ज्ञान प्राप्त करने की आधार होती है, ज्ञानेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बालक शीघ्र ज्ञान प्राप्त करता है। बालकों की कर्मेन्द्रियाँ एवं बुद्धि जितनी अधिक क्रियाशील होगी, शिक्षण उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा। इसलिए किंगगार्डन महोदय ने योजना पद्धति द्वारा सीखने पर बल दिया। आचार्य जी का विचार था कि इन्हीं क्रियाओं के द्वारा बालकों में भाषा के उपयोग की स्वस्थ आदत डालनी चाहिए। हाथों तथा नेत्रों में कलात्मक तथा रचनात्मक कार्य करने की कुशलता लानी चाहिए। बालकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए तथा नागरिकता की समझ पैदा करनी चाहिए। सहयोग की भावनाओं को प्रेरित

करना चाहिए। यह तभी संभव है जब बालक को शिक्षा की प्रक्रिया में क्रियाशील होने का पूरा अवसर दिया जायें।

खेल पद्धति– खेलों में बालकों की प्रकृति का अध्ययन किया गया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया कि खेल की क्रिया में उसकी स्वाभाविक रूचि होती है, इसलिए आचार्य जी ने शिक्षा के क्षेत्र में खेल विधि के महत्व को स्वीकार किया। फ्रोबिल ने अपनी किंडर–गार्डन पद्धति में मनोरंजन पूर्ण रचनात्मक खेलों को विशेष स्थान दिया। मनोरंजन पूर्ण रचनात्मक खेलों में दोहराना, कूदना, घूमना तथा बालू–मिट्टी आदि के विभिन्न पहलुओं का निर्माण करना आदि खेल आते हैं। यद्यपि आचार्य जी ने विशिष्ट रूप से पद्धति का उल्लेख नहीं किया किन्तु उन्होंने प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्मित करते समय यह स्पष्ट कर दिया कि पाठ्यक्रम का निर्माण "योजना" के सिद्धान्त पर होना चाहिए। कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा में जिन शिक्षण–पद्धतियों को वे अपनाना चाहते थे, उनका आधार आज की शिक्षण पद्धतियाँ हैं।

शिक्षा में मनोवैज्ञानिक आधार को स्वीकार करते हुए आचार्य जी ने सुझाव दिया कि छात्र को निष्क्रिय श्रोता के स्थान पर करके सीखना चाहिए। शारीरिक शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने महत्वपूर्ण ध्यान दिया, जिनमें खेलना, कूदना, शारीरिक अभ्यास को स्थान दिया गया।

शिक्षालय– प्राचीनकाल में शिक्षार्थी शिक्षा प्राप्त करने हेतु गुरू के आश्रय में जाता था। गुरु उसे द्विज बनाता था (द्विज का अर्थ दूसरा जन्म)। उसकी दिनचर्या परिवर्तित हो जाती थी। उस अवधि में उसका कुल, गुरू के साथ जुड़ जाता था। गुरूकुल का स्वामी गुरु होता है उसे कुलपति कहा जाता था। उससे शिष्यों, शिक्षार्थियों को परिवार के सदस्य जैसा स्नेह प्राप्त होता था। तक्षशिला, नालंदा जैसे शिक्षा केन्द्रों का वर्णन प्राप्त होता है। धीरे–धीरे व्यवस्था बदलती गई और आज के विद्यालय उसके नवीनतम रूप हैं।

भारतीय समाजवादी चिंतकों का विचार था कि हमारे वर्तमान विद्यालयों के संचालन में तथा गुरुशिष्य भाव को विकसित करने में पुराने कुलपति के आश्रमों जैसी व्यवस्था हो शिक्षा केन्द्रों के बारे में उनके विचार दृष्टव्य हैं– "हमारे शिक्षा केन्द्रों को आधुनिक जीवन की सीमाओं के अंदर पुराने कुलपति के वास्तविक आश्रमों जैसा बनने की चेष्ट करनी होगी। उन्हें ज्ञान को पहले स्वयं आत्मसात करके वितरित करना होगा और अध्यवसाय पूर्ण अनुसंधानों से ज्ञान भण्डार की वृद्धि करनी होगी। उन्हें यह भी देखना होगा कि जीवन को अधिक निष्कलुष, सुखी और परिपूर्ण बनाने में इस ज्ञान का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है, पर हमारे विद्वानों और वैज्ञानिकों को पूरे समय यह स्मरण रखना होगा कि जीवन का यही पक्ष जिसे हम भौतिक पक्ष कह सकते हैं, सब कुछ नहीं हैं।"[46]।

(46[1])डा0 सम्पूर्णानंद – समिधा पृष्ठ 279, लखनऊ सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1989।

गाँधीवादी इन समाजवादी चिंतकों के अनुसार शिक्षालय का काम छात्रों को केवल विद्वान बनाना नहीं है प्रत्युत सुशील विद्वान और सज्जन बनाना।

वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव

किसी भी वस्तु की सत्यता या उपयोगिता या प्रासंगिकता को परखने के लिए कुछ मापदण्ड निर्धारित करने होते हैं। यदि मापदण्ड पहले से निश्चित होते हैं तो उनका उपयोग किया जाता है, यदि नहीं होते तो वे निर्धारित करने होते हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में उस वस्तु को परखा जाता है।

आचार्य नरेन्द्रदेव, प्राचीनता एवं नवीनता के संगम डॉ0 सम्पूर्णानन्द, विषपायी डॉ0 राममनोहर लोहिया के शैक्षिक विचारों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता को परखने के लिए प्रदेश एवं देश में उपस्थित शिक्षा–सम्बन्धी समस्यायें ही एक कसौटी या मापदण्ड हो सकती है। समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना ही शैक्षिक विचारों की उपयोगिता या प्रासंगिकता को सिद्ध करेगा। इस संदर्भ में वर्तमान काल में उपस्थित शैक्षिक समस्याओं को जानना व अंकित करना आवश्यक हैं। ये समस्यायें निम्न है–

1. प्राथमिक शिक्षा
2. माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा
3. प्रौढ़ शिक्षा– समाज शिक्षा
4. स्त्री और पिछड़ो की समस्या
5. राष्ट्रीय एकता
6. बेरोजगारी
7. अनुशासनहीनता
8. गुरूजनों के प्रति आदर भावना का अभाव (सदाचार का अभाव)
9. जीवन में दर्शन का अभाव

प्राथमिक शिक्षा– आधुनिक मनोवैज्ञानिक और शिक्षा–शास्त्रियों ने अपने शोध द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि औसत बालक पाँच वर्ष की वय पूरी कर लेने पर स्पष्ट रूप से पूरे–पूरे वाक्य बोल सकता है, वस्तुओं के स्थूल सम्बन्धों को समझ सकता है और उसका स्नावयिक विकास इतना हो जाता है कि वह लिखने के उपकरणों का प्रयोग कर सकता है। वह मानसिक (बौद्धिक) कार्यों में भी आसानी से ध्यान केन्द्रित कर सकता है। गेट्स और पियाने के अनुसंधानों का निष्कर्ष भी इसी धारा का अनुमोदन करता हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर अधिकांश देशों में प्राथमिक शिक्षा (नियमित संस्थागत शिक्षा) का आरम्भ पाँचवें वर्ष की समाप्ति

पर किया जाता है और यह शिक्षा दस–ग्यारह वर्ष की अवस्था तक चलती है। निम्न सारणी से यह बात स्पष्ट हो जायेगी–[47]

भिन्न देशों में प्राथमिक शिक्षा की कालावधि

प्रवेश वय	समाप्ति वय	देश
6 या 7 वर्ष	11 वर्ष	स्पेन, फ्रांस, इटली
6 वर्ष	10 वर्ष	पश्चिमी जर्मनी, स्वीडन
7 वर्ष	12 वर्ष	इंग्लैण्ड
7 वर्ष	15 वर्ष	रूस
6 वर्ष	12 वर्ष	नीदरलैण्ड, अमेरिका,चीन, जापान

भारत के संविधान के अनुच्छेद–45 में यह आकांक्षा की गयी थी कि संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के भीतर राज्य 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक–बालिकाओं को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का प्रयत्न करें किन्तु 48 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी देश इस पुनीत लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका हैं प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को पूरा न कर पाने के कई कारण है यथा– (क) उचित प्रेरणा की कमी, (ख) प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी, (ग) शिक्षा भवनों की कमी, (घ) शिक्षार्थी का पर्यावरण, (ड.) प्राथमिक शिक्षा की व्यावसायिक उपयोगिता, (च) शैक्षिक अवरोध, (छ) पाठ्यक्रम विवेचना।

उचित प्रेरणा की कमी– देश की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में बसती है जहाँ अब भी शिक्षा तथा धन का अभाव है। देश की स्वतन्त्रता के बाद भी उनको दोनों वक्त का यथोचित भोजन, वस्त्र एवं भवन तथा जीविका उपलब्ध नहीं हों सकी है। शिक्षा का क्रम भोजन, वस्त्र एवं आवास के बाद आता है। अतः स्वभावतः निर्धन व्यक्ति पहले आजीविका की ही चिन्ता करता है। बच्चों को शिक्षा देने की वह सोच भी नहीं पाता। मजदूर अपने बच्चे के लिए कपड़े, पुस्तक, कापी, कलम तथा विद्यालय के मध्यावकाश के समय भोजन की व्यवस्था कर पाने मे सक्षम नहीं होता उसे भविष्य में 15–20 वर्ष के पश्चात् बच्चे की अच्छी आजीविका की बात नहीं सूझती, फिर वह अपने बड़े परिवार के भोजन से अधिक कटौती भी नहीं कर पाता। छात्रों को निर्धारित विषयों के अतिरिक्त ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि वह दो पीरियड हाथ से उत्पादक कार्य को सीखे और करें उस बनी वस्तु की बिक्री की व्यवस्था की जाये और उससे होने वाली आय छात्र की पास बुक में जमा की जाये। इससे बच्चे में पढ़ने तथा अभिभावक को पढ़ाने के प्रति रूचि जाग्रत होगी।

(47) भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियाँ – डा0 सुबोध अदाबाल और माघवेन्द्र डनियाल, प्रकाशक–विनोद चन्द्र पाण्डेय निदेशक उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1982 पृष्ठ 245. ।

शिक्षा की महत्ता बतलाने तथा बच्चों को विद्यालय भेजने की प्रेरणा देने हेतु समाज के प्रगतिशील एवं प्रबुद्ध व्यक्तियों को आगे आना चाहिए। उदार पुरूष कुछ बच्चों को आर्थिक मद पुस्तक, कापियां एवं बच्चों की सहायता देकर शिक्षा दिलाने का दायित्व संभाले तो यह पुण्यप्रद कार्य होगा इसके लिए स्वस्थ स्पर्धा उत्पन्न करने की आवश्यकता है। डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी ने अपना मत व्यक्त किया है– ''शासन को देहात की ओर ध्यान देना स्वाभाविक और उचित है, इस देश की जनता देहात में रहती है, यदि ग्रामीण सम्पन्न नहीं है यदि इसको शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात की सुविधा उपलब्ध नहीं है तो शासन असफल है।''[48] उन्होंने अपने शिक्षामंत्री एवं मुख्यमंत्रित्व काल में गांवों का नियोजन इसी दृष्टिकोण से किया था। शिक्षा के प्रसार का दायित्व समाज को वहन करना चाहिए, इस बात को भी प्रतिपादित किया है, क्योंकि बिना समाज के सहयोग के इतना बड़ा एवं ममहत्वपूर्ण कार्य पूरा नहीं हो सकता।

(ख) प्रशिक्षित अध्यापको की कमी

प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में दूसरी बाधा प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी है। शिक्षक का काम केवल क, ख, ग, या गिनती–पहाड़ा पढ़ा देना नहीं है, जो एक अप्रशिक्षित व्यक्ति भी कर सकता है। प्रशिक्षित अध्यापक का प्रशिक्षण मनोवैज्ञानिक ढंग से होता है और उसने यदि ठीक से प्रशिक्षण लिया है तो अपने पढ़ाने के ढंग से खेती के द्वारा, खेल द्वारा किसी विषय को सरल, मनोहर व रूचिकर बना देगा तथा अपने अतिरिक्त समय में पढ़ने–लिखने की योग्यता का लाभ भी ढंग से समाज में प्रस्तुत कर सकने में समर्थ होगा। जब तक पूर्ण प्रशिक्षित अध्यापक न मिले तब तक अप्रशिक्षित अध्यापकों को नियुक्ति देकर सेवा अवधि में उनको दो या तीन अवधियों का अल्पकालीन प्रशिक्षण देकर कमी को पूरा किया जा सकता है।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी के समझ ऐसी ही समस्या उस समय उपस्थित हुई थी जब महात्मा गाँधी द्वारा समर्थित बेसिक शिक्षा को पूरे प्रदेश में लागू किया जाता था। उसके लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी एक बड़ी बाधा थी। श्री सम्पूर्णानन्द जी ने सचल शिक्षा हल की व्यवस्था की थी जो अध्यापकों को अल्पकालीन प्रशिक्षण देते थे जो प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी को पूरा करता था।

(ग) शिक्षा भवन की कमी– प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में तीसरी बाधा शिक्षा–भवनों की कमी है। यह दो प्रकार की है–

1. गांव में छात्रों की संख्या अधिक है, किन्तु विद्यालय में कमरे एवं बैठने का स्थान कम है।
2. विद्यालय है ही नहीं।

प्रथम प्रकार की समस्या का दो या दो से अधिक पारियों में कक्षायें लगाने की व्यवस्था

(48) डॉ0 सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियां और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 245, वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0 1962।

करके समाधान किया जा सकता है। दूसरे प्रकार की समस्या समाज के सहयोग से ही किसी धर्मशाला, मन्दिर की दालानों या अन्य सार्वजनिक स्थान या किराये का मकान अथवा किसी उदारचेता पुरूष द्वारा उपलब्ध कराये गये उसके भवन में कक्षायें लगाकर कल की जा सकती है। राज्य सरकार भवन बनवाने हेतु प्रयत्नशील हैं दान में भवन देने की अथवा दान देकर शिक्षा संस्थान बनवाने का ढंग भी अपनाया जा सकता है।

(घ) शिक्षार्थी का पर्यावरण– प्राथमिक शिक्षा की अवधि निश्चित करने के लिए प्रायः शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक आधारों का उल्लेख किया जाता है। प्राथमिक शिक्षा प्राथमिक होने के कारण जितनी विस्तृत होगी, शिक्षार्थी को अग्रिम शिक्षा में उतनी ही सहायता प्राप्त होगी। लेकिन प्राथमिक शिक्षा की अवधि को अनावश्यक रूप से बढ़ाया भी नहीं जाना चाहिए।

जिस देश में शिक्षा का अधिक विस्तार होता है वहाँ छात्र शिक्षा की सामान्य रूपरेखा को पर्यावरण से ही जान–समझ लेता है। सीखने के उपकरणों का प्रयोग। सीखने के प्रति उचित अभिवृत्ति, रूझान आदि उसे वैसे ही प्राप्त हो जाते हैं, जैसे वह कपड़ा पहनने या पटे पर बैठकर भोजन करने का ज्ञान प्राप्त कर लेना है। लेकिन जहाँ सामान्य पर्यावरण इन शैक्षिक प्रभावों से अछूता है वहाँ प्राथमिक शिक्षा बालक के लिए एक नितान्त नवीन अनुभव है, जिसके विभिन्न तत्वों से उसका एकदम सहज सामंजस्य नहीं हो पाता। इसका छोटा सा उदाहरण दिया जा सकता है– "रूस का बालक अध्यापकों से शिकायत करता है कि थोड़ी सी सर्दी लग जाने पर उसके माँ–बाप उसे स्कूल नहीं आने देते, लेकिन हमारे देश का अध्यापक अभिभावकों से शिकायत करता है कि बच्चा प्रतिदिन नियमित रूप से विद्यालय नहीं आता। कारण यह है कि हमारे देश में बालक के सामान्य पर्यावरण और शैक्षिक पर्यावरण में कोई सामंजस्य नहीं और ऐसी स्थिति में पाँच वर्ष की प्राथमिक शिक्षा मे प्रथम तीन वर्ष तो बालक समायोजन के प्रयत्न में ही बिता देता है। वास्तविक शिक्षा के लिए उसे केवल दो वर्षों का ही समय मिल पाता है और इस शैक्षिक न्यूनता का परिणाम प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर पर सहज ही परिलक्षित होने लगता है। अतः हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जहाँ अधिकांश बालकों के लिए पूर्व प्राथमिक शिक्षा की उचित व्यवस्था न हो और घर एवं समाज के पर्यावरण तथा शैक्षिक स्थिति में उपर्युक्त सामंजस्य न हो, वहाँ प्राथमिक शिक्षा की अवधि होनी चाहिए।"[49]

प्राथमिक शिक्षा की व्यावसायिक उपयोगिता

विकासमान देशों में शिक्षा का मूल्य व्यावसायिक मांग की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है और शिक्षा का उद्देश्य भौतिक प्राप्ति के ऑकड़ों द्वारा निर्मित होता है। रोजी–रोजी की समस्या एक स्थायी एवं प्रत्यक्ष समाधान चाहती है। अतएव शिक्षा के प्रत्येक स्तर को वहाँ व्यावसायिक के

(49) भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियाँ, लेखक डा० सुबोध अदावल और माघवेन्द्र उमियाल

दृष्टिकोण से मापा जाता है। इस दृष्टि से हमारे देश की प्राथमिक शिक्षा न तो शैक्षिक रूप से पूर्ण है व व्यावसायिक क्षेत्र में जाने के लिए कोई योग्यता प्रदान करती है। फिर साधारण जनता इस शिक्षा की ओर क्यों प्रवृत्त हो? और यदि हो भी तो इससे उसे साक्षात्‌रूप से क्या लाभ होगा? अतः प्राथमिक शिक्षा की अवधि का निर्धारण इस प्रकार होना चाहिए कि इसकी समाप्ति पर अधिकांश बालक व्यावसायिक शिक्षा में प्रवृत्त हो सकें।

1. संविधान की धारा 45 (राज्य के नीति निर्देशक तत्वों) में चौदह वर्ष तक के बालकों की शिक्षा को निःशुल्क एवं व्यापक माना गया है। इस अवस्था तक बालक आठवीं कक्षा पास कर चुकता है। जो प्रारंभिक शिक्षा की अन्तिम कक्षा है। इस तरह यह शिक्षा आठ वर्ष की अवधि की हुई (प्राथमिक)। 1 से 5 और प्रारम्भिक 6 से 8 वर्ष की।

2 प्राथमिक और प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्‌यक्रम में केवल मात्रा का अंतर है, स्वरूप का नहीं।

शैक्षिक अवरोध– हार्टोग शिक्षा समिति (1929) के अनुसार अवरोधन का तात्पर्य "बच्चे का एक ही कक्षा में एक वर्ष से अधिक रूक जाना है। इससे छात्र पर व्यय किया हुआ आर्थिक अंश तो नष्ट होता ही है, छात्र भी बार–बार की असफलता के कारण पढ़ाई छोड़ देता है। अवरोधन की समस्या को पूर्णतया सुलझा लेना भारत जैसे जनसंख्या बहुल विस्तृत देश के लिए अत्यन्त दुःसाह्य है। फिर भी आशा की जाती है कि जैसे–जैसे सामाजिक और आर्थिक विकास होगा, वैसे–वैसे जनता में शिक्षा के प्रति आस्था बढ़ेगी। साथ ही पाठ्‌यक्रम, शिक्षाविधि और शिक्षक भी रूचि एवं आवश्यकतानुरूप होना चाहिए।

अध्यापक वर्ग

शैक्षिक प्रक्रिया की सफलता बहुत कुछ अध्यापकों पर निर्भर करती है। यदि अध्यापक समुचित शैक्षिक योग्यतापूर्ण तथा प्रशिक्षित नहीं है, तब वह छात्रों को प्रभावित नहीं कर पाता। एक अध्यापक पाँच कक्षाओं को एक साथ सभी विषयों की शिक्षा कैसे दे पायेगा– यह विचारणीय है। अभी भी सौं में से लगभग चालीस विद्यालय ऐसे हैं जहाँ समस्त प्राथमिक कक्षाओं और विषयों का अध्यापन एक ही अध्यापन का उत्तरदायित्व है। यह शिक्षा कितनी निम्न स्तरीय होगी और इसे शिक्षा का नाम देना कहाँ तक उचित होगा, यह विचारणीय है। आज मॉनीटर पद्धति का प्रयोग वास्तव में काफी प्रचलित है और अध्यापक द्वारा समस्या का व्यावहारिक समाधान कहा जा सकता है। चाहे प्राथमिक शालाएं एक शिक्षकीय हो या द्वि–शिक्षकीय, यह समस्या उसी रूप में बनी रहेगी जब तक कि प्रत्येक कक्षा के लिए एक पृथक अध्यापक न हो।

पाठ्‌यक्रम विवेचना– प्राथमिक तथा प्रारम्भिक स्तर पर पाठ्‌यक्रम के निर्धारण में दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रथम पाठ्‌यक्रम के अन्तर्गत ऐसी क्रियायें तथा अनुभव नियोजित हों जिन्हें प्राप्त करके बालक अपने आस–पास के पर्यावरण से उचित समायोजन कर सकें। यह

तभी सम्भव है जबकि पाठ्यक्रमीय क्रियाओं का विकास पर्यावरणीय तत्वों से सम्बन्धित हो। द्वितीय, पाठ्यक्रम बालकों को कुछ सूचनाएं या आतंरिक गुणों का विकास भी कर सकें। और यह तभी सम्भव है जबकि शाला में विभिन्न रूचियों से सम्बन्धित अनेक प्रकार के कार्यक्रमों की आयोजना की जा सकें। इन दो बातों पर हमारा आग्रह इसलिए भी है कि प्राथमिक और प्रारम्भिक स्तर पर बालक जीवन की खोज़बीन या परीक्षण की स्थिति में होते हैं। उनको न तो समायोजन के तत्वों का ज्ञान होता है और न अपनी आतंरिक रूचियो का ही। वर्तमान समय में शालाओं में जो पाठ्यक्रम चल रहा है उसका कुछ अंश बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम से लिया गया है और कुछ उससे भी पुराना है। इसके परिणामस्वरूप अनेक पाठ्यक्रमीय तत्वों का कुछ ऐसा घालमेल हो गया है कि उसके पीछे से न कोई वैज्ञानिक चिंतन है और न कोई तर्क। बालक इस स्तर पर भी अनेक विषयों से लदा रहता है और वह बराबर दबा–दबा महसूस करता है। उसके शारीरिक और मानसिक विकास पर इसका क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसकी हम चिंता नहीं करते। कुछ थोड़े हेर–फेर के साथ जो विषय प्राथमिक और प्रारम्भिक स्तर पर हमारे देश में पढ़ायें जा रहे हैं, वे इस प्रकार है।

प्राथमिक स्तर– मातृभाषा, गणित, सामाजिक विषय, कला, हस्त–कौशल, संगीत, शारीरिक शिक्षा, सामान्य विज्ञान।

प्रारम्भिक स्तर– मातृभाषा, राज्यभाषा, अंग्रेजी, गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, शारीरिक–शिक्षा, कला, संगीत आदि।

दोनो स्तरों पर पाठ्य विषयों की रूपरेखा में कोई विशेष अन्तर नहीं है, केवल प्राथमिक स्तर के विषयों का ही कुछ विस्तार प्रारम्भिक स्तर पर हो जाता है। इस पाठ्यक्रम का यदि क्रियात्मक दृष्टि से विश्लेषण किया जाय, तो वह इस प्रकार से होगा–

मौलिक कौशल– भाषा (बोलना, सुनना, लिखना, पढ़ना) गणित।

अभिव्यंजनात्मक क्रियाएँ– कला, हस्तकौशल, संगीत।

विशेष रूचियाँ– कृषि, विज्ञान।

ज्ञानात्मक क्रियायें– सामाजिक विषय, इतिहास, भूगोल आदि।

शारीरिक क्रियाएँ– शारीरिक शिक्षा।

जब यह कहा जाता है कि प्राथमिक शिक्षा सबके लिए सुलभ हो। जब अनिवार्यता का प्रश्न उठाया जाता है तो छात्र क्या अभिभावक तक नहीं जानते कि बालक को शिक्षा क्यों दिलाई जा रही है और जीवन के लिए इसकी अनिवार्यता है? हमारी एक स्तर की शिक्षा दूसरे स्तर के लिए प्राथमिक इसलिए है कि प्रारम्भिक में जाना है, और प्रारम्भिक इसलिए है कि माध्यमिक में जाना है। यह तो एक निरूद्देश्य दौड़ हुई, और अन्त में उच्चतर के बाद विद्यार्थी कोई नौकरी

या व्यवसाय ढूंढता है। ऐसी दशा में हम प्रारम्भ में ही जोर देकर यह क्यों नहीं कह पात कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यावसायिक है।

हमारे देश में इस स्तर पर शिक्षा को व्यावसायिक रूचि के विकास का साधन बनाने के लिए दो बार प्रयास किये गये और एक प्रयास को कुछ व्यावहारिक रूप भी दिया गया। यद्यपि वह सफल नहीं हो पाया। दूसरा प्रयास शिक्षा आयोग (1966) ने प्रस्तुत किया। ये दोनो प्रयास है :– (1). बेसिक शिक्षा और (2) कार्यानुभव।

बेसिक शिक्षा– इसकी मान्यता थी कि शिक्षा जीवन के लिए है, इसका सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पक्षों को अधिकाधिक विकसित करने से है। इसको क्रियात्मक रूप महात्मा गांधी ने दिया।

कार्यानुभव– शिक्षाविदों की मान्यता थी कि जो कमियाँ बेसिक शिक्षा पद्धति में रह गई थी उनका निराकरण कार्यानुभव से हो जाये।

शिक्षा आयोग (1966) की संस्तुति है कि कार्यानुभव को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर लागू किया जाना चाहिए। कार्यानुभव से तात्पर्य है छात्र का उस उत्पादक कार्य में भाग लेना जो उसके जीवन की जीवन्त दशाआं में प्राप्त हो। यदि बेसिक शिक्षा में शिल्प–कार्य शिक्षा का माध्यम है, तो कार्यानुभव एक अलग तत्व है जिसे छात्रों की कार्य कुशलता बढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है।

माध्यमिक शिक्षा

समस्त शैक्षिक प्रक्रिया में सम्भवतः माध्यमिक स्तर की शिक्षा ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके दो कारण हैः– एक तो यह है कि इसके एक दम बाद उच्च शिक्षा आरम्भ होती है और किसी देश की उच्च शिक्षा का शैक्षिक स्तर माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मकता पर निर्भर करता है। दूसरे, किसी भी देश की क्रियाशील मानव–स्रोत की सबसे बड़ी संख्या माध्यमिक स्तर से ही आती है। इन दो कारणों के अतिरिक्त एक तीसरा कारण यह है कि माध्यमिक शिक्षा सामान्य शिक्षा की परिसमाप्ति है। इसके बाद की शिक्षा का स्वरूप व्यक्ति अथवा देश की व्यावसायिक आवश्यकताओं के द्वारा निर्धारित होता है। अधिकांश देशों में विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण माध्यमिक शिक्षा के बाद ही आरम्भ होते हैं। रूस, अमेरिका आदि में तो माध्यमिक शिक्षा को अनिवार्य शिक्षा के अन्तर्गत ले लिया गया है। इस प्रकार, माध्यमिक शिक्षा संरचनात्मक तथा आर्थिक विकास दोनो दृष्टियों से केन्द्रीय एवं महत्वपूर्ण स्तर है।

स्वरूप विवेचना– शायद इसी केन्द्रीयता के कारण माध्यमिक स्तर की शिक्षा का स्वरूप तथा संघटन बराबर शिक्षाविदों एवं सामान्य जनता के लिए विचार, विवाद तथा परिवर्तन का विषय बना रहता है। जब कभी किसी देश में कोई वैज्ञानिक अथवा तकनीकी उन्नति होती है, या

उसकी अवनति होती है जो जनता की दृष्टि माध्यमिक शिक्षा की ओर ही जाती है। यही कारण है कि भारत में अधिकांश शिक्षा समितियाँ तथा आयोग माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित है।

ऐतिहासिक कारण

हमारी माध्यमिक शिक्षा का वर्तमान स्वरूप अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की देन है। सन् 1954 के वुड के घोषणा पत्र में माध्यमिक शिक्षा के जिस स्वरूप की कल्पना की गई थी उसमें स्पष्ट था कि इस स्तर की शिक्षा सामान्य छात्र के लिए न होकर कुछ चुने हुये सम्भ्रान्त छात्रों के लिए होगी। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को स्वीकारा गया था। जिससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि इस स्तर की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को राजकीय नौकरियों के लिए तैयार करना था। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि माध्यमिक शिक्षा की सारी व्यवस्था विश्वविद्यालय के हाथ में थी, जिससे इस स्तर की शिक्षा का विकास और स्वरूप विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं के अनुसार निर्धारित होने लगा। सन् 1882 में हंटर आयोग की संस्तुतियों में दो बाते महत्वपूर्ण थी। प्रथम तो यह कि इस स्तर की शिक्षा के क्षेत्र में सरकार को अपना उत्तरदायित्व कम कर लेने के लिए कहा गया, जिससे शिक्षा के विकास में एक स्वाभाविक अवरोध उत्पन्न हो गया। दूसरे इस शिक्षा की साहित्यिक और व्यावसायिक वर्ग में विभाजित कर देने का आग्रह किया गया।

सन् 1902 की विश्वविद्यालय विषयक सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यही थी कि माध्यमिक स्तर की समस्त शिक्षा के नियन्त्रण, व्यवस्था और विकास आदि का भार विश्वविद्यालयों पर ही छोड़ देना चाहिए। परन्तु धीरे–धीरे माध्यमिक शिक्षा के विकास के साथ इस स्तर के विद्यालयों और विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी, और यह अनुभव किया जाने लगा कि सभी माध्यमिक शिक्षा प्राप्त छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश नहीं मिलना चाहिए, और प्रवेश की योग्यता दसवीं कक्षा के बाद न होकर बारहवीं कक्षा के बाद होनी चाहिए। इसी विचारधारा के परिणामस्वरूप सन् 1917 से कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने सिफारिश की कि माध्यमिक (हाईस्कूल) शिक्षा और विश्वविद्यालयी शिक्षा के मध्य एक बीच का, इण्टरमीडिएट, स्तर जोड़ देना चाहिए। साथ ही माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए विश्वविद्यालयों से पृथक माध्यमिक परिषदों की व्यवस्था की गई।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लगभग पचास वर्षों के बाद माध्यमिक शिक्षा विश्व विद्यालयी नियंत्रण से मुक्त हो पायी। लेकिन अभी सन् 1917 के आयोग की संस्तुतियों को पूरी तरह क्रियान्वित भी नहीं किया गया था कि सन् 1929 में हॉर्टाग आयोग ने प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में सुझाव देते हुए स्पष्ट कहा कि मिडिल स्कूल (सातवीं कक्षा) के उपरान्त सारे पाठ्यक्रम का विविधीकरण हो जाना चाहिए। आयोग की यह संस्तुति थी कि हाई स्कूल की कक्षाओं में छात्रों

को अपनी–अपनी रूचि के अनुसार विषय चुनने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। स्वभावतः इस विचार का भारतीय माध्यमिक शिक्षा पर इतना प्रभाव पड़ा कि सन् 1937 के बुड एक्ट प्रतिवेदन में माध्यमिक शिक्षा के समान्तर व्यावसायिक विद्यालय चालू करने की स्पष्ट संकल्पना दोहराई गई। इसका प्रतिफल यह हुआ कि सन् 1944 के सार्जेण्ट के प्रतिवेदन में हाईस्कूल शिक्षा को अपने आप में पूर्ण मान लेने की बात कहीं कई। साथ ही दो तरह के पाठ्यक्रम– साहित्यिक और तकनीकी की बात भी दोहराई गई। मातृ भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकारने का आग्रह किया गया तथा अंग्रेजी को दूसरी अनिवार्य भाषा के रूप में स्वीकारा गया। लेकिन इन संस्तुतियों का व्यावहारिक रूप से विशेष प्रयोग नहीं हो पाया था कि सन् 1948 में ताराचन्द्र समिति, सन् 1949 में विश्वविद्यालय आयोग, सन् 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग, तथा सन् 1964 में राज्यीय शिक्षा मंत्रियों की सभा में माध्यमिक शिक्षा की अवधि में 12 वर्ष तक बढ़ा देने का सुझाव दिया गया। शिक्षा आयोग (1966) ने भी 12 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा को आवश्यक माना है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण से कुछ स्पष्ट निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। यथा–

(अ) ऐतिहासिक दृष्टि से माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप विश्वविद्यालयी शिक्षा द्वारा निर्धारित होता रहा है।

(आ) माध्यमिक शिक्षा की प्रवृत्ति साधारणतया सैद्धान्तिक रही है।

(इ) माध्यमिक शिक्षा की अवधि में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं।

(ई) इस स्तर पर विविधता के प्रयास सफल नहीं हो पायें। क्योंकि सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम के अलावा अन्य प्रकार के पाठ्यक्रमों के लिए न कोई समुचित आधार था और न आगे के विकास के लिए अवसर।

(उ) माध्यमिक शिक्षा की अवधि के विस्तार और सकोच की परिकल्पना विश्वविद्यालयों की प्रवेश क्षमता पर आधारित थी।

मुदालियर आयोग 1952'1953 (माध्यमिक शिक्षा आयोग) के द्वारा तत्कालीन शिक्षा संरचना 10+2 में मध्यवर्ती 2 वर्षीय इण्टर कक्षायें (11 वीं एवं 12 वीं) को उपयुक्त न समझकर इन दो वर्षों को दो भागों में विभाजित कर प्रथम एक वर्ष को विद्यालयी शिक्षा में तथा द्वितीय वर्ष को विश्वविद्यालयी शिक्षा में जोड़कर स्नातक उपाधि 3 वर्षीय बनाने का प्रस्ताव किया गया था। इस प्रकार विद्यालयी शिक्षा 11 वर्षीय तथा प्रथम स्नातक उपाधि शिक्षा 3 वर्षीय हो गयी जिसे 11–13 के रूप में प्रकट किया जा सकता है। देश के कुछ प्रांतों जैसे–मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि ने इसे स्वीकार कर अपने यहाँ संगठनात्मक ढांचे में तद्नुसार परिवर्तन कर लिया, लेकिन उत्तर प्रदेश शासन ने इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। इसके दो कारण थे–

(1) मुदालियर आयोग (1952–53) जिसका गठन 28 सितम्बर 1952 को हुआ था, के पूर्व उत्तर प्रदेश शासन के द्वारा आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक कमेटी 18 मार्च सन् 1952 को प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा की संरचना के समपरीक्षण तथा उसमें सुधार हेतु नियुक्त कर रखी थी। इस कमेटी के द्वारा उत्तर प्रदेश में 10+2+2 शिक्षा संरचना बनाये रखने की संस्तुति की थी।

(2) उत्तर प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ0 सम्पूर्णानन्द की जो स्वयं एक शिक्षा विचारक थे। 10+2+2 शिक्षा संरचना के बारे में आचार्य नरेन्द्र देव समिति (जिसमें स्वशिक्षाविद् थे) की संस्तुति से पूर्णतया सहमत थे। इस सहमति में उनका तर्क था–

"माध्यमिक शिक्षा शिक्षण की एक पूर्ण इकाई है। इस स्तर की शिक्षा के बाद अधिकांश विद्यार्थियों को जीवन में प्रविष्ट होना चाहिए और विश्वविद्यालयों में केवल मेधावी विद्यार्थियों को ही जाना चाहिए अतः जीवन के प्रविष्टि द्वार की शिक्षा की अवधि में एक वर्ष कम करना ठीक नहीं होगा, क्योंकि इसका अर्थ होगा छात्रों की प्रौढ़ता एवं परिपक्वता मे से एक वर्ष कम करना। डिग्री कोर्स में एक वर्ष जोड़ने का अर्थ है विश्वविद्यालयों में उस उम्र के विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ाना जो सर्वथा अवांछनीय है, अतः मुदालियर कमीशन चाहे जो भी निर्णय करें और उसकी दूसरी संस्तुतियों का यथाशक्ति जितना भी कार्यान्वयन सम्भव हो किया जाय, परन्तु उत्तर प्रदेश में 12 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा चलती रहेगी।"[49]

डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी अपने इस निर्णय पर अटल रहे और 13 वर्ष बाद जब कोठारी कमीशन (1964–66) की नियुक्ति हुयी तो उसने बाबू जी की इस नीति का समर्थन अपने माध्यमिक शिक्षा के ढाँचे में किया इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की संस्तुतियों में भी 10+2+2 शिक्षा संरचना को मान्यता दी गयी है जिसको श्री सम्पूर्णानन्द जी ने अपने उत्तर प्रदेश में चालू रखा था।

माध्यमिक शिक्षा की पुर्नव्यवस्था में बाबूजी ने आमूल–चूल परिवर्तन किय। उन्होंने परीक्षा प्रणाली, परीक्षा व्यवस्था तथा माध्यमिक शिक्षा परिषद को भी पुर्नव्यवस्थित करने सम्बन्धी अपनी रूपरेखा प्रस्तुत की। बाबूजी ने हिन्दुस्तानी और ऐंग्यूलर हिन्दुस्तानी के बीच रहने वाले भेद को भी समाप्त करने का निश्चय किया। उन्हीं के शब्दों में–"हिन्दुस्तानी और एंग्लों हिन्दुस्तानी के बीच रहने वाले भेद को बहुचर्चित निश्चय हमारे ऊपर एक बहुत बड़ा भार डाल देता है। हमें एंग्लों हिन्दुस्तानी स्कूलों का स्तर नीचा करना नहीं है बल्कि हिन्दुस्तानी स्कूलों का स्तर ऊँचा उठाना है।"[50]

---

(49) श्रीवास्तव, वंशीधर– नयी तालीम, पृष्ठ 292, 1969.
(50) सम्पूर्णानंद– माध्यमिक शिक्षा की पुर्नव्यवस्था (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 316, लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ0प्र0 1989।

शिक्षकों की आवश्यकता को डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी ने महसूस किया और उन्होंने इण्टरमीडिएट के पाठ्यक्रम में शिक्षाशास्त्र विषय सम्मिलित कराया और उन्होंने दो प्रकार के प्रशिक्षण संस्थान खुलवाने का प्रावधान रखा।

1. नर्सरी ट्रेनिंग कालेज जो प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित थे।
2. राज़कीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान खोला जो एशिया की सबसे बड़ी संस्था माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का विकास तीव्रगति से हुआ। जिस तीव्र गति से संख्यात्मक विकास हुआ है, उतनी गति से गुणात्मक विकास नहीं हो पाया है। आज माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा में जो प्रमुख समस्यायें हैं वह लगभग एक सी है। उन समस्याओ का वर्णन तथा समाधान नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) शिक्षा में उद्देश्य का अभाव

दोनो ही शिक्षा के लिए कहा जाता है कि शिक्षा का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी का लक्ष्य उच्च कक्षा में प्रवेश या कोई निम्न मध्यम वर्ग की नौकरी प्राप्त करना रहता है तथा उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षार्थी का उद्देश्य डिग्रियाँ प्राप्त करना तथा कोई सरकारी, गैर सरकारी नौकरी प्राप्त करना रहता है। यह शिक्षा छात्रों को नौकरी के लिए तैयार करती है, जीवन के लिए नहीं। भारतीय समाजवादी चिंतकों का विचार था कि इन स्तरों पर छात्रों को पुरूषार्थ–चतुष्ट्य का ज्ञान कराना चाहिए। छात्रों को चाहे जो विषय पढ़ायें जाये, उनको यह जानकारी अवश्य दी जानी चाहिए कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य धर्मपूर्वक अर्थ एवं काम के मार्ग पर चलकर मोझ प्राप्त करना है।

(ख) अनुशासनहीनता

यह समस्या विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षा में लगभग एक जैसी है। अनुशासनहीनता के लिये प्रत्यक्षतः दोषपूर्ण परीक्षा–प्रणाली, भविष्य के प्रति अनिश्चितता, राजनैतिक दखल, कुप्रबन्ध व्यवस्था, आर्थिक कठिनाइयाँ, अध्यापकों में उत्तम चरित्र का अभाव, जीवन के लक्ष्य की जानकारी का अभाव आदि ऐसे बिन्दु हैं जो छात्र को सद्मार्ग से दूर होने में कारण बनते हैं।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने माध्यमिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के विद्यालय खोलकर छात्रों को अपनी रूचि के अनुसार विषय चयन एवं मनपसन्द पाठ्यक्रम चुनने की सुविधा तथा उसको उचित निर्देशन एवं परामर्श दिया जाय। इससे छात्र अपनी रूचि से शिक्षा ग्रहण करेगा तथा अनुशासित रहेगा।

माध्यमिक शिक्षा का गुणात्मक विवेचन

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा की संख्यात्मक उन्नति उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी कि

गुणात्मक उन्नति। इसका कारण यह है कि देश की अधिकांश व्यावसायिक, जनसंख्या का निर्माण माध्यमिक शिक्षा प्राप्त वर्ग द्वारा ही होता है। इस प्रकार राष्ट्र के निर्माणकारी क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा का साक्षात् उपयोग है। परन्तु इस उपयोगिता का प्रयोग तथा लाभ तभी हो सकता है जबकि इस स्तर की शिक्षा में वह उपयोगिता का प्रयोग विद्यमान हो जिसकी देश को आवश्यकता है। शिक्षा के इस गुणात्मक स्तर को मुख्य रूप से दो तत्व निर्धारित करते हैं– अध्यापक तथा पाठ्यक्रम।

(अ) प्रशिक्षित अध्यापकों की पर्याप्तता– "कुल अध्यापक–अध्यापिकाओं की पर्याप्तता का आधार भी प्रशिक्षित वर्ग को ही माना जा सकता है, क्योंकि वे ही वास्तव में अध्यापन योग्य माने जाते हैं। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो उपर्युक्त पन्द्रह वर्ष की अवधि में प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या में 14 प्रतिशत ही वृद्धि हुई है। सन् 1950–51 में जहाँ प्रति 100 अध्यापकों में 54 प्रशिक्षित थे और 46 अप्रशिक्षित वहाँ सन् 1964–65 में 68 प्रशिक्षित और 32 अप्रशिक्षित अर्थात् दस में से सात प्रशिक्षित और 3 अप्रशिक्षित। इसका प्रभाव शिक्षा के गुणात्मक स्तर पर पड़ना स्वाभाविक है।"[51]

जुलाई 1958 में कार्यान्वित की गई आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने उच्चतम माध्यमिक शिक्षा योजनाएं प्रान्तीय शिक्षा में अनेक दोष माने हैं, उनमें से एक प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी भी थी।

"सच्चे शिक्षा–सिद्धान्तों को चरितार्थ करने में उपयोगी होने के लिए अध्यापक को स्वयं अपने को फिर से शिक्षित करना और उसे जो कार्य और व्रत–पालन करना है उसके लिए उपकरण एकत्र करके सन्नद्ध होना पडेगा।"[52]

पाठ्यक्रम– माध्यमिक स्तर शिक्षा का केन्द्रीय स्तर माना जाता है। इसी स्तर से कुछ छात्र उच्च शिक्षा की ओर प्रवृत्त होते हैं तो कुछ व्यावसायिक शिक्षा की ओर। लेकिन विद्वानों का मत है कि इस स्तर का पाठ्यक्रम दोनो धाराओं के छात्रों के लिए उपर्युक्त एवं पर्याप्त नहीं है। अतः हमें यह निश्चित करना चाहिए कि इस स्तर के पाठ्यक्रम में किन–किन तत्वों का समावेश होना आवश्यक है और वर्तमान पाठ्यक्रम इस दृष्टि से कहाँ तक उपयोगी है।

समावादी चिंतकों के अनुसार पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों का समावेश किया जाय। (क) भाषा साहित्य व सामान्य विज्ञान, (ख) प्राकृतिक विज्ञान और गणित, (ग) कला, (घ) वाणिज्य, (ङ) व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा, (च) गृह विज्ञान केवल बालिकाओं के लिए।

माध्यमिक स्तर का शिक्षा में केन्द्रीय महत्व है। इस स्तर पर छात्र एक ओर अपने मनोवैज्ञानिक विकास के चरम बिन्दु पर पहुंचता है तो दूसरी ओर उसे आगामी जीवन के

(51) भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियाँ, डा0 सुबोध अदावल, माधवेन्द्र उनियाल, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ पृष्ठ 263

(52) आचार्य नरेन्द्र देव, युग और विचार, सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित, निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ0प्र0 131।

उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए मार्ग अन्वेषण भी करना पड़ता है। इस सभी समस्याओं के लिए उसे निर्देश की आवश्यकता पड़ती हैं। अतः निर्देशन के स्वरूप और प्रक्रिया का विश्लेषण कर इस स्तर पर उसकी आवश्यकता और महत्व का निर्धारण करना आवश्यक है।

उच्च शिक्षा

सामान्यतः यह माना जाता है कि माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त ही उच्च शिक्षा का प्रारम्भ होता है जिसका आयोजन महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा–संस्थानों में किया जाता है। इस दृष्टिकोण से उच्च शिक्षा के अन्तर्गत उन सभी संस्थाओं को रखा जा सकता है जिनका कार्यक्रम माध्यमिक स्तर से अधिक विकसित है। फलतः उच्च शिक्षा के अन्तर्गत निम्न प्रकार की संस्थाएँ मानी जा सकती हैं।

1. महाविद्यालय (स्नातकीय, स्नातकोत्तर तथा विशिष्ट पाठ्यक्रमों से युक्त अध्यापक–प्रशिक्षण, विधि–शिक्षा, कृषि शिक्षा आदि)।
2. विश्वविद्यालय (साामान्य तथा विशिष्ट)
3. विशिष्ट शिक्षा–संस्थान
4. अनुसंधान केन्द्र।

उच्च शिक्षा का जो स्वरूप आज हमारे सामने है, उसमें उच्चता का तात्पर्य प्रायः माध्यमिक स्तर के ऊपर की शिक्षा से ही होता है। विश्वविद्यालयी अथवा उच्च शिक्षा की परिकल्पना भारतीय शिक्षा परम्परा में पर्याप्त प्राचीन है। नालंदा, तक्षशिला, पाटलीपुत्र आदि विश्वविद्यालयों की ऐतिहासिकता साक्ष्याधारित है। परन्तु आधुनिक उच्च–शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण काफी आर्वाचीन है। जिसका आरम्भ 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। पिछली दो शताब्दियों में उच्च शिक्षा के स्वरूप में अनेक परिवर्तन हुए हैं, फिर भी उनके मूलभूत प्रतिमान में कोई अन्तर नहीं आंया। इसके कुछ विशिष्ट कारण थे–

ऐतिहासिक कारण– सन् 1857 तक भारत में किसी विश्वविद्यालया की स्थापना नहीं हुई। तब तक उच्च शिक्षा के लिए कुछ महाविद्यालय ही स्थापित थे, जिनके मूल में अंग्रेजी शासकों का अपना स्थार्थ था। एक तो वे भारतीय धर्म, रीति–रिवाज और सामाजिक नियमों की खोज करना और उन्हें जानना चाहते थे, जिससे आंग्ल शासन की नींव यहाँ सुदृढ़ हो सकें। कलकत्ता मदरसा, बनारस संस्कृत कालेज तथा फोर्ट विलियम कॉलेज इन्हीं विचारों की देन थे। सन् 1854 में वुड के घोषणा पत्र में भी यह बात स्पष्ट की गई थी कि "भारतीयों के विचारों में उदारता का विकास करने के लिए उदार शिक्षा की व्यवस्था उच्च स्तर पर भी की जानी चाहिए"[53]। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक भारत में 5 विश्वविद्यालय तथा 86 महाविद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी।

(53) भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियाँ, डा0 सुबोध अदावल, माधवेन्द्र उनियाल, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ पृष्ठ 279

सन् 1916 से 1920 तक विश्वविद्यालयों की संख्या 12 तक हो गई और सन् 1946 तक 19 हो गई। आज सब मिलाकर 90 संस्थाएं विश्वविद्यालय के रूप में कार्य कर रही है।

हमारे देश में आजकल के विश्वविद्यालयों की स्थापना आंग्ल शासन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुई थी। फलतः उच्च शिक्षा का स्वरूप निर्धारण प्रायः शासक–वर्ग के ही हाथ में रहा। समाज के सामान्य परन्तु बौद्धिक रूप से सक्षम वर्ग का इस शिक्षा के आयोजन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और न ही इसके विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय आवश्यकताओं को ही कोई विशेष महत्व दिया गया। इसी प्रवृत्ति के विरोध में मदनमोहन मालवीय, सर सैय्यद अहमद खाँ तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने अलग विश्वविद्यालयों की परिकल्पना और स्थापना भी की।

विश्वविद्यालयों का प्रारम्भिक रूप केवल परीक्षण–केन्द्रों के रूप में ही था। अतः उच्च शिक्षा मूलतः उपाधि–वितरण का माध्यम रही जिससे उसका प्रमुख आग्रह उपाधियों पर केन्द्रित हो गया। अध्यापन अनुसंधान और व्यक्तित्व के विकास जैसे उदात्त उद्देश्य रहे।

विश्वविद्यालयी शिक्षा प्रमुखतः सम्पन्न वर्ग तक ही सीमित रही और इस कारण यह सम्पन्न वर्ग धीरे–धीरे अंग्रेजी संस्कृति का पोषक होता चला गया। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालयों में उसी कार्य विधा को ज्यो का त्यों कायम रखने का प्रयास किया गया जो इंग्लैण्ड के विश्वविद्यालयों में प्रचलित थी। इसका एक प्रभाव यह पड़ा कि समस्त शैक्षिक व्यवस्था में विश्वविद्यालय अधिक स्थिर, अपरवर्तित और अप्रगतिशील संस्थाओं के रूप में कार्य करते रहे।

समाज के उच्च वर्ग में संचार प्राप्ति का साधन होने के कारण उच्च शिक्षा का प्रभाव समाज के निम्न व मध्य वर्ग पर नहीं पड़ सका। इस प्रकार ये उच्च शिक्षा केन्द्र समाज के लिए आदरणीय संस्थाएं तो बनी रहीं, पर सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोगी नहीं बन पाई।

सैद्धातिक कारण– उच्च शिक्षा का उद्देश्य क्या है? इस विषय में विश्व भर के विचारक प्रायः एकमत है कि उच्च शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य– "ज्ञान के उस उदात्त रूप का अन्वेषण करना है, जिससे मानव–संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में विकास और उन्नति हो सकें।"[54] अर्थात् उच्च शिक्षा में ज्ञान का अन्वेषण तथा सांस्कृतिक उदात्तीकरण– ये दो महत्वपूर्ण प्रकार्य हैं।

हम सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर प्रजातंत्री विचारधारा को स्वीकार कर चुके हैं। लेकिन विश्वविद्यालयों की कार्ययोजना में अभी भी पुराने अधिकारवाद, स्तरवाद और केन्द्रियता की प्रवृत्ति मौजूद है। आजादी के बाद उच्च शिक्षा के संगठन में प्रजातांत्रिक अभिकल्पना के अनुरूप परिवर्तन करने की आकांक्षा विश्वविद्यालय आयोग (1949) माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) और शिक्षा आयोग (1966) के प्रतिवेदनों में काफी आग्रहपूर्वक व्यक्त की गई थी लेकिन

(54) भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियां, डॉ0 सुबोध अदावल, माघवेन्द्र उनियाल, पृष्ठ 280। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

स्थिति जहाँ की तहाँ है। क्यो? क्योंकि इतने वर्षों की स्थिरता और एकरसता ने हममें परिवर्तनशीलता अथवा गतिशीलता की चेतना को कुंठित कर दिया है और फिर भी उच्च शिक्षा की वर्तमान समस्याओं के निराकरण में भारतीय समाजवादी चिंतकों के विचार विचारणयी है।

उच्च शिक्षा से सम्बन्धित कुछ विचारणीय बातें

"किसी भी देश की प्रगति वहाँ की उच्च शिक्षा की सार्थकता और सोद्देश्यता पर निर्भर करती है। हमारे देश में प्रायः यह कहा जाता है कि उच्च शिक्षा माध्यमिक शिक्षा का विस्तार मात्र है। इसमें जीवन–उद्देश्यों का अभाव है। अतएव हमें सर्वप्रथम उच्च शिक्षा के अपेक्षित उद्देश्यों पर विचार करना चाहिए और यह स्पष्ट करना चाहिए कि ये उद्देश्य हमारे देश की उच्च शिक्षा में कहाँ तक विद्यमान है। उचित एवं मूर्त उद्देश्यों के निर्धारण के विषय में हमारी उदासीनता के कारणों का विश्लेषण करना आवश्यक है।"[55]।

किसी भी देश में उच्च शिक्षा का स्वरूप उस देश की औद्योगिक आवश्यकताओं का भी सूचक होता है। उन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अध्ययन की विषय–वस्तु तथा अवधि निश्चित की जाती है। लेकिन हमारे देश में उच्च–शिक्षा के स्वरूप का हमारी आवश्यकताओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। अच्छा हो यदि हम उच्च शिक्षा के स्वरूप का विश्लेषण कर उन आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त करें जिनकी पूर्ति उच्च शिक्षा के द्वारा सम्भव है। इस दृष्टि से उच्च शिक्षा के स्वरूप का मूल्यांकन करना आवश्यक है।

आजादी के बाद उच्च शिक्षा के स्तर पर संख्यात्मक वृद्धि बड़ी तीव्रता से हुई। परिणामस्वरूप प्रवेश सम्बन्धी समस्यायें उठ खड़ी हुई और छात्र–प्रवेश पर नियंत्रण की बात चल निकली। लेकिन यदि हम वृद्धि– ऑकड़ों की तुलना पश्चिमी देशों से करें तो ज्ञात होगा कि उच्च शिक्षा के स्तर पर हमारी संस्थाओं और छात्रों की संख्या अभी बहुत कम है। अधिकांश व्यवसायों के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का अभाव खटकता रहता है। इस असंगत स्थिति के कारणों की छानबीन होनी चाहिए और इसके प्रभावों का सम्यक् विवेचन भी।

अधिकांश शिक्षा शास्त्रियों का मत है कि उच्च शिक्षा के स्तर पर नियंत्रण होना चाहिए। केवल योग्य और बौद्धिक रूप से तीव्र छात्रों को ही प्रवेश दिया जाना चाहिए। दूसरे लोगों का मत है कि इस प्रकार का नियन्त्रण जनतांत्रिक आस्था के विपरीत है। हमें इन दोनो पक्षों पर अधिक विस्तार से विचार करना चाहिए और ऐसे सुझाव प्रस्तुत करने चाहिए जिनसे प्रवेश–विधि एवं छात्र संख्या की बड़ी समस्याओं का समाधान मिल सके।

हमारी उच्च शिक्षा की संस्थाओं की अल्प सार्थकता का कारण प्रायः यह माना जाता है कि इनमें जो पाठ्यक्रम चल रहा है वह एक ओर आधुनिक ज्ञान–विकास की दृष्टि से पिछड़ा

(55') भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियां, डॉ0 सुबोध अदावल, माधवेन्द्र उनियाल, पृष्ठ 280। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

है तो दूसरी ओर उसका हमारी आवश्यकताओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन दोनो तथ्यों का विश्लेषण होना चाहिए और इनके कारणों की जानकारी प्राप्त करके वे विधाएं सुझानी चाहिए जिनसे पाठ्यक्रम की ये कमजोरियाँ दूर की जा सकें।

परीक्षाओ का स्वरूप और संगठन भी ठीक उसी तरह का है जैसा माध्यमिक स्तर पर। इससे दोनो स्तरों मं कोई गुणात्मक अन्तर नहीं हो पाता। प्रायः सभी लोग इस स्तर की परीक्षाओं में सुधार की आवश्यकता पर बल देते आ रहे हैं। हमें इस स्तर पर प्रचलित परीक्षा प्रणाली का भलीभॉति मूल्यांकन और सुधार की दिशाओं का निश्चय एवं प्रस्तावित विधियों के गुण–दोष का विवेचन करना होगा।

प्रायः यह कहा जाता है कि हमारी उच्च शिक्षा संस्थाएं जड़, स्थिर एवं पारम्परिक हो गई है। दोष शायद संगठन के स्वरूप में है, जहाँ अधिकारी वर्ग में सारी सत्ता केन्द्रित हो गई है। अतएव संगठन के स्तर पर कमियों का विश्लेषण करते हुए इन संस्थाओं की विभिन्न कार्यकारी इकाइयों की भूमिका का अधिक गहराई से मूल्यांकन आवश्यक है। अंत में संशोधन प्रस्तुत करने हैं जिनसे इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली और कार्यक्षमता में सुधार किया जा सके।

राजकीय सहायता ने उच्च शिक्षा की संस्थाओं की स्वायत्तता पर गहरा आघात किया हैं परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा के स्तर पर न स्वायत्तता रह गई है और न स्वातंत्रता। ये संस्थाएँ सरकारी दफ्तर की तरह कार्य कर रही है। इस प्रकार की आलोचना को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है कि शैक्षिक संदर्भ में स्वायत्तता और स्वतन्त्रता के स्वरूप और निर्धारक तत्वों का निश्चयीकरण हो और उन घटकों का पता लगाया जाय जिनसे इन तत्वों में न्यूनता आती है। यह भी निर्णय करना है कि स्वायत्तता और स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए इन संस्थाओं के स्वरूप में क्या परिवर्तन अपेक्षित है।

उच्च शिक्षा संस्थाओं का प्रमुख उत्तरदायित्व और अनुसंधान माना गया है। अध्यापन की स्थिति तो असंतोषजनक है ही, अनुसंधान भी प्रायः निरर्थक और अनुपयुक्त है। इस दृष्टि से अनुसंधान के उद्देश्य और आवश्यकताओं का निर्णय करना आवश्यक है। फिर देखना है कि हमारी सस्थाओं में अनुसंधान कार्य की क्या स्थिति है और अन्त में उन कारणों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए जो अनुसंधान की गुणात्मकता और सार्थकता पर प्रभाव डालते हैं।

विश्वविद्यालयों में खोजकार्य एवं डॉ0 लोहिया का दृष्टिकोण

विश्वविद्यालयों का प्राध्यापक कैसा होना चाहिए, अनुसंधान कार्य किन विषयों में होना चाहिए, उच्च शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए, तथा पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए इस विषय में डॉ0 लोहिया के विचार दर्शनीय है।

" विश्वविद्यालय के मुख्य आकर्षणों में एक यह विश्वास भी होता है कि वह ज्ञान और शक्ति का भण्डार होने के अतिरिक्त ऐसी सोद्देश्य जिज्ञासा का केन्द्र भी है जो ज्ञान और शक्ति बढ़ाने की ओर ले जाती है। युवा दिमाग इस जिज्ञासा की उपस्थिति से उतना ही आकर्षित होता है जितना खेल–कूद, जवान और स्वस्थ शरीरों की उपस्थिति से। दिमाग और शरीर की इस रसमयता से। ज्ञान के नये क्षेत्रों के उपयोग और सामान्य स्वास्थ्य में सुधार से राष्ट्र को लाभ पहुंचता है। भारतीय विश्वविद्यालयों को दोनो ही दिशाओं में तीव्र गति से प्रयत्न करने होंगे। क्योंकि उन्हें लगभग नये सिरे से काम करना है।"[55]

विश्वविद्यालय के अध्यापक वास्तव में विद्वान हों, जो अपने विषय के सारे उपलब्ध ज्ञान से परिचित हो और अपनी विशिष्ट बुद्धि और ज्ञान से विषय की मोटी–मोटी बातों को प्रकाश में ला सकें। अध्यापक अभी जितनी किताबें और पत्र–पत्रिकाएं पढ़ते हैं, उससे कहीं ज्यादा उन्हें पढ़ना होगा। पढ़ी हुई सामग्री और जीवन पर ज्यादा चिंतन और मनन करना होगा।"

खोजकार्य के विषय

विश्वविद्यालयों में खोजकार्य के विषय क्या होने चाहिए इस विषय में डॉ0 लोहिया ने कहा था– " जितना आकर्षण प्राकृतिक विज्ञानों के खोजकार्य में हैं, उतना अधिक आकर्षण और किसी में नहीं होता। इतने तात्कालिक महत्व की ओर कोई चीज भी तो नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि गणित, रसायन, भौतिक–शास्त्र और भूगर्भ शास्त्र जैसे विषयों में खोज निश्चित रूप से रहस्योद्घाटन करती है।

मैं खोज की इन योजनाओं और उनमें लगे हुए वैज्ञानिकों के बारे में कुछ चर्चा करने योग्य तो नहीं हूँ, लेकिन इतना तो कह ही सकता हूँ कि उनके बिना आधुनिक काल का विश्वविद्यालय निष्प्राण प्रतीत होगा।

वर्णन विश्लेषण को सिद्धान्त विश्लेषण का मार्ग तैयार करना चाहिए, जिसका इस समय भारतीय विश्वविद्यालयों में लगभग पूरा अभाव है। सैद्धान्तिक विश्लेषणात्मक खोज के बिना केवल वर्णनात्मक खोज का मूल्य लाजमी तौर से नष्ट हो जाता है और वह प्रतिष्ठा व आमदनी की दृष्टि से घटिया डाक्टर उपाधिधारियों का नीरस प्रवचन रह जाती है।"[56]

विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम

विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम क्या हों, इस विषय में डॉ लोहिया का कथन दर्शनीय है– "जो विश्वविद्यालय वर्णन–विश्लेषण, सिद्धान्त विश्लेषण और प्राचीन विषयों में खोज का सुगठित कार्यक्रम चलाएगा, वह हिन्दुस्तान के लोगों की भलाई का काम करेगा। हिन्दुस्तान का

---

(55) भारत माता– धरतीमाता–(राममनोहर लोहिया के सांस्कृतिक लेख) लोक भारती इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1999, पृष्ठ 164, 165

(56) भारत माता– धरतीमाता–(राममनोहर लोहिया के सांस्कृतिक लेख) लोक भारती इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1999,

दिमाग, अपने विकास की पूर्ति के लिये ऐसा विश्वविद्यालय खोज निकालेगा। मुझे यह कहने की जरूरत नहीं है कि ऐसी खोज का माध्यम कभी अंग्रेजी नहीं हो सकती। अवश्य ही ऐसी खोज की भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तान की कोई अन्य भाषा होगी। पहले मैं सोचता था कि स्नातकीय शिक्षा के ऊपर हिन्दुस्तान के सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी में काम होना चाहिए। अपनी इस राय में आंशिक संशोधन करना जरूरी है। भाषा का वह साधिकार प्रयोग, जिसके बिना प्राचीन विषयों में खोज का कोई अर्थ नहीं होता, और वर्णात्मक या सैद्धान्तिक विषयों में भी कम ही अर्थ होता है, केवल मातृभाषा के द्वारा ही सम्भव है। मुझे आशा है कि कोई दिन ऐसा आयेगा जब हिन्दुस्तान के सभी लोगों के लिये हिन्दी मातृभाषा के समान होगी। लेकिन तब तक के लिये हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं की स्नातकीय शिक्षा के बाद खोजकार्य के माध्यम के रूप में स्वीकार करना होगा। अन्यथा आजकल खोज करने वाले आमतौर पर अपने माध्यम् से अच्छी तरह परिचित न होने के कारण जो मोटी–मोटी नीरस और तत्वहीन किताबें लिखते हैं उनका सिलसिला जारी रहेगा।''[57]

उच्च शिक्षा की गुणात्मकता में वृद्धि हेतु आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार

''यह एक आम शिकायत है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा के स्तर का ह्रास हो रहा है, विद्यार्थियों में अपने सामान्य संस्कृति की कोई पृष्ठभूमि नहीं है, और उनका मानसिक विकास अत्यन्त हीन है। किन्तु विश्वविद्यालयों की शिक्षा पर पृथक रूप से नहीं सोंचा जा सकता है। शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं में एकता होती है और उच्चतम अवस्था के स्तर में ह्रास हो रहा है तो इसका कारण यह है कि नीचे का स्तर जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं है। माध्यमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और उच्चतर शिक्षा को पूर्ण लाभदायक बनाने के लिए इस कड़ी को सुदृढ़ बनाना पडेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा बिल्कुल दोषरहित है। ज्ञान के क्षितिज का अपार विस्तार होने के कारण आधुनिक काल के किसी विद्यार्थी को पुराने समय के अपने अंग्रेजी से अधिक जानकारी रखने की आवश्यकता है। समुचित मानसिक विकास के लिए उसे यह जानना आवश्यक है कि वर्तमान जीवन पर विज्ञान की छाप का समा की दृष्टि से वस्तुतः क्या महत्व है। उसे सामाजिक कल्याण के लिए विज्ञान की महत्ता को समझने की कोशिश करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे जनतांत्रिक भावों तथा सामाजिक आदर्शों से ओतप्रोत होना चाहिए। इसलिए भौतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के साथ मानवता का योगदान श्रेयस्कर कहा जाता है। इससे संकीर्ण विशेषीकरण के दासों का परिहार करने में भी एक सहायता मिलेगी। एक व्यापक आधार पर प्रतिष्ठित संस्कृति और सामान्य शिक्षा सभी विशेषीकृत शिक्षा की पृष्ठभूमि होनी चाहिए। उपर्युक्त पृष्ठभूमि के बिना किसी वृत्ति विशेष की

(57) भारत माता– धरतीमाता (डा० लोहिया के सांस्कृतिक लेख) लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

योग्यता प्राप्त कर लेने से विद्यार्थी जीविकोपार्जन करने में तो सर्मथ्य हो जायेगा किन्तु इससे उसकी जीवन की समुचित तैयारी पूरी नहीं हो सकेगी। एक मनुष्य को केवल रोटी से ही संतुष्ट नहीं हो जाना हैं, बल्कि उसे अपनी समाज का भी उपकार करना है, और एक स्वतन्त्र और जनतांत्रिक राज्य के नागरिक की हैसियत से अपने अधिकारों के उचित प्रयोग तथा कर्तव्यों का निर्वाह करना है।"[58]

विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ कालेजों में हुआ है। विश्वविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी को, चाहे वह किसी विभाग का हो, अपने देश के विधान की रूपरेखा भूतकालीन इतिहास तथा आधुनिक विश्व के सम्बन्ध में कुछ जानकारी रखना चाहिए। उसे आधुनिक विचारधारा का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए और अपने लिए एक सामाजिक दर्शन बनाने की कोशिश करनी चाहिए। उसे वैज्ञानिक विचार पद्धति का अभ्यास करना चहिए और उसकी विचार प्रक्रिया तर्कपूर्ण होनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में परीक्षा की दृष्टि से इन विषयों का समावेश किया जाय, यह वांछनीय भी नहीं है। अगर 'एक्सटेंशन लेक्चर' की व्यवस्था की जाय और शिक्षक तथा शिक्षार्थी में निकट सम्पर्क स्थापित किया जाय तो नवयुवक विद्यार्थियों पर बिना अधिक भार डाले ही यह उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। 'ट्यूरोरियल' पद्धति को सुसंगठित कर देने से यह अधिक लाभदायक हो जायेगा। इसमें संदेह नहीं कि यह खर्चीली व्यवस्था है। किन्तु अगर हम अपने विद्यार्थियों का सचमुच बौद्धिक विकास करना चाहते हैं, तो इस अतिरिक्त व्यय की परवाह नहीं करनी चाहिए।

उच्च शिक्षा में शिक्षा का माध्यम

एक दूसरा विषय जिसकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ, शिक्षा का माध्यम। अब समय आ गया है जब हमको राष्ट्रभाषा के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा का आयोजन कर लेना चाहिए। जब राजकाज की भाषा बदल गयी है तब तो यह काम तेजी से होना चाहिए। शिक्षा का माध्यम यथासम्भव तत्काल बदल जाना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमकों किसी विदेशी भाषा का अब सहारा नहीं लेना है। विदेशी भाषा की आवश्यकता बहुत दिनों तक बनी रहेगी, किन्तु वह शिक्षा का माध्यम न होगी और शिक्षा के कार्यक्रम में उसको गौण स्थान प्राप्त होगा। इस सम्बन्ध में यह भी कहना आवश्यक है कि अपनी भाषा में सब विषय की ऊँची से ऊँची पुस्तकें लिखी जानी चाहिए"।[59]

आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिपि की एकता पर भी जोर देते हुए कहा था कि– "जिस प्रकार राष्ट्रभाषा को उच्चतर शिक्षा को माध्यम के रूप में स्वीकार कर लेने से सारे देश के लिए विचार

(58) साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति, आचार्य नरेन्द्र देव, प्रभात प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ 116, 117।
(59) साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति, आचार्य नरेन्द्र देव, प्रभात प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ 127।

करने और उसे व्यक्त करने के लिए एक माध्यम मिल जायेगा, उसी प्रकार एक ही लिपि द्वारा अर्न्तप्रान्तीय एकता की भावना उत्पन्न करने और उसे अग्रसर करने में भी सहायता मिलेगी।"[60]

राष्ट्र की संस्कृति की रक्षा विश्वविद्यालयों द्वारा ही सम्भव है

किसी भी राष्ट्र की उन्नति एवं उसकी संस्कृति की रक्षा विश्वविद्यालयों द्वारा ही सम्भव है। क्योंकि यूनिवर्सिटी ही संस्कृति के केन्द्र हैं। विश्वविद्यालयों के अध्यापक आवश्यकता से अधिक राजनीति में रूचि लेने लगे हैं, जिससे शिक्षा में अपेक्षित गुणात्मक वृद्धि नहीं हो पाती, इस प्रसंग में आचार्य नरेन्द्रदेव का कथन दर्शनीय है– "प्रोफेसरों की आज हालत यह है कि वे चाहते है कि रूपया कमाना जिस तरह से, जिससे मुमकिन हो उसे करें। यह जो मनोवृत्ति है हमें इसके बदलने की जरूरत है। दूसरी बात प्रोफेसरों में गिरोह बन्दियाँ हैं, हमें उनको उत्म करना है। प्रोफेसर गुटबन्दियाँ करते हैं, यूनिवर्सिटी की राजनीति में ज्यादा भाग लेते हैं और पढ़ाने में कम। इस सभी खामियों को दूर करना है। नये तरीके जारी करना है। प्रोफेसरों को चाहिए कि तालीम की तरक्की करें अनुसंधान करें। साइंस के सच्चे सौदाई हों, लड़कों के सामने अमली मिसालें पेश करें और इस बात को साबित कर दें कि उनको आदर्श का ज्यादा ख्याल है और जीवन के तुच्छ लाभों का कम।"[61]

अध्यापकों का कर्तव्य

वर्तमान समय में शैक्षिक जगत में अनुशासनहीनता फैलती जा रही है, छात्र शिक्षकों का सम्मान करने की जगह विद्रोही होता जा रहा है। सर्वत्र असंतोष व्याप्त है, शिक्षक अपनी गरिमा खोते जा रहे है। वर्तमान समय में हमें आत्मचिंतन करने की आवश्यकता है, ऐसे समय में समाजवादी शैक्षिक विचारकों के सुझाव सर्वथा प्रासंगिक हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार सर्वथा समीचीन है– "अध्यापक वर्ग को अपनी उदासीनता, विराग, आलस्य और निष्क्रियता का त्याग करना पड़ेगा और देश की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान में सक्रिय भाग लेना होगा। आगे बढ़कर उसे नये समाज की व्यवस्था में सक्रिय योगदान देना होगा। उसे यह निर्णय करना होगा कि पुरानी संस्कृति और शिक्षा सिद्धान्त का कितना अंश सुरक्षित रखना है और कितना अंश केवल रूढिगत महत्व का, पर यथार्थ में निःसार होने से निकाल फेंकना है। इस क्षेत्र में सफल होने के लिये आवश्यक है कि अध्यापक वर्ग में नवीन उद्देश्यों और आदर्शों पर दृढ़ विश्वास और आस्था हो और इन्हें प्राप्त करने के लिए उत्साह के साथ दृढ़ प्रतिज्ञ होकर पूरा प्रयत्न करें।"[62]

---

(60) आचार्य नरेन्द्र देव, युग और विचार, सम्पादक – जगदीश चन्द्र दीक्षित, निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0 पृष्ठ 137।

(61) आचार्य नरेन्द्र देव, युग और विचार, सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित पृष्ठ 26।

(62) आचार्य नरेन्द्र देव युग और विचार, सम्पादक– जगदीश चन्द्र दीक्षित पृष्ठ 131।

अनुशासन– अनुशासनहीनता आज की ज्वलंत समस्या है, इसे दूर करेन के लिये छात्रों में संयम की प्रवृत्ति को बढ़ाना होगा। आचार्य नरेन्द्रदेव ने इस संदर्भ में कहा था कि "आज चारों ओर से इस बात की शिकायत होती है कि विद्यार्थियों में संयम की कमी हो गयी है। इसके क्या कारण है? इस पर हमकों विचार करना है क्योंकि बिना रोग का निदान जाने रोग का उपशम नहीं हो सकता। इस संयम की कमी के अनेक कारण है। जीवन की अनिश्चितता के कारण समाज की सब श्रेणियों में असंतोष पाया जाता है। समाज के मौलिक आधार के सम्बन्ध में ही तीव्र मतभेद है। महायुद्ध के पश्चात् आर्थिक कठिनाइयाँ और बढ़ गई हैं और इसका मनोवृत्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आज हमारे देश में सरकारी विभागों में भी कुशलता और अनुशासन की कमी आ गयी है। सारा देश इस रोग से ग्रस्त है। आर्थिक कठिनाइयों को बिना दूर किये पूर्ण रूप से संयम का पुनः प्रतिष्ठित होना सुगम नहीं है। जहाँ तक विद्यार्थियों का सम्बन्ध है कि उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार कर तथा उनके निकट सम्पर्क में आकर हम इस शिकायत को बहुत कुछ दूर कर सकते हैं। विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिसमें वह आत्मसंयम के महत्व को समझे। बाहर से अनुशासन का आरोप प्रायः व्यर्थ हुआ करता है। हमारे विद्यालयों का वातावरण ही ऐसा होना चाहिए जिसमें असंयम के उदाहरण बहुत कम हो जाय।

"हमारे विद्यार्थियों को भी समझना चाहिए कि उनको अपने राष्ट्र को सबल बनाना है तथा एक नूतन समाज का निर्माण करना है। समाज के वहीं नेता और निर्माता होंगे। किन्तु आत्मसंयम के बिना कोई भी व्यक्ति किसी जिम्मेदारी के काम को निभा नहीं सकता।"[63]

उच्च शिक्षा के संदर्भ में डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी के विचार

डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी की मान्यता थी कि महाविद्यालयों में प्रबन्ध व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। प्रबन्धन से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति महाविद्यालय की प्रगति का इच्छुक हो उन्हें धन का लालच न हो बल्कि वे सामाजिक भावना से ओत–प्रोत हो। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है– हमें विश्वविद्यालय की प्रबन्ध–व्यवस्था को इस प्रकार सुधारने की कोशिश करना है कि प्रलोभन कम से कम उपस्थित हो।

निर्देशन

माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में निर्देशन की कमी एक गम्भीर प्रश्न है। माध्यमिक शिक्षा में निर्देशन की आवश्यकता मुख्य तथा पाठ्य विषयों के चुनाव में पड़ती है, चूंकि इस समय बालक कों मस्तिष्क अपरिपक्व होता है अतः यदि इस अवस्था में उसकी रूचियों, योग्यताओं, अभिक्षमताओं को जाने बिना विषय दिला दिये जाने की स्थिति में यहं सम्भावना रहती है कि वे विषय उसके लिए कई कारणों से अहितकर साबित हो। यदि छात्र द्वारा लिये गये विषय उसकी

(63) साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति, आचार्य नरेन्द्र देव, प्रभात प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ 128।

रूचि, क्षमता के अनुकूल न होंगे तो वह उनमें पूर्णतया सफल नहीं हो सकता अतः इस ओर पर्याप्त ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। इसके लिए हर माध्यमिक विद्यालय में परामर्शदाता के पद का सृजन कर उस पर योग्य एवं सहृदय अध्यापक की नियुक्ति की जानी चाहिए।

विश्वविद्यालय स्तर पर निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता उपर्युक्त विषयों के चुनाव के समय पड़ती है। अधिकांशतः देखा गया है कि छात्र बिना सोचे–समझे और अपनी योग्यताओं को परखे बिना ही विषयों का चयन कर लेते हैं जिन पर अधिकार प्राप्त करने की उनकी क्षमता नहीं होनी न ही भावी जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल होते हैं। परिणाम यह होताहै कि पहले परीक्षा में तथा तत्पश्चात् जीवन में असफल हो जाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि छात्रों के भविष्य को संवारने के दृष्टिकोण से निर्देशन एवं परामर्श को उच्च शिक्षा का आवश्यक अंग बनाया जावे। इसी समस्या की पूर्ति हेतु विश्वविद्यालयों के शिक्षा संकाओं में निर्देशन एवं परामर्श नामक विषय का अध्ययन कराया जाता है।

सामुदायिकता की भावना

माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के छात्रों में सामुदायिक भावना का अभाव महत्वपूर्ण समस्या है। डॉ0 सम्पूर्णानन्द चाहते थे कि छात्रों को सामुदायिक जीवन का क्रियात्मक रूप दिखाया एवं समझाया जाना चाहिए, ऐसा करने से उनके अन्दर परस्पर प्रेम, आदर, सहयोग, करूणा, मुदिता की भावना प्रबल होगी जिससे उनका चारित्रिक विकास होगा। अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों को सामुदायिक जीवन के लाभ बतावे तथा उसके लिए सांस्कृतिक कार्यक्रमो, वाद–विवाद, भ्रमण,; समाजसेवा, खेलकूद इत्यादि का आयोजन करें।

प्रौढ शिक्षा (समाज शिक्षा)

भारत एवं प्रजातांत्रिक देश है, चूंकि प्रजातंत्र में प्रत्येक नागरिकों को अपने अधिकारों को समझना चाहिए तथा अपने कर्तव्यों को जानना चाहिए, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक शिक्षित हो, क्योंकि शिक्षा के बिना न तो कोई व्यक्ति नागरिक के कर्तव्य का ठीक से पालन कर सकता है और न अपनी सांस्कृतिक या आर्थिक उन्नति कर सकता है। देश की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है और अधिकांशतः निरक्षर है, इसलिए आवश्यक है कि ऐसी स्थिति में प्रौढ़ शिक्षा का विस्तार किया जाये, ताकि प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति अपने पड़ोसी समाज, गाँव व देश के प्रति अपने कर्तव्यों को जान सकें साथ ही वह अपने जीवन के लक्ष्य से भी अवगत हो सके।

भारतीय समाजवादी चिंतक इस बात को प्रोत्साहित करते थे कि गाँव के बड़े–बूढ़े स्कूल में आयें एवं वहीं अपनी सभा एवं पंचायत करें। प्रौढ़ शिक्षा का मुख्य अंग साक्षरता, बौद्धिक ज्ञान तथा समस्याओं के प्रति जागरूक बनाना है। इस ध्येय से प्रेरित होकर वर्तमान में प्रौढ़ शिक्षा के

क्षेत्र में वृद्धि करके उसे समाज शिक्षा का नाम दिया गया है। समाज शिक्षा छात्रों द्वारा उचित ढंग से ही जा सकती है। इस सम्बन्ध में डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी ने सुझाव दिया है कि छात्रों की लम्बी छुट्टियाँ ऐसे समय में दी जानी चाहिए जब खेती का कार्य हो रहा हो और छात्र देहातों में रहकर उनकी सहायता कर सकें। उनको श्रम करते देखकर श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ेगी तथा पढ़े–लिखे लोगों में श्रम से हिचक हटना प्रारम्भ होगी।

इस सम्बन्ध में उनका कथन है कि– ''आज छात्रों को देहातों और शहरों में प्रौढ़ शिक्षा, किसानों की सहायता आदि कामों के लिए प्रवृत्त और प्रोत्साहित किया जाता है। X X X समाज सेवा के काम से एक तो छात्रों की वह हिचक मिट जाती है, जो पढ़े–लिखे लोगों को शारीरिक श्रम से होती है, दूसरे उनको समाज के प्रति अपने कर्तव्य का ऐसा ज्ञान होता है, जो उनको आगे चलकर अच्छे नागरिक बनने में सहायक होता है।

हम आशा कर रहे हैं कि थोड़े दिनों में समाज सेवा का अवसर किसी न किसी रूप में प्रत्येक छात्र को मिलेगा। स्वतन्त्र भारत के लिए यह परम आवश्यक है। हम यह भी सोच रहे हैं कि लम्बी छुट्टियाँ ऐसी ऋतुओं में दी जाय जब छात्र देहातों में जाकर किसानों की सहायता कर सकें।''[64]

प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार में उन्होंने साधारण ज्ञान की वृद्धि के लिए चित्रपट और रेडियों से नित्य प्रति विशेष प्रोग्राम सुनाने का न केवल उपाया सुझाया है बल्कि ऐसी व्यवस्था भी करा दी थी। 'शिक्षा के नवीन दृष्टिकोण' सम्बन्धी चर्चा में उनके द्वारा व्यक्त विचार निम्नांकित है– ''शिक्षा साक्षरता से बड़ी चीज है, इसलिए शिक्षा के साधनों में केवल पुस्तकों से काम नहीं चल सकता। साधारण ज्ञान की वृद्धि के लिए ऐसे उपायों से काम लेने की आवश्यकता है, जो जल्दी बोध करा सके और जिनका प्रभाव दूर–दूर तक पहुंचे और देर तक रहे। इस दिशा में चलचित्र और रेडियों से बड़ी सहायता मिलती है। हमने अपने प्रदेश में चलचित्रों का प्रबन्ध प्रारम्भ कर दिया है, कुछ चलचित्र बनवाये भी हैं। इस बात का भी शीघ्र प्रबन्ध करने जा रहे हैं कि रेडियो से शिक्षा के उद्देश्यों का नित्य–प्रति विशेष प्रोग्राम सुनाया जाय।''[65]

प्रौढ़ शिक्षा के काम को प्रान्तीय सरकार के द्वारा बढ़ाया गया था। डॉ0 सम्पूर्णानन्द इस ओर पूर्णतः जागरूक थे। उन्होंने 'एडल्ट एजूकेशन' को बदलकर नया नाम 'सोशल एजूकेशन' करके उसके क्षेत्र को बढ़ाने का कार्य भी कराया था।

स्त्री शिक्षा एवं पिछड़ों की समस्या

भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 में नारी को पुरूष की समकक्षता प्रदान की गई है– ''राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विरोध नहीं करेगा।''

(64) डा0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा में नवीन दृष्टिकोण (लेख) कोटेडेन इन समिधा पृष्ठ 273, लखनऊ, सूचना एवे जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0।
(65) डॉ0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा में नवीन दृष्टिकोण (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 274 सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0।

स्वतन्त्रता के करीब 50 वर्षों के बावजूद आज भी काले देशों की सम्प्रभुता संकोच में है। बौद्धिक एवं सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के सवाल अत्यन्त उपेक्षित हैं। पश्चिमी संचार माध्यम, प्रेस, प्रकाश ने काले देशों में शून्यता पैदा कर दी है। सारे पूर्वी देश अपनी भूमि में रहकर भी बौद्धिक निर्वासन भोग रहे हैं। वेद, उपनिषद, बुद्ध एवं गाँधी का निर्यातक देश आज पश्चिम के किताबी कूड़ों से पट गया है। भारतीय भाषाओं की कुल किताबों से अधिक की किताबें पश्चिम से भारत में आयात होती हैं। भारत के पुस्तकालय और शिक्षालय पश्चिमी माल के गोदाम हो गये हैं। प्रत्येक दिल–दिमाग में पश्चिमी ज्ञान भरा है।

यूरोप के मुकाबले भारत का समाजवाद मूलतः उत्पादन से जुड़ा है। ऐसा उत्पादन जो सबको काम दें, समृद्ध करें, बौद्धिक विकास करें, इसमें समता की भूमिका सर्वसम्मत है। भारत के सामाजिक संगठन में स्त्रियाँ और पिछड़े दो अत्यन्त शोषित रहे हैं। यूरोप के समक्ष पूरा भारत शोषित रहा है। भारत में ये दोनो शोषित हैं। "देश की स्वतन्त्रता और समृद्धि दोनो दृष्टियों से स्त्री, शूद्र, गिरिजन, हरिजन की स्वतन्त्रता आवश्यक है।
परिवार का आधार स्त्री है। स्त्री के बिना परिवार की कल्पना नहीं हो सकती। प्रायः संसार के सभी भागों में स्त्री परिवार के लिए ही सार्वजनिक एवं बाहरी जीवन से मुक्त रखी जाती है। आधुनिक कामकाजी महिलाओं में प्रायः ही परिवार और कर्म कार्यालय का द्वन्द देखा जाता है।

इन सब स्थितियों के बावजूद आधुनिकता की आवश्कतायें स्त्री को घर परिवार से बाहर ला रही है। प्रतिदिन कामकाजी महिलाओं की संख्या बढ़ रही है। स्त्री–पुरूष के बीच समानता के विश्वास ने स्त्री को हर प्रकार के रोजगार में अग्रसर किया है। आज सभी धंधों में स्त्रियाँ मौजूद है। लोहिया इसे एक और दृष्टि से भी देखते हैं। उनकी दृष्टि में स्वतन्त्रता और विकास की दृष्टि से भी स्त्रियों का बाहर आना आवश्यक है। बाहर से अलग, अपरिचित स्त्री का मानवीय विकास रूक जाता है। यह स्त्री के लिये जितना हानिकर है उतना ही बुरा है देश और समाज की दृष्टि से। परिवार पालन की दृष्टि से स्त्री को प्रायः ही असामाजिक स्तर पर ला दिया था। अपनी स्वतन्त्रता की चिन्ता से रहित स्त्री देश–दुनियाँ की स्वतन्त्रता के प्रति भी उदासीन हो गयी। फलतः आधा भारत अंधकार में डूब गया। स्त्री जीवन के इस अंधेरे ने पुरूष को भी प्रभावित किया। मतलब कि परतंत्रता और अवरोध का एक बड़ा कारण स्त्री का घर के अंधेरे में बंद रहना है।

यही बात पिछड़ों के बारे में भी सच है। समाज के इस उत्पादक वर्ग को समाज की प्रत्येक गतिविधि में भागीदार होना चाहिए।"[66]

डॉ0 लोहिया ने 60 प्रतिशत भागीदारी का नारा दिया। इस 60 प्रतिशत में स्त्रियां और

(66) समाजवाद– आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ0 लोहिया और जयप्रकाश की दृष्टि में, डा0 युगेश्वर, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ0प्र0।

पिछड़े दोनो शामिल है। शेष 40 प्रतिशत को मुख्यतः अपनी योग्यता से आना है। 40 प्रतिशत इसलिए कि शासन की योग्यता क्षीण न होने पाये।

स्त्रियों का मामला बड़ा ही नाजुक है। घर से निकलते ही वे अनेक आरोपों से भर जाती थी। लोहिया ने स्त्री के घर से बाहर और घर के भीतर के मार्ग को संतुलित किया। उन्होंने सीता, सावित्री की निन्दा नहीं की। एक स्त्री–पुरूष सम्बन्ध को आदर्श माना। किन्तु किसी प्रकार के विचलन को भी स्वीकार कर स्त्री को सम्पूर्ण लांछन से बचा लिया। किसी विचलन के कारण नारी जीवन असामाजिक न बन जाय। समाज उसे तिरस्कृत न कर दे। स्त्री को पुरूष जैसी छूट की आवश्यकता है। स्त्री किसी की आरक्षित सम्पत्ति नहीं है। उसे भी पुरूष का सहभागी होना है। इसलिए लोहिया ने द्रोपदी को उचित स्थान दिया। लोहिया द्रोपदी की तेजस्विता से प्रसन्न है। सारे विघ्नों के बीच द्रौपदी अपनी स्थिति को विशिष्ट बनाये रखती है। इसलिए लोहिया ने सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन में स्त्री को आगे करने की योजना बनायी। उन्हें भी रक्षण प्राप्त हो। स्त्री समाज का आधा अंग है। इस अर्घांग का पिछड़ा रह जाना दुःख की बात है।

"कोई भी समाज स्त्री–विरोध से सुन्दर और पुष्ट नहीं बन सकता। इसलिए स्त्री को भी विकास के कार्यों में पुरूषों जैसा समान अवसर मिलना चाहिए। इसे कहते हैं समानता का अवसर, सिद्धान्त।"[67]

स्त्री शिक्षा के प्रति स्वतन्त्रता के पूर्व प्रथम कांग्रेसी शासन 1937 से 1939 में तथा द्वितीय कांग्रेस शासन जो 1946 से प्रारम्भ हुआ था, वे शिक्षा मंत्री रहे थे सम्पूर्णानन्द पूरी तरह सचेष्ट रहे। उन्होंने प्रथम शिक्षामंत्री काल में बालिका शिक्षा प्रसार की दृष्टि से महिलाओं के लिए ट्रेनिंग सेंटर बनारस में खोला था, जो बाद में इलाहाबाद स्थानान्तरित कर दिया गया। दूसरा महिला प्रशिक्षण कालेज, झांसी में खोला गया था। दुबारा शिक्षा मंत्री बनने पर पूरे माध्यमिक शिक्षा को पुनर्गठित किया था। पूरे प्रदेश को पाँच रीजन्स (संभाग) में विभाजित करके एक संभागीय उप शिक्षा निदेशक की नियुक्ति की वहीं प्रत्येक संभाग के लिए अलग से क्षेत्रीय बालिका विद्यालय निरीक्षिका का पद सृजित किया था, जिससे बालिका विद्यालयों का प्रभावी निरीक्षण व निर्देशन सम्पादित किया जा सके और अधिक सुचारू रूप से बालिकाओं को शिक्षा दी जाये जो उनका उचित बौद्धिक विकास करके जीवन में अपना योग्य स्थान बनाने में उसकी सहायक बने।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द स्त्री–पुरूष को समान योग्यता एवं सभी कार्यों में भागीदार बनाने के पक्ष में तो नहीं थे, किन्तु नारी जाति को समुचित शिक्षा देकर इस योग्य बना देने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं कि वह आवश्यकता पड़ने पर अपना तथा अपने आश्रितों का पालन कर सकने में सक्षम

(67) समाजवाद– आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ0 लोहिया और जयप्रकाश की दृष्टि में, डा0 युगेश्वर, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ0प्र0।

हो और नारी को उसकी योग्यतानुसार जीविकोपार्जन हेतु अवसर उपलब्ध कराये जाये। उन्होंने लिखा है– " जहाँ तक मुझे ज्ञात है, वैज्ञानिक खोज हो तो यह बात नहीं निकलती कि दोनो की योग्यता हर बात में बराबर है। शरीर की बनावट भिन्न प्रकार की है। इसका प्रभाव वृद्धि पर पड़ना युक्ति ही है। दोनो के स्वभाव मं बड़ा अन्तर है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह हर बात जिसे पुरूष कर सकता है, उसे स्त्री भी कर सकती है या स्त्री के हर काम को पुरुष कर सकता है। जिन कामों को दोनो कर सकते हैं उनमें भी दृष्टिकोण भेद रहेगा। इसके साथ यह ठीक है कि बहुत से ऐसे काम है जिनको दोनो ही प्रायः एक जैसा कर लेंगे। आज यह दशा है कि स्त्री को भूखों मरने का अधिकार तो हैं, पर रूपया कमाने का अधिकार नहीं है। वह इस योग्य बनायी ही नहीं जाती कि चार पैसा कमा सके। यह बात तो दूर होनी ही चाहिए। प्रत्येक स्त्री को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर वह अपना और अपने आश्रितों का पेट पाल सके और ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिए कि जो स्त्री धनोपार्जन करना चाहे उसको योग्यतानुसार इसका पूरा अवसर मिले।"[68]

राष्ट्रीय एकता की समस्या

हमारे देश में विभिन्न वर्ग, सम्प्रदाय, भाषा एवं जाति के लोग निवास करते हैं। अलग–अलग राज्यों में वहाँ के जलवायु के अनुसार उनके जीवन–यापन का ढंग भिन्न है, तथा उनकी आवश्यकतायें एवं समस्यायें भी अलग–अलग प्रकार की है। देश में तीव्रगति से होने वाले आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं प्राविधिक परिवर्तनों से सर्तकता बरतने की आवश्यकता हैं आज देश के प्रत्येक भाग में क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता एवं जातीयता के नारे लिये जाते हैं। आज देश में आपसी भाईचारे एवं एकता को खतरा उत्पन्न हो गया है। देश के शिक्षा–शास्त्रियों, राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों एवं विचारकों के सामने राष्ट्रीय एकता को बनाये रखना एक समस्या है।

राष्ट्रीय एकता एक ऐसी समस्या है जिससे प्रत्येक सभ्य राष्ट्र को अस्तित्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है। राष्ट्रीय एकता की हर देश को जरूरत रहती है, लेकिन हमारे भारत देश के लिए इसकी कहीं अधिक आवश्यकता है। राष्ट्रीय एकता बनाये रखने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी ने राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए शिक्षा प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन के सुझाव अपनी अध्यक्षता में गठित "भावात्मक एकता समिति" के माध्यम से व्यक्त किये हैं। समिति ने प्रतिवेदन में कहा है– "शिक्षा भावात्मक एकीकरण" में बहुत सहायक हो सकती है। यह स्वीकार किया जाता है कि शिक्षा का उद्देश्य मात्र ज्ञानार्जन नहीं है। वरन् विद्यार्थी

(68) डा0 सम्पूर्णानंद– भावी समाज में स्त्रियों का स्थान (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 159, लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0।

के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का विकास होना चाहिए। शिक्षा का दृष्टिकोण विकसित होना चाहिए, राष्ट्रीयता, एकता, त्याग एवं सहिष्णुता की भावना को बल मिलना चाहिए ताकि संकीर्ण स्थानीय हित देशहित में समाहित हो जाये।''

समाजवादी चिंतकों ने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में भावात्मक एकता समिति में तथा शिक्षा सम्बन्धी अपने लेखों में सुधार के सुझाव प्रस्तुत किये हैं। सबसे पहले उन्होंने पाठ्यक्रम पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि पाठ्यक्रम को धर्म निरपेक्षता की दृष्टि से परिवर्तित किया जाय। पाठ्यक्रम में हमारे गौरवमयी इतिहास को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय, क्योंकि राष्ट्रीय एकता के पाठ को सिखाने के लिए इतिहास का शिक्षण आवश्यक है। इस सम्बन्ध में डॉ0 सम्पूर्णानन्द का कथन है– ''क्या मैं एक क्षण के लिए आपका ध्यान इतिहास की शिक्षा की ओर आकर्षित कर सकता हूँ। पाठ्य पुस्तकें तो आती जाती ही रहती है, पर उनकी शिक्षा के पीछे की भावना महत्वपूर्ण है। एक क्षण के लिए भी आपसे यह नहीं चाहता कि आप इतिहास के तथ्यों को बिगाड़े अथवा राष्ट्रीय विनम्रता और विशेषता के बारे में सहीं धारणाओं को बदलने की चेष्टा करें, किन्तु मै। यह चाहता हूँ कि आप जब इतिहास पढ़ाये तो स्मरण रखें कि हम भारतीय हैं। आप भारतीय बच्चों को पढ़ा रहे हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारे स्कूलों के निकले बच्चे समाज पर भार न होकर उसके अलंकार बने तो हमें उन्हें आत्मनिर्भर बनाना होगा। हमें अपने हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख और क्रिश्चिय विद्यार्थियों को बताना होगा कि हमारे यहाँ ऐसे महापुरूष हुए हैं जिनके धर्मों की विभिन्नता के बावजूद हम भारतीय होने के नाते इन पर गर्व कर सकते हैं।''[69]

वे चाहते थें कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर छात्रों को देश की भौगोलिक ऐतिहासिक, एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का पर्याप्त ज्ञान दिया जाये तथा देश की महान् विभूतियों एवं महान् ग्रंथों के बारे में बताया जाय।

राष्ट्रीय एकता के लिए उनके विचार थे कि प्रत्येक विद्यालय में राष्ट्रीय दिवसों एवं पर्वों को सामूहिक रूप से मनाया जाय। खेलकूद, शिक्षा यात्रा, राष्ट्रीय कैडेट कोर स्काउटिंग आदि के विभिन्न भागों के विद्यार्थियों के सम्मिलित कैम्प लगाये जाये तथा वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया जाय। छात्रों में राष्ट्रीय गीत को सहीं ढंग से गाने एवं उसके गायन के समय उचित सम्मान की आदत डालनी चाहिए। देश के प्रत्येक विद्यालय में प्रातः सभा में राष्ट्रीय एकता से सम्बन्धित भाषण दिये जाने चाहिए तथा वर्ष में कम से कम दो बार छात्रों को शपथ दिलानी चाहिए। यह केवल व्यक्तियों का प्रश्न नहीं है, सारे समाज, सारे राष्ट्र की समस्या है जहाँ व्यक्तियों का जीवन इतना असंतुलित, इतना चिंतातुर, इतना अपूर्ण होगा वहाँ राष्ट्र का

(69) डॉ0 सम्पूर्णानंद– शिक्षा शास्त्रियों के सामने समस्यायें (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 269।

जीवन निश्चय ही अस्वस्थ्य होगा। इस कुव्यवस्था को बदलना होगा। आर्थिक व्यवस्था सुधारनी होगी। समाज में नयी मान्यतायें स्थापित करनी होगी। श्रद्धा और विश्वास का फिर से संचार करना होगा।

अनुशासनहीनता की समस्या

आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 सम्पूर्णानन्द, डॉ0 लोहिया का विचार था कि विश्वविद्यालयों में राजनीति के अतिक्रमण से अनुशासनहीनता में वृद्धि हुई है। समाज तथा शासन का कर्तव्य है कि वह इन शिक्षा केन्द्रों को राजनीति की घटिया मानसिकता से दूर रखें और अशांति या अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न न होने पाये। उनका मत था– ''विश्वविद्यालयों को राजनीतिक क्रान्तियों के उद्गम स्थल बनने के बजाय, विचार आन्दोलनों का केन्द्र बनना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो राज्य कभी भी उन कर्तव्यों के प्रति उदासीन नहीं हो सकता। जिनके द्वारा उसे उन सिद्धान्तों की रक्षा करना आवश्यक है, जिसके अनुसार आज हमारे समाज व देश का जीवन व्यवस्थित हो रहा है, इसके लिए चाहे उस पर विश्वविद्यालय की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने का आरोप ही क्यों न लगाया जाय।''

अनुशासनहीनता के लिए सबके अधिक जिम्मेदार घटक 'गिरा हुआ चरित्र' है। आज छात्रों का चरित्र दिन व दिन गिर रहा है, इसका कारण जानना और उसके निवारण हेतु प्रबन्ध करना बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है। आज राष्ट्रीय चरित्र गिर रहा है। आज जरूरत इस बात की है कि शिक्षक अपने चरित्र को उत्तम रखकर उदाहरण प्रस्तुत करें और इस अचूक रीति से अपने छात्रों में नैतिक चरित्र विकसित करें। विश्वविद्यालयी शिक्षा का उद्देश्य उत्तम चरित्र का विकास है और इसकी पूर्ति करना मुख्यतः अध्यापक का कर्तव्य है। अध्यापक के चरित्र को ऊँचा बताते हुए कहा गया है– ''शिक्षक का व्यक्तिगत चरित्र ही सर्वोच्च वेदी है। यदि छात्र अनुभव करता है कि आप पर भरोसा किया जा सकता, तो समझिए कि विद्यालय के अनुशासन की समस्या काफी सीमा तक सुलझ जायेगी। लेकिन एक अध्यापक को अपने शिष्य के कार्यों को उसी दृष्टि से देखना होगा जिस प्रकार से एक बड़ा भाई अपने घुटने के बल चलने वाले अपने छोटे को, अपने विषय में सावधान रहना चाहिए।''[70]

यह बात भी सत्य है कि केवल अध्यापन इस समस्या को हल नहीं कर सकता। इसमें समाज को सक्रिय भूमिका अदा करनी चाहिए क्योंकि छात्र अध्यापन से ज्यादा समाज के सम्पर्क में रहता है। अतः समाज को प्रत्येक नागरिक में नैतिक भावना को विकसित करने का सुसंगठित प्रयास किया जाना चाहिए।

(70) सम्पूर्णानंद– शिक्षा शास्त्रियों के सामने समस्यायें (लेख) कोटेड इन समिधा, पृष्ठ 270, लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ0प्र0।

गुरूजनों के प्रति आदर–भावना का अभाव (सदाचार का अभाव)

आजकल विद्यार्थी जगत में चारो ओर हलचल है। आये दिन हड़तालें होती है, प्रदर्शन होते हैं, जुलूस निकाले जाते हैं, दुकानदारों से झगड़े होते हैं, अध्यापकों के मुँह पर उन्हें भला–बुरा कहा जाता है। समाज के पुराने लोग लड़कों के बहुत खराब होने की शिकायत करते हैं। इस सम्बन्ध में उनकी राय थी कि– 'आज का युवक पहले से बुरा नहीं होता, उसको उत्पात करने में मजा नहीं मिलता, न वह स्वभावतः राक्षस है, यदि वह उन्मार्गगामी हो रहा है, तो इसमें उन परिस्थितियों का दोष है, जिनमें वह रह रहा है।''

जिस समाज में व्यक्ति रह रहा है उसकी स्थिति पर हमें विचार करना होगा, समाज में जिनको मान्यता प्राप्त है, उनका आचरण कैसा है, वह किस आदर्श पर चल रहे हैं तथा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने आचरण द्वारा क्या शिक्षा विकसित कर रहे हैं? क्या वे अर्थ और काम से आगे बढ़कर धर्म का पालन कर रहे हैं या उस ओर अग्रसर हैं। कर्तव्य को पहचानने और उसका पालन करने को भारतीय समाजवादी मनीषियों ने धर्म कहा है और कर्तव्य का पालन करने को सदाचार। सदाचार के अर्थ और उसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए उनका मत था कि– ''सदाचार की निरूक्ति दो प्रकार से हो सकती है, अच्छा आचार और अच्छे लोगों का आचार। पर अच्छे लोगों की यही तो परख है कि उनका आचरण अच्छा होता है। जो अच्छा आचरण करता है वह अच्छा है, इसलिए उभयतः सदाचार का अर्थ अच्छा आचरण ही होता है। जैसा आचरण होना चाहिए, यदि वैसा होता है तो हम अच्छा शब्द प्रयोग करते हैं। अतः सदाचार वह आचार है जो करणीय है। कर्तव्य का भी यही अर्थ है।''

सत्कर्म सदाचार, धर्म का यही लक्ष्य है कि उसमें क्षण भर के लिए देह और वासना के वह पर्दे जो एक जीव को दूसरे जीव से पृथक किये हुए हैं, उठ जाते हैं, नानात्व का प्रायः लोप हो जाता है, अभेद का साक्षात्कार होता है।

युवकों में 'सदाचार की कमी क्यों है, इसका कारण एवं निदान उन्होंने बताये हैं।

''युवकों के सामने जीवन तरीके के लिए कोई पतवार नहीं, सामाजिक या धार्मिक कोई बंधन नहीं, किसी तत्व, किसी विचार पर कोई श्रद्धा नहीं। ऐसी अवस्था में युवक का मस्तिष्क एक प्रकार का पागलखाना बना होता है जो बात किसी से सुन ली, उसी के पीछे दौड़ पड़े।''[71]

इसका उपाय सुझाते हुए वे कहते हैं– ''समाज में नयी मान्यतायें स्थापित करनी होगी। श्रद्धा और विश्वास का फिर से संचार करना होगा। यह एक दिन का काम नहीं है। बरसों तक एडी चोटी का पसीना एक करना होगा, सुविचारित, सुनियोजित ढंग से काम करना होगा। त्यागवृत्ति, उत्साह और लगन से निरन्तर श्रम करना होगा।''[72]

(71) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 238 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।
(72) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 238 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।

जीवन में दर्शन का अभाव

मनुष्य की बहुत सी शारीरिक आवश्यकतायें हैं, वह भोजन, वस्त्र, घर चाहता है। गृहस्थी का सुख चाहता है, संतान चाहता है, परन्तु धन की ऐषणा और संतान की चाह ही सब कुछ नहीं है, उसे कुछ कमी का अनुभव होता है। उसे जीविका का अच्छा साधन मिल जाय, देशाटन का अवसर मिल जाय, फिर भी अपने भीतर कुछ सूना सा लगता है। किसी अव्यक्त भूख की अनुभूति होती रहती है। वह आध्यात्मिक भूख है जब तक वह शांत नहीं होती तब तक यह अवृत्ति जीवन में अपूर्णता का अनुभव कराती रहती है।

भारतीय समाजवादी चिंतकों ने इस अपूर्णता के अनुभव के सूनेपन को दूर करने के लिए व्यक्तियों को भौतिक बातों से ऊपर की सत्ता के प्रति आस्था जगाने की आवश्यकता निम्नांकित प्रकार से प्रतिपादित की है– "(राज को) उस भाव की पुष्टि करनी चाहिए, जो मजहब से मिलती है। भौतिक बातों से ऊपर कोई सत्ता, कोई शक्ति, जो इस जगत चक्र को घुमा रही है उसके प्रति श्रद्धा का भाव जगाना चाहिए।"[73]

उक्त सूनेपन अथवा अपूर्णता के अनुभव की स्थिति व परिणाम का उदाहरण देकर वे समझाते हैं कि– अवस्था में, जीवन के संघर्षों के बीच में उसके पास बल, सहारा, सांत्वना देने वाला कोई पदार्थ नहीं है। मनुष्य के भीतर शक्ति का गम्भीर भण्डार पड़ा है, परन्तु हमारे लड़के–लड़कियों को भीतर देखने का अभ्यास ही नहीं है। इसमें उनका दोष नहीं है। किसी ने उनको सिखाया ही नहीं।"[74]

आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 सम्पूर्णानन्द, डॉ0 राममनोहर लोहिया विद्यार्थी जीवन में चल रही हलचल, प्रदर्शन, जुलूस, अनशन, हड़तालों तथा अध्यापक के प्रति अनुशासनहीनता की अभिव्यक्ति के लिए युवकों और विद्यार्थियों को उतना दोष नहीं देते, अपितु समाज की तेजी से बदलती स्थिति तथा उन परिस्थितियों को जिनमें वह रहा है, दोषी मानते हैं, इसके साथ ही देश के कर्णधारों एवं बुद्धिजीवियों जो युवकों एवं विद्यार्थियों के सामने कोई सही आदर्श या जीवन–दर्शन प्रस्तुत नहीं कर रहे रहे हैं। वे युवकों की मनोदशा का चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

"विद्यार्थियों का पढ़ना जारी है, परीक्षायें उत्तीर्ण की जा रही है, परन्तु पढ़कर होगा क्या? इस प्रश्न का कोई संतोषजनक उत्तर सामने नहीं होता। जीविका का मार्ग प्रशस्त नहीं प्रतीत होता। एक ओर यह चिन्ता मारे डालती है, दूसरी ओर जीवन नौका के लिए पतवार नहीं, सामाजिक धार्मिक नहीं, किसी से जो बात किसी ने सुन ली, उसी के पीछे दौड़ पड़े। जितनी ही उग्र विचार धारा हो, चित्त को भाती है। मन में ऐसा भाव रहता है कि अब जैसी दशा है,

(73) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 232 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।
(74) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 233,234 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।

उससे बुरा क्या होगा, परिवर्तन स्वयं साधन बन जाता है। जहाँ किनारा दिख ही नहीं पड़ता, वहाँ जिधर हवा ले जायं बहना ही होगा शायद कोई ठिकाना मिल जाय।"[75]

ये मनीषी ऐसी गम्भीर स्थिति के प्रति खेद व्यक्त करते हुए सुझाव प्रस्तु करते हैं– "यह दुःख की बात है कि देश में कर्णधारों का ध्यान इस ओर नहीं गया। जनता के सामने कोई आदर्श नहीं है। निःस्वार्थ कर्म के लिए कोई प्रेरणा नहीं है। चारों ओर विचार–धाराओं की भरमार है, उलटे–सीधे आदर्शों की धूम है।"[76]

"हमको अपने कार्यकलाप के लिए, अपने सामूहिक जीवन के दार्शनिक आधार स्थिर करना चाहिए, परन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता। यह हमकों शोभा नहीं देता। जिस देश का दर्शन के क्षेत्र में इतना बड़ा अधिकार हो, जिसकी विचार परम्परा इतनी प्राचीन हो, उसमें आज इतना विचार दरिद्र हो, यह दुःख की बात है।"[77।]

हमकों मानव मात्र को सामने रखकर भविष्य का चित्र बनाना होगा। वही हमारा आदर्श होगा और हममें से प्रत्येक को उसके चरणों में अपना सर्वस्त अर्पित करना होगा। यही सच्चे ईश्वरार्पण, सच्चे निष्काम कर्म का मार्ग होगा। यदि एक बार हम जगत् के सामने, अपने युवकों के सामने, कोई ऐसा आदर्श रख सकें तो फिर न उत्साह की कमी रह जायेगी, न त्याग की। हमारी जनता के भीतर यह शिक्षा कूट–कूट कर भरी हुई है। चिंगारी है, पर उस पर राख पड़ गयी है। थोड़े से प्रयत्न से फिर प्रज्जवलित हो जायेगी।"[77।।]

"हमको सोचना होगा कि हम कैसा आर्य चाहते हैं, वही हमारा आदर्श मनुष्य होगा। उसी को ध्यान में रखकर शिक्षा पद्धति का निर्माण करना होगा, ताकि वैसी मनोवृत्ति बन सके। सामाजिक और आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था भी ऐसी करनी चाहिए जिसमें उस मनोवृत्ति को पनपने का अवसर मिले और बाधाओं पर रोक लगा सकें।"[78]

"हमारा संसार कम्युनिष्ट संसार नहीं होगा। उसमें व्यक्ति ही सारे कार्यकलाप का केन्द्र होगा। शासन अर्थनीति आदि सब कुछ उसके लिए होगा, समाज और राज्य उसके लिए साधन होंगे। दूसरी बात यह होगी कि जीवन का आधार संघर्ष नहीं वरन् सहयोग होगा। विराट पुरूष का स्वरूप भारत की प्राचीनतम कल्पना है। जड़ चेतन इस विश्व में जो कुछ भी हो, वह विराट पुरूष के शरीर के अवयव हैं।

एक के सुख में सबका सुख है, एक के दुःख में सबका दुःख है। सबके सुख में प्रत्येक सुख है। दूसरों की हानि करना अपनी हानि करना है। जो किसी का अभीष्ट नहीं हो सकता।

---

(75) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 237,238 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।
(76) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 240 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।
(77।,।।) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 242 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।
(78) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 242 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।

इसमें एक बात और निकलती है कि अधिकारों के लिए आग्रह करने से संघर्ष होता है, यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करें तो सबको अपने अधिकार आप ही मिल जाये।''[79]

हमारे अंग्रेजी नेताओं को कोई इस प्रकार का जीवन दर्शन का आदर्श समाने लाना चाहिए। भारतीय समाजवादी चिंतकों ने भारतीय बुद्धिवादियों से अनुरोध किया था कि– 'वे अपने कर्तव्य को पहचाने और उसकी पूर्ति के लिए कृत संकल्प हों। ईसा ने कहा है ''यदि तुम्हारे पास सरसों के दाने बराबर श्रद्धा है तो तुम उसी के सहारे पहाड़ को भी हिला सकोंगे।'' भारतीय बुद्धिवादी स्वयं में, अपने राष्ट्र में और समूची मानवता में, जिसका कि हमारा राष्ट्र एक अभिन्न अंग है, श्रद्धा उत्पन्न करें, तो इस श्रद्धा के सहारे वे अपने राष्ट्र तथा उसके द्वारा सम्पूर्ण विश्व की पुर्नरचना करने में समर्थ हो सकेंगे।''[80]

(79) सम्पूर्णानंद– कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार, पृष्ठ 243 वाराणसी, ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा 1962।
(80) सम्पूर्णानंद– अधूरी क्रांति, जीवन दर्शन की आवश्यकता, पृष्ठ 26 लखनऊ, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन 1976।

समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर सुझाव

निष्कर्ष

'समाजवादी चिंतकों के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक शोध–कार्य हेतु चयनित किया गया, क्योंकि बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 राममनोहर लोहिया, मान्य दार्शनिक तथा अनुभवी शिक्षाशास्त्री थे। शिक्षा दर्शन या शैक्षिक विचारों पर किसी व्यक्ति ने तुलनात्मक शोध कार्य नहीं किया था, और वह विषय अछूता था। अतः इस विषय पर किया गया शोधकार्य मौलिक होने के साथ–साथ अद्यतन ज्ञान में अभिवृद्धि करने वाला था।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द 1969 ई0 में इस संसार से विदा हो गये थे, आचार्य नरेन्द्रदेव ने 19 फरवरी 1956 में इस संसार को त्याग दिया, और डॉ0 राममनोहर लोहिया ने 12 अक्टूबर 1967 को इस नश्वर को संसार त्याग दिया, तथा ये तीनों समाजवादी शिक्षाशास्त्री इतिहास के विषय बन गये हैं। वे देश के मान्य दार्शनिक थे तथा उनके शिक्षा दर्शन पर शोधकार्य किया जाना था अंतः शोध प्रक्रिया में दार्शनिक विधि और ऐतिहासिक विधि दोनो को सम्मिलित किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में उनके सम्मान में भेंट किये गये अभिनंदन ग्रन्थ तथा बाद में प्रकाशित स्मृति ग्रन्थ, पत्रिकाओं के स्मृति अंक तथा उन पर लिखी पुस्तिकाओं तथा लेखों को माना गया है। जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं तथा उनके संकल्पों की जानकारी और जेल यात्राओं आदि के विवरण का मुख्य आधार उनकी आत्मकथात्मक पुस्तक 'कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार' को बनाया गया है।

उनके जन्म वर्ष के बारे में मतभेद (1 जनवरी 1889 या 1 जनवरी 1890) को मिटाने तथा सहीं वर्ष का निर्णय हेतु श्री सम्पूर्णानन्द जी के जन्मकाल के पुराने पंचागों की खोज करके उनके अध्ययन से जाना गया कि श्री सम्पूर्णानन्द का जन्म पौष शुक्ल एकादशी संवत 1946 वि0 को हुआ था, उस दिन ई0 वर्ष 1890 की पहली जनवरी दिन बुद्धवार था। वर्ष 1945 वि0 की पौष शुक्ल एकादशी को जनवरी माह की बारहवीं तारीख पड़ती है।

भारतमाता से शिव का मस्तिष्क, कृष्ण का हृदय और राम का कर्म एवं वचन के साथ ही असीम मस्तिष्क, उन्मुक्त हृदय और जीवन की मर्यादा मांगने वाले लोहियका जन्म 23 मार्च 1910 कृष्ण चैत्र तृतीया (अक्षय तृतीया) को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले के अन्तर्गत अकबरपुर तहसील में हुआ था।

आचार्य नरेन्द्रदेव का जन्म संवत् 1946 (31 अक्टूबर सन् 1889) में कार्तिक शुक्ल अष्टमी को सीतापुर में हुआ था।

श्री सम्पूर्णानन्द का जन्म वेदज्ञों एवं विद्वानों, कवियों एवं साहित्यकारों, साधकों सिद्धों और योगियों की कर्मस्थली काशी नगरी के सम्मानित सनातनधर्मी, शिवभक्त कायस्थ परिवार में हुआ था, जिसका सम्बन्ध काशी के राज व्यवस्था से रहा था। उनके पूर्वज श्री सदानंद बख्शी राजा चेतसिंह के विश्वासपात्र मंत्री थे। श्री संदानंद से सम्पूर्णानन्द तक की वंशावली का विवरण श्री सम्पूर्णानन्द द्वारा रचित ग्रन्थ 'चेतसिंह और काशी का विद्रोह' में दिया गया है। उसके आगे अब तक के वंशवृक्ष की सूचना, श्री सम्पूर्णानन्द के अनुज स्व0 श्री परिपूर्णानन्द वर्मा के सुपुत्र श्री कीर्ति विमलानन्द से प्राप्त होने के कारण पुष्टिकृत है। यह पुस्तक प्रेमी माता आनंदीदेवी तथा स्वाध्यायी, सत्यनिष्ठ एवं ईमानदार पिता श्री विजयनंद से पुस्तक पढ़ने का सद्व्यसन और सिद्धांतनिष्ठा श्री सम्पूर्णानन्द को उत्तराधिकार में मिली थी। अध्यात्म प्रेमी पिता ने घर में तुलसीदास की रामचरितमानस, सुखसागर और देवी भागवत का परायण कराने के बाद श्री सम्पूर्णानन्द को स्कूल में पढ़ने भेजा था। बी0एस0सी0 उत्तीर्ण करने के पूर्व पाठ्यग्रन्थों के अतिरिक्त वनस्पतिशास्त्र, जीवशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, मनोविज्ञान, सिद्धान्त ज्योतिष तथा इतिहास के ग्रन्थों तथा बनारस के सबसे बड़े पुस्तकालय सर माइकेल लाइब्रेरी में उपलब्ध उपन्यासों को पढ़ डाला था। बी0एस0सी0 क्वींस कालेज से 1911 में पास किया। वहाँ के गणित प्रोफेसर डॉ0 गणेश प्रसाद, जो विलायत से उच्च शिक्षा प्राप्त करके आये थे, किन्तु तपस्वी जैसा सादा जीवन व्यतीत करने वाले समय के पाबन्द एवं पढ़ने–पढ़ाने में कठिन परिश्रम करने वाले व्यक्ति से सादा जीवन एवं कठिन परिश्रम की ऐसी सीख ली जो उनके जीवन की निधि बन गई। बी0एस0सी0 के अध्ययन काल में गुरूदेव महात्मा रामेश्वर दयाल जी से योग की दीक्षा ली, और उच्चतम अवस्था तक पहुंचाने वाली योग साधना की जिसका विवरण उनके 'गगनगुफा' ग्रन्थ में मिलता है।

1905 के बंगभंग आन्दोलन के समय अंग्रेजी सरकार की ओर से जारी दमनचक्र की प्रतिक्रिया स्वरूप देशभक्त बालक सम्पूर्णानन्द के द्वारा दो व्रत लिये गये।

(1) स्वदेशी वस्त्र पहिनने का तथा (2) अंग्रेजी सरकार के आधीन नौकरी न करने का, और इन दोनो का उन्होंने जीवन भर पालन किया।

बी0एस0सी0 उपाधि लेने के बाद लंदन मिशन स्कूल बनारस, प्रेम विद्यालय वंदावन, तथा हरिश्चन्द्र स्कूल काशी में एक–एक वर्ष सहायक अध्यापक के रूप में अध्ययन कार्य का अनुभव प्राप्त किया, तत्पश्चात् एक वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त कर शिक्षा शास्त्र की उपाधि इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1915 में प्राप्त की। इसके बाद इंदौर के डेली राजकुमार कालेज में राजकुमारों, नवाबजादों एवं जागीरदारों के पुत्रों को तीन वर्ष तक पढ़ाने का अनुभव और साथ ही उनके मानस भावों का ज्ञान प्राप्त किया। श्री सम्पूर्णानन्द का अध्यापन अवधि में स्वाध्याय तथा लेखन

कार्य जारी रहा था, धर्मवीर गांधी, महाराजाध्त्रशाल, भौतिकविज्ञान, ज्योतिर्विनोद और भारत के देशी राष्ट्र इसी अवधि में लिखे गये और प्रकाशित कराये गये थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन इन्दौर में हुआ जिसके अध्यक्ष महात्मा गाँधी थे, श्री सम्पूर्णानन्द हिन्दी प्रदर्शनी के अध्यक्ष थे। उसी समय वे महात्मा गाँधी तथा राजर्षि पुरूषोत्तम दास टंडन से परिचित हुए। यह परिचय आगे प्रगाढ़ में बदला था। 1918 से 1921 तक श्री सम्पूर्णानन्द बीकानेर के डूंगर कालेज के प्रधानाचार्य रहे जहाँ कानून तक की पढ़ाई हिन्दी में होती थी। इस अवधि में बीकानेर के राज्य प्रशासन का नजदीक से अध्ययन किया। यहाँ भी लेखन कार्य तथा स्वाध्याय में बाधा नहीं आने दी। चेतसिंह और काशी का विद्रोह, सम्राट हर्षवर्धन, महादनी सिंधिया इसी काल की रचनाएं हैं। महात्मा गांधी के सरकार से असहयोग करने के आह्वान पर श्री सम्पूर्णानन्द बीकानेर के डूंगर कालेज के प्रधानाध्यापक के पद से त्यागपत्र देकर अगस्त 1921 में काशी आकर कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता बने, साथ ही मर्यादा पत्रिका एवं 'टुडे' अंग्रेजी अखबार का संपादन कार्य भी संभाला। काशी विद्यापीठ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एवं दर्शन के प्रोफेसर का कार्य किया, इस प्रकार छोटे स्कूल अध्यापक से लेकर बड़े कालेज के प्रधानाचार्य एवं विश्वविद्यालय स्तर की कक्षाओं के प्रोफेसर के पद का अध्यापन एवं प्रबन्धकार्य में अनुभवी बने और शिक्षा विभाग की कमियों, अध्यापकों की सेवा शर्तों उनके वेतनमान का व सम्मान का अनुभव किया।

कांग्रेस के कार्य के अग्रणी नेता के रूप में कार्य करने एवं बार–बार जेल जाने के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ने से बच्चों के परिवरिश तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा और देशसेवा के यज्ञ में परिवार के सदस्यों की आहुति हो गयी।

प्रदेश के कांगेस मंत्रिमण्डल में मार्च 1938 में शिक्षामंत्री बने महात्मागांधी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी तालीम (बेसिक शिक्षा) प्रदेश की परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में समिति, जिसमें वर्धा समिति के अध्यक्ष डॉ0 जाकिर हुसैन जी का भी सदस्य के रूप में सहयोग रहा था, का गठन कर, उनकी संस्तुति के अनुसार बेसिक शिक्षा को पूरे प्रदेश में लागू कराया जबकि किसी अन्य प्रदेश ने यह कार्य नहीं किया था। नई प्रकार की शिक्षा हेतु अध्यापकों की कमी पूर्ति हेतु प्रशिक्षण विद्यालय तथा सचल प्रशिक्षण दल का प्राविधान किया। बालिकाओं की शिक्षा के प्रसार हेतु विशेष प्रयास किये गये। अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण हेतु ट्रेनिंग कालेज खोला। विश्वविद्यालय शिक्षा सुधार हेतु गठित कमेटी के अध्यक्ष के रूप में विश्वविद्यालयों में चल रही शिक्षा–व्यवस्था का गहराई से अध्ययन किया और कार्यान्वयन हेतु संस्तुति प्रस्तुत की। 20 माह के कार्यकाल में शिक्षा के हर स्तर पर सुधार कार्य किया गया। नवम्बर 1939 में कांग्रेस मंत्रिमण्डल के त्यागपत्र दे देने के बाद साढे छः वर्ष तक शिक्षा की वहीं मंथर गति रही। 1946 में पुनः कांग्रेस के मंत्रिमण्डल बनने पर श्री सम्पूर्णानन्द ने दुबारा शिक्षामंत्री

का पदभार संभाला और आचार्य नरेन्द्रदेव समिति 1939 की संस्तुति के अनुसार माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन कर दिया। अध्यापकों के वेतन हेतु 'पे' समिति गठित करके सभी स्तर के शिक्षालयों के अध्यापक वर्ग को सम्मानजनक वेतनमान प्रदान किया तथा उनके सम्मान में वृद्धि की। प्राइवेट विद्यालयों के लिये बेटरमैनेजमेण्ट कमेटी का गठन करके अध्यापकों की सेवाओं में स्थायित्व प्रदान करने का अविस्मरणीय कार्य किया गया। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, फारसी के अध्यापकों को उचित वेतनमान देकर उनकी पदोन्नति के मार्ग खोले गये। संस्कृत पाठशालाओं के अध्यापकों को भी सम्मानजनक वेतन की व्यवस्था की गई। संस्कृत विद्यालयों में पाठ्यवस्तु का पुनरीक्षण कराकर अन्य सामान्य विषयों के पढ़ाने की व्यवस्था करने के साथ संस्कृत सेवाओं की उपाधियों की राजकीय सेवाओं हेतु मान्यता प्रदान की गई।

पूरे प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था को 1947 व 1948 में पुनर्गठित करके पांच खण्डों में एक क्षेत्रीय उपशिक्षा निदेशक की तथा एक क्षेत्रीय बालिका निरीक्षिका की नियुक्ति की गई। प्रत्येक जिले के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक का पद सृजित करके शिक्षा के कार्य के नियंत्रण में सुधार लाया गया, नये विद्यालय खोले गये। 1948 में प्रान्त के 80 म्यूनिसपल बोर्डों को सहायता देकर अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा करा दी गई। प्रौढ़ शिक्षा हेतु कमेटी बिठाकर उसके प्रसार हेतु प्रयास किया गया। देहाती स्कूलों में, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों में पुस्तकालय एवं वाचनालयों की व्यवस्था की गयी। अनुशासन की दृष्टि से सैनिक शिक्षा तथा शारीरिक शिक्षा का प्राविधान किया गया। तकनीकी शिक्षा हेतु अलग प्रशिक्षण विद्यालय खोले गये। नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा देने वाले अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए तथा पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकों के निर्धारण उनके लिए पुस्तकों को निर्णय एवं निर्माण हेतु राजकीय सेन्ट्रल पेडागॉजिकल इन्स्टीट्यूट इलाहाबाद में खोला गया जो एशिया में अपने ढंग का शिक्षा संस्थान सिद्ध हुआ। माध्यमिक विद्यालयों में छात्र की अभिरूचि के अनुसार ऐच्छिक विषयों के चयन में सहायता देने हेतु तथा असामान्य छात्रों की समस्या के हल सुझाने हेतु एवं प्रतिभाशाली शासकों को चयनकर विशेष प्रशिक्षण हेतु इलाहाबाद में एक मनोविज्ञान शाला स्थापित की गयी।

1950 में हिन्दी को राजभाषा घोषित कराने का श्रेय श्री सम्पूर्णानन्द को ही है। उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा को हिन्दी माध्यम से दिये जाने में सबसे बड़ी कठिनाई तकनीकी शब्दों के लिए हिन्दी शब्दों के निर्धारण की थी। उस हेतु प्रयास किया गया तथा हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ लिखवाये जाने तथा अंग्रेजी भाषा के स्तरीय ग्रन्थों का अनुवाद कराकर कम मूल्य में प्रकाशित कराने हेतु हिन्दी समिति की स्थापना सूचना विभाग के अन्तर्गत की गई जिसने सफलतापूर्वक इस कर्तव्य को पूरा किया। इसके कई वर्ष बाद भारत सरकार द्वारा हिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना का प्राविधान किया गया।

शिक्षा–विभाग के द्वारा 'शिक्षा' त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया, जिसमें शिक्षा विशेषज्ञों के शिक्षा के विभिन्न अंगों में सुधार हेतु सुझाव व लेख प्रकाशित होते रहे। श्री सम्पूर्णानन्द के भी लेख इसमें छपे हैं। शिक्षा विभाग द्वारा दृश्य एवं श्रृव्य साधनों के माध्यम से शिक्षा के प्रचार की भी व्यवस्था की गई।

गवर्नमेन्ट संस्कृत विद्यालय वाराणसी एवं सरस्वती भवन पुस्तकालय एवं संस्कृत परीक्षा परिषद को मिलाकर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना श्री सम्पूर्णानन्द के द्वारा की गई थी, इस तरह संस्कृत को विश्व में मान्यता मिली। दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना की प्रेरणा उनकी ही थी। उनके इस अनुकरणीय काम से प्रेरणा पाकर तथा उनके प्रयास से संस्कृत विद्यापीठों की स्थापना हुई। आन्ध्रप्रदेश में वेंकटेश्वर संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना हुई इन विश्वविद्यालयों एवं संस्कृत विद्यापीठों में विदेश के छात्र संस्कृत की शिक्षा लेते हैं। विश्व में प्राचीनतम भाषा देववाणी की महत्ता की प्रतिष्ठा कराने में हिन्दी और देववाणी संस्कृत के संरक्षण एवं उन्नयन हेतु स्तुत्य कार्य किया है। हिन्दी भाषा के लिए वे 1938 में मन्त्रिपद त्याग करने के लिए तैया हो गये थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चालीसवें अधिवेशन (पूना) के लिए सभापति निर्वासित हुए थे। शिक्षा का सर्वागींण विकास एवं गुणवत्ता लाने में जो कार्य किया है वह उनक शिक्षाशास्त्र के अध्ययन, अध्यापन में प्राप्त अनुभव के पश्चात् निर्मित शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का प्रतिफल था। उनकी स्वाध्याय तथा उर्वर कल्पनाशक्ति एवं आदर्शवादी विचारधारा से प्रस्तुत उनकी विभिन्न योजनाएं प्रान्त में शिक्षा को उच्चतम प्रगति की ओर अग्रसर करती रही है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भाग लेने सान्फांसिकों गये तो अमेरिका के लैण्डहर्ट विद्यालय को भी देखा, उसी के नमूने पर अमेरिका विशेषज्ञों की राय से पन्तनगर (रूद्रपुर) में कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना में उनकी ही सूझबूझ तथा प्रयत्न प्रमुख था। उनके देश–प्रेम उनकी विद्वता एवं शिक्षा सम्बन्धी विचारों को मान्यता देते हुए भारत सरकार द्वारा भावनात्मक एकीकरण समिति का अध्यक्ष बनाया गया था। श्रीमती इन्दिरागांधी उस समिति की एक सदस्य थी।

थाट आन एजूकेशनल एण्ड समएलायड प्राब्लम्स' उनके शिक्षा सम्बन्धी लेखों एवं भाषणों का संग्रह है, इनका हिन्दी रूपान्तर 'स्फुटविचार' नामक लेख संग्रह में छपा है। शिक्षा सम्बन्धी कुछ लेख 'भाषा की शक्ति एवं अन्य निबन्ध' 'स्फुटनिबन्ध' तथा 'अधूरी क्रांति' पुस्तकों में भी संग्रहीत है। उनका शिक्षा के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण था जो उनके आत्मवादी एवं शंकर के अहैत दर्शन से विसृत था।

श्री सम्पूर्णानन्द देश के मान्य दार्शनिक थे वे उदयपुर में हुए अखिल भारतीय दार्शनिक परिषद के सम्मेलन के अध्यक्ष थे। अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण, भारतीय दर्शन का संदेश, उनके ग्रन्थ 'स्फुटनिबन्ध' में सग्रहीत है। उनके दर्शन सम्बन्धी चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। (1) दर्शन

और जीवन, (2) भारतीय सृष्टिक्रम विचार, (3) ऋग्वेदीय पुरूषसूक्त तथा (4) चिहिलास

चिहिलास सभी दर्शनों के जीवन के लिए उपयोगी दर्शन तत्वों का नयी निरूक्ति सहित विज्ञान समर्थित भाष्य है। इनका कहना है कि मैं किसी नये दार्शनिक मत को रखने का दावा नहीं करता अपितु शंकर का अद्वैत दर्शन सारी राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में संक्षम हैं, अतः उनका समर्थन करना कर्तव्य समझता हूँ।

श्री सम्पूर्णानन्द दार्शनिक शिक्षाशास्त्री तो थे ही ज्योतिष (सिद्धान्त) के विद्वान, वेदवेत्ता तथ भाष्यकार, सर्वस्वत्यागी, सत्यनिष्ठ एवं ईमानदार राजनेता, आद्योपन्त योगी सिद्धहस्त लेखक, उद्बोधक, समाजसुधारक, भारतीय संस्कृति के संरक्षक, जागरूक विद्वान प्रशासक तथा वाणीसिंद्ध वक्ता थे। उनके व्यक्तित्व का हर आयाम शिक्षाप्रद है और उससे तथा तत्सम्बन्धी रचनाओं एवं प्रायोगिक कार्य से शिक्षा प्रस्फुटित होती स्पष्ट दिखती है। भारतीय दर्शन के तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा एवं आचारमीमांसा का विवरण देते हुए डॉ0 सम्पूर्णानन्द के तत्सम्बन्धी विचार उनके ग्रन्थ 'चिहिलास' एवं भारतीय सृष्टि क्रम विचार से दिये गये हैं। श्री सम्पूर्णानन्द ने सृष्टिक्रम तथा दिक् और काल एवं पंचमहाभूतों की विवेचना नवीन निरूक्ति के साथ विज्ञान सम्मत ढंग से प्रस्तुत की है। वह विज्ञान और दर्शन को विरोधी नहीं अपितु सृष्टि को समझने में सहयोग प्रदान करते हैं। उन्होंने अपनी मान्यता बार–बार व्यक्त की है कि प्राचीन दार्शनिक योगी थे और दार्शनिक तत्वों को सम्यक् योग की सहायता से समझा जा सकता है।

दर्शन और शिक्षा का घनिष्ठ तथा अन्यान्योश्रित सम्बन्ध है दर्शन शिक्षा को प्रभावित करता है तथा शिक्षा दार्शनिक विचारों को मूर्तरूप प्रदान करती है तथा प्रायोगिक रूप देने में आयी समस्याओं से परिचित कराकर उसका मार्गदर्शन करने हेतु तथा आवश्यक सुधार हेतु मार्ग खोलने का कार्य करती है। दोनो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, तथा प्रभावित होते हैं। श्री सम्पूर्णानन्द के दार्शनिक विचारों का प्रभाव उनके शैक्षिक दृष्टिकोण पर पड़ा है। श्री सम्पूर्णानन्द के द्वारा शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा के अंग, शिक्षार्थी, शिक्षक, पाठ्यवस्तु, शिक्षालय, शिक्षणविधि, अनुशासन एवं शिक्षा का माध्यम सम्बन्धी विचार दिये गये हैं। उन पर उनके दार्शनिक विचार परिलक्षित होते हैं।

उनकी मान्यता है कि व्यक्ति/शिक्षार्थी चेतन आत्मा है, शरीर उसका वेष्टन है। जन्म के पूर्व शरीरांत के बाद भी छात्र/व्यक्ति की आत्मा अच्छे बुरे संस्कारों के साथ दूसरे शरीर में जायेगी अतः उसकी शिक्षा पुरूषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति कराने के दृष्टिकोण से दी जानी चाहिए। उसको सिखाया जाना चाहिए कि धर्म (कर्तव्य को पहिचानने एवं उसके पालन करने) के सम्यक् ढंग से पालन से अर्थ और काम की भी प्राप्ति होगी तथा अंतिम लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त होगा।

विद्यार्थी को परसेवा का आदर्श बताया जाना चाहिए, चारों ओर फैली प्रकृतिछटा

सुरभिरत पुष्पों, पक्षियों कलरव, भौंरों के गुंजार, सूर्य की प्रातः की लालिमा, आकाश की शोभा के बीच शिक्षा मिलनी चाहिए तथा उन दृश्यों कलाकृतियों में संगीत में रस लेने उनके साथ तादात्म्य स्थापित करके जगत को अपने स्वार्थ को कुछ क्षणों में भूलने की क्रिया समझायी जानी चाहिए। यह भी उनके कोमल मस्तिष्क में बैठाया जाना चाहिए कि सब प्राणियों में वहीं एक ब्रह्म विराजमान है, सबका हित एक है और उसे सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

ऐसी शिक्षा देने वाले शिक्षक/आचार्य को अपने शिष्यों को अपने घुटनों के बल चलने वाले भाई की तरह सीख देने का दायित्व बताया है। शिक्षार्थी को ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण तथा समाज ऋण का बोध कराने तथा यज्ञमय जीवन जीने का बोध कराने का भी दायित्व आचार्यगण का है : आचार्य की शिक्षा का प्रभाव तभी पड़ेगा, जब वह शिष्य के अंतर में प्रवेश करके उसकी समस्या को जानेगा तथा स्नेहपूर्वक समाधान सुझायेगा। शिक्षक को अपने आचरण को आदर्श बनाना होगा, समाज शिक्षक को सम्मान देगा और उसे निश्चिंत होक शिक्षा देंने का अवसर मिले ऐसी व्यवस्था का दायित्व समाज और राज्य को सम्भालना होगा।

1946 में कार्तिक शुक्ल अष्टमी को सीतापुर में जन्मने वाले आचार्य नरेन्द्रदेव के पिता श्री बल्देव प्रसाद जी का पैतृक घर फैजाबाद में था। पिता पेशे से वकील थे। वेदान्त के विद्वान और धार्मिक रूचि के व्यक्ति थे। वह बड़े दानशील तथा सात्विक प्रकृति के थे। वेदान्त में उनकी बड़ी अभिरूचि थी। नरेन्द्रदेव जी पर बाल्यकाल से ही उनके पिता का असीम स्नेह था और उन्हें वह नित्यप्रति आधा घंटा पढ़ाया करते थे।

आचार्य जी क घर का नाम अविनांशी लाल था। माधव प्रसाद मिश्र ने नाम नरेन्द्रदेव कर दिया। नरेन्द्रदेव ने घर पर ही रामचरित मानस, सम्पूर्ण महाभारत, वैताल पच्चीसी, सूरसागर आदि पुस्तकें पढ़ी। चन्द्रकांता 16 बार पढ़ गये, तथा चन्द्रकांता संतति को एक बार। 10 वर्ष की आयु में ही उन्हें यज्ञोपवीत, नित्यसंध्या वंदन, गीता पाठ, सम्पूर्ण रूद्री और गीता कंठस्थ थे। अमरकोष और लघुसिद्धान्त कौमुदी भी पढ़ी। घर पर ही स्वामी रामतीर्थ का दर्शन हुआ। 10 वर्ष की अवस्था में पिता के साथ कांग्रेस अधिवेशन में गए। भारत धर्म महामण्डल के अधिवेशन में दिल्ली गए। पिता का गहरा प्रभाव पड़ा। मालवीय जी महाराज का प्रोत्साहन पाकर संस्कृत से एम0ए0 किया।

एण्ट्रेंस पास कर इलाहाबाद पढ़ने गये। वहाँ हिन्दू हास्टल उग्र विचारों का केन्द्र था वहीं रहे। 1905 में कलकत्ता कांग्रेस में दर्शक की हैसियत से भाग लिया। स्वदेशी का व्रत लिया। गरम दल के अखबार मंगाने लगे। अरविन्द्र से अत्यन्त प्रभावित हुए। अरविन्द की ओजस्विता और प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम दोनो ने प्रभावित किया थाँ। बंगाल की क्रांतिकारिता एवं साहित्य के अध्ययन के लिए बंगला सीखी। डकैती आदि के विरूद्ध होने के कारण कभी किसी क्रान्तिकारी दल के सदस्य नहीं बने। 1913 में एम0ए0 तथा 1915 में एल0एल0बी0 पास

किया। जीवन में दो प्रवृत्तियाँ– पढ़ने की राजनीति की। विद्यापीठ में दोनो का अवसर मिला। फैजाबाद में होमरूल लीग की शाखा खोली, उसके मंत्री हुए। तिलक का अनुयायी होने के कारण कांग्रेस में कौंसिल बहिष्कार के विरूद्ध वोट दिया। किन्तु निर्णय को शिरोधार्य किया। असहयोग प्रस्ताव के अनुसार वकालत छोड़ दी। बाबू शिवप्रसाद गुप्त के बुलावे पर वाराणसी चले आये। पहले काशी विद्यापीठ के उपाध्यक्ष और फिर० डॉ० भगवानदास के इस्तीफा देने पर अध्यक्ष बने। श्री प्रकाश जी ने ही आचार्य कहना आरम्भ किया। बाद में वह नाम का हिस्सा ही बन गया। श्री प्रकाश जी से आचार्य जी की गहरी मित्रता थी।

1934 में पटना में हुए प्रथम समाजवादी सम्मेलन की अध्यक्षता की। 1959 में विद्यार्थियों को लेकर विहार भूकम्प में काम करने भी गए। वहीं पहली बार डॉ० लोहिया से परिचय हुआ। सोशलिस्ट पार्टी के सभी लोग एक कुटुम्ब के समान थे। विचारों की एकता के कारण जवाहर लाल नेहरू जी के व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण था। 1942 में महात्मा गांधी के आश्रम में स्वास्थ्य सुधार के लिए चार महीने रहे। गाँधी जी इनका बड़ा ख्याल रखते थे। 1942 में गिरफ्तार होकर अहमदाबाद किले में बंद हुए तथा 1946 में छूटे।

समाजवादी होते हुए भी आचार्य ने बनारस के आर्य समाज मन्दिर में चरखा कातना सिखाने के लिए कक्षाएं चलवाई। नमक सत्याग्रह में भाग लिया। एशियाई देशों में राष्ट्रीय चेतना के विकास पर उनकी गहरी दृष्टि थी। 1947 में लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति हुए। अपने विचारों के प्रकाशनार्थ संघर्ष नामक हिन्दी साप्ताहिक का प्रारम्भ किया। गांधी जी ने इन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया। किन्तु कुछ लोगों के न चाहने से ऐसा नहीं हो सका। 31 मार्च 1948 को प्रान्तीय विधान सभा से अपने 11 साथियों सहित (कुल 12) इस्तीफा दे दिया। जमींदारी उन्मूलन में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1954 में इलाज कराने योरप गए। 1955 में गया में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सम्मेलन में इनका नीति–वक्तव्य पढ़ा गया। 19 फरवरी 1956 को इरोड में शरीर छूट गया।

आचार्य जी के विचारों में 'श्रमण' शब्द का बड़ा आग्रह है। किन्तु यह श्रमण साम्प्रदायिक न होकर समस्त सन्यास के लिए है। श्रमण त्याग और निस्प्रह चरित्र का एक रूप है। सभी त्यागी, स्वार्थ रहित समाज सेवक श्रमण हैं। इसी परम्परा में आचार्य जी ने गाँधी को श्रमण कहा था। सनातन संस्कृति को मानते हुए स्वयं वे श्रमण थे। आचार्य जी गांधी जी के बारे में लिखते हैं, "वह पुरूष जो आज हिन्दू धर्म में किसी नियम को नहीं मानता, वह असंख्य सनातनी हिन्दुओं का आराध्य देवता बना हुआ है। पंडित समाज चाहे भले ही विरोध करें। किन्तु अपढ़ जनता उनकी पूजा करती है। इस रहस्य को हम तभी समझ सकते हैं, जब हम जाने कि भारतीय जनता पर श्रमण संस्कृति का कहीं अधिक प्रभाव पड़ा है जो व्यक्ति घर–बार छोड़कर नि:स्वार्थ सेवा करता है, उसके आचार की ओर हिन्दू जनता ध्यान नही देती।

आचार्य नरेन्द्र देव की समिति की रिपोर्ट (सन् 1939 और 1953)

उत्तर प्रदेश में आधुनिक शिक्षा का आन्दोलन देर से प्रारम्भ हुआ क्योंकि सन् 1882 तक यह प्रान्त बंगाल का ही अंग था। जो इसे पृथक कर अलग प्रान्त बनाकर सन् 1845 में जेम्स आमसन को इसका गर्वनर नियुक्त किया गया तब उसने आवश्यक शिक्षा प्रसार के लिए अभिनंदनीय कार्य किया। चूंकि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक उत्तर प्रदेश में प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा की संतोषप्रद प्रगति हो चुकी थी और व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा के लिए विद्यालय स्थापित हो चुके थे, अतः सन् 1913 में प्रान्तीय सरकार ने प्राथमिक शिक्षा में सुधार करने की दृष्टि से पिगट समिति की नियुक्ति कर उसके सुझावों के अनुसार अपर प्राइमरी तथा लोवर प्राइमरी स्कूलों की स्थापना की। साथ ही सन् 1919 में प्राथमिक शिक्षा अधिनियम पास कर नगर पालिकाओं को 6 वर्ष से 12 वर्ष तक के बालक–बालिकाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य कर देने का अधिकार दे दिया गया।

सन् 1919 के अधिनियम के अनुसार अन्य प्रान्तों की भांति उत्तर प्रदेश में भी शिक्षा विभाग जनता द्वारा चुने गए मंत्रियों को हस्तान्तरित कर दिया गया। अतः शिक्षा में प्रगति करने के लिए कई उल्लेखनीय प्रयास किए गए। सन् 1926 में ग्रामीण शिक्षा अनिवार्य कर दी गई और सन् 1927 में सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में प्रान्तों को साक्षर बनाने के लिए रात्रि पाठशालाओं की स्थापना हुई।

साथ ही हर्टाग समिति के सुझावों से प्रभावित हो प्राथमिक दशा में अपव्यय व अवरोध को दूर करने का भी निश्चिय किया गया, प्रथम के कारण उत्तर प्रदेश को भी शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को कम कर देना पड़ा। अतः शिक्षा का स्तर गिरने लगा।

इस प्रकार प्रान्तीय सरकार ने शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए विचार समिति की नियुक्ति की और इस समिति ने सन् 1933 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर धन, योग्य अध्यापकों, उपयुक्त भवन व आवश्यक शिक्षण सामग्रियों को शून्य विद्यालय को कम कर देने का सुझाव दिया, तथा उन सुझावों को स्वीकार कर लेने से प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

भारत सरकार अधिनियम सन् 1936 के अनुसार भारत में सन् 1937 में प्रान्तीय प्रकाशन के सम्पूर्ण क्षेत्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई तथा समस्त प्रान्तीय विषय जनता द्वारा चुने गये मंत्रियों को सौंप दिये गये। भारत के 11 प्रान्तों में से 6 में कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की स्थापना हुई जिनमें संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) भी एक था।

यों तो कांग्रेसी मण्त्रिमण्डल की स्थापना के साथ ही यहाँ "वर्धा शिक्षा योजना" लागू कर प्राथमिक विद्यालयों में बेसिक शिक्षा को कार्यान्वित करने का निश्चय किया गया तथा शिक्षा

विकास से प्रान्तीय शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश की सरकार ने सन् 1939 में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षा में प्रान्तीय शिक्षा के पुर्नसंगठन के लिए समिति की स्थापना की, जो कि अध्यक्ष के नाम पर आचार्य नरेन्द्र देव समिति कहलाती है।

आचार्य नरेन्द्र देव समिति सन् 1939 ई0

सदस्य– इस समिति के अध्यक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमुख सदस्यों में डॉ0 जाकिर हुसैन, उमा नेहरू, आर0एस0 पंडित, मुहम्मद इस्माल खाँ, रामग्रह सिंह, धुलेकर, आचार्य जुगुल किशोर, कुमार विलियम्स, वियर और बेगज एजाज रसूल आदि थे।

समिति के सुझाव– आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने अथक परिश्रम के उपरान्त अपनी रिपोर्ट तैयार कर प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के पुर्नसंगठन के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये–

1. वर्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थी का सर्वागींण विकास करने में असमर्थ रही है और वह छात्रों के जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता भी नहीं रखती।
2. माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य विश्वविद्यालयों के लिए छात्र उत्पन्न करना मात्र रह गया है।
3. माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण स्वतन्त्र न होना चाहिए और शिक्षा प्रणाली भी बिल्कुल ठीक हो।
4. माध्यमिक शिक्षा की अवधि 12 वर्ष से 18 वर्ष होनी चाहिए।
5. समस्त माध्यमिक विद्यालयों को कॉलेजों की संज्ञा देनी चाहिए और उनका स्तर वर्तमान इण्टरमीडिएट कक्षाओं से ऊँचा रखा जाय।
6. नवीन कालेजों के प्रथम 2 वर्षो का पाठ्यक्रम बेसिक प्राथमिक विद्यालयों की अन्तिम दो कक्षाओं के समान हो और अंग्रेजी भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय। तथा हस्त उद्योग पर कम बल दिया जाय।
7. पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषय सम्मिलित किये जाये–
   (क) भाषा साहित्य व सामान्य विज्ञान,
   (ख) प्राकृतिक विज्ञान और गणित,
   (ग) कला,
   (घ) वाणिज्य
   (ड.) व्यवसायिक और औद्योगिक शिक्षा
   (च) ग्रहविज्ञान केवल बालिकाओं के लिए
8. बेसिक प्राथमिक परीक्षा उत्तीर्ण या 7 वर्षीय पाठ्यक्रम समाप्त कर लेने वाले छात्रों को ही कॉलेजों में प्रवेश करने की अनुमति दी जाय।
9. हाईस्कूल और इण्टरमीडिएट नाम हटा दिये जाय।

10. शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी हो।
11. पाठ्यक्रम विशेषज्ञों द्वारा देश व काल की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाय, और उसका वास्तविक व व्यावहारिक होना आवश्यक है।
12. सभी प्रकार के विद्यालयों की स्थापना के लिए परामर्शदाता मण्डल की स्थापना की जाय और यही मण्डल पाठ्यक्रम में निर्धारण प्रयोगात्मक प्रशिक्षण तथा शिक्षा की संस्थाओं के लिए धन संचय में अपना योग दे।
13. बालिकाओं के लिए ग्रहविज्ञान कॉलेजों की स्थापना की जाय।
14. स्त्री–शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय।
15. व्यावसायिक व औद्योगिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय।
16. पाठ्य पुस्तकें परीक्षा प्रणाली व शिक्षा संगठन में शीघ्रताशीघ्र आवश्यक सुधार किये जायें।
17. प्रत्येक विद्यालय में एक सुसमृद्ध पुस्तकालय का होना अनिवार्य कर दिया जाय।
18. अध्यापकों के प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध किया जाय और उनकी दशा में सुधार करने व नौकरी में स्थायित्व की दृष्टि से नौकरी करते समय उनमें संविदा पत्र भरवाये जाय।
19. छात्रों में चरित्र निर्माण, राष्ट्रप्रेम, स्वालम्बन, नागरिकता, आत्मनिर्भरता और समाज सेवा की भावनायें उत्पन्न करने की दृष्टि से प्रत्येक विद्यालय में समय–समय पर अतिरिक्त कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाय।
20. विद्यालयों में स्काउटिंग समिति वाद–विवाद परिषद प्राथमिक चिकित्सा और समाजसेवा आदि का पूर्ण रूप से संगठन होना चाहिए।
21. प्रान्त ने एक केन्दीय पेंडागॉजिकल इन्स्टीट्यूट की स्थापना की जाय।

माध्यमिक शिक्षा पुर्नसंगठन समिति या द्वितीय आचार्य नरेन्द्रदेव समिति (1952–53ई0)

वस्तुतः आचार्य नरेन्द्र देव समिति सन् 1939 के सुझावों को कार्यानिवत करने के पूर्व ही कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को त्याग पत्र दे देना पड़ा था। अतः उस समिति के सुझावों पर अमल न किया जा सका। सन् 1947 में भारत के स्वतन्त्र होने पर अन्य प्रान्तों की भांति उत्तर प्रदेश में भी शिक्षा के विकास के विस्तार पर पूर्ण ध्यान दिया गया तथा प्रान्तीय सरकार ने माध्यमिक शिक्षा को पुर्नसंगठित करने का निश्चय कर जुलाई 1948 से प्रान्त में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना को कार्यान्वित किया।

इस योजना में प्रथम आचार्य नरेन्द्र देव समिति के कतिपय सुझावों को स्वीकार कर लिया गया। पर माध्यमिक विद्यालयों की प्रगति व उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना की वास्तविक जॉच के लिए मार्च सन् 1952 में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी,

जिसका कि नाम वास्तव में 'माध्यमिक शिक्षा पुर्नसंगठन समिति' था। पर अध्यक्षता के नाम पर उसे आचार्य नरेन्द्र देव समिति भी कहा जाता है। इस समिति में अध्यक्ष के अतिरिक्त 28 सदस्य और थे तथा इसकी पहली बैठक 31 मार्च 1952 को हुई जिसमें कार्य क्षेत्र की विविधता को देखते हुए छोटी–छोटी पाँच सहायक समितियों का निर्माण किया गया।

पहली उपसमिति का कार्य हाईस्कूल व इण्टरमीडिएट बोर्ड द्वारा निर्धारित विभिन्न विषयों मे सम्बन्ध में अध्ययन करना तथा पाठ्यक्रम पर विचार करना था और इसके अध्यक्ष श्री सी0 महाजन थे, इस उपसमिति को यह भी निश्चय करना था कि पहली आचार्य नरेन्द्र देव समिति की सिफारिशें कहाँ तक लागू की गयी है।

द्वितीय उपसमिति श्री चन्द्रमोहन की अध्यक्षता में बालक–बालिकाओं की विभिन्न पाठ्यक्रमों के अपनाने में सफलता व परीक्षा के सम्बन्ध में विचार करने के लिए बनायी गयी।

तृतीय उपसमिति श्री एल0एम0 भाटिया की अध्यक्षता में राजकीय व अराजकीय विद्यालयों में सी0 व डी0 के पाठ्यक्रम विषयों की प्रगति तथा व्यावसायिक शिक्षा पर विचार करने वाली थी।

चतुर्थ समिति के अध्यक्ष एच0एल0खन्ना थे और इसका कार्य पहली समिति द्वारा निर्धारित अवकाश के दिनों को अमल में लाने के सम्बन्ध में जॉच करना और विद्यालयों में धार्मिक व नैतिक शिक्षा की उपयोगिता पर विचार करना था। तथा यह उपसमिति अनुशासन व्यवस्था की भी अधिकारिणी थी।

पाँचवी उपसमिति कुमारी के0ए0 सब्बरवाल की अध्यक्षता में सम्पूर्ण प्रान्त को माध्यमिक शिक्षाओं तक को नारी शिक्षा पर विचार करने के लिए नियुक्त की गई।

उपर्युक्त पाँच उपसमितियों के अतिरिक्त अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में आर0एन0 गुप्ता की अध्यक्षता में छठवीं उपसमिति का निर्माण भी किया गया जो कि टेक्निकल व सामान्य शिक्षा के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के उपायों पर विचार करने वाली थी।

कालान्तर में जनवरी 1953 में दो और उपसमितियों का भी निर्माण हुआ जिनमें से सातवीं उपसमिति आर0एन0गुप्त की अध्यक्षता में व्यक्तिगत शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्धों का अध्ययन कर उनकी त्रुटियों को दूर करने के उपायों पर विचार करने वाली थी, तथा आठवीं उपसमिति आर0वी0शर्मा की अध्यक्षता में पाठ्यक्रमों के चयन पर छात्रोपयोगी पुस्तकों के चुनाव के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए थी।

समिति का जॉच क्षेत्र

आचार्य नरेन्द्र देव समिति (सन् 1952) पर निम्नलिखित विषयों की जॉच करने का उत्तरदायित्व था।

1. जुलाई सन् 1948 में उत्तर–प्रदेश में लागू की गई "उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना" को

कितनी सफलता प्राप्त हुई।

2. साहित्यिक, वैज्ञानिक, व्यावसायिक, रचनात्मक व कलात्मक वर्गों की वास्तविक दशा क्या है और वह विद्यार्थियों के लिए कहाँ तक उपयोगी सिद्ध हो सके हैं।

3. विद्यार्थियों ने अपनी रूचि व योग्यताओं के अनुसार किन विषयों को चुना है और उनका चुनाव सही है या नहीं?

4. सामान्य और औद्योगिक शिक्षा में समन्वय के लिए उपाय बताना और यह जॉच करना कि व्यावसायिक व औद्योगिक विषयों का अध्ययन करने वाले छात्र जीविकोपार्जन की समस्या सुलझा सके हैं। या नहीं?

5. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना को सफल बनाने के लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना।

कुछ दिनों के बाद इस समिति के जॉच के क्षेत्र में विस्तार कर उसे निम्नांकित और भी विषयों की जॉच करने का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया–

पाठ्य पुस्तक, परीक्षा व विद्यालयों की प्रबन्ध समितियां, अध्ययन और अवकाश के घण्टे, इलाहाबाद का मनोविज्ञान केन्द्र व गृहविज्ञान कॉलेज, छात्रों को अनुशासनहीनता अंग्रेजी व संस्कृत को अनिवार्य विषय बनाना और धार्मिक व नैतिक शिक्षा का प्रश्न।

समिति की बैठकें और रिपोर्ट

आचार्य नरेन्द्र देव समिति की पाँच बैठकें क्रमशः 30 मार्च 1952 से 31 मार्च, 1952, 4 अक्टूबर 1952, 4 अक्टूबर 1952 से 10 अक्टूबर 1952, 27 अक्टूबर 1952 से 1 नवम्बर 1952, 31 जनवरी 1953 से 3 फरवरी 1953 व 5 मई से 8 मई 1953 तक हुई और इनमें से केवल दूसरी बैठक बनारस में हुई तथा शेष चारों बैठके लखनऊ में हुई। उक्त बैठकों के अतिरिक्त समस्त उपसमितियों ने भी अपनी अलग–अलग बैठकें कर अपने अधीनस्थ विषयों पर विचार किया। इस प्रकार आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने चौदह महीनों तक परिश्रम कर मई 1953 में अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की और इसमें कोई संदेह नहीं कि जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा के वर्तमान दोषों का उल्लेख कर माध्यमिक शिक्षा के पुर्नसंगठित करने के लिए अनेक उपयोगी सुझाव दिये हैं। यहाँ हम समिति की रिपोर्ट की कुछ महत्वपूर्ण बातों का संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने जुलाई 1958 में कार्यान्वित की गई उच्चतर माध्यमिक शिक्षा व प्रान्तीय माध्यमिक शिक्षा में निम्नलिखित दोष माने हैं–

1. यह योजना पूर्व नियोजित थी और बिना पर्याप्त परीक्षण किये उसे लागू किया गया था।

अतः उसके मार्ग में स्वाभाविक ही अनेक समस्यायें व कठिनाइयाँ है और इसीलिए उसे बहुत कम सफलता भी प्राप्त हुई है।

2. पाठ्य–विषयों को अनिवार्य, सहायक व गौण नामक तीन भेदों में विभाजित कर देने के फलस्वरूप विद्यार्थियों और अध्यापकों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
3. सामान्य विज्ञान को अनिवार्य विषय बनाने से विद्यार्थियों का कोई लाभ नहीं हुआ है।
4. यद्यपि प्रारम्भिक हिन्दी को अनिवार्य विषय माना गया है, पर परीक्षाफल में उसके अंक अन्य विषयों के साथ जुड़ने के कारण उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है और हिन्दी को भी पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता है।
5. योजना में छात्रों को परामर्श और मार्ग प्रदर्शन की सुविधा प्रदान करने की बात स्वीकार करते हुए भी इस दिशा में कोई भी सक्रिय कदम नहीं उठाया गया।
6. माध्यमिक विद्यालयों व छात्रों की संख्या इस तेजी से बढ़ रही है कि सरकार उन पर अंकुश नहीं रख पाती।
7. न केवल प्रशिक्षित अध्यापकों की बहुत कमी है, पर साथ ही नवीन प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रशिक्षण की भी समुचित व्यवस्था नहीं है।
8. माध्यमिक विद्यालयों से 3,4, व 5 कक्षाओं के अलग कर दिये जाने के कारण बहुत से व्यक्ति अपने बालकों को घर पर ही पॉचवी कक्षा तक शिक्षा देने के उपरान्त छठीं कक्षा में उन्हें प्रविष्ट करा देते हैं। अतः इससे शिक्षा की आधारशिला कमजोर पड़ जाती है और शिक्षा का स्तर भी गिरता जा रहा है।
9. माध्यमिक विद्यालयों के पास उपयुक्त भवन, आवश्यक शिक्षण–सामग्री, उत्तम पुस्तकालय और प्रयोगशालाएं नहीं है।
10. अध्यापकों की दशा भी ठीक नहीं है, और उन्हें न केवल कम वेतन मिलता है, बल्कि वह समय से भी नहीं मिलता। साथ ही प्रबन्ध–समितियाँ जब भी चाहें शिक्षकों को पदमुक्त कर उनके स्थान पर नये शिक्षकों की नियुक्ति करती है।

सुझाव

माध्यमिक शिक्षा की उक्त त्रुटियों का उल्लेख करने के पश्चात् आचार्य नरेन्द्रदेव समिति ने उन दोनों का निराकरण करने के लिए अधोलिखित सुझाव प्रस्तुत किये–

1. हिन्दी के साथ संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाय और आठवीं कक्षा से बारहवीं कक्षा तक संस्कृत की शिक्षा दी जाय। हिन्दी के तीन प्रश्नपत्र हों, जिनमें से तीसरे प्रश्नपत्र में अनिवार्य संस्कृत का पाठ्यक्रम सम्मिलित किया जाय।
2. हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य भारतीय भाषा या विदेशी भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाये।

3. कक्षा 9 और 10 में गणित को अनिवार्य विषय बना दिया जाय तथा कक्षा 11 व 12 में उसे वैकल्पिक विषय माना जाय।
4. कक्षा 9 और 10 में 8 विषय और कक्षा 11 व 12 में 5 विषय पढ़ाये जायें।
5. विषयों का मुख्य और गौण विभाजन करने की जो प्रथा प्रचलित है, उसे समाप्त कर दिया जाय, और माध्यमिक शिक्षा स्तर में सुधार करने की दृष्टि से प्राथमिक, बेसिक व जूनियर हाईस्कूलों के पाठ्यक्र में आवश्यक विषय बना दिया जाय।
7. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को तभी मान्यता प्रदान की जाय, जब उनके पास आवश्यक विषयों की शिक्षा देने के लिए उचित व पर्याप्त साधन हों।
8. टेकनिकल स्कूलों की स्थापना करते समय स्थान की भौगोलिक उपयुक्तता पर अवश्य ध्यान रखा जाय।
9. टेक्निकल शिक्षण संस्थाओं को शिक्षा–विभाग के नियंत्रण में रखा जाय और राज्य में अधिक से अधिक इन संस्थाओं का निर्माण किया जाय तथा कुछ पॉलीटेकनिक का रूप प्रदान किया जाय। प्रत्येक जिले में कम से कम एक विद्यालय ऐसा अवश्य होना चाहिए।
10. टेकनिकल शिक्षा को आकर्षण बनाने की दृष्टि से उसे निःशुल्क कर देना चाहिए।
11. टेकनिकल स्कूल के अध्यापकों को प्रशिक्षित करने की उचित व्यवस्था की जाय।
12. पाठ्यविषयों के चयन में विद्यार्थियों का उचित मतों में प्रदर्शन करने की दृष्टि से प्रत्येक जिलें में एक मनोवैज्ञानिक केन्द्र की स्थापना की जाय, जहाँ कि एक ऐसा प्रशिक्षित अध यापक अवश्य हो, जो कि छात्रों की रूचि विषय का पता लगाकर उसके विषयों का चुनाव करने में सहायता दें।
13. प्रान्त में एक 'मनोवैज्ञानिक ब्यूरो' की स्थापना की जाय, जहाँ कि विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण तैयार किये जायें और उनके आधार पर छात्रों की मनोवैज्ञानिक जॉच की जाय।
14. इलाहाबाद के 'मनोवैज्ञानिक शिक्षा केन्द्र' का सुधार कर उसमें प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को एक वर्ष का पाठ्यक्रय पूरा कर लेने पर 'प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक' का प्रमाण पत्र दिया जाय।
15. प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में 200 वर्ष कार्य दिवस या 400 बैठकें अवश्य हो और कोई भी विद्यालय वर्ष में 235 दिन से अधिक अध्यापन कार्य न करें।
16. गर्मी व शरद् में 6 या 7 सप्ताह से अधिक छुट्टियाँ न होनी चाहिए, इनके अतिरिक्त वर्ष में 31 से अधिक छुट्टिया न हो, प्रधानाचार्य को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कुछ छुट्टियाँ देने का अधिकार होना चाहिए।

17. प्रत्येक विद्यालय जुलाई की 8 तारीख को अवश्य खुल जाना चाहिए और यदि उस दिन छुट्टी हो तो उसके दूसरे दिन विद्यालय अवश्य खुल जाय।

18. विद्यालय में नैतिक व धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य रूप से कर दी जाय और प्रत्येक विद्यालय के कार्यारम्भ से पूर्व 10 मिनट तक प्रार्थना अवश्य हो।

19. विद्यार्थियों को विभिन्न धर्मों के मूल सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाय और समय–समय पर महान पुरूषों के जीवन चरित्रों पर भाषाओं का भी प्रबन्ध किया जाय।

20. छात्रों और अध्यापकों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहने पर ही विद्यालय में उत्तम अनुशासन व्यवस्था रह सकती है, और जिन विद्यालयों का अनुशासन अच्छा हो, उन्हें पुरूस्कार मिलना चाहिए।

21. प्रत्येक विद्यालय के छात्रों को 20 से 30 तक के दलों में विभाजित कर प्रत्येक दल के लिए कई शिक्षक संरक्षक की नियुक्ति हो और विद्यालय के शिक्षकों व अभिभावकों में भी सम्पर्क स्थापित करने के प्रयास किये जाय।

22. विद्यार्थियों को पुस्तकीय ज्ञान के साथ–साथ शारीरिक श्रम के लिए भी प्रोत्साहित किया जाय और प्रत्येक छात्र को कुछ न कुद सामाजिक कार्य करने के लिए अवश्य बाध्य किया जाय।

23. अध्यापकों को चाहिए कि छात्रों के लिए उचित व शिक्षा प्रद सिनेमा दिखाने का अलग से प्रबन्ध करें, और प्रत्येक विद्यालय में एक रेडियो रखा जाय, जिससे मध्यावकाश में देश–देशान्तर की सूचनाएं व अन्य शिक्षाप्रद कार्यक्रम सुनाये जायें।

24. इण्टरमीडिएट कक्षाओं को समाप्त कर 12वीं कक्षा डिग्री कोर्स के साथ मिला दिया जाय और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 9, 10 व 11 कक्षायें रखी जाये तथा 11वीं कक्षा के अंत में माध्यमिक परीक्षा की व्यवस्था की जाय।

25. सोलह वर्ष से कम आयु वाले छात्रों को उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में सम्मिलित होने की आज्ञा न दी जाय और जिन विद्यार्थियों की उपस्थिति 75 प्रतिशत हो उन्हें ही परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाय।

26. कक्षा 8 के पश्चात् छात्रवृत्ति परीक्षा ली जाय और उसमें उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को दो वर्ष तक छात्रवृत्ति दी जाय, तथा छात्रों को विद्यालयों की प्रत्येक कक्षा में तीन परीक्षाओं में प्राप्त अंकों के आधार पर ही प्रत्येक कक्षा से दूसरी कक्षा में उन्नति दी जाय।

27. विद्यालय की प्रबन्ध समितियों में तुरन्त सुधार किया जाय और प्रबन्ध समिति में अधिक से अधिक 12 सदस्य होने चाहिए। जिनका निर्वाचन प्रति तीन वर्ष के उपरान्त हो। साथ ही विद्यालय का प्रधानाध्यापक और शिक्षकों का भी एक प्रतिनिधित्व तथा इन प्रबन्ध

समितियों का निर्माण धर्म व जाति के आधार पर न किया जाय। जिन विद्यालयों की प्रबन्ध समितियाँ ठीक नहीं है, उन्हें भंग कर सरकार उनका प्रबन्ध अपने हाथ में ले लें और एक प्रशासक द्वारा उनका प्रबन्ध करें।

28. प्रबन्ध समिति के पाँच सदस्यों की एक उपसमिति, जिसमें कि विद्यालय का प्रधान अध्यापक भी हो, द्वारा अध्यापकों की नियुक्ति की जानी चाहिए और नियुक्ति के पश्चात् विद्यालय निरीक्षक द्वारा स्वीकृति लेनी आवश्यक है।

29. अध्यापक की नियुक्ति के 4 माह के अंदर उनसे संविदा पत्र भरवा लिया जाय और अध्यापकों व प्रबन्ध समितियों से किसी भी विवाद का निर्णय करने के लिए पंच फैसला बोर्ड का निर्माण किया जाय, उनका निर्माण दोनो ही पक्षों द्वारा मान्य हो। यदि कोई प्रबन्ध समिति का निर्णय मानती है तो उसके द्वारा संचालित विद्यालय सहायता अनुदान बंद या कम कर दिया जाय।

30. गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों के स्थानान्तरण के लिए स्थानान्तरण बोर्ड बनाये जायें और अध्यापकों के वेतन व सेवा प्रतिबन्धों में भी सुधार किये जायें।

31. पाठ्य–पुस्तकों की स्वीकृति का वर्तमान ढंग इतना दोषपूर्ण है कि उसे शीघ्रताशीघ्र समाप्त कर कक्षा 9 से 12 तक के लिए केवल पाठ्यक्रम ही निर्धारित किया जाय पर किसी भी विषय के लिए कोई पुस्तक स्वीकार न की जाय। प्रत्येक विद्यालय के प्रधानाध्यापकों के परामर्श के विभिन्न विषयों की पाठ्यपुस्तकें निर्धारित कर लेनी चहिए और उनकी सहायता के लिए शिक्षा–विभाग पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी जाने वाली कुछ उपयुक्त व उत्तम पुस्तकां की सूची प्रकाशित करें ताकि पुस्तकों के चुनाव में आसानी हो।

32. उपयोगी व उचित पुस्तकों की रचना व प्रकाशन के लिए इंग्लैण्ड और अमेरिका आदि देशों की भांति विशेष समितियां व संस्थायें, निर्धारित होनी चाहिए।

33. पुस्तकें प्रति वर्ष न बदली जायें और जो पुस्तक एक बार चुन ली गई हैं उन्हें कम से कम तीन वर्ष तक अवश्य चालू रखा जाय।

34. स्वयं सरकार को अच्छी पुस्तकों के लेखन व प्रकाशन को प्रोत्साहित करना चाहिए ओर श्रेष्ठ व उपयोगी पुस्तकों को बाजार में भिजवाने की व्यवस्था की जाय।

35. पुस्तकों की छपाई और कागज आदि पर भी ध्यान दिया जाय।

आचार्य नरेन्द्रदेव जी का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान अभूतपूर्व है। उनके अनुसार पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों का समावेश किया जाय, जिससे समाज में जन–चेतना की भावना को विकसित किया जा सके। उन्होंने यह भी बताया है कि भूत के आधार पर ही वर्तमान का निर्माण करने

वाला पाठ्यक्रम होना चाहिए। आचार्य जी ने सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक मूल्यों को प्रधानता दी है। इनके अनुसार वैज्ञानिक और यांत्रिक शिक्षा का निरन्तर प्रसार और वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रगति होनी चाहिए। परन्तु विज्ञान का तुच्छ स्वार्थो। की सिद्धि में दुरूपयोग न किया जाय, बल्कि उसे सामाजिक हित कार्य में नियोजित किया जाय।

इनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना होना चाहिए। विद्यार्थियों में जीवन के उन मूल्यों की प्रतिष्ठा और प्रचार किया जाय, जो आधुनिक विश्व की प्रगति के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रीय विकास के लिए उच्चकोटि की वास्तविकता और युक्तिपूर्ण विचार की आवश्यकता बतायी है। समाज में ऐसी गतिशीलता हो, जिससे पद्दलित जनता के जीवन का उत्थान हो सके।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसलिए आचार्य जी जनता को सहकारिता के महत्व से अवगत कराना चाहते हैं। उनके अनुसार जनसाधारण को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उनमें वर्तमान समस्याओं के गम्भीर अध्ययन और समाज की नवीन प्रवृत्तियों को समझने की जागरूकता आ सके। इनके अनुसार शिक्षा–पद्धति की सफलता अन्ततोगत्वा अध्यापक पर निर्भर करती है। इसलिए शिक्षक और शिक्षार्थी में निकट सम्बन्ध होना चाहिए। इसके लिऐ उन्होंने 'ट्यूटोरियल पद्धति' को लाभदायक बताया है। आचार्य जी ने आत्म–संयम के द्वारा आत्मानुशासन स्थापित करने पर बल दिया है। इनके अनुसार विद्यार्थियें के मानस का निर्माण करना, उनके चरित्र का विकास करना तथा उनमें जनतांत्रिक भाव भरना अध्यापक का कर्तव्य है। इनके अनुसार शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं में एकता होनी चाहिए, क्योंकि एक स्तर पर प्रभाव दूसरे स्तर पर पड़ता है। आचार्य जी का कहना था कि हमें विद्यार्थी को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे उनमें स्वालम्बन की भावना का विकास हो सके। हमें जनता में विश्व–बन्धुत्व की भावना का विकास करना चाहिए।

आचार्य जी के अनुसार संस्कृत भारतीय विचारधारा और संस्कृति का उद्गम स्थान है और अगर हम अपनी संस्कृति का प्रसार करना चाहते हैं, तो हमें संस्कृत, पाली और प्राकृत के महत्वपूर्ण ग्रंथों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित करना चाहिए। आचार्य जी के अनुसार विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा हिन्दी होना चाहिए।

इन्होंने स्त्रियों के लिए भी पुरूषों के समान शिक्षा में समान अवसर प्रदान करने के लिए कहा है। भारतमाता से शिव का मस्तिष्क, कृष्ण का हृदय और राम का कर्म एवं वचन के साथ ही असीम मस्तिष्क, उन्मुक्त हृदय और जीवन की मर्यादा मांगने वाले लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 कृष्ण चैत तृतीया (अक्षय तृतीया) को उत्तर प्रदेश के अकबरपुर में हुआ था। पिता हीरालाल लोहिया कोशल और माता चंद्रीदेवी मिथिला प्रान्त के झुनझुनवाला परिवार की थी।

करीब ढाई साल की अवस्था में पुत्र का मुण्डन कराकर माता ने इस संसार को छोड़ दिया। लोहिया का परिवार मिर्जापुर से अकबरपुर आकर बसा था। पूरा परिवार एक ब्रह्म की छाया में अकाल मृत्यु को प्राप्त कर गया। केवल बचे एक राममनोहर।

1918 में पिता हीरालाल जी राममनोहर को अपने अहमदाबाद कांग्रेस में ले गए। लोहिया पिता के साथ गाँधी जी से मिलने गए। तब पिता पुत्र बम्बई में रहते थे। इण्टर के दो साल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बीते। बी0ए0कलकत्ता के विद्यासागर कालेज से किया। उस समय लोहिया मारवाड़ी छात्रावास में रहते थे। बी0ए0 के बाद लोहिया कुछ मारवाड़ी ट्रस्टों की सहायता से इंग्लैण्ड पढ़ने गये। वहाँ उनका मन नहीं लगा। वे जर्मनी चले गए।

जेनेवा में लीग ऑफ नेंशस की बैठक हो रही थी। भारत से अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधि बीकानेर के महाराज थे। यह वह अवसर था जब भारत में नमक सत्याग्रहियों पर हुए जुल्म से वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। लोहिया ने दर्शक दीर्घा में जाकर तेजी सीटी बजाई। लोहिया अपने एक अन्य साथी के साथ बाहर निकाले गये। उन्होंने बीकानेर के महाराजा भारत के प्रतिनिधि हैं, इस बात को चुनौती दी थी। 1932 में लोहिया ने 'नमक और सत्याग्रह' पर बर्लिन विश्वविद्यालय से पी0एच0डी0 प्राप्त की। 1936 में जवाहर लाल नेहरू के कांग्रेस अध्यक्ष चुने जाने पर लोहिया को उन्होंने परराष्ट्र विभाग का मंत्री नियुक्त किया। नेहरू, लोहिया की चाह, गाँधी, स्वप्न और सुभाष साहस थे। इसीलिए लोहिया ने साहस नहीं स्वप्न का साथ दिया। 1942 से 20 मई 44 तक लोहिया भूमिगत होकर आन्दोलन चलाते रहे। भूमिगत का अधिकतर जीवन कलकत्ता और बम्बई में बिताया। कांग्रेस रेडियो चलाया। नेपाल में गिरफ्तार हो गए। किन्तु लोगों ने जेल पर धावा कर इन्हें और जयप्रकाश को छुड़ा लिया। लोहिया लाहौर और बाद में आगरा जेल में रखे गए। 11 अप्रैल 1946 को जेल से रिहा हुए। इस बीच उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी। गाँधी जी के रहते लोहिया कांग्रेस छोड़ने के पक्ष में नहीं थे। लोहिया नेपाल और गोवा की मुक्ति के लिए जेल गए। लोहिया ने विन्ध्य प्रदेश के विभाजन के विरोध में भी भाग लिया तथा गिरफ्तार हुए। हिमालय नीति पर सम्मेलन बुलाया। लोहिया अनेक बार विदेश गए तथा अमरीका में कालों की समस्या को लेकर गिरफ्तार हुए। आइन्स्टीन से भेंट की। उनसे बातचीत की। एशियाई समाजवादियों का सम्मेलन रंगून में बुलवाया। किन्तु खुछ नहीं गए। लोहिया ने मार्क्सवाद का स्पष्ट विरोध किया।

लोहिया को अपनी पार्टी प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने जयप्रकाश नेहरू के 14 सूत्रीय कार्यक्रम और अशोक मेहता के पिछड़ी अर्थव्यवस्था की मजबूरी का विरोध किया। निहत्थों पर गोली चलाने पर केरल की सरकार से इस्तीफा मांगा। 'स्पेशल पावर्स एक्ट' के अन्तर्गत गिरफ्तार हुए। मणिपुर में प्रतिनिधि शासन के लिए सत्याग्रह किया।

लोहिया ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से अलग होकर1955 की 28 दिसम्बर से 1 जनवरी, 1956 तक नयी सोशलिस्ट पार्टी बनायी। इसका स्थापन सम्मेलन हैदराबाद में हुआ। लोहिया ने भारत सरकार पर आरोप लगाया कि वह पूरे समाज को न उठाकर कुछ लोगों को उठाती है। अतः बहुमत के कीचड़ में कुछ कमल खिलते हैं। उन्होंने इस कमल की खेती का विरोध किया। 23 नवम्बर, 1959 में लोहिया उर्वसीयम् में प्रवेश करते समय गिरफ्तार हुए। स्वतन्त्र भारत में लोहिया ने यह 13वीं गिरफ्तारी दी। लोहिया ने शिक्षण–संस्थानों और सेना के जातिवादी नामों का भी विरोध किया। डाक बंगला, सर्किट हाउस आदि जनता की सम्पत्ति है। इनमें सबको टिकने के लिए लोहिया ने गिरफ्तारी दी। 1962 में पं0 नेहरू के विरूद्ध चुनाव लड़े। फर्रुखाबाद से लोकसभा का चुनाव जीते।

लोहिया ने मानव सवारी रिक्शा पर न बैठने की प्रतिज्ञा की थी। वे कभी–कभी अत्यन्त भावुक हो उठते थे, विशेषकर किसी बलिदासी को देखकर। भारत–पाकिस्तान युद्ध में बलि देने वाले क्वार्टर मास्टर अब्दुल हमीद के घर जाते समय उन्होंने कहा 'बलिदान में हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। भारत सर्वधर्मियों की मातृभूमि है, इसका साक्षात्कार होता है। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। लोहिया गांधी की अपेक्षा अधिक भौतिकवादी और मार्क्स के मुकाबले विस्तृत विश्वदृष्टि वाले व्यक्ति थे।

लोहिया ने स्त्री के प्रति उदात्त एवं नवीन दृष्टिकोण अपनाया था। गांधी ने राम–राज्य की कल्पना की थी। लोहिया ने उसमें एक संशोधन रखा रामराज्य नहीं, सीतारामराज्य। पुरुष का स्थान स्त्री के बाद है। स्त्री शक्ति है। राम राज्य शक्ति विहीन है। सीता रामराज्य शक्तियुक्त है.। राम ने इसी सीता शक्ति का रावण से उद्धार किया था। हर युग का रावण, शक्ति को चुरा लेता है। अपने नंदन वन में बंदी बना लेता है। राम का काम है शक्ति का उद्धार।

लोहिया ने भारत की राजनीति और विधायिका में पिछड़े और खुरदरे चेहरों को प्रवेश दिलाया। मिट्टी के मटमैले रंग और श्रम की बूंदों से वातावरण को बदला। इसीलिए भद्रलोक लोहिया के नाम पर नाक–भौं सिकोड़े यह आश्चर्य जनक नहीं।

लोहिया का चिंतन मार्क्सवादी चिंतन की अपेक्षा अधिक उदारवादी है। रंगीन देशों के शोषण का विरोध मार्क्स ने नहीं किया। आधुनिकीकरण के नाम पर रंगीन देशों में पश्चिम की कथित कष्टपूर्ण उपस्थिति ठीक और रंगीन देशों के पक्ष में बतायी गयी। मार्क्स ने यह नहीं देखा कि संसार शोषक और शोषित दो प्रकार के देशों में बंट गया है। प्रायः सभी गोरे देश रंगीन देशों के शासक है। रंगीन देश के सभी वर्गों के लोभ शोषित है। कहा जाता है कि अंग्रेजों के राज्य में 'सूरज नहीं डूबता था। इस सूरज को मार्क्सवाद ने नहीं डुबाया। यह सूरज रंगीन देशों के राष्ट्रवाद द्वारा डूबा। मार्क्सवाद का चला होता तो यह सूरज आज भी नहीं डूबता। क्योंकि मार्क्स

तो अंग्रेजों को आधुनिकता और मुक्ति का वाहक माने बैठा था। योरप के लाभ ने मार्क्स की दृष्टि खराब कर दी थी। वह रंगीन मुल्कों का शोषण नहीं देख पाता था।

लोहिया की सर्वप्रथम दृष्टि रंगीन देशों के शोषण की ओर गई। वे भारत सहित सम्पूर्ण रंगीन जातियों की मुक्ति के बारे में सोचते हैं। मार्क्स ने केवल औद्योगिक मजदूरों के शोषण की चिन्ता की थी। लोहिया के शोषित में स्त्री, हरिजन, शूद्र, किसान आदि के साथ एक सम्पूर्ण रंगीन दुनिया है। इसलिए लोहिया की शोषित मानवता के प्रकार मार्क्स की शोषित मानवता से कई गुना अधिक है। मार्क्स ने विज्ञान की निरपेक्ष सत्ता स्वीकार की। जबकि लोहियिा ने घनी आबादी और कम जमीन वाले देश में विज्ञान और तकनीकी के शोषक स्वरूप को पहचाना। श्रम के बहुतायत वाले देश में नवीनीकरण और तेज त्वरावाली तकनीकी लोगों के हाथ से काम छीन लेती हैं। कम आबादी वाले देशों में जहाँ ये आधुनिक तकनीकी सुविधाएं भोग का साधन है, वहीं घनी आबादी वाले देशों में असुविधा बन जाती है। गोरे देश विज्ञान द्वारा हथियारों और प्रदूषण की बढ़ती से परेशान है। रंगीन देशों में यह समस्या तो होगी, इसके अतिरिक्त रोजगार की सम्भावनाएँ खत्म होती जायेंगी। दुनिया के सभी भागों का विकास एक जैसा नहीं हुआ है। ऐसा में मुक्ति के रास्तें भी अलग–अलग होंगे। मार्क्सवाद ने श्रम को महत्ता दी। किन्तु रंगीन मुल्कों के श्रम पर किसी का ध्यान नहीं गया। स्वयं विज्ञान के विकास ने रंगीन देशों के श्रम का शोषण किया है। रंगीन श्रम को अनदेखा किया है। देखा है तो उनको गोरों के उपयोग के लिए।

लोहिया किसी यातना का समर्थन नहीं करते हैं। किन्तु मार्क्स क्रूरता और यातना का समर्थक चिंतक है। मार्क्स ने यह नहीं देखा कि क्रूरता साम्राज्यवाद का स्वाभाव है। किन्तु गोरों के साम्राज्यवादी वकील की हैसियत से कहते हैं कि भारत में हुए दमन और यातना का श्रेय नीचे के हिन्दू अफसरों को है, न कि गोरे शासकों को। भारत के शोषण का यह तर्क साम्राज्यवादी के साथ ही साथ सम्प्रदायवादी भी है। लोहिया भारत के शोषण की जिम्मेदारी पूर्णतः गोरी सभ्यता को देते हैं। नीचे के अफसरों ने भारत को यातना अपने मालिकों को खुश करने और उससे पुरस्कृत होने के लिए दी। साम्राज्यवाद के प्रति वफादारी के लिए दी।

लोहिया जब सार्वजनिक जीवन में अहिंसक प्रतिरोध और उसके हिंसक, दमन का विरोध करते हैं तो वे एक मानवीय संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं। निहत्थे नागरिक को गोली का शिकार बनाना क्रूरता है, अन्याय है। मानवीय चेतना के विरूद्ध है। यह एक सार्वदेशिक सिद्धान्त है। सरकारों की स्थापना हिंसा रोकने के लिए हुई थी। बाद में सरकारों ने हिंसा को भी अपना आधार बना लिया। फौज और पुलिस के साथ अफसर भी हिंसा के प्रतीक बन गए। अपराधी की अपेक्षा सामान्य एवं शांतिप्रिय नागरिक को इनसे भय होने लगा। सरकारी हिंसा सरकारी शक्ति बनकर शांतिप्रिय नागरिकों को कुचलने लगी, सरकारी हिंसा की निंदा की। इसके साथ ही

नागरिक द्वारा की गई हिंसा को भी अनुचित ठहराया। उन्होंने स्पष्ट ही दोनो पक्षों की हिंसा को अस्वीकार किया। किसी भी सभ्य समाज में हिंसा और बलात्कार के लिए स्थान नहीं है। लोहिया का यह अत्यन्त गहरा मानवीय पक्ष था। मनुष्य के मन या शरीर पर किसी भी स्तर से बलात् अधिकार अमानवीय हैं। इसी क्रम में उन्होंने कहा था, वेश्याओं के साथ भी बलात्कार नहीं होना चाहिए। विस्तृत और गहरे चिंतन के धनी लोहिया विश्व साम्राज्यवाद और वेश्या सभी के साथ होने वाले बलात्कार को हिंसा मानते हैं।

लोहिया के अनुसार मनुष्य महत्वपूर्ण है। विचार और बौद्धिकता उसके अंगरक्षक जैसे हैं। इनके चिंतन में मनुष्य से बड़ा कुछ भी नहीं है। 'नाहि मानुषातू श्रेष्ठतरं हि किंचित' बर्गवादी चिंतन के कारण मार्क्स ने अपनी नजरों और अपने आस–पास के वर्गों को देखा। दुनिया के कोने–कोने में फैले मनुष्य की समस्याओं को वे नहीं देख सकें। उनका उद्देश्य मानव नहीं, केवल पश्चिम का मजदूर वर्ग है। इसीलिए वे किसान बहुल देशों में क्रान्ति की कल्पना नहीं कर सके। अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा किसान के हाथ–कटे जुलाहों के प्रति सहानुभूति का शब्द नहीं कह सके।

आजकल अमरीका जाने की प्रथा है। लोहिया भी अमरीका गए थे। किन्तु कालों की समस्या पर गिरफ्तार होकर उन्होंने एक नवीन विश्वमन का संकेत दिया। यों कहें कि मार्क्स ने "विश्व के मजदूरों एक हो" कहा तो लोहिया ने "विश्व के काले (रंगीन) एक हो" का नारा दिया।

पीड़ित का उद्वार और पीड़क के प्रति घृणा का अभाव। घृणा, पीड़ा और अन्याय के प्रति न कि अन्यायी के प्रति। मार्क्स द्वारा अन्याय और अन्यायी में भेद न करने के कारण अन्यासी के प्रति भी अन्याय हो जाने की सम्भावना है। इस बात को आरक्षण के द्वारा समझने की आवश्यकता है। लोहिया ने हरिजनों, पिछड़ों, स्त्रियों आदि के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण की बातें करते हुए स्पष्ट चेतावनी दी, इस बात की पूरी सावधानी रखी जाय कि इससे आज के द्विज, हरिजन या शूद्र न हो जाय। उनके आरक्षण का उद्देश्य केवल उठाना है, गिराना नहीं। समता का उद्देश्य है, समस्तर पर लाना, समान स्तर बनाना। किसी से बदला लेना या जलन शांत करना नहीं। इतिहास के कारण कोई दंडित नहीं हो सकता है। इसीलिए वे शिक्षा में आरक्षण के विरोधी थे। ऐसा न हो कि किसी भी जाति या वर्ग का व्यक्ति शिक्षा से वंचित रह जाय। किसी को शिक्षा से रोकना क्रूर अपराध है। शिक्षा से रोकने का कार्य जब भी हुआ, बुरा हुआ। जब भी होगा बुरा होगा। समाज की ऐसी संरचना हो जिसमें अन्याय न हो। अन्याय को समाप्त करना है, अन्यायी को नहीं। जैसे बालक के हाथ से जहर छीन कर अभिभावक फेंक देते हैं। वैसे ही अन्यायी के हाथों से अन्याय का शस्त्र छीन लेना चाहिए। अन्याय रहित व्यक्ति समान सुविधा का अधिकारी है। लोहिया अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध लड़ रहे थे। अंग्रेजी के विरूद्ध उन्होंने संघर्ष किया। किन्तु वे एक भी अंग्रेज को मारने की बात नहीं करते। वे अंग्रेजी विरोधी नहीं थे, अंग्रेजी

भाषा और साहित्य के प्रति उन्हें वैसा ही प्रेम था जैसा अन्य भाषाओं के प्रति। वे केवल भारत में अंग्रेजी के सार्वजनिक प्रयोग के विरूद्ध थे। अंग्रेजी रहे किन्तु भारत की भाषाओं को दबाकर न रहे। भारत के सार्वजनिक जीवन में अंग्रेजी का प्रयोग उन्हें एक क्षण के लिए भी बर्दाश्त नहीं है।

साम्राज्यवाद बुरा है तो सबके लिए बुरा है। वे कभी भी ऐसे दिन की कल्पना नहीं करते जब भारत साम्राज्यवादी हो। भारत किसी दूर या पड़ोसी देश पर हमला करें। अधिकार करें। लोहिया ने द्वितीय महायुद्ध में पराजित देशों से हर्जानें की वसूली का विरोध किया। युद्ध बुरा है, आक्रमण बुरा है। किन्तु पराजित देश से हर्जाना लेना भी बुरा है। यह बदले की भावना, पराजित को सताना एवं अपमानित करना लोहिया को पसन्द नहीं था। बदले की भावना से किसी समस्या का समाधान नहीं होता है। इससे एक ओर हीनता और दूसरी ओर स्वामित्व के भाव का विकास होता है। हीनता और स्वामित्व दोनो ही बुरे हैं। मानतवा विरोधी है। भारत में ब्रिटिश राज, गोवा में पुर्तगीज, नेपाल में अपने ही राजा का राज, तिब्बत में चीन का अधिकार, हंगरी में रूस का जुल्म, अमरीका में नीग्रों के साथ होने वाला व्यवहार इन सब में एक सामान्य बात है– अन्याय, अमानवीय व्यवहार। लोहिया ने इस सभी अन्यायों का विरोध किया। अन्याय विरोध की दृष्टि से लोहिया का क्षेत्र मार्क्स के अन्याय क्षेत्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत और गम्भीर है। अधिक मानवतावादी और वैश्विक है।

लोहिया ने किसी भी आन्दोलन के पॉच शत्रु बताये हैं– निषेधवाद, वाह्यवाद, चुनाववाद, उपद्रववाद, गुटवाद। निषेधवाद से उनका मतलब है सारा हिन्दुस्तान एक बड़ा शिकायतघर हो गया है। लगभग हर एक को कुछ न कुछ शिकायत या रोना है। वाह्यवाद या दिखावटीपन। दिखावटीपन से सच्ची राजनीति नहीं बन सकती ह। दिखावा में सार तत्व का अभाव रहता है। खोखली विचारधारा और व्यक्ति ही दिखावा करते हैं। चुनाववाद और उपद्रववाद, ये दोनो ही आज की स्थिति में निषेधवाद के परिणाम है। लोहिया ने इनके विकल्प में सुनियतता, सारता, रचनात्मकता, प्रतिरोधात्मकता ओर सर्वोपरि सहानुभूति इन पाँच गुणों को हासिल करने की सलाह दी। लोहिया द्वारा बताये गये इन पाँच दोषों और पांच गुणों को ध्यान से देखें। ये बताते हैं कि वे कितने व्यवहारिक ढंग से सोचते थे। वे केवल चिंतक ही नहीं, व्यवहार वाले राजपुरूष भी थे।

लोहिया की उच्च बौद्धिकता पर बहुतों ने विचार किया है। किन्तु उनकी बौद्धिकता न्यायशास्त्र या मात्र विचार जगत की न होकर महाभारत के मैदान की थी। कार्यक्रमों के बीच की थी। किन्तु इसके कारण उनकी निरन्तरता कहीं से भंग नहीं हुई है। लोहिया के विचारों में एक निरन्तरता और संगति है। वे कभी ऐसा न तो करते हैं, न कहते हैं, जिसकी संगति न हो, जो उनके विचार क्रम में बिल्कुल नया हो। लोहिया का समाजवाद मूलतः ऐसी सामाजिक

संरचना है जो समाज के सम्पूर्ण और पारम्परिक आधार को दबल देती है। समाज के शीर्ष पर बैठा वर्ग इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।

लोहिया ने राम, कृष्ण, शिव, के मर्यादित, असीमित और उन्मुक्त ये तीन प्रतीक चुने हैं। तीनों की तीन विशेषताएँ। इसी प्रकार लगता है कि लोहिया के समाजवाद का विचार और कार्यक्रम असीमित है। कार्य संचालन मर्यादित और संगठन उन्मुक्त है, संगठन में कोई भी आए। इसी प्रकार लोहिया वाणी की स्वतन्त्रता या उन्मुक्तता, कर्म की मर्यादा और उद्देश्य की सीमाहीनता में विश्वास करते हैं। वाणी स्वतन्त्रता और कर्म–मर्यादा, राजनीति को लोहिया की महत्वपूर्ण देन है। लोहिया भारत में समाजवाद के अकेले नेता हैं जिनमें कर्म से विचार और विचार से कर्म निकलते हैं। इसीलिए उन्होंने कथनी और करनी की एकता का विचार रखा। कथनी और करनी की भिन्नता शायद सम्पूर्ण संसार की समस्या है। भारत में तो यह अत्यन्त ही गहरी समस्या है। लोहिया चाहते थे कि ढपोरशंखी भाषणों का स्थान कर्म को मिले। कार्यक्रम देते समय भी बे इस बात का ध्यान रखते थे कि कार्यक्रम उतने ही दिये जायें। जितने को पूरा करना सम्भव हो। डॉ0 लोहिया कभी भी बढ़–चढ़कर बातें नहीं करते थे। बढ़–बढ़कर बातें करना और बड़ा विचार रखना, दोनो के अंतर को समझना चाहिए। लोहिया के विचार ऊँचे थे। किन्तु वे कोरा बकवास, अहंमन्य घोषणाएं या भरमाने की शब्दावली से अलग रहते थे। कर्म से छूटा मनुष्य भाषा–निर्माण में लग जाता है। कर्म के कारण लोहिया ने एक नयी भाषा का विकास किया। सीधी, किन्तु प्रखर भाषा। काम की भाषा। लोहिया संदर्भ में बोध है। बिना उनका संदर्भ समझे उनकी भाषा नहीं समझी जा सकती हैं। इसलिए भी, कि वे दूसरों की भाषा नहीं बोलते। कर्म उनका है तो भाषा दूसरे की कैसे होगी? भाषा, भाषा–प्रतीक और कर्म–प्रेरणा एक ही मन के प्रवाह है। हाथ करता है, जीभ करती है मगर दोनो एक ही व्यक्ति के हैं। वह व्यक्ति धूर्त या पागल नहीं है तो भाषा और कर्म दो नहीं हो सकते हैं। लोहिया की भाषा शहरी भद्रलोक की नहीं है । किन्तु वह गंवारू भी नहीं है। गंवारू का विनोद, रस और संवेदन सरलता की अपेक्षा उनकी भाषा में तलखी और वैचारिक उत्तेजना है। गाँव की भाषा सहती है, लोहिया की भाषा आक्रमण करती है। धक्का देकर जगाती है, उठो! उनके सांस्कृतिक निबन्धों में भी लोकसंगीत का चिकनापन न होकर विश्लेष्ण की धार है। लोकसंगीत का उद्देश्य रिझाना होता है। लोहिया शंकर के डमरू सा निनादित करते हैं। नये पुराने सभी विचारों को छोड़कर नयी वैश्विक चेतना की खुरदुरी ओज पाली भाषण।

महादेवी ने लोहिया को सक्रिय करूणा कहा है। सक्रिय करूणा ने ही लोहिया को शांति दृष्टा बनाया था। उनकी करूणा न केवल मनुष्य बल्कि दूसरे प्राणीतर और प्रार्वातर के प्रति भी सक्रिय थी। पु0ल0 देशपाण्डे उन्हें रसिक तपस्वी कहना चाहते हैं। किन्तु उनके लिए कोई भी

विश्लेषण प्रचलित नहीं हुआ। शायद इसलिए कि शब्द चुक गये थे। जितने भी शब्द लोहिया के व्यक्तित्व को बांधने आते वे उनके अर्थों से बाहर आ जाते थे। भारत की राजनीति में लोहिया एक ऐसी मूर्ति हैं जो हर क्षण टूटते हैं, नवीन होते हैं। कितने ही चतुर चित्रकार लोहिया की मूर्ति बनाने बैठे, किन्तु उनकी मूर्ति बनाना कठिन था। लोहिया को बार–बार मूर्ति भंजक कहा गया है। यद्यपि यह भी उनके साथ अन्याय था। क्योंकि भारतमाता की मूर्ति को अपने ह्रदय में जितना सहेज कर लोहिया ने रखा, उतना किसी नेता ने नहीं। मूर्तिभंजक की, उनकी उपाधि अर्द्धसत्य है। केवल इस माने कि उन्हें बदसूरत, डरावनी और छलवानी मूर्ति बिल्कुल पसन्द नहीं थी। विरोधियों ने प्रायः लोहिया की एकतरफा और ऐसी मूर्ति गढ़ी, मानों लोहिया भारतमं. के प्रतिनायक हों।

महादेवी ने ठीक पहचाना था। लोहिया का मूलभाव करूणापरक था। एक जातीय पीड़ा, राष्ट्रीय अवमानना और रंगीन होने के कारण आधुनिक इतिहास के प्रति दबाव उनके व्यक्तित्व की ऊपरी सतह थी। उद्‌गम स्थान में तो एक समूह प्राचीन जाति का गौरव, उसके कारण आधुनिक चमक को तुच्छ समझने की शक्ति और इस नश्वर चमक के प्रति दुःखद आकर्षण ने उनके मन में गहरी करूणा पैदा की थी।

लोहिया धर्म और राजनीति को जोड़ते हुए कहते हैं, धर्म दीर्घकालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म है। लोहिया दीर्घकालीन राजनीति करते थे और तात्कालिक धर्म करते थे। मतलब यह कि फिर राजनीति और धर्म में कोई विरोध नहीं है, दोनो एक हैं। अंतर है समय का यह कि लोहिया जितने राजनेता थे, उतने ही धर्म–नेता भी। वे राजनीति को धर्म और धर्म को राजनीति की दृष्टि से देखते थे। इस कारण राजनीति पवित्र है। राजनीति में सब चलता है, इसका खंडन होता है। राजनीति में केवल धर्म चलता है। जिस राजनीति में धर्म नहीं, वह राजनीति नहीं है। राजनीति से धर्म ओजस्वी बनता है। ओजस्विता के अभाव में धर्म मुर्दा हो जाता है। राजनीतिक स्पर्श के कारण ही राम, कृष्ण, शिव सम्बन्धी लोहिया के छोटे से लेख में प्राण आ गया। तीनों पात्र मन्दिरों और मूर्तियों की जड़ता से हटकर सामाजिक जीवन के अभिभावक, सेवक और सखा हो गये। तीनों नेतृत्व के तीनों गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुष्य को तीनों चाहिए। राम, कृष्ण, दुर्गा, हनुमान और गणेश के अलग–अलग क्षेत्र हैं। उन क्षेत्रें के अलग–अलग संस्कार हैं। जैसे लोहिया इन देवताओं के लिए सचल मन्दिर बनाकर उनमें इनकी गतिमान मूर्तियाँ स्थापित करते हैं। इनकी पूजा के लिए शरीर शुद्धि आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने 'नदियाँ साफ करो' का नारा दिया। नदियाँ संस्कृति है। सभ्यता और धर्म है। नदियों की गंदगी का अर्थ है समाज का गंदा होना। इसके साथ है तीर्थो की सफाई। तीर्थों ने सम्पूर्ण भारत को एक संस्कृति में बांधा है। सम्पूर्ण भारत की संस्कृति एक है। इसलिए नदी, तीर्थ की सफाई देश की सफाई भी है। गंदी नदी और गंदे तीर्थ देश को भी गंदा करेंगे।

धर्म और राजनीति, नदियों की सफाई, तीर्थों का उद्धार, एक संस्कृति की कल्पना, अंग्रेजी के स्थान पर देशी भाषा की स्थापना, देव प्रतीकों की नयी व्याख्या आदि को पूरा करता है रामायण मेला। रामायण मेला की कल्पना एक महायज्ञ की कल्पना है। सम्पूर्ण कला, विविध कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, कविता, नाट्य, नृत्य, वचन, प्रवचन आदि का अर्धकुंभ। केवल हिन्दू नहीं, केवल धार्मिक नहीं सभी धर्मों, वर्गों, वर्णों, कलाविदों, विद्वानों, सन्यासियों, राजनेताओं आदि का विशाल संगम हो। आनंद, दृष्टि, रस सभी एक साथ सक्रिय हो उठें। समाज को कोई भी सांस्कृतिक क्षेत्र छूटे नहीं। इसी सांस्कृतिक और सामाजिक निर्माण की दृष्टि से लोहिया ने 'हिमालय बचाओ' का नारा दिया। लोहिया अकेले नेता हैं, जिन्होंने हिमालय पर विस्तार से सोचा। देश का ध्यान आकृष्ट किया। उसके लिये आन्दोलन किया। नदियां साफ करनी है तो हिमालय को भी साफ और सुरक्षित रखना होगा। इन सबके लिए देशी मन चाहिए। लोहिया ने विद्यालयों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि देशी मन कान्वेंट के स्कूलों और अंग्रेजी शिक्षा से नहीं बनेगा। लोकतन्त्र के सरकारी स्कूल और देशी भाषा ही देशी मन बना सकते हैं।

लोहिया ने स्पष्ट– किया कि जरूरी चीजों के दाम कम और आराम की चीजों को ज्यादा, यह अच्छी सरकार की निशानी है। असल में यदि मूल्य नीति का बुनियादी सवाल है। लोहिया ने अलाभकर खेती पर लगने वाली लगान का भी विरोध किया। लोहिया ने शूद्रों और स्त्री की स्वतन्त्रता पर विशेष जोर दिया।

डॉ० लोहिया पूरे देश की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि चाहते थे। इसी संदर्भ में उन्होंने दक्षिण की लिपियों से नागरी की समानता का भी अध्ययन किया। उन्होंने इन लिपियों की समानता के सिद्धान्त की स्थापना की। राम उत्तर–दक्षिण और कृष्ण पूर्व–पश्चिम की एकता के देवता हैं। शिव उत्तर की रक्षा के लिए हिमालय पर बैठे हैं। लोहिया का राजनीतिक और धार्मिक मन इतना एक था कि उसे अलग करना असम्भव है। इसीलिए वे आज की राजनीति में जितने प्रखर थे, उतने ही भविष्य के निर्माता भी। आज को वे आने वाले कल से जोड़कर देखते थे। भविष्य का कल ही आज बन जायेगा।

लोहिया जितने ध्वंसात्मक थे, उतने ही रचनात्मक भी। विरोधी प्रायः उनके ध्वंस की चर्चा करते हैं। किन्तु वे भूल जाते है कि लोहिया का ध्वंस नया समाज बनाने के लिए है, अखण्ड भ्रष्टाचार और अन्याय मिटाने के लिए है। जो अन्याय से लड़ेगा इसकी वाणी में दीपक–राग होगा। उससे मल्हार सुनने का धीरज चाहिए। लोहिया उदार दर्शन और उग्र कार्यक्रम के पक्षपाती थे। इसीलिए देखने में वह कठोर लगते हैं। डाक्टर के चाकू का उद्देश्य रोग निवारण है, न कि अंग–भंग।

लोहिया ने अंग्रेजी हटाने के लिए पांच महत्वपूर्ण काम सुझाए। सत्य, ईमानदारी, जनतंत्र और समाजवाद की रक्षा के लिए यह जरूरी हो गया है कि अंग्रेजी को फौरन सार्वजनिक इस्तेमाल से हटाया जाय। (क) लोगों को समझा बुझाकर अंग्रेजी का सार्वजनिक इस्तेमाल बंद किया जाए। (ख) ऐसा जनमत तैयार किया जाए कि अंग्रेजी के सभी दैनिक अखबारों का प्रकाशन बंद हो जाए, (ग) राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश सरकारों को नोटिस दी जाये कि डाक–तार में अंग्रेजी का इस्तेमाल फौरन बंद करें, (घ) देशी भाषाओं को विकास का अवसर तभी मिल सकेगा जब अंग्रेजी के दैनिक अखबार और टेलीप्रिन्टर मशीनें खत्म कर दी जायें। इसे करने का ढंग ठीक वैसा ही हो जैसा खादी के प्रसार के लिए गांधी की प्रेरणा पर लंकाशायर की मिलो के कपड़ों की होली जलाकर किया गया था। लगातार झकझोरने के बाद ही अंग्रेजी का नशा उतरेगा।

लोहिया के अनुसार संस्कृत भाषा सभी भाषाओं और विचारों की जननी, धाय, और संरक्षिका रही है। उसका महत्व आज भी बना है। अंग्रेजी भारत को प्रेरित नहीं करती। जनाती है। ज्ञान कराती है। सूचना देती है। भारत में अंग्रेजी को ज्ञान प्रकाशिका भी नहीं, सूचना प्रकाशिका करना चाहिए। किन्तु संस्कृत आत्मा की भाषा है। आत्म चैतन्य का बोध करने वाली कविता और दर्शन की भाषा है। इसका ज्ञान भी केवल सूच्य न होकर बाध्य होना है। फारसी अपने सामन्तों के साथ चली गयी। अंग्रेजी भी अपने बादशाहों के साथ चली गयी। किन्तु संस्कृत की स्थिति भिन्न है। वह न राजा, न सामंत, न सेना के साथ आयी थी, वह आयी थी ऋषियों और तपस्वियों के साथ। आयी क्या थी, पैदा हुई थी। इसलिए उसका स्थान भिन्न है।

कला और साहित्य को बाहरी ढाँचा कहकर मार्क्सवाद ने इन्हें नीचा दिखाया था। इसके मुकाबले लोहिया ने कहा कि जीव और चेतना उत्पादन पद्धति और चेतना की अभिव्यक्ति में अंतर है। क्यों कि वस्तुएं संसार में सर्वत्र एक सी होती हैं, किन्तु उनके नामों में भिन्नता होती है। बढ़ई और कुल्हाड़ी सारी दुनिया में एक जैसी होती है। किन्तु विभिन्न भाषाओं में उनके नाम अलग–अलग होते हैं। चेतना की स्वयं अपनी विशेषता है और उसकी अपनी शैली और अपना स्थायी चरित्र है– हर क्षण बहाव है किन्तु उसी में स्थायित्व भी है। आज का मनुष्य सफलता पर ध्यान देता है। किन्तु प्रयत्न पर नहीं। भौतिकता और चेतना में विरोध नहीं है। लोहिया का मुख्य सम्बन्ध जीवन से था, वह जीवन जहाँ से भी मिले। वह भूत या परम्परा में भी हो सकता है। इसीलिए वे परम्परा के अध्ययन में विश्वास करते हैं। मध्यप्रदेश में एक समता विद्यालय खोलना एक स्वप्न ही रह गया, किन्तु लोहिया का सारा जीवन ही गांव था।

देश की तीन महान समाजवादी शिक्षा विचारकों डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 राममनोहर लाहिया के शिक्षा दर्शन, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षणविधियों, शिक्षक, शिक्षालय,

और अनुशासन सम्बन्धी विचारों का तुलनात्मक अनुशीलन किया गया। डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव ये दोनो ही लब्ध प्रतिष्ठ शिक्षक रहे हैं। शिक्षण क्षेत्र का अनुभव उनके शैक्षिक विचारों तथा शिक्षा दर्शन को पुष्टि करता रहा है। डॉ0 राममनोहर लोहिया मूलतः शिक्षक नहीं रहे किन्तु जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करने वाले चिंतक राष्ट्रनेता थे। रामायण मेला के जनक थे। अंग्रेजी हटाओं आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता थे। तीनों शैक्षिक समाजवादी विचारक मार्क्सवादी होते हुए भी राष्ट्रवादी भारतीय समाजवादी विचारक थे।

आचार्य नरेन्द्रदेव विश्वविद्यालय के कुलपति, डॉ0 सम्पूर्णानन्द शिक्षा मंत्री एवं मुख्यमंत्री का शैक्षिक योगदान है। कुजात गांधीवादी डॉ0 लोहिया यद्यपि मूलरूप से राजनेता थे और उनके व्यक्तित्व का वहीं पहलू अधिक प्रमुख होकर देश के सामने आया है, लेकिन देश की राजनीति के अलावा भी वे देश के, समाज के, व्यक्ति के अन्य पहलुओं पर कितनी गहरी दृष्टि रखते थे और उन पर कितना चिंतन करते थे, यह उनके लेखों एवं विचारों से स्पष्ट होता है। उनका राजनीतिज्ञ से अधिक एक सांस्कृतिक, सामाजिक, देशभक्त का सम्पूर्ण व्यक्तित्व था।

रामायण, राम, कृष्ण, शिव, तीर्थों और अन्य विषयों पर उनकी जो दृष्टि थी, उनमें वे आधुनिक संदर्भ को जोड़ते थे। वर्तमान समय में अनुपयोगी शिक्षण संस्थाओं का जनता से कोई सम्पर्क नहीं है। उच्च वेतन के लोभ ने बौद्धिक वर्ग को भी कुंठित कर दिया है। शिक्षा में विद्या और विद्यारूचिहीन व्यक्तियों के अनुचित प्रवेश ने भी विद्या मन्दिरों का तेज हरण कर लिया। सभी सरकार का मुंह जोहने लगे। सरस्वती मन्दिरों में धन और अवसर की हिंसा ने प्रवेश किया। कहना इतना ही है कि समाज को जिन वर्गों से आशा थी वे सभी तृष्णा के पीछे छोड़ने लगे। ऐसे समय में इनके विचार सर्वथा प्रासंगिक हैं।

आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 सम्पूर्णानन्द एवं डॉ0 राममनोहर लोहिया उच्च शिक्षा प्राप्त थे। आचार्य जी तो कई विश्वविद्यालयों के कुलपति भी थे। डॉ0 सम्पूर्णानन्द शिक्षक, कुलपति, शिक्षामंत्री और मुख्यमंत्री भी रहे। किन्तु विधानसभा में आचार्य जी की भाषा और समस्यायें बिल्कुल ही सामान्य जन की होती थी। एक मर्यादित, सधी किन्तु साधारण भाषा, प्रचलित शब्दावली। लोहिया थोड़ा भिन्न तरीके से उस भाषा को और तीव्रतर बनाते थे। आचार्य जी के भाषणों में हिन्दी क्षेत्र के सामान्य और भद्र का मिला–जुला रूप होता था। किन्तु लोहिया की पद्धति भिन्न थी। उदाहरण के लिए आचार्य को ग्रह मंत्रालय कहने में हिचक न थी, किन्तु लोहिया घर मंत्रालय और घर मंत्री कहते थे। लोहिया ने अपने ऑकड़ों को गंवार ऑकड़ा कहा। लोहिया द्वारा प्रयुक्त शब्दों का एक छोटा–मोटा कोश बन सकता है। इनके मुकाबले डॉ0 सम्पूर्णानन्द शिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं। लोहिया के आधार देशज शब्द अधिक है। कुछ चौकाने वाले भी। भद्र समाज को परेशान करने वाले। बाबू वर्ग की जवान से भिन्न बिल्कुल ही सामान्य बोली। लोहिया

का परिवर्तन अत्यन्त भिन्न तरीके का है। लोहिया एकदम निचले स्तर से जैसे कोई नीचे की मिट्टी को उधेड़ दे। ढ़की गंदगी ऊपर चली आए। लोहिया को देश रक्षा की चिंता तो बहुत अधिक है। वे मानते हैं कि जब तक किसी विश्व समाज का निर्माण नहीं होता तब तक राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा महत्वपूर्ण है।

विद्यापीठ पत्रिका के सम्पादक आचार्य नरेन्द्र देव थे। यह शोध पत्रिका काशी विद्यापीठ की थी। इसमें प्रायः शोधपकर लेख छपते थे। किन्तु विद्यापीठ से ही निकलने वाला पत्र 'जनवाणी' (मासिक) पार्टी का था। इसके प्रधान सम्पादक आचार्य जी तथा अन्य समाजवादी थे। आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया, डॉ0 सम्पूर्णानन्द आदि के लेख वैचारिक थे। आचार्य जी के संपादकत्व में 'संघर्ष' नामक हिन्दी साप्ताहिक लखनऊ से निकला। इस समाचार पत्र में छोटे–छोटे लेख भी होते थे, भाषा थोड़ी ओजस्वी और शीर्षकों में आकर्षण होता था। लोहिया ने विदेश से लौटकर साप्ताहिक पत्र 'कांग्रेस सोशलिस्ट' कलकत्ते से निकाला। इसमें लोहिया ने 1938 से 1939 तक करीब 42 लेख लिखे थे। इसके बाद लोहिया ने 'मैनकाइन्ड' अंग्रेजी मासिक एंव 'जन' हिन्दी मासिक का प्रकाशन किया। बाद में चौखम्भा नामक एक साप्ताहिक भी हैदराबाद से प्रकाशित किया। डॉ0 लोहिया ने 'बंगला–कृषक' एवं 'ओरियंट' पत्रिका का भी संपादन किया।

आचार्य जी को 'जनपद' शोध पत्रिका पटना से प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक 'जनता' में सम्पादक जैसी स्थिति प्राप्त थी। लोहिया के भाषण, पत्र व्यवहार आदि महत्वपूर्ण होते थे। इनकी भाषा सरल किन्तु अरबी–फारसी से लदी नहीं होती थी। डॉ0 लोहिया के कुछ शब्द प्रयोगों को छोड़कर भाषा लोक की ही होती थी। सामान्य तत्सम, सामान्य तद्भव। अरबी, फारसी के सहज शब्द भी। चौखम्भा की भाषा– सरकार को रोटी सा उलटते पलटते रहो। अपने आप में विश्वास पैदा करो। लोहिया का समाजवादी आन्दोलन उन्मुक्त है।

निष्कर्ष रूप में तीनों के शिक्षा सम्बन्धी मूल तत्वों में समानता थी। डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया के शिक्षा सम्बन्धी विचार और सिद्धान्त प्राथमिक माध्यमिक, तथा उच्च शिक्षा, समाजशिक्षा तथा स्त्री शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं के अनुभूति समाधान प्रस्तुत करते हैं। बेरोजगारी एवं अनुशासनहीनता तथा गुरूजनों के प्रति सम्यक् आदरभावना के अभाव को दूर करने के सम्बन्ध में इनके द्वारा जो विचार किये गये हैं वे समाधानपरक तथा प्रासंगिक हैं, उनके अनुसार समस्याओं की पृष्ठभूमि में जीवन में दर्शन की शिक्षा का अभाव अपना प्रभाव दिखा रहा है। शिक्षा के हर स्तर पर जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार तथा धर्म के पालन के माध्यम से अर्थ और काम की प्राप्ति सुलभ है। राष्ट्रीय भावनात्मक एकता समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ0 सम्पूर्णानन्द के भावनात्मक एकता सम्बन्धी दिये गये सुझाव, एवं रामायण मेला के

माध्यम से दिये गये लोहिया के सुझाव तथा माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्रदेव के सुझाव देशहित शाश्वत रूप से उपादेय हैं।

महात्मा गांधी, रवीन्द्र नाथ टैंगोर, महर्षि अरविन्द, डा0 राधाकृष्णन् के समान ही डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिंया दार्शनिक एवं शिक्षा विचारक थे। ये देश के मान्य दार्शनिक थे तथा शिक्षा–विचारक एवं उनके कार्यान्वयक थे। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, एवं कृषि विश्वविद्यालय पंतनगर श्री सम्पूर्णानन्द के प्रदेश की प्रगति के लिए शिक्षा जगत के दिशा बोधक कृत्य है।

उक्त विवेचना स्पष्ट करती है कि प्रस्तुत शोध की परिकल्पना डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 राममनोहर लोहिया महान् शिक्षाशास्त्री थे। उनका शिक्षा दर्शन, शिक्षाजगत की वर्तमान समस्याओं का समाधान करने में सक्षम एवं प्रासंगिक है, सही सिद्ध होती है।

अनुकरणीय विषयों की सम्भावना सुझाव

सुझाव करणीय कार्य

1. छात्रों को अपनी गौरवमयी प्राचीन संस्कृति से विज्ञ कराने हेतु प्रयास अति आवश्यक है। इसके भलीभॉति परिचित होने पर उनमें भारतीय होने का स्वाभिमान जाग्रत होगा। विद्या बल या वैभव में कम होने पर भी यदि वे अपने कर्तव्य का पालन करते हैं और अर्थ और काम को धर्म से श्रेष्ठ स्थान नहीं देते तो उनमें धन्यता का बोध होगा। यह भाव शिक्षा द्वारा, पाठ्यग्रन्थों तथा अध्यापकों के माध्यम से दृढ़ किया जाना चाहिए।

2. नैतिक शिक्षा प्रदान करने वाले प्रकरण हर स्तर की पुस्तकों में सम्मिलित किये जाने की अनिवार्य आवश्यकताहै। येन–केन–प्रकारेन धनोपार्जन करने वाले और उच्चपद प्राप्त करने वाले के उदाहरण न देकर, ईमानदारी का सरल नैतिक जीवन व्यतीत करके, परोपकार में जीवन लगाने वाले, दीनों की सेवा में जीवन उत्सर्ग करने वालों का उत्सर्ग बताने की आवश्यकता है। हर पाठ के अंत में उससे मिलने वाली शिक्षा को अंकित किया जाना तथा उसको ग्रहण करने की शक्यता हर व्यक्ति में सम्भव है।

3. नवयुवक में/छात्र में अपने से बड़े, अध्यापकों एवं दैवी शक्ति किसी के प्रति श्रद्धा की कमी है। स्नातक होने के पश्चात् ही मातृ देवोभव, पितृ देवोभव, अतिथि देवोभव का उपदेश देने की नहीं अपितु छात्र को प्रारम्भ से ही इन शिक्षाओं की आवश्यकता है। छात्रों को ऋषिऋण, पितृ ऋण, देव ऋण तथा समाज ऋण बोध कराने तथा उनके परिशोध की आवश्यकता का प्रतिपादन करने वाला पाठ हर स्तर के छात्र/छात्राओं की पाठ्य पुस्तकों में होने का दायित्व, शिक्षा पाठ्यक्रम स्वीकृत करने वाले विशेषज्ञों, लेखकों और अध्यापक को निभाना चाहिए।

शिक्षकों का सम्मान अभिभावकों को स्वयं करके, बच्चों में गुरू के प्रति श्रद्धा बढ़ाना अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

4. साम्प्रदायिकता की समस्या गम्भीर रूप ले रही है, उसको विभिन्न राजनैतिक दल अपने ढंग से जाने अनजाने बढ़ाते रहते हैं। छात्रों/नवयुवको को धर्म के सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराया जाय, वैशेषिक दर्शन ने जिस कार्य से अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति हो उसे धर्म कहा है। अभ्युदय का अर्थ सांसारिक उन्नति तथा निःश्रेयस की आत्मिक उन्नति है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण कहें हैं– घृतिः समा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः, धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशक धर्मलक्षणम्।।6/92, धृतिः: (धैर्य) क्षमा, दम (मन का निग्रह) अस्तेय (किसी की वस्तु न लेना) शौच (पवित्रता) इन्द्रिय निग्रह, धीः (बुद्धि) विद्या सत्य और अक्रोध। ये ऐसे धर्म है कि जिनमें किसी भी जाति या सम्प्रदाय को आपत्ति नहीं हो सकती। वास्तव में यहीं मनुष्य मात्र के स्वाभाविक धर्म है।

इनके अनुसार पूजापाठ विधि विधान उपासना के रूप है धर्म नहीं। इन्होंने धर्म का अर्थ, "कर्तब्य को पहिचानना और उसका पालन करना" जिसे सदाचार कहते हैं कहा है, धर्म और उपासना पद्धति में अन्तर है। छात्रों के मन में यह भाव शिक्षा द्वारा बैठाया जाना सभी सम्बन्धित जनों का है।

5. छात्रों में प्रारम्भ से ही भावना, कार्य एवं आचरण से बैठाये जाने तथा विकसित किये जाने की आवश्यकता है कि सभी प्राणी ब्रह्म के स्वरूप है, ईश्वर का अंश उनमें हैं। हम उसी परमपिता की संतान है। मेरे हित और दूसरे के हित में विरोध या टकराव नहीं है। परस्पर द्वन्द से नहीं सहयोग की भावना से सभी समृद्धि पा सकते हैं। भारत हमारा देश है, उनके प्रति हमारे कर्तव्य है, परन्तु वह विश्व का अंश है। पूरी वसुधा ही हमारा कुटुम्ब है। (वसुधैव कुटुम्बकम्) की भावना दृढ़ किये जाने के पाठ नीचे से ऊपर तक की शिक्षा में सम्मिलित होने चाहिए। विश्व में रक्तपात करने वाले विजेताओं के नहीं विश्व में एकता का पाठ पढ़ाने वालों का उत्कर्ष बताने की आवश्यकता है।

6. शिक्षार्थी/व्यक्ति के सामने जीवन का कोई लक्ष्य नहीं रहता। जीवन दर्शन उसके समक्ष नहीं जिसका अनुसरण उसे करना है, उसको पुरूषार्थ चतुष्ट्य (अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष) की शिक्षा दी जानी चाहिए। जीवन का अन्तिम लक्ष्य दुःख का आत्मिक नाश, मोक्ष अथवा आत्म–साक्षात्कार हैं। धर्म के पहचानने एवं पालन करने से अर्थ और काम की प्राप्ति आत्म–साक्षात्कार है। धर्म के पहचानने एवं पालन करने से अर्थ ओर काम की प्राप्ति भी होगी तथा अंतिम लक्ष्य की भी। मनुष्य जीवन यो ही खो देने की वस्तु नहीं, वासना पर नियन्त्रण करके पैर सेवा के माध्यम से हम समृद्धि और सुख शांति प्राप्त करते हुए आत्मसाक्षात्कार तक पहुंच सकते हैं।

7. आर्य बाहर से नहीं आये हमारे पूर्वज यहीं सप्तसिन्ध व देश के थे, और यही आर्य सभ्यता

को विकास मिला। हम मुगल या अंग्रेजों की तरह बाहर से नहीं आये। अंग्रेजी लेखकों के मध्य एशिया से आर्यो के भारत में आने के मत का लोकमान्य तिलक, अविनाश दास तथा सम्पूर्णानन्द पूरी तरह खंडन कर चुके है। सही स्थिति का वर्णन दृढ़ता के साथ इतिहास या अन्य ग्रन्थों में किये जाने की आवश्यकता हैं मातृभूमि के प्रति आदरभाव तथा देशसेवा हेतु समय देने का कर्तव्य बोध दिया जाना भी आवश्यक है।

8. योंग के आठ अंग है और उन्हें क्रम से पार करके ही जीवन का लक्ष्य मोक्ष कैवल्य आत्म–साक्षात्कार प्राप्त किा जा सकता है। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार हठयोग हैं यही रूकने की बात नहीं, इसके आगे धारणा, ध्यान, समाधि के सोपान है। आजकल केवल आसन सिखाने वाले योग के आचार्यों की धूम है, ये कुछ आसानों का प्रचार योग नाम से कर रहे हैं। सही योग साधना इनसे बहुत आगे की वस्तु है। परन्तु सम्भव है हम सभी इस मार्ग पर बढ़ सकते हैं, कलियुग में योग सम्भव नहीं कहने वालों का मत सहीं नहीं। गोरखनाथ, शंकराचार्य, नानक, कबीर, पलटूदास, अरविन्द आदि इसी कलियुग में ही हुए हैं। योग से ही वेद का सही अर्थ खुलता है। भारतीय दार्शनिक योगी थे। हमारे शरीर भी इस योग्य है कि योग साधना कर सकते हैं, यह भावना छात्रों में पैदा करनी चाहिए। ऐसा इन तीनों मनीषियों की अपेक्षा थी।

9. भारतीय दर्शनों का अध्ययन, पुरानी परिपाटी से हटकर विज्ञान के नवीनतम खोजों के परिवारों को देखने एवं दार्शनिक शब्दों की नयी निरूक्ति करने में संकोच नहीं करना चाहिए। विज्ञान का दर्शन से विरोध नहीं है। विज्ञान एक सीमित क्षेत्र में खोज करके निष्कर्ष निकालता है। अभी शास्त्रों का सम्मिलित अध्ययन दर्शन शास्त्र करता है। दर्शन के अध्यापकों को विज्ञान की भी जानकारी रखनी चाहिए। सूत्रकारों, वृत्ति या कारिका लिखने वालों के सामने विज्ञान का विकसित रूप नहीं था, अब है अतः उसका भी उपयोग किया जाना चाहिए। कला–सौन्दर्य की पहचान तथा उसके साथ तादात्म्य से दुःख की निवृत्ति एवं आनन्द की प्राप्ति सम्भव है। दर्शन को वाद–विवाद तक सीमित न रखकर वर्तमान युग के अनुरूप जीवन जीने का तथा अंन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त्र करने वाला अध्ययन क्षेत्र बनाये जाने की आवश्यकता इनके अनुसार है।

भविष्य में किये जा सकने वाले शोध विषय

1. आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 सम्पूर्णानन्द, डॉ0 राममनोहर के शिक्षा दर्शन। शैक्षिक विचारों का गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर अथवा महामना मदनमोहन मालवीय जी के शैक्षिक विचारों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

2. वेद भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा वेद भाष्यकार एवं दार्शनिक योगीराज अरविन्द के शिक्षा दर्शन का और योगी व दार्शनिक वेदज्ञ डॉ0 सम्पूर्णानन्द या आचार्य नरेन्द्र देव

अथवा सक्रिय करूणावादी डॉ0 राममनोहर लोहिया के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना उपयोगी तथा नये तथ्यों को प्रकट करने वाला होगा।

3. बुनियादी तालीम के जन्मदाता महात्मा गांधी तथा वर्धा योजना के अध्यक्ष डॉ0 जाकिर हुसैन के शैक्षिक विचारों एवं कृतित्व का, बुनियादी तालीम को पूरे प्रदेश में चालू करके चलाने वाले डॉ0 सम्पूर्णानन्द या शिक्षा समितियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले आचार्य नरेन्द्र देव, अथवा समता विद्यालय की कल्पना करने वाले, राम, कृष्ण, शिव की प्रासंगिकता को सार्वजनिक करने वाले रसिक तपस्वी डॉ0 लोहिया के शैक्षिक विचारों का एवं कृतित्व का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

4. समाजवाद के प्रबल समर्थक एवं काशी विद्यापीठ के प्राचार्य डॉ0 आचार्य नरेन्द्र देव के शैक्षिक विचारों का, समाजवाद के व्याख्याता एवं शिक्षामंत्री रहे डॉ0 सम्पूर्णानन्द के शैक्षिक विचारों का, एवं भारतीय भूमि में समाजवाद के कुशल संचालक डॉ0 लोहिया के शैक्षिक विचारों का लोकनायक जयप्रकाश नारायण के समाजवादी एवं शैक्षिक विचारों मे तुलनात्मक अध्ययन कुछ नये तथ्यों का उद्घाटन करने वाला होगा।

5. महात्मा गांधी के विचारों के अधिकृत व्याख्याता माने जाने वाले शिक्षा विषय ग्रन्थ लिखने वाले गुजरात विद्यापीठ के प्राचार्य रहे, श्री किशोरलाल मधुबाला और इन तीनों शिक्षा शास्त्रियों में से किसी के भी शैक्षिक विचारों का तुलनात्क अध्ययन कुछ नये तथ्यों का उद्घाटन करने वाला होगा। तथा ज्ञानवर्धक शोध विषय बन सकता है।

6. महाराष्ट्र के यशस्वी शिक्षाविद् भाऊराम पाटिल तथा शिक्षक से गुजरात विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा वाद में विश्वभारती (शांतिनिकेतन) विश्वविद्यालय के कुलपति रहे श्री उमाशंकर जोशी के एवं शिक्षक से बने शिक्षामंत्री एवं काशी विद्यापीठ के कुलाधिपति डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 लोहिया के शैक्षिक विचारों का तुलनात्क अध्ययन उपयोगी कार्य होगा।

7. डॉ0 सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 राममनोहर लोहिया मातृभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक व सिंद्ध हस्त उच्च कोटि के ग्रन्थ प्रवेता रहे हैं। उनकी साहित्यिक कृतियों पर शोध, वर्तमान ज्ञान में अभिवृद्धि करने वाला कार्य होगा।

8. आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 राममनोहर लोहिया, डॉ0 सम्पूर्णानन्द देश के मान्य दार्शनिक रहे हैं, उनके दर्शन ग्रन्थों का जीवन परक अध्ययन भारतीय दर्शन के मनीषियों के मान्य ग्रन्थों में किया जाना चिरापेक्षित कार्य की पूर्ति होगा।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द शिक्षाशास्त्र के उपाधि धारक शिक्षक, प्रधानाचार्य एवं काशी विद्यापीठ के प्रोफेसर के अनुभवी शिक्षामंत्री के रूप में शिक्षा के हर क्षेत्र प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न योजनाओं के प्रणेता तथा

उनको गति देने वाले थे। उनका क्षेत्र पूरा प्रदेश था, किन्तु उनको बेसिक शिक्षा को पूरे प्रदेश में लागू करने, माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन, अध्यापकों को उचित वेतन देकर समाज में सम्मान दिलाने का कार्य, संस्कृत शिक्षा की उपाधियों को मान्यता दिलाने का कार्य, शिक्षा विभाग से शिक्षा पत्रिका का प्रकाशन, उच्च शिक्षा को हिन्दी माध्यम से दिये जाने की मान्य पुस्तकों का लेखन तथा विदेशी भाषा की पुस्तकों का अनुवाद कराकर सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराने हेतु हिन्दी समिति की स्थापना, केंद्रीय सरकार के लिए तथा दूसरे प्रदेशों के लिए उदा0 बने थे। इन क्षेत्रों में उत्तर प्रदेश प्रथम स्थान एवं नेतृत्व प्रदान करने का आधार डॉ0 सम्पूर्णानन्द का प्रायोगिक अनुभूतिपरक शिक्षादर्शन था। उनके शिक्षा विषयक लेख, अब भी शाश्वत मूल्य रखते है। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना उनके जैसे विद्वान प्रशासक के उर्वर मस्तिष्क की उपज थी। संस्कृत भाषा को विश्व में प्रतिष्ठा देने का उनका प्रथम चरण था। दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय का सम्बन्ध उन्हीं की प्रेरणा से उन्हीं के सभापतित्व में हुए सम्मेलन से लिया गया था। अपने सहयोगी एवं मुख्यमंत्री रहे गोविन्द बल्लभ पंत के नाम से पंतनगर में कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना, उनका दूसरा अद्वितीय कार्य था। यही विचारणीय है कि एक विद्यालय स्थापित करने वाले (बाद में विश्वभारती नाम दिया गया और भारत स्वतन्त्रता के बाद उसको विश्वविद्यालय की मान्यता प्रदान की गई) कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर, काशी विश्वविद्यालय की स्थापना करने वाले महामना मालवीय, जामिया मिलिया के जन्म से प्रौढ़ावस्था तक पहुंचाने वाले डॉ0 जाकिर हुसैन, के शिक्षा विचारों पर अध्ययन कार्य किये गये वहीं पूरे प्रदेश में शिक्षा को गति विकास एवं उन्नति देने वाले, सामान्य शिक्षा देने वाले मेरठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय के अलावा दो विशिष्ट विश्वविद्यालयों संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, कृषि विश्वविद्यालय पंतनगर की स्थापना करने वाले, शिक्षा शास्त्र के प्रशिक्षण को व्यवस्थित एवं प्रगति देने वाले व शोध करने वाले गर्वनमेन्ट सेन्ट्रल पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट तथा असामान्य बच्चों की सहायता देने हेतु तथा छात्रों को मनोवैज्ञानिक सहायता देने हेतु मनोविज्ञान शाला की स्थापना करने वाले शिक्षा शास्त्री के शैक्षिक विचारों का अध्ययन न करना एक बड़ी कमी थी।

ठीक इसी प्रकार आचार्य नरेन्द्र देव जिन्होंने अपनी ज्ञानवारि से काशी विद्यापीठ को सिंचित किया था। वे कुशल वक्ता के साथ–साथ शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र के महान तपस्वी एवं मर्मज्ञ विचारक थे। एक संयोग था जिसने इन महान शिक्षाशास्त्री को राजनीति के गलियारें में ढकेला। भाषा और भाव का मणिकांचन संयोग उनकी वक्तृता और लेखनी में था। आज की अपसंस्कृतिग्रस्त परिस्थिति में यदि आचार्य जी की उन चेतावनियों पर ध्यान दिया गया होता जो उन्होंने स्वाधीनता प्राप्ति के बाद दी थी और उस संस्कृति और समाज की रचना के लिए संकल्प लिया गया होता, जिसको उन्होंने वैचारिक आधार दिया था, तो हमें अपने भीतर यह खोखलापन

महसूस नहीं होता जो अब हो रहा है। 'सर्वमित्र' आचार्य जी में वास्तविकता पहचानने की अद्भूत शक्ति थी। आचार्य जी आजीवन शिक्षक रहे और वे शिक्षार्थी समुदाय की आकांक्षाओं का स्पन्दन निरन्तर अपने भीतर अनुभव करते रहे। इसीलिए उनके विचार शिलीकृत नहीं रहे। वे अपने सोचने के ढंग में परिष्कार करते रहे। 'जनशिक्षा' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने सतही प्रौढ़ साक्षरता के अभियान पर बड़ी गहरी चोट करते हुए कहा– "साक्षर हो जाने पर कोई साधारण किस्से कहानियां पढ़ सकता है, किन्तु वह शिक्षित नहीं हो सकता। ऐसी (सतही) साक्षरता से व्यावसायिक वर्ग अनुचित लाभ उठाते है। वे ऐसी शिक्षा चाहते थे जो शिक्षार्थी के भीतर विवेचनात्मक शक्ति एवं आत्मनिर्माण की क्षमता का विकास करें। आचार्य एवं डॉ0 लोहिया ने ज़िस संस्कृति की अवधारण की थी, उसकी भित्ति–मार्क्स–मात्र नहीं हैं, बुद्ध और कृष्ण भी है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि समाजवाद का सवाल केवल रोटी का सवाल नहीं है, समाजवाद मानव–स्वतन्त्रता की कुंजी है।"

आचार्य जी भारतीय समाजवाद के जनक माने जाते रंहे हैं। इसीलिए उनके शैक्षिक विचार भी इस समाज की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं। उन्होंने विद्यार्थियों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए धार्मिक शिक्षा को आवश्यक बताया है। उन्होंने बताया कि शिक्षा के द्वारा विश्व–बन्धुत्व को बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने विद्यार्थियों को स्वालम्बी बनाने पर जोर दिया। आचार्य जी ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा रखने को कहा। उन्होंने अध्यापक के महत्व को स्वीकार किया और संस्कृत भाषा के महत्व को भी बताया तथा आत्मानुशासन को भी स्वीकारा।

देखने में द्वन्द्व से घिरे पर आचार में स्पष्ट और कठोर निर्णय लेने वाले आचार्य जी गांधी जी की प्रतिमूर्ति थे,, अपनी शीतल तेजस्विता में। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने समय की धारदार तलवार पर प्राण साधे हुए आचार्य जी आजीवन यात्रा करते रहे। न कभी विचलित हुए, न शिथिल। साथ ही वे कभी दम्भी भी नहीं हुए। नयी क्रान्ति के दावेदार नहीं हुए। शायद इसी से लोगों को वे उतने आक्रामक नहीं लगते। परन्तु जब हम उनके विचार और आचार को एक साथ रखकर जॉचते है तो लगता है कि इस तरह निरन्तर एक के बाद दूसरी अग्निपरीक्षा में तपकर निकला हुआ सोना कोई दूसरा प्रमाण नहीं मांगता, आग ही उसका प्रमाण है। आचार्य जी के विचार उनके जीवन थे। ऐसे विचारक को आक्रामक होने की जरूरत नहीं पड़ती। वह घिसे हुए चंदन की तरह अपनी उपस्थिति जतला देता है।

आचार्य जी विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपति रहे, तथा काशी विद्यापीठ में शिक्षा तथा शिक्षण का कार्य किया एवं अध्यक्ष के पद पर भी सुशोभित रहे। उनकी भूमिका आज भी प्रासंगिक है, और उसके प्रति सजग रहना हमारा नैतिक दायित्व। उस दायित्व की पूरी निष्कृति न भी हो

सके तो आंशिक निष्कृति ही सही। पर हम यह अनुभव करते हैं कि आज की स्थिति में स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना है और स्वाधीन चेताओं के विचार सामने रखने हैं। इसलिए नहीं कि उसका अंधानुकरण करें, बल्कि इसलिए कि स्वतन्त्र विचार की सरणि कैसी होती है और कैसे उसकी चर्चा आज के संदर्भ में नयी विचारसरणि के उद्भव में सहायक हो सकती है। इसका अनुसंधान करना हमारा नैतिक कर्तव्य होता है।

इसके अतिरिक्त आचार्य जी को देश की चोटी के विद्वत मंडली के सम्पर्क, विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं में इनके कार्य, गांधी जी, डॉ0 सम्पूर्णानन्द, डॉ0 पी0 मुकर्जी, चेलापति राव, बी0वी0केरकर, जयदेव सिंह, श्रीप्रकाश, रामवृक्ष बेनीपुरी, जगन्नाथ उपाध्याय ऐसी महान विभूतियों से उनके सम्पर्क तथा पत्र–व्यवहार से अग्रिम अध्ययन के लिए समग्र सामग्री प्राप्त की जा सकती है। अग्रिम अध्ययन में आचार्य जी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों की तुलना सर टी0पी0 नन, जेम्स रॉस, जॉन डीवी, ऐसे विदेशी दार्शनिकों से तथा गांधी जी, डॉ0 जाकिर हुसैन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द ऐसे स्वदेशी महान् शिक्षा दार्शनिकों से की जा सकती है।

डॉ0 राममनोहर लोहिया यद्यपि किसी विद्यालय के शिक्षक, प्राचार्य अथवा किसी भी विश्वविद्यालय के कुलपति नहीं रहें, आजीवन जीवन संघर्ष से जूझने वाले समाजवादी विचारक थे। फिर भी उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक लेखों में उनके मन की शैक्षिक सोच को देखा जा सकता है। वर्णमाला, भाषा और शिक्षा, विश्वविद्यालयों में खोज–कार्य, भारतीय इतिहास लेखन, हिन्दी, अंग्रेजी और देशी भाषाएं, ये ऐसे सोपान हैं, जो शैक्षिक व्यक्तित्व को एक नवीन आयाम प्रदान करते हैं। लोहिया का स्वतन्त्र चिंतन, कथनी और करनी की एकता का सिद्धान्त। उन्होंने जो लक्ष्य बनाया था सम्भव है बराबरी स्थापित करने का, चौखम्भा राज स्थापित करने का और विश्व–सरकार की कल्पना को साकार करने का, उसकी ओर वे निरन्तर बढ़ते ही रहते थे। इससे उनका एक युग दृष्टा, मनस्वीं मार्गदर्शक सहगामी का स्वरूप दिखाई पड़ता है।

संसार में जितने भी समाजवादी आन्दोलन थे, उनके न टिक पाने का एक मुख्य कारण यह था कि वे एकांगी थे, वे स्थानीय संवेदना के साथ विश्व संवेदना को साथ लेकर चलने में असंतोष थे। डॉ0 लोहिया की समाजवादी दृष्टि इस अर्थ में पूर्ण और समग्रतावादी थी। इसलिए वह पूरी मानव–जाति के सुख–दुख के साथ भारत के सुख–दुख को जोड़कर देखते थे। यह लक्षण तो अन्य चिंतकों में भी मिलता है, लेकिन उनके पास व्यापक विश्वबन्धुत्व की वह दृष्टि नहीं है, जो गांधी जी या लोहिया के पास थी। यही कारण है कि सतही विश्व–भावना को वह 'विश्वयारी' का नाम देते थे और पूरी मानवता की समग्र दृष्टि को वह विश्वबन्धुत्व का नाम देते थे। डॉ0 लोहिया की इसी दृष्टि से 'सप्तक्रांति' की बात निकलती है, इसी चिंतन–प्रक्रिया से विश्व–नागरिकता तथा विश्व–सरकार की भावना पोषित होती है। उन्हीं भावनाओं के आधार पर

वह भारत में प्रत्येक संघर्ष को विश्व का एक अंग मानकर चलाते थे।

भारत की राजनीति में बदलाव लाने की पहल डॉ0 लोहिया ने ही की थी। आदर्श को बांझपन से मुक्त करके, उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए सारा देश उनका ऋणी रहेगा। उनके चिंतन में देशी मन:स्थिति के साथ–साथ वर्तमन परिस्थितियों के बुनियादी कर्तव्यों की सर्वथा मौलिक शक्ति दिखाई देती है। वह सुभाषित बोलने में नहीं, बल्कि अपनी कथनी को करनी में बदलने की रूचि रखते थे। उनके कार्यक्रमों में सप्तक्रांति के अलावा भूसेना और अन्न सेना बनाने की बात है, अंग्रेजी हटाने की बात है, दाम बांधने की है, आमदनी और खर्च पर सीमा लगाने की बात है। नारे 'बनाने' पर है, 'हटाने' पर है, 'लगाने' पर है।

भारतीय राजनीति में डॉ0 राममनोहर लोहिया एक मात्र ऐसे चिंतक नेता हुए हैं। जिन्होंने अपने अनुयायियों को विचार और कर्म का एक खास ढंग सिखाया। मूल में जाकर सोचने का तरीका सिखाया। विचार के अनुसार आचार करने की शिक्षा दी। समाज के सबसे उपेक्षित और कमजोर इंसान को केन्द्र बिन्दु बनाकर करूणा और क्रोध के सहारे राजनीति चलाने का मार्ग बताया। समाजवादी होते हुए भी लोहिया गांधी के विकासोन्मुख अनुचर थे। उन्होंने गांधी के क्रान्तिकारी साधनों को काल और आवश्यकता के अनुरूप प्रगत और विकसित बनाया। चरखे की जगह छोटी मशीन को दी। ग्रामराज की जगह चौखम्भाराज की कल्पना की। सत्ता से दूर रहकर सत्ताधारियों पर अंकुश रखने वाले व्यक्तियों की गांधी ने कल्पना की थी। लोहिया ने सत्ताविहीन अखण्ड क्रान्तिकारिता की कल्पना की। हरिजन, शूद्र, आदिवासी, औरत और अल्पसंख्यक पिछड़ों को ऊपर उठाने का लोहिया का तरीका गांधी से कई गुना अधिक क्रान्तिकारी रहा है। आज हमारे मध्य प्रत्यक्ष न उपस्थित रहने पर भी वे विचारों के रूप में मौजूद है।

आज की रानैतिक उथल–पुथल में लोहिया जी की प्रासंगिकता सर्वाधिक है, क्योंकि उनका स्वदेशी मन जिस कर्तव्य–बोध से बंधा था। उसमें सत्ता मोह की अपेक्षा जनशक्ति और जन की इच्छा–शक्ति को संगठित करने के प्रति विशेष आग्रह है। आज की राजनीति यदि केवल सत्ताभिमुख रहेगी और जन–इच्छा तथा जनशक्ति पर आधारित नहीं रहेगी तो हमारे मौलिक अधिकारों की रक्षा नहीं हो सकेगी। डॉ0 लोहिया की प्रासंगिकता इसलिए भी है कि उनकी समाजवादी विचारधारा समस्याओं का केवल विश्लेषण ही नहीं करती, उनका निदान भी प्रस्तुत करती है। उनकी विचारधारा 'कर्म' के साम पर चढ़कर तेज होने वाली विचारधारा है। उसमें आग्रह है, दुराग्रह नहीं। आज के बिखराव वाले वातावरण में डॉ0 लोहिया के विचार ही देश और समाज में एकसूत्रता ला सकते हैं, क्योंकि उनके विचारों में चिंतन की गहराई के साथ ही कर्म की ऊर्जा बंद करने की क्षमता है।

इन महान् दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारकों के शिक्षा सम्बन्धी ग्रन्थ लेखों एवं उनके

रचनात्मक कार्यों का यह अध्ययन उक्त कमी की पूर्ति करने वाला तथा अद्यतन ज्ञान में वृद्धि करने वाला है। इन महान दार्शनिकों एवं शैक्षिक विचारकों के शैक्षिक विचारों का किसी में भी न तो स्वतन्त्र रूप से और न परस्पर तथा न तो किसी अन्य के साथ तुलना करके अध्ययन किया था। इन राजनेताओं एवं शैक्षिक तथा समाजवादी मनीषियों को अर्पित किये गये अभिनन्दन ग्रन्थों तथा स्मृति अंकों में भी उनके ग्रन्थों के पूरे नाम पता व विवरण तक नहीं मिलता। विभिन्न स्रोतों से ज्ञात करके उनके विभिन्न ग्रन्थों का अध्ययन व विश्लेषण करके उनके कृतित्व का तथा उनसे प्रस्फुटित शिक्षा दर्शन का, तथा उनके शैक्षिक विचारों की परस्पर तुलना अनुसंधानकर्ता का मौलिक कार्य है।

समाजवाद की त्रिवेणी के एक प्रमुख सोपान डॉ0 सम्पूर्णानन्द के द्वारा अपने अमरग्रन्थ चिहिलास की समाप्ति ऋग्वेद की अन्तिम ऋचा से की गयी है। इस शोध प्रबन्ध की समाप्ति भी उसी वेदमंत्र से करना श्रेयस्कर मानकर वह अंकित किया जाता है।

समानी व आकृतिः, समानाः हृदयानित वः ।

समानवस्तु वो मनो, यथा वः सुसहासति।।

(तुम्हारा कर्म समान हो, तुम्हारे हृदय और मन भी समान हो, तुम समान गति वाले होकर सब प्रकार सुसंगठित हो)

ऊँ असतो मां सद्गमय, तमसो मां ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मां अमृतं गमय।

ऊँ शांतिः शांतिः शांतिः।।

परिशिष्ट

परिशिष्ट–क[1]

श्री सम्पूर्णानंद के व्यक्तित्व के षोडश आयाम

परिशिष्ट—क[2]
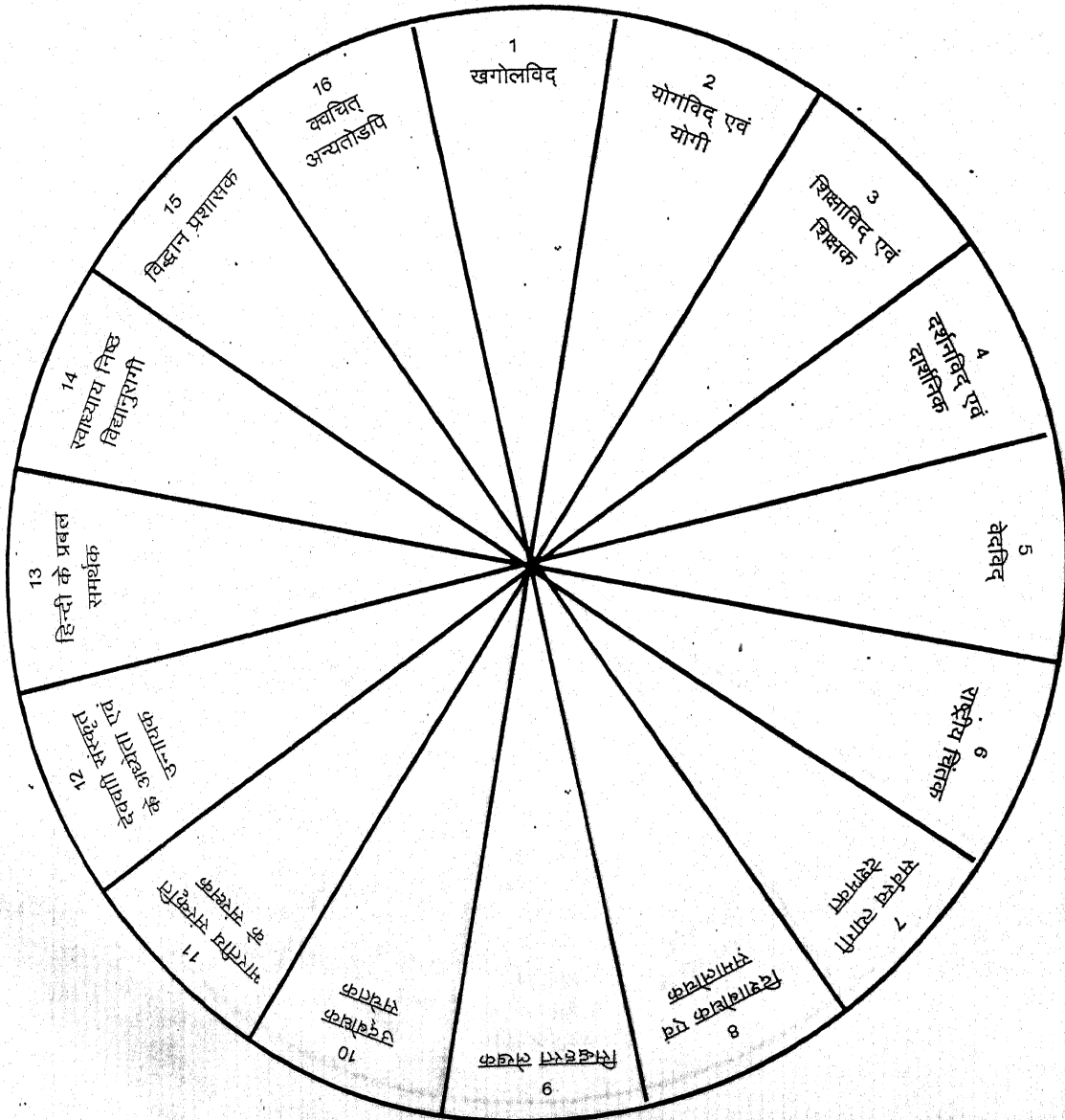
आचार्य नरेन्द्र देव के व्यक्तित्व के षोडश आयाम

परिशिष्ट–ख[1]
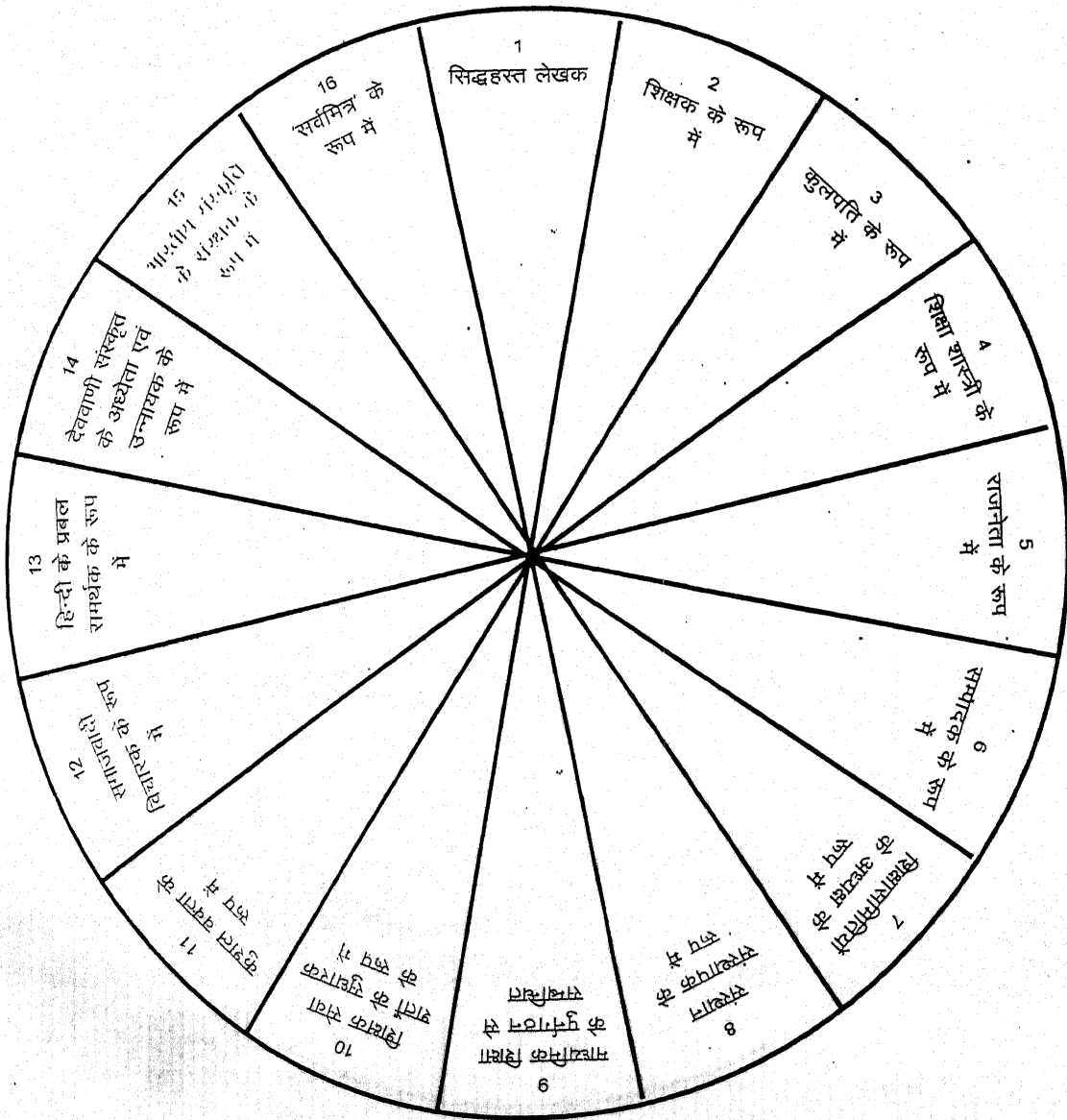
श्री सम्पूर्णानन्द के द्वारा लिखित पुस्तकें

क्र0सं0	पुस्तक का नाम	प्रकाशन का वर्ष
1	धर्मवीर गांधी	1914ई0
2.	महाराजा छत्रसाल	1916ई0
3.	भौतिक विज्ञान	1616ई0
4.	ज्योतिर्विनोद	1918ई0
5.	भारत के देशी राष्ट्र	1918ई0
6.	चेतसिंह और काशी का विद्रोह	1919ई0
7.	सम्राट हर्षवर्धन	1920ई0
8.	देशबन्धु चितरंजनदास	1920ई0
9.	महादनी सिंधिया	1921ई0
10.	चीन की राज्यक्रान्ति	1921ई0
11.	अकालियों का आदर्श सत्याग्रह	1922ई0
12.	भारतीय सृष्टिक्रम विचार	1941ई0
13.	मिश्र की स्वाधीनता	1923ई0
14.	सम्राट अशोक	1924ई0
15.	अन्तर्राष्ट्रीय विधान	1924ई0
16.	When weare in power	1930ई0
17.	समाजवाद	1936ई0
18.	साम्यवाद का बिगुल	1940ई0
19.	व्यक्ति और राज	1940ई0
20.	आर्यों का आदिदेश	1940ई0
21.	जीवन और दर्शन	1941ई0
22.	कास्मोगोमी इन इंडियन याट	1942ई0
23.	ब्राम्हण सावधान	1944ई0
24.	चिहिलास	1944ई0
25.	गणेश	1944ई0
26.	ऋग्वेदीय पुरूषसूक्त	1947ई0
27.	भाषा की शक्ति और अन्य निबंध	1950ई0

28.	हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	1951ई0
29.	पृथ्वी से सप्तर्षि मण्डल तक	1953ई0
30.	अर्थवेदीय ब्रात्यकाण्ड	1955ई0
31.	भारतीय बुद्धिजीवी	1957ई0
32.	Trial of our democracy	1957ई0
33.	Thoughts on educational some allied problems	1959ई0
34.	अलखनंदा मंदाकिनी के दो तीर्थ	1959ई0
35.	स्फुटविचार	1959ई0
36.	अंतरिक्षयात्रा	1959ई0
37.	Random Thoughts	1960ई0
38.	भारतीय समाजवाद आर्थिक संयोजन और विक्रेन्दीकरण	1960ई0
39.	समिधा	1960ई0
40.	कुछ स्मृतियों और कुछ स्फुट विचार	1961ई0
41.	मेमोआयर्स एण्ड रिफलेक्सन्स	1962ई0
42.	इवोल्यूसन ऑफ दि हिंदू पैश्यियन	1963ई0
43.	घाघ और भड्डरी	1963ई0
44.	हिंदू देव परिवार का विकास	1964ई0
45.	योगदर्शन	1965ई0
46.	गृहनक्षत्र	1965ई0
47.	वेदमंत्रों के प्रकाश में	1966ई0
48.	स्फुट निबंध	1967ई0
49.	वेदार्थ प्रवेशिका	1969ई0
50.	गगन गुफा	1969ई0
51.	अधूरी क्रान्ति	1970ई0
52.	चरितचर्चा– जीवन दर्शन	1976ई0

परिशिष्ट–ख–2

आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा लिखित रचनाएँ, पैम्फलेट, सम्पादन एवं निबन्ध

क्र0सं0	पुस्तक का नाम	प्रकाशन का वर्ष
1	राष्ट्रीयता और समाजवाद	(ज्ञान मण्डल, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1949ई0)
2.	Socialism and the national Revolution	(Bombay, 1946)
3.	बौद्ध धर्म दर्शन(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथम संस्करण, 1956, पुर्नमुद्रित, 1971)	
4.	वसुबन्धुकृत अभिधर्मकोश न अनुवाद	(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 2 जिल्द प्रकाशित, शेष प्रकाशाधीन)
5.	Towards Socialist Socity	(Delhi, 1979)

पैम्फलेट

1. समाजवाद : लक्ष्य तथा साधन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1938
2. राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा और भारतीय कम्युनिष्ट, लखनऊ, 1940
3. किसानों का सवाल, मार्च 1947
4. मार्क्सवाद और सोशलिस्ट पार्टी, प्रथम संस्करण, जुलाई, 1951
5. अध्यक्षीय भाषण, प्रजासोशलिस्ट पार्टी, द्वितीय राष्ट्रीय सम्मेलन, गया, 26 सितम्बर, 1955
6. The Indian struggle, Bombay
7. Draft thesis for the fourth conference of the congress socialist party, 1938
8. The comonman and the Congress, Tamilnad, Madras
9. Draft policy, statement presented to the,
   Second annual conference of the praja socialist party, Gaya, 1955

सम्पादन

विद्यापीठ पत्रिका	(त्रैमासिक, काशी विद्यापीठ)
संघर्ष	(साप्ताहिक, लखनऊ)
समाज	(साप्ताहिक, वाराणसी)
जनवाणी	(मासिक, वाराणसी)
समाज	(त्रैमासिक, वाराणसी)

आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा लिखित निबंधों की सूची

विद्यापीठ पत्रिका (त्रैमसिक) में प्रकाशित लेख–

1. बौद्ध संस्कृत साहित्य का इतिहास, विद्यापीठ (1,1), पृ0 52–66
2. सोवियत रूस की एशिया नीति, विद्यापीठ (1–4), पृ0 455–71
3. बौद्धों का त्रिकायवाद, विद्यापीठ (2,9), पृ0 31–50

4. विद्यार्थियों में स्वावलम्बन का आंदोलन, विद्यापीठ, (2,9), पृ0 106–111 (टिप्पणी)
5. ब्रिटिश मजदूर सरकार और भारत, विद्यापीठ, (2,9), पृ0 114–120
6. मौलिक अधिकार समिति की रिपोर्ट, विद्यापीठ, (2,4), पृ0 473–80
7. समाधि अर्थात शमथयान, विद्यापीठ, (3,1), पृ0 16–45
8. समाधि अर्थात् शमथयान, कसिण निर्देश, विद्यापीठ, (4,1)

'जनवाणी' में प्रकाशित लेख–टिप्पणियाँ–

9. "पूंजीवादी समाज और प्रेस", वर्ष 1, संख्या 1, दिसम्बर, 46
10. "पेरिस का शांति सम्मेलन', वर्ष 1, संख्या 1, दिसम्बर, 46
11. "जर्मन राजनीति की दिशा", वर्ष 1, संख्या 1, दिसम्बर, 46
12. "आरिद्रया", वर्ष 1, संख्या 1, दिसम्बर, 46
13. "हमारा आदर्श और उद्देदश्य", वर्ष 1, संख्या 1, दिसम्बर, 46
14. "सत्याग्रह और प्रजातंत्र", वर्ष 1, संख्या 1, दिसम्बर, 46
15. "मार्क्स और नियतिवाद", वर्ष 1, संख्या 2, जनवरी, 47
16. "ब्रिटिश साम्राज्य रक्षा की प्रस्तावित सैनिक नीति", वर्ष 1, संख्या 2, जनवरी, 47
17. "विद्यार्थियों का राजनीति में स्थान", वर्ष 1, संख्या 2, जनवरी, 47
18. "समाजवादी क्रान्ति की रूपरेखा", वर्ष 1, संख्या 2, जनवरी, 47
19. "प्रजातंत्र सच्चे समाजवाद का प्राण है", वर्ष 1, संख्या 3, फरवरी, 47
20. "इराक के राजनीतिक दल और उनकी राज़नीतिक स्थिति", वर्ष 1, संख्या 4, मार्च, 47
21. "कांग्रेस किधर", वर्ष 1, संख्या 5, अप्रैल, 47
22. "योग्य शिक्षकों की कमी", वर्ष 1, संख्या 6, मई, 47
23. "एशियाई सम्मेलन", वर्ष 1, संख्या 4, मार्च, 47
24. "अमेरिका का नया साम्राज्यवाद", वर्ष 2, संख्या 1, जून, 47
25. "इटली के कम्युनिष्टों की अवसरवादिता", वर्ष 2, संख्या 1, जून, 47
26. "आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का प्रस्ताव", वर्ष 2, संख्या 1, जून, 47
27. "विचारकों के सम्मुख नयी समस्या", वर्ष 2, संख्या 2, सितम्बर, 47
28. "महात्मा जी को श्रद्धांजलि", (1,2), वर्ष 2, संख्या 1, मार्च, 48
29. "मेरे संस्मरण", वर्ष 2, संख्या 3, सितम्बर, 48
30. "प्रगतिशील साहित्य", वर्ष 2, संख्या 3, अक्टूबर, 48
31. "जनशिक्षा", वर्ष 2, संख्या 5, दिसम्बर, 48
32. "संस्कृत वाड्.मय का महत्व और उसकी शिक्षा", वर्ष 3, संख्या 5, फरवरी, 49

33. "गांव पंचायतों की स्वतन्त्रता", वर्ष 3, संख्या 6, नवम्बर, 49

34. "विविधता में एकता", वर्ष 4, संख्या 7, मई, 50

35. मार्क्सवाद और सत्याग्रह", वर्ष 4, संख्या 8, जुलाई, 50

36. "जनतांत्रिक समाजवाद ही क्यों?", वर्ष 4, संख्या 8, अगस्त, 50

37. "क्रान्ति और देश की वर्तमान स्थिति", वर्ष 4, संख्या 8, सितम्बर, 50

38. "भारत के पुनरूत्थान में अंग्रेजी राज्य की देन", (विचार गोष्ठी, वर्ष 4, संख्या 8, अक्टूबर, 50

39. "भारतेन्दु जयंती," (रिपोर्ट), वर्ष 4, संख्या 8, अक्टूबर, 50

40. "धार्मिक आन्दोलनो में एकता का आधार", वर्ष 5, संख्या 9, जनवरी, 51

41. "समष्टि और व्यक्ति", वर्ष 5, संख्या 9, मई, 51

42. "अरूणा जी का मार्क्सवाद", वर्ष 5, संख्या 9, जून, 51

43. "स्याम और वर्मा के कुछ संस्मरण", वर्ष 5, संख्या 10, सितम्बर, 51

44. "सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का प्रश्न", वर्ष 5, संख्या 10, सितम्बर, 51

45. "हमारी शिक्षा सम्बन्धी समस्याएँ", वर्ष 5, संख्या 10, अक्टूबर , 51

'संघर्ष' (साप्ताहिक, लखनऊ) में प्रकाशित कुछ निबन्ध

46. "संसार में दो खेमे हैं", 17 जनवरी, 1938

47. "कांग्रेस समाजवादी कान्फ्रेंस", 11 अप्रैल, 1938

48. हमारी वर्तमान राजनीति के प्रवर्तक लोकमान्य तिलक", 8 अगस्त, 1938

49. "समाज का बदलता हुआ स्वरूप", 12 सितम्बर, 1938

50. शोषितों का युद्ध क्रान्ति से ही सफल होगा" 19 सितम्बर, 1938

51. "आर्थिक रचना ही सामाजिक भवन की बुनियाद है", 26 सितम्बर, 1938

52. "सामाजिक विचारपुंज पर आर्थिक रचना का नियंत्रण होता है", 3 अक्टूबर, 1938

53. "नये समाज का जन्म क्रान्ति के द्वारा ही होता है", 3 अक्टूबर, 1938

54. "वर्ग संघर्ष की चरम सीमा ही क्रान्ति है", 17 अक्टूबर, 1938

55. "पूंजीवादी वर्ग वर्तमान युग में प्रतिगामी बन गया है", 24 अक्टूबर, 1938

56. "कांग्रेस के भीतर दक्षिणपंथी कौन है", 8 अप्रैल, 1939

57. "किसान राष्ट्रीय युद्ध में कांग्रेस की सहायता करें", 16 अप्रैल, 1939

58. "खेतिहर मजदूरों का फर्ज दूसरे किसानों के साथ चलता है", 23 अप्रैल, 1939

59. "समूचा हिन्दुस्तान एक और अखण्ड है", 8 जून, 1939

60. हमारी आजमाइश का वक्त आ गया है", 16 सितम्बर, 1939

61. "आजाद हिन्दुस्तान ही सहयोग के मसले पर फैसला करेगा", 8 अक्टूबर, 1939
62. "जंगे आजादी के लिए तैयार रहिये", 19 अक्टूबर, 1939
63. "स्वतन्त्रता दिवस को सफल बनाए", 15 जनवरी, 1940
64. "आजादी की अगली लड़ाई और वामपक्ष की पार्टियाँ", 8 अप्रैल, 1940
65. " यह हिन्दुस्तानियों की परीक्षा की घड़ी है", 15 अप्रैल, 1940
66. "पाकिस्तान की योजना देश के लिए आत्म–घातक है", 17 जून, 1940
67. "शिक्षा संस्थाओं में फैसिस्ट अनुशासन बर्दाश्त नहीं", 2 दिसम्बर, 1940
68. "सोशलिस्ट पार्टी की नीति और कार्यक्रम", 7 जुलाई, 1949
69. "15 अगस्त को समाज के नये व्यापक आधार की घोषणा हो", 14 जुलाई, 1949
70. "प्रजातांत्रिक या सर्वाधिकारवादी राज्य", 14 जुलाई, 1949
71. "सोशलिस्ट पार्टी 3 जून की योजना पर तटस्थ नहीं रहेगी", 4 अगस्त 1947
72. "नये दिल दिमाग के नौजवानों पर ही सामाजिक क्रांति निर्भर", 29 सितम्बर, 1947
73. "दोहरी हुकूमत और प्रजातंत्र असंगत", 5 अक्टूबर, 1947
74. "छात्रों को आंदोलन बंद करने की सलाह", 12 अक्टूबर, 1947
75. "कांग्रेस के अंदर सोशलिस्ट पार्टी का जन्म क्यों?", 23 नवम्बर, 1947 ।

Select Articles-

"The Task before us", Congress Socialist, 1934

"Japanese imperialism and the Kuomintong", Congress Socialist, 1936

"Communism in China", Congress Socialist, March 5, 1938

"Lesson of the Congress". Congress Socialist. March 5, 1938

"Kisan Comes of age". April 16-23, 1939.

परिशिष्ट–ख–3

श्री राममनोहर लोहिया के द्वारा लिखित पुस्तकें

1. इतिहास चक्र, (डॉ0 लोहिया की अत्यन्त विचारोत्तेजक कृति का पुर्नमुद्रित संस्करण। Wheel of History का हिन्दी अनुवाद)
2. भारत विभाजन के गुनहगार, (भारत की आजादी के साथ जुड़े दुःखद प्रसंग–भारत के विभाजन के पीछे कई तथ्यपूर्ण घटनाओं का ब्योरा)।
3. अर्थशास्त्र, मार्क्स के आगे, (अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में डॉ0 लोहिया की शोधपूर्ण कृति)।
4. भारतमाता : धरतीमाता, (डॉ0 लोहिया के सांस्कृतिक लेख)।
5. भारत के शासक, (डॉ0 लोहिया की रचनाओं और भाषणों का अनुपम संग्रह, जिसमें समाजवाद और उनके राजनीतिक सिद्धान्तों का विषद् वर्णन है।)
6. समता और सम्पन्नता, (डॉ0 लोहिया के जीवन के अंतिम वर्षों में लिखे गये उनके लेखों व भाषणों का ऐसा संग्रह जो उनके जीवन व्यापी सोच को प्रकाशित करता है।)
7. हिन्दू बनाम हिन्दू, (भारतीय चिंतन में साम्प्रदायिकता पर नितान्त मौलिक और राष्ट्रीय मुक्तधारा से जोड़ती हुई लेखक की विलक्षण प्रतिभा की परिचायक यह पुस्तक है।)
8. जंगजू आगे बढ़ो, (अगस्त 1942 में कलकत्ता से भूमिगत हालत में प्रकाशित हुई)
9. मैं आजाद हूँ, (सितम्बर 1942 कलकत्ता से प्रकाशित)
10. करो या मरो, (अक्टूबर 1942 कलकत्ता से प्रकाशित)।

परिशिष्ट–ग[1]

श्री सम्पूर्णानन्द जी के जीवन में घटित महत्वपूर्ण घटनायें

ईस्वी वर्ष	आयु	घटनायें
1890	1 जनवरी	जन्म
1906	17 वर्ष	स्वदेशी का व्रत लेना और ब्रिटिश सरकार की नौकरीन करने का संकल्प लेना।
1910	21 वर्ष	श्री रामेश्वर दयाल जी (नाना) से योग दीक्षा।
1911	22 वर्ष	बी0एस0सी0 क्वींस कालेज बनारस से उत्तीर्ण की तथा लंदन मिशन स्कूल में अध्यापक।
1912	23 वर्ष	प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन में अध्यापक।
1913	24 वर्ष	हरिश्चन्द्र स्कूल काशी में अध्यापन कार्य,
1914	25 वर्ष	इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एल0टी0की उपाधि,
1915	26 वर्ष	इन्दौर में डेलीकालेज में अध्यापक के पद पर नियुक्ति
1916	27 वर्ष	'भौतिक विज्ञान' पुस्तक का लेखन, पं0 लक्ष्मी नारायन गर्दे के साथ मिलकर 'नवनीत' पत्रिका निकालना।
1918	29 वर्ष	बीकानेर में डूंगर कालेज में प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति, पिता की मृत्यु,
1919	30 वर्ष	'चेतसिंह और काशी का विद्रोह' पुस्तक लिखी।
1921	32 वर्ष	डूंगर कालेज के प्राचार्य पद से त्यागपत्र देकर, असहयोग आंदोलन में भागीदारी, मर्यादा पत्रिका का सम्पादन, ब्रिटिश युवराज प्रिन्स ऑफ वेल्स का बहिष्कार तथा गिरफ्तारी।
1923	34 वर्ष	काशी विद्यापीठ में दर्शन, राजनीति के प्रोफेसर पद पर नियुक्ति।
1925	36 वर्ष	अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्य निर्वाचित, पुत्री का विवाह,
1928	39 वर्ष	साइमन कमीशन का बहिष्कार , माता जी का देहांत,
1930	41 वर्ष	नमक सत्याग्रह में भागीदारी के लिए प्रान्तीय काउंसिल से इस्तीफा 1 वर्ष का कारावास।
1932	43 वर्ष	सविनय अवज्ञा आन्दोलन में गिरफ्तारी,
1934	45 वर्ष	कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना में सहयोग, बम्बई में समाजवादी अधिवेशन के सभापति चुने गये।
1936	47 वर्ष	'समाजवाद' पुस्तक का लेखन,
1937	48 वर्ष	मंगला प्रसाद पारितोषिक और मुरार का पुरस्कार प्रदान किया गया।
1938	49 वर्ष	2 मार्च को शिक्षा मंत्री बने, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन कमेटी की नियुक्ति की गई, बद्रीनाथ मंदिर में प्रबन्ध सुधार।
1939	50 वर्ष	पूरे प्रदेश में बेसिक शिक्षा लागू करना, वि0वि0सुधार समिति के अध्यक्ष के रूप में संस्तुति 'व्यक्ति और राज्य' पुस्तक की रचना, पत्नी का स्वर्गवास,

ईस्वी वर्ष	आयु	घटनायें
1940	51 वर्ष	हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति निर्वाचित, पुत्र की मृत्यु, पुत्री की मृत्यु, गुरूदेव ब्रह्मलीन हुए, व्यक्तिगत सत्याग्रह में गिरफ्तारी।
1941	52 वर्ष	आर्यों का आदिदेश, दर्शन और जीवन, भारतीय सृष्टिक्रम विचार,
1942	53 वर्ष	भारत छोड़ो आंदोलन में गिरफ्तारी,
1943–44	54 वर्ष	जेल में अध्ययन, चिहिलास,
1946	57 वर्ष	पुनः मंत्री बनना।
1947	58 वर्ष	माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन, मनोविज्ञानशाला की स्थापना,
1948	59 वर्ष	राजकीय केन्द्रीय पेड़ा गाजिकल इंस्टीट्यूट की स्थापना।
1950–51	61 वर्ष	उत्तर प्रदेश भाषा अधिनियम 1950–1951 का पारित कराना।
1954	65 वर्ष	वाराणसी में यू0पी0 स्टेट आब्जरवेटरी का कार्य प्रारम्भ कराया, 28 दिसम्बर 1954 को मुख्यमंत्री बने।
1956	67 वर्ष	गोवध निषेध अधिनियम 1956 पारित कराया वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय अधिनियम पारित कराया।
1959	70 वर्ष	थाट्स ऑन एजूकेशनल एण्ड सम एलाइड प्राब्लम्स,
1960	71 वर्ष	6 दिसम्बर 1960 को मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र।
1961	72 वर्ष	भावनात्मक एकता समिति के अध्यक्ष,
1962	73 वर्ष	राजस्थान के राज्यपाल के पद पर नियुक्ति,
1965–67	76 वर्ष	'योगदर्शन' ग्रन्थ की रचना,
1967	78 वर्ष	काशी विद्यापीठ के कुलाधिपति,
10.1.1969	80 वर्ष	दिवंगत हो गये।

परिशिष्ट–ग[2]

आचार्य नरेन्द्रदेव जी के जीवन में घटित महत्वपूर्ण घटनायें

ईस्वी वर्ष	घटनायें
31 अक्टूबर 1889	रात्रि 2 बजे जन्म (सीतापुर) पैतृक घर फैजाबाद में, कार्तिक शुक्ल अष्टमी,
1891	पिता के साथ फैजाबाद,
1902	शिक्षारम्भ (फैजाबाद)
1911	बी0ए0 (इलाहाबाद)
1913	एम0ए0 (संस्कृत) क्वींस कालेज काशी,
1915	एल0एल0बी0, इलाहाबाद,
1915	फैजाबाद में वकालत
1916	फैजाबाद में होमरूल लीग की शाखा का गठन,
1921	काशी विद्यापीठ में अध्यापन प्रारम्भ,
1930	सविनय अवज्ञा में पहली बार जेल,
1932	फिर जेल,
17 मई 1934	अ0भा0 कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना, सम्मेलन के अध्यक्ष।
1936	यू0पी0 प्रान्तीय कांग्रेस अध्यक्ष व कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य मनोनीत।
1937	संयुक्त प्रान्त विधान सभा के सदस्य निर्वाचित।
1941	व्यक्तिगत सत्याग्रह में गिरफ्तार,
9 अगस्त 1942	कांग्रेस कार्य समिति के सदस्यों के साथ गिरफ्तार होकर अहमदनगर जेल में नजरबंद।
1946	संयुक्त प्रांत विधान सभा के सदस्य निर्विरोध निर्वाचित।
1947	लखनऊ विश्वविद्यालय के उप कुलपति नियुक्त।
मार्च 1948	कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नागरिक निर्णय के अनुसार कांग्रेस और विधान सभा से त्याग पत्र।
1952	बनारस विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त और राज्य सभा में एम0पी0निर्वाचित, चीनी सांस्कृतिक मिशन में चीन यात्रा।
1954	योरोप में स्वास्थ्य लाभ के लिए यात्रा और नागपुर प्रसोवा सम्मेलन के अध्यक्ष,
1955	गया प्रसोवा सम्मेलन के अध्यक्ष।
19 फरवरी 1956	पेन्दुराई (मद्रास) में देहावसन।

परिशिष्ट–ग³

डॉ0 राममनोहर लोहिया जी के जीवन में घटित महत्वपूर्ण घटनायें

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
23मार्च,1910	अकबरपुर	जन्म
1916	टण्डन पाठशाला, अकबरपुर	प्रारम्भिक शिक्षा
1918	अहमदाबाद कांग्रेस	गांधी जी का प्रथम दर्शन,
1920	विश्वेश्वरनाथ हाईस्कूल, अकबरपुर	मिडिल शिक्षा
1920	मारवाडी विद्यालय, बम्बई	मैट्रिक परीक्षा में प्रवेश
1अगस्त1920	बम्बई	तिलक दिवस पर विद्यालय में हड़ताल कराई
1925	मारवाड़ी विद्यालय बम्बई	मैट्रिक शिक्षा पास प्रथम श्रेणी में,
1925	काशी वि0वि0, वाराणसी	इण्टर में प्रवेश
1926	गुवाहाटी, आसाम	गुवाहाटी भ्रमण
1927	मारवाड़ी विद्यालय, बम्बई	इण्टर तीसरी श्रेणी से पास,
1927	कलकत्ता	बी0ए0 में प्रवेश
1928	कलकत्ता	राजनीति में सक्रिय रूचि और साइमन कमीशन वापस जाओ, में सक्रिय भाग
1928	कलकत्ता	अखिल भारतीय बंगाली विद्यार्थी संगठन के सक्रिय सदस्य।
1929	कलकत्ता	बी0ए0 प्रथम श्रेणी में पास, इंग्लैण्ड में पढ़ने के लिए प्रस्थान,
30दिस1929	बर्लिन, जर्मनी	छः महीने बाद जर्मनी में शोध के लिए प्रस्थान।
1930	बर्लिन, जर्मनी	जर्मनी में मध्य यूरोपीय संगठन का जन्म,
1930	जेनेवा	जेनेवा में लीग आफ नेशंस की सभा में भारतीय प्रतिनिधि का विरोध,
1930–31	जर्मनी	जर्मनी की सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिष्ट पार्टी और नात्सी पार्टी से मित्रता और बहस।
दिस. 1932	बर्लिन, जर्मनी	डाक्ट्रेड की डिग्री,
1933	मद्रास	भारत वापसी, मद्रास में 'हिन्दू' पत्रिका में पहला लेख प्रकाशित,
1933–34	कलकत्ता	भारतीय समाज और राज का अध्ययन,
17मई1934	पटना	समाजवादियों का प्रथम सम्मेलन,
27,28अग01934	बम्बई	कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का स्थापना सम्मेलन
1936	बम्बई	अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विदेश मंत्री,
1936–38	बम्बई	सूरीनाम, फिलीपिन्स, मारीशस आदि देशों में भारतीयों से सम्पर्क।
1938	इलाहाबाद	गांधी के नाम स्वतन्त्रता आन्दोलन छेड़ने के लिए पहला पत्र।
1939	लाहौर	लाहौर में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन,

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
24मई 1939	कलकत्ता	बंदी बनाये गये।
जून 1939	कलकत्ता	जेल से छोड़े गये।
जून 1939	कलकत्ता	अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में सक्रिय भाग,
15सित.1939	बम्बई	अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों से झड़प।
11मई 1940	सुल्तानपुर	सुल्तानपुर जिला राजनैतिक सम्मेलन में 'अध्यक्षीय भाषण'
18मई 1980	इलाहाबाद	उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी में अंग्रेजी के विरूद्ध आंदोलन के लिए प्रस्ताव
7जून 1940	इलाहाबाद	गिरफ्तारी
15जून1940	इलाहाबाद	सुल्तानपुर के भाषण पर, जेल से गांधी के नाम 'हरिजन' में प्रकाशनार्थ पत्र लिखा।
1जुलाई1940	इलाहाबाद सुल्तानपुर जेल,	मुकदमें का फैसला, दो साल की कैद,
12अग.1940	बरेली जेल	सुल्तानपुर जेल से बरेली जेल तबादला,
15सित.1941	बरेली जेल	गांधी के नाम दूसरा पत्र,
4दिस.1941	बरेली	जेल से रिहाई,
23अप्रैल1942	सेवाग्राम	गांधी लोहिया वार्ता, क्रिप्स मिशन के अवसर पर,
8अग.1942	बम्बई	'भारत छोड़ो' आंदोलन का बम्बई अधिवेशन,
9अग.1942	कलकत्ता	भूमिगत हुए।
अग.1942	कलकत्ता	'भूमिगत हालत में 'प्रथम पुस्तिका' जंगजू आगे बढ़ो' का प्रकाशन।
सित.1942	कलकत्ता	दूसरी पुस्तिका "मैं आजाद हूं" का प्रकाशन,
सित.1942	कलकत्ता	कांग्रेस रेडियो की स्थापना,
अक्टू.1942	कलकत्ता	तीसरी पुस्तिका, 'करो या मरो' प्रकाशित की।
नवम्बर1942	कलकत्ता	कांग्रेस–रेडियो के भूमिगत कार्यालय पर पुलिस का छापा, कलकत्ता से फरारी।
दिस.1942	नेपाल	भूमिगत हालत में नेपाल आना।
दिस.1942	नेपाल	जयप्रकाश नारायण से प्रथम भेंट,
1943	नेपाल	नेपाल के जंगलों में कांग्रेस रेडियो की पुर्नस्थापना,
मार्च 1943	नेपाल	नेपाल में भूमिगत स्थानों पर नेपाली सिपाहियों द्वारा छापा,
1943	नेपाल	लोहिया, जयप्रकाश, अच्युत पटवर्धन की पुत्री जया का नेपाल बंदीगृह में कैद होना
1943	नेपाल	'आजाद हिन्द' के छापामार दस्तों द्वारा नेपाल जेल को तोड़कर लोहिया जयप्रकाश आदि को निकालना।
1943	कलकत्ता	नेपाल को छोड़कर लोहिया का कलकत्ता वापस जाना।
15 16मई 1944	बम्बई	भूमिगत कार्यकर्ताओं का बम्बई में सम्मेलन।

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
20 मई 1944	बम्बई	पुनः गिरफ्तारी
जून 1944	लाहौर जेल	लाहौर जेल में तबादला,
1944	लाहौर जेल	लाहौर जेल की यातनायें,
दिसम्बर 1944	लाहौर हाईकोर्ट	बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर,
जनवरी 1945	लाहौर	लाहौर हाईकोर्ट में दायर याचिका खारिज,
अक्टूबर 1945	लाहौर जेल	ब्रिटिश लेबर पार्टी के अध्यक्ष प्रो0लास्की के नाम पत्र,
1945	–	लाहौर जेल से आगरा जेल वापसी।
1945	कलकत्ता	पिता श्री हीरालाल लोहिया का निधन।
1945	आगरा जेल	ब्रिटिश सरकार द्वारा पैरोल पर छोड़े जाने के आदेश का तिरस्कार,
1अप्रैल 1946	आगरा जेल	जेल से रिहाई,
24अप्रैल 1946	कलकत्ता	जेल से छूटने के बाद कलकत्ता वि0वि0में प्रथम भाषण,
1946	–	सोशलिस्ट पार्टी पर से प्रतिबन्ध हटा।
5जून 1946	गोवा	'गोवा आंदोलन' का शुभारम्भ।
18जून 1946	गोवा	सिविल नाफरमानी करते हुए गिरफ्तार,
जून 1946	–	महात्मा गांधी ने लोहिया के बंदी होने पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की वायसराय के पास पत्र भेजा।
21जून 1946	गोवा जेल	जेल से रिहाई,
29सितम्बर 1946	गोवा	गोवा में फिर सिविल नाफरमानी और गिरफ्तारी,
8 नवम्बर 1946	गोवा जेल	जेल से रिहाई,
26–28फर0 1947	कानपुर	कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का सम्मेलन,
1947	कलकत्ता	नेपाली आंदोलन के समर्थन में डॉ0 लोहिया का प्रथम वक्तव्य।
25अप्रैल 1947	दार्जिलिंग	नेपाली आंदोलन के सिलसिले में भारत सरकार द्वारा दार्जिलिंग में गिरफ्तार।
जून 1947	कलकत्ता	भारत में हुए साम्प्रदायिक दंगों पर तीखा बयान,
15अगस्त 1947	कलकत्ता	स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर जुलूस का नेतृत्व।
30 अगस्त 1947	कलकत्ता	साम्प्रदायिक दंगों का विस्फोट,
31 अगस्त 1947	कलकत्ता	गांधी जी का अनशन,
सितम्बर 1947	कलकत्ता	गांधी जी के आदेश पर 'शांति समिति' स्थापित की।
सितम्बर 1947	कलकत्ता	गांधी जी के आदेश पर दंगा करने वालों से हथियार वापस करने की अपील।
4 सितम्बर 1947	कलकत्ता	गांधी जी ने अनशन तोड़ा।
1947	दिल्ली	गांधी जी के आदेश पर सरकार द्वारा स्थापित अन्न समिति की सदस्यता स्वीकार की।

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
जनवरी 1948	बम्बई	गांधी जी के आदेश पर बंबई के हड़ताली मजदूरों के बीच जाकर वार्ता।
26 जनवरी 1948	दिल्ली	गांधी जी को मजदूरों से की गई, बातचीत का हवाला देना।
29 जनवरी 1948	दिल्ली	गांधी जी से अन्तिम भेंट।
30 जन0 1948	दिल्ली	गांधी जी की निर्मम हत्या,
मार्च 1948	नासिक	कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का मासिक सम्मेलन और कांग्रेस से अलग होने का फैसला।
25 मई 1949	दिल्ली	नेपाल कांग्रेस के आंदोलन के समर्थन में जुलूस का नेतृत्व करते हुए आजाद भारत में गिरफ्तारी।
3जुलाई 1949	दिल्ली	जेल से रिहाई,
24अगस्त1949	स्टाक होम	स्टाक होम की यात्रा,
दिस0 1949	रीवां (म0प्र0)	रीवा में किसान पंचायत का अधिवेशन, गोली काण्ड।
जुलाई 1950	–	कोरिया युद्ध पर अशोक मेहता, जे0पी0 तथा अन्य समाज वादियों से मतभेद।
1950	—	सोशलिस्ट पार्टी के मद्रास सम्मेलन में लोहिया का न जाने का फैसला।
22–23दिस.1950	लखनऊ	हिमालय बचाओं सम्मेलन आयोजन।
19–29मार्च 1951	रंगून	समाजवादी सम्मेलन में भाग लिया।
3 जून 1951	दिल्ली	दिल्ली में एक लाख लोगों द्वारा 'जनवाणी दिवस' का आयोजन, प्रदर्शन–नेतृत्व,
14 जून 1951	मैसूर	'पुलिस–ज्यादतियों के खिलाफ किसान आंदोलन में गिरफ्तारी
21 जून 1951	मैसूर	जेल से रिहाई,
3 जुलाई 1951	फ्रैंरकफर्ट, जर्मनी	अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में भाग लिया।
1952	–	युगोस्लाविया, अमेरिका, हवाई द्वीप, जापान, हांगकांग, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया और श्रीलंका की यात्रा के बाद भारत वापसी।
1952	पंचमढ़ी	पंचमढ़ी समाजवादी पार्टी के अधिवेशन में अध्यक्षता। मार्क्सवादी सिद्धान्त त्यागने की सलाह तथा गांधी के मार्ग पर नई नीति बनाने का संकल्प, समाजवादी आंदोलन के नेतृत्व का आरम्भ।
1952	पंचमढ़ी	सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रज्ञा पार्टी के विलय की पहल,
24–25सित0 1952	बम्बई	सोशलिस्ट पार्टी की कौसिंल की बैठक एवं किसान मजदूर प्रजा पार्टी के साथ विलयन का प्रस्ताव पारित।

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
26 सित0 1952	वम्बई	के0एम0पी0पी0और सोशलिस्ट पार्टी के कौंसिलों की सम्मिलित बैठक द्वारा विलयन की पुष्टि। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के भीतर नेहरू और कांग्रेस से मिलकर साझा सरकार बनाने वालो का मतभेद।
मार्च 1953	वम्बई	लोहिया द्वारा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के बीच अधारभूत सिद्धान्तों की घोषणा, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी द्वारा कांग्रेस से सहयोग या संयुक्त मंत्रिमण्डल बनाने के प्रस्ताव की निन्दा।
9 अगस्त 1953		किसान सत्याग्रह का नेतृत्व
29–31दिस01953	इलाहाबाद	इलाहाबाद प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन,
दिस0 1953	इलाहाबाद	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के राजनीतिक नीति और कार्यक्रम बनाने वाली कमेटी के अध्यक्ष के रूप में डॉ0 लोहिया के राजनीतिक प्रस्ताव बहुमत से पारित।
1 जनवरी 1954	इलाहाबाद	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का प्रधानमंत्री का पद स्वीकार और चौखम्भा राज, विकेन्द्रीकरण, आर्थिक समानता, कृषि एवं औद्योगिक नीतियों की घोषणा।
4 जुलाई 1954	नैनी सेन्ट्रल जेल (इलाहाबाद)	स्पेशल पावर एक्ट (1932) के धारा 30 के अन्तर्गत फर्रूखाबाद कायमगंज में गिरफ्तार हुए।
9जुलाई 1954	इलाहाबाद	बंदी–प्रत्यक्षीकरण की दरख्वास्त पर सुनवाई के लिए हाईकोर्ट की मंजूरी।
20जुलाई 1954	इलाहाबाद	हाईकोर्ट में सुनवाई शुरू।
17अगस्त 1954	नैनी सेन्ट्रल जेल	केरल सरकार द्वारा निहत्थे मजदूरों पर गोली चलाये जाने के कारण मुख्यमंत्री से इस्तीफा मांगा।
17 अगस्त 1954	नैनी सेन्ट्रल जेल	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के महामंत्री के पद और कार्यकारिणी से त्यागपत्र।
28अगस्त 1954	इलाहाबाद	जस्टिस देसाई और जस्टिस चतुर्वेदी के फैसले पर पुनर्विचार करके जस्टिस अग्रवाल ने डॉ0 लोहिया को मुक्त किया।
26–28नव01954	नागपुर	नागपुर में पार्टी का अधिवेशन हुआ, खुले अधिवेशन में दिल्ली में कार्यकारिणी द्वारा पारित प्रस्ताव का अनुमोदन किया गया।
26 जनवरी 1953	नागपुर	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के मुख पत्र 'जनता' में अशोक मेहता ने कांग्रेस के आबादी–प्रस्ताव का स्वागत किया और घोषणा की कि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में और कांग्रेस में अब कोई अंतर नहीं है, डॉ0 लोहिया ने अशोक मेहता का विरोध किया।

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
फरवरी 1955	बम्बई	बम्बई में मधुलिमये ने अशोक मेहता का विरोध किया और बम्बई के महापालिका के दस में से नौ सदस्यों ने मधुलिमये का समर्थन किया।
अप्रैल 1955	बम्बई	मधुलिमये को पार्टी की सदस्यता से मुअत्तल कर दिया गया।
4–5जून1955	दिल्ली	पार्टी के नेताओं ने पुरी में मधुलिमये के 'युवक–सम्मेलन' में शामिल होने पर रोक लगाई, दिल्ली में राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक हुई, जिसमें राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने उत्तर प्रदेश की कार्यकारिणी को बरखास्त कर दिया।
11,12,13जून 1955	गाजीपुर	उत्तर प्रदेश प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का विशेष अधिवेशन हुआ जिसमें मधुलिमये ने उद्घाटन किया और लोहिया ने मधुलिमये का स्वागत किया।
10जुलाई 1955	–	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी ने डॉ0 लोहिया को भी पार्टी से मुअत्तल कर दिया।
28दिस0 1955	हैदराबाद	नई सोशलिस्ट पार्टी का हैदराबाद में स्थापना सम्मेलन,
28–31जन01956	सिहोरा	सोशलिस्ट पार्टी का प्रथम अधिवेशन,
मार्च 1956	लखनऊ	सोशलिस्ट पार्टी द्वारा एक लाख किसानों का जुलूस लोहिया के नेतृत्व में निकाला गया।
2 जून 1956	लखनऊ	जयप्रकाश नारायण को पत्र लिखा।
15 जुलाई 1956	लखनऊ	जयप्रकाश नारायण से भेंट की।
अगस्त 1956	दिल्ली	"मैनकाइन्ड' का प्रकाशन
12 अगस्त 1956	कलकत्ता	लोहिय जयप्रकाश की दूसरी भेंट।
सित.,अक्टू. 1956	बनारस	हरिजनो का मंदिर प्रवेश, सोशलिस्ट की गिरफ्तारी
फरवरी, 1957	चकिया, चन्दौली,बनारस	चकिया–चन्दौली से चुनाव लड़े और हारे।
10मई 1957	उत्तर प्रदेश	सिविल नाफरमानी आंदोलन, पॉच हजार से ज्यादा सत्याग्रही जेल गये।
जून 1957	–	देश में अंग्रेजों की मूर्तियां हटाने का आन्दोलन।
2 नव0 1957	लखनऊ	बिक्रीकर कार्यालय के सामने सत्याग्रह। सोशलिस्ट पार्टी द्वारा लोहिया दिवस मनाया गया।
30नव0 1957	लखनऊ जेल	लोहिया का, लखनऊ जेल में जबरदस्ती अंगूठे का निशान लिया गया।
6 दिस0 1957	लखनऊ उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण दरख्वास्त।
12 दिस0 1957	लखनऊ उच्च न्यायालय	फैसले में न्यायमूर्ति बेग और न्यायमूर्ति मुल्ला की राय में मतभेद हुआ।

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
13–16दिस01957	लखनऊ उच्च न्यायालय	न्यायमूर्ति रघुवर दयाल की निगरानी अदालत में मुकद्मा,
17दिस01957	लखनऊ उच्च न्यायालय	लोहिया की दरख्वास्त खारिज हो गयी।
21दिस0 1957	सुप्रीम कोर्ट	सुप्रीम कोर्ट में मुकद्मा दाखिल हुआ।
23दिस0 1957		डॉ0 लोहिया की रिहाई,
जनवरी 1958	हैदराबाद	द्रविण मुनेत्र कड़गम के नेता रामास्वामी नायकर के पास पत्र भेजा।
फरवरी 1958	हैदराबाद, मद्रास	डॉ0 अम्बेडकर को पत्र जेल में, डॉ0 लोहिया की रामास्वामी नायकर से भेंट।
23 नव0 1958	नेफा	उर्वसीयम् में कैद किये गये और छूटने के बाद यह संकल्प लिया कि साल भर बाद फिर यहाँ आयेंगे।
दिस0 1958	बम्बई	गीता के 'कर्मव्येवाधिकारस्ते' की एक नई व्याख्या 'निराशा के कर्तव्य' के नाम से प्रस्तुत की।
10अगस्त 1959	सुप्रीम कोर्ट	1954 में इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले के खिलाफ सरकार द्वारा सुप्रीम कोर्ट में अपील।
25सित0 1959	सुप्रीम कोर्ट	सुप्रीम कोर्ट ने डॉ0 लोहिया को हिन्दी में बहस करने से रोका, उन्होंने वहीं से सुप्रीम कोर्ट को खत लिखा।
5अक्टूबर 1959	हैदराबाद	हैदराबाद में लोहिया जी को सुप्रीम कोर्ट का पत्र मिला कि हिन्दी में लिखा गया पत्र सुप्रीम कोर्ट को मान्य नहीं है।
23नवम्बर 1959	नेफा	'उर्वसीयम/' में पुनः प्रवेश और आंदोलन।
29–31दिस01959	चन्नमलाई, तमिलनाडु	सोशलिस्ट पार्टी का पाँचवा सम्मेलन, पार्टी का नेतृत्व पिछड़े वर्ग के हाथों में देने की घोषणा।
14अप्रैल 1960	इलाहाबाद	इलाहाबाद की आम सभा में सत्याग्रह की घोषणा।
मई–अक्टू01960		छः महीने आंदोलन चला और चालीस हजार लोगों ने गिरफ्तारी दी।
नवम्बर 1960	चित्रकूट	लोहिया द्वारा चित्रकूट की यात्रा फरवरी में 'रामायण मेला' आयोजित करने की घोषणा।
जनवरी 1961	उज्जैन	अंग्रेजी हटाओं सम्मेलन।
अगस्त 1961	–	समाजवादी ताकतों की एकता की अपील।
26 सित0 1961	हैदराबाद	सरकार द्वारा 'मैनकाइन्ड' के सम्पादक मार्गोस्केनर और उनकी पत्नी को जबरदस्ती हैदराबाद कार्यालय से निकाल बाहर किया गया, डॉ0 लोहिया ने इसका विरोध किया।
21अक्टू01961		एथेन्स में आयोजित 'विश्व समाज सम्मेलन' में भाग लेने के लिए ग्रीस रवाना।
नवम्बर 1961		लोहिया द्वारा 'सप्तक्रान्तियों' की पुर्नस्थापना एवं गैर कांग्रेसवाद का सुझाव।

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
दिस0 1962		1962 के चुनाव की तैयारी।
जनवरी 1962	फूलपुर	जवाहर लाल नेहरू के खिलाफ फूलपुर क्षेत्र से चुनाव लड़े
11–15जून1962	गोरखपुर	सोशलिस्ट पार्टी का गोरखपुर में शिविर।
12714अक्टू.1962	हैदराबाद	हैदराबाद में तीसरा 'अंग्रेजी हटाओं' सम्मेलन,
20अक्टू0 1962		भारत पर चीन का आक्रमण, लोहिया ने देश का दौरा किया, कांग्रेस सरकार को 'राष्ट्र की शर्मनाक सरकार' घोषित किया।
अक्टूबर 1962	पटना	'हिमालय बचाओं' आंदोलन की तैयारी, भारत के राष्ट्रपति द्वारा उद्घाटन।
13दिस0 1962	लखनऊ	उत्तर प्रदेश विधान सभा में समाजवादी और प्रजा समाजवादी विधायकों का एक पार्टी के रूप में संगठित होना।
28–31दिस01962	भरतपुर	समाजवादियों का छठा सम्मेलन,
जनवरी 1963	दिल्ली	समाजपार्टी की राष्ट्रीय समिति और प्रजा समाजवादी पार्टी की मिली–जुली बैठक।
22फरवरी 1963	महाराष्ट्र	समाजवादियों और प्रजा समाजवादियों की मिलीजुली बैठक एकता का आह्वान।
12मार्च 1963	नेफा	'उर्वसीयम्' का दौरा और आँखों देखा हाल का वर्णन।
22मार्च 1963	लखनऊ	उत्तर प्रदेश की विधानसभा से समाजवादी विधायकों को निकाले जाने की आलोचना।
मई–जून 1963	फर्रूखाबाद	फर्रूखाबाद क्षेत्र से कांग्रेस प्रत्याशी डॉ0 केसकर को पराजित करके संसद में प्रवेश।
17 अगस्त 1963	नई दिल्ली	संसद में नेहरू के प्रति अविश्वास के प्रस्ताव की योजना।
23अगस्त 1963	लोकसभा	संसद में दिया प्रथम भाषण, 3 आना बनाम 12 बनाम की बहस।
अक्टूबर 1963	नई दिल्ली	प्रजा सोशलिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियों के विलयन की बात शुरू करने की पहल।
नव0दिस01963		गैर कांग्रेसवाद के सिद्धान्त की व्याख्या।
जनवरी 1964		प्रसोपा की कार्यकारिणी ने अशोक मेहता की पार्टी से निकालने का
फरवरी 1964	दिल्ली	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी ने सोशलिस्ट पार्टी द्वारा प्रस्तावित बिना शर्त एकता के प्रस्ताव का स्वागत किया।
13 मार्च 1964	दिल्ली	'जनवाणी' दिवस का आयोजन, प्रदर्शन में प्रसोपा ने भाग नहीं लिया।
16अप्रैल 1964	दिल्ली	विश्वव्यापी दौरे के लिये प्रस्तान।
17 मार्च 1964	अमेरिका	मिसीसिपी राज्य के जंक्शन गांव के एक होटल में रंगभेद के खिलाफ सत्याग्रह, विश्वव्यापी हलचल, लोहिया की गिरफ्तारी।

ईस्वी वर्ष	स्थान	घटनायें
27 मई 1964	अमेरिका	प्रधानमंत्री पं0नेहरू का निधन, लोहिया का वक्तव्य,
12 जून 1964	लंदन	लंदन के 'महात्मा गांधी हॉल' मे भारतीय छात्रों के बीच का ओजस्वी भाषण।
7–8मई 1964	नई दिल्ली	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों की बैठक
6 जून 1964	दिल्ली	संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की विधिवत घोषणा।
अगस्त 1964		लोहिया और सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों के खिलाफ प्रसोपा की कटु आलोचना।
29–31जन01965	वाराणसी	संसोपा का सम्मेलन डॉ0 लोहिया का सम्मेलन में न जाना, अशोक मेहता और कांग्रेस समर्थकों का संसोपा से अलग होना।
19मई 1965		कच्छ पर पाकिस्तान का आक्रमण और लोहिया की प्रतिक्रिया, समाजवादियों द्वारा कच्छ में सत्याग्रह,.
9अगस्त 1965	पटना	पटना बंद का आयोजन तथा 25 नवम्बर को संसद का घेराव करने की घोषणा। गिरफ्तारी,
26अगस्त 1965	सुप्रीम कोर्ट	सुप्रीम कोर्ट में अपने मुकद्में पर बहस,
10जन01966	ताशकंद	ताशकंद सुलह और लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु।
18मार्च 1966	लोकसभा	बत्सर में आदिवासियों पर किये गये जुल्म के खिलाफ संसद में जोशीला भाषण।
मार्च 1966	कलकत्ता	कलकत्ता में पुलिस हिंसा का विरोध।
10जुलाई 1966	लखनऊ	12जुलाई 1966 से शुरू होने वाले उत्तर प्रदेश बंद के सिलसिले में गिरफ्तार।
1967	इलाहाबाद	गैर कांग्रेसवादी आंदोलन के लिए आह्वान तथा आम चुनाव की तैयारी।
1967	फर्रूखाबाद	आम चुनाव में 'मुस्लिम पर्सनल ला' के खिलाफ डॉ0 लोहिया का जिहाद और फर्रूखाबाद संसदीय क्षेत्र से केवल 400 मतों से जीतकर संसद–सदस्य चुने गये। पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र में सरकार का गठन।
17जुलाई 1967	लोकसभा	भारतीय विदेश नीति पर संसद में भाषण।
16सित0 1967	लोकसभा	दलाई लामा के पक्ष में और चीन के विरोध में संसद में भाषण।
12अगस्त 1967	लोकसभा	संसद में अन्तिम भाषण।
28सित0 1967	दिल्ली	विलिंगटन अस्पताल में भर्ती,
12अक्टू0 1967	दिल्ली	निधन,

शोध प्रबन्ध में संदर्भित ग्रन्थ सूची

क्र0सं0	लेखक का नाम	ग्रन्थ का नाम	स्थान	प्रकाशक का पता
1	अल्तेकर डॉ0 अनंत सदाशिव	प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति	वाराणसी	मनोहर प्रकाशन 1414,जबलपुर
2	अदावाल डॉ0 सुबोध उनियाल	माधवेन्द्र, भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियां	लखनऊ	उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
3	अग्रवाल एस0के0	शिक्षण कला	मेरठ	राजेश पब्लिशिंग हाउस, 1972
4	अग्रवाल एस0के0	शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त	मेरठ	राजेश पब्लिशिंग हाउस, 1969
5	आचार्य नरेन्द्रदेव	साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति	दिल्ली	प्रभात प्रकाशन
6	आचार्य नरेन्द्रदेव	युग और विचार	लखनऊ	सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग,1989
7	ओड डॉ0 एल0के0	शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि	जयपुर	हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
8	कपिल, डॉ0 एच0के0	अनुसंधान विधियां	आगरा	हरप्रसाद भार्गव, 1981
9	कौल लोकेश	मैथडोलोजी ऑफ एजूकेशनल रिसर्च	नई दिल्ली	वानी एजूकेशन बुक्स, 1987
10	कौटिल्य	कल्याण विशेषांक (शिक्षा अंक)	गोरखपुर	गीता प्रेस, गोरखपुर
11	गौण, कृष्णदेव प्रसाद	सम्पूर्णानन्द अभिनंदन ग्रन्थ	वाराणसी	नागरी प्रचारिणी सभा, 1950
12	गोविन्ददास सेठ	महापुरूषों की जीवन झांकियाँ	दिल्ली	हिंद पाकेट बुक्स, 1965
13	गांधी एम0के0	आत्मकथा	अहमदाबाद	नवजीवन प्रकाशन, 1957
14	गांधी एम0के0	यंग इंडिया		4 अप्रैल 1929
15	गांधी एम0के0	हरिजन पत्रिका		28 मार्च 1926
16	गुप्त लक्ष्मीनारायण	कुछ महान शिक्षक, डीवी और गांधी	इलाहाबाद	कैलाश प्रकाशन
17	गुप्त लक्ष्मीनारायण	शिक्षा के दार्शनिक आधार	इलाहाबाद	पुस्तक मंदिर, 1970
18	चतुर्वेदी, बनारसीदास	सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ	कालपी	हिन्दी भवन कालपी
19	चौबे, डॉ0 सरयूप्रसाद	भारतीय शैक्षणिक विचारधारा	नई दिल्ली	सेन्ट्रल बुक डिपो
20	चौबे, डॉ0 सरयूप्रसाद	भारतीय शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास	इलाहाबाद	रामनारायण बेनीमाधव,1962
21	जौहरी एवं पाठक	भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें	आगरा	विनोद पुस्तक मंदिर, 1971
22	जायसवाल, डॉ0 सीताराम	मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रूपरेखा	आगरा	विनोद पुस्तक मन्दिर
23	टकमैन, ब्रूस, डब्लू0	कन्डक्टिंग एजूकेशनल रिसर्च	न्यूयार्क	हरकोर्ट बेसजोनेवोवित 1972
24	टेटियाल सच्चिदानंद और फाटक अरविन्द	शैक्षिक अनुसंधान का विधिशास्त्र	जयपुर	राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी
25	तिवारी डॉ0 गोविन्द	शैक्षिक एवं मनो0अनुसंधान के मूलाधार	आगरा	विनोद पुस्तक मंदिर 1985
26	तिवारी, लक्ष्मीनारायण	विश्व दृष्टि– डॉ0 सम्पूर्णानन्द	वाराणसी	सम्पूर्णानन्द विश्ववि0 1993
27	दयाकृष्ण	ज्ञानमीमांसा	जयपुर	हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
28	दत्त यू0सी0	एजूकेशनल सर्वे ऑफ उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद	दि इंडियन प्रेस प्रा0लि0,1960
29	दीक्षित, जगदीशचन्द्र	डॉ0 सम्पूर्णानन्द	लखनऊ	संसदीय अध्ययन संस्थान,उ0प्र0

क्र0सं0	लेखक का नाम	ग्रन्थ का नाम	स्थान	प्रकाशक का पता
30	द्विवेदी, हजारी प्रसाद(सम्पादक)	महापुरूषों का स्मरण	दिल्ली	राजकमल प्रकाशन, 1987
31	द्विवेदी, पारसनाथ	भारतीय दर्शन	आगरा	श्रीराम मेहता एण्ड क0, 1973
32	दुबे, डॉ0 रमाकांत	विश्व के कुछ महान शिक्षाशास्त्री	मेरठ	मीनाक्षी प्रकाशन
33	नरेन्द्रदेव	आचार्य बौ0 धर्म दर्शन	बिहार	राष्ट्रभाषा पटना 3, 1995
34	नरेन्द्रदेव	मेरे संस्मरण	नई दिल्ली	बुक ट्रस्ट इंडिया 1971
35	पाण्डेय, डॉ0 के0पी0	शैक्षिक अनुसंधान	वाराणसी	वि0वि0प्रकाशन, 1995
36	प्रसाद, राजेनद्र	आत्मकथा	नई दिल्ली	साहित्य मंडल, 1965
37	प्रसाद, डॉ0 गोरख	भारतीय ज्योतिष का इतिहास	लखनऊ	हिन्दी समिति सूचना
38	प्रसाद, डॉ0 गोरख	भारतीय ज्योतिष का इतिहास	लखनऊ	हिन्दी समिति सूचना वि0,1974
39	पोद्दार, हनुमान प्रसाद	कल्याण–हिन्दी संस्कृति अंक में	गोरखपुर	गीता प्रेस, गोरखपुर, 1950
40	पाण्डेय, रामशकल	शिक्षा दर्शन	आगरा	विनोद पुस्तक मन्दिर, 1983
41	पटेल, एम0एस0	एजूकेशनल फिलास्फी ऑफ महात्मागांधी		
42	पाण्डेय एण्ड अदर्स	प्रमुख शिक्षा दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री	गोरखपुर	एस0के0प्रिन्टर्स
43	पाठक एवं त्यागी	भारतीय शिक्षा के आयाम	आगरा	विनोद पुस्तक मंदिर, 1967
44	बुच, एम0बी0	ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन	बड़ौदा	सेंटर ऑफ एडंवास स्टडी,
45	बुच, एम0बी0	सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन	नई दिल्ली	एन0सी0ई0आर0टी0
46	बुच, एम0बी0	थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन	नई दिल्ली	एन0सी0ई0आर0टी0
47	बुच, एम0बी0	फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन	नई दिल्ली (Vol I & II)	एन0सी0ई0आर0टी0, 1981
48	बुच, एम0बी0	फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन	नई दिल्ली	एन0सी0ई0आर0टी0, 1995
49	भटनागर, डॉ0 आर0पी0	शिक्षा अनुसंधानःविधि एवं विश्लेषण	मेरठ	लायल बुक डिपो
50	भूर जार्ज एडर्वड	नीतिशास्त्र मीमांसा	पटना,बिहार	हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
51	मैक्सभूलर	'हम भारत से क्या सीखे'	इलाहाबाद	इतिहास प्रकाशन संस्थान,1964
52	मिश्र, डॉ0 आत्मानंद	शिक्षाकोष	कानपुर	ग्रन्थम प्रकाशन, 1977
53	मिश्र, डॉ0 आत्मानंद	भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक	मेरठ	विनोद पुस्तक मन्दिर
54	माथुर, एस0एस0	शिक्षा सिद्धान्त	आगरा	विनोद पुस्तक मंदिर, 1973
55	युगेश्वर	समाजवाद (आ0नरेन्द्र देव, डॉ0 लोहिया एवं जयप्रकाश की दृष्टि में	लखनऊ	सूचना एवं जनसम्पर्क वि0,1994
				लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1985
56	राय पारसनाथ	अनुसंधान परिचय	आगरा	राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी,
57	रस्क, आर0आर0	शिक्षा के दार्शनिक आधार	जयपुर	1982
58	राय कौशल किशोर	उत्तर प्रदेश पत्रिका, सम्पूर्णानन्द अंक	लखनऊ	सूचना एवं जनसम्पर्क वि0,1989
59	राय प्यारेलाल	भारतीय शिक्षण का इतिहास	आगरा	रामप्रसाद एण्ड संस, 1972
60	लोहिया राममनोहर	भारतमाता, धरतीमाता	इलाहाबाद	लोकभारती प्रकाशन
61	लाहिया राममनोहर	समता और सम्पन्नता	इलाहाबाद	लोकभारती प्रकाशन, 1996
62	लालमुकुट बिहारी	आचार्य नरेन्द्रदेव युग प्रवर्तक	–	–

क्र0सं0	लेखक का नाम	ग्रन्थ का नाम	स्थान	प्रकाशक का पता
63	लाल, रमन बिहारी	शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशा0सिद्धान्त	मेरठ	रस्तोगी प्रकाशन, 1972
64	वर्मा, लक्ष्मीकान्त	डॉ0 राममनोहर लोहिया	लखनऊ	सूचना एवं जनसम्पर्क प्र0 सं0,1991
65	वर्मा, परिपूर्णानन्द	प्रतीकशास्त्र	लखनऊ	हिंदी समिति सूचना विभाग,1964
66	शर्मा, आर0ए0	शिक्षा अनुसंधान	मेरठ	सूर्या पब्लिकेशन
67	शर्मा, आर0ए0	शिक्षा अनुसंधान	मेरठ	लायल बुक डिपो
68	शर्म, पं0श्रीराम आचार्य	मीमांसा दर्शन	बरेली	संस्कृति संस्थान, 1990
69	शर्मा, डॉ0 मणि	समकालीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप तथा उसकी सम्भावनायें		हर प्रसाद भार्गव
70	सिन्हा, एच0बी0	शैक्षिक अनुसंधान	नयी दिल्ली	विकास पब्लिशिंग हाउस
71	सुखिया, एस0पी0, मेहरोत्रा, पी0पी0, मेहरोत्रा, आर0एन0	शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व	आगरा	विनोद पुस्तक मंदिर
72	सम्पूर्णानन्द	कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार	वाराणसी	ज्ञानमंडल लि0कबीर चौरा,1962
73	सम्पूर्णानन्द	चेतसिंह और काशी का विद्रोह	कानपुर	प्रताप कार्यालय, 1919
74	सम्पूर्णानन्द	चिहिलास	काशी	ज्ञानमंडल लि0, 1944
75	सम्पूर्णानन्द	समिधा में संकलित लेख	लखनऊ	सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग
76	सम्पूर्णानन्द	गगनगुफा	काशी	नागरी प्रचारिणी सभा, 1969
77	सम्पूर्णानन्द	योगदर्शन	लखनऊ	हिन्दी समिति सूचना वि0,उ0प्र0
78	सम्पूर्णानन्द	जीवन और दर्शन	इलाहाबाद	इंडियन प्रेस
79	सम्पूर्णानन्द	समाजवाद	वाराणसी	काशी विद्यापीठ, 1944
80	सम्पूर्णानन्द	आर्यों का आदिदेश	इलाहाबाद	लीडर प्रेस, इलाहाबाद
81	सम्पूर्णानन्द	वेद मंत्रों के प्रकाश में	नयी दिल्ली	सस्ता साहित्य मंडल, 1966
82	सम्पूर्णानन्द	भौतिक विज्ञान	बनारस	काशी नागरी प्रचारिणी सभा
83	सम्पूर्णानन्द	डॉ0 सम्पूर्णानन्द स्मृति अंक	काशी	काशी नागरी प्रचारिणी
84	सम्पूर्णानन्द	ज्योतिर्विनोद	प्रयाग	इंडियन ज्ञानपीठ प्रकाशन,1969
85	सम्पूर्णानन्द	वेदार्थ प्रवेशिका	वाराणसी	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,1969
86	सम्पूर्णानन्द	स्फुट निबन्ध	आगरा	श्रीराम मेहरा एण्ड क0 1967
87	सम्पूर्णानन्द	व्यक्ति और राज	काशी	हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, 1940
88	सम्पूर्णानन्द	चरितचर्चा जीवन दर्शन	काशी	नागरी प्रचारिणी सभा
89	सम्पूर्णानन्द	अधूरी क्रान्ति	लखनऊ	राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रका0, 1976
90	सम्पूर्णानन्द	शिक्षा के उद्देश्य	इलाहाबाद	निदेशक राजकीय मुद्रण एवं लेखन
91	सम्पूर्णानन्द	समिधा	लखनऊ	सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग
92	श्री प्रकाश	श्री सम्पूर्णानन्द–कुछ संस्मरण	वाराणसी	नागरी प्रचारिणी सभा, 1950
93	श्रीवास्तव, श्री पन्नालाल	पत्रकार कला	इलाहाबाद	लीडर प्रेस इलाहाबाद
94	श्रीवास्तव, वंशीधर	नयी तालीम	वाराणसी	सर्व सेवा संघ
95	त्रिगुणायत, डॉ0 गोविन्द	शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त	–	–